रामचरितमानस का टीका-साहित्य

डॉ० त्रिभुवन नाथ चौबे
एम० ए०, पी-एच्० डी०

सम्भावना प्रकाशन
सुलतानपुर

प्रकाशक
सम्भावना प्रकाशन
गौरीगंज, सुलतानपुर (उ० प्र०)
(शाखा शान्ताराम, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर)

• मूल्य ३५.००
• प्रथम संस्करण १६७५

मुद्रक :
इलाहाबाद प्रेस
१७०, रानी मण्डी
इलाहाबाद

रामचरित मानस

के

प्रेमी जन को

सादर समर्पित

भूमिका

मेरे प्रिय शिष्य डॉ० त्रिभुवन नाथ चौबे कृत शोध ग्रन्थ—'रामचरित मानस का टीका-साहित्य'—के प्रकाशन पर मुझे हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। डॉ० चौबे ने यह शोध बडी ही निष्ठा एवं परिश्रम के साथ सम्पन्न किया है। अनुसंधान का विषय नितात नया एव गहन था, परन्तु इस गुरुतर उत्तरदायित्व का वहन जिज्ञासु एव उत्साही अनुसंधायक श्री चौबे ने उत्तम रीत्या किया। इस ग्रन्थ के लेखन मे लेखक ने कठोर अध्यवसायोपरान्त अपनी विवेचन विश्लेषण की शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। मुझे यह कहने मे कोई संकोच नही कि मेरे निदेशन मे सम्पन्न हुआ यह शोध-कार्य अपनी विशेषताओं के कारण हिन्दी के लिये एक देन बना। सभी विद्वान एवं 'मानस'-मर्मज्ञ परीक्षकों ने इसकी विषय-वस्तु का आकलन करते हुए इसे विशिष्ट एवं श्रेष्ठ शोध ग्रंथ के रूप मे मान्यता दी।

संक्षिप्तत प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का स्वरूप, इसकी विशेषताएँ एवं योगदान निम्न-वत हैं —

प्रथम खण्ड

भूमिका मे किशोरी दत्त, रामदास, अयोध्या, रामनगर एवं स्वतंत्र परम्पराओ का परिचय देने के बाद अर्थ-प्रकाशन प्रणालियो का विस्तृत विवेचन किया गया है। अर्थ प्रकाशन की प्रणालियो मे टीका, भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टिप्पणी एवं कारिका की सांगो-पांग पर्यालोचना हुई है। इनमे टीका पर विशेष ध्यान रखा गया है, जो आवश्यक था। इन टीका प्रणालियो मे से प्रत्येक की परिभाषा, उसके उदाहरण, विशेषताएँ, भेद, विवे-चन देने के बाद 'मानस' के क्षेत्र मे उस प्रणाली का विशद परिचय दिया गया है।

द्वितीय खण्ड

टीकाओ का ऐतिहासिक विवेचन इस खण्ड मे दिया गया है। टीका साहित्य को तीन कालो मे विभाजित किया गया है (१) आरंभिक काल (वि० १६६० से १९०० वि० तक) इसमे भक्तिपरक टीकाओ को विवेचना है। टीकाकारो का परिचय भी दिया गया है। भक्तिपरक टीकाओ मे मधुरा भक्ति की टीकाओ एव दास्य भाव की टीकाओ पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। (२) मध्यकाल (१९०० वि० से १९५० वि० तक) यह व्यास शैली की टीकाओ का काल माना गया है व्यास शैली की व्याख्या करके, उसकी विशेषताएँ बताई गयी है, और इसी कसौटी के आधार पर टीकाओ का परिचय दिया गया है। (३) आधुनिक काल—१९५० वि० से आज तक इसे साहित्य प्रधान टीकाओ का काल स्वीकारा गया है। साहित्यांग अलंकार, दोष, गुण, इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि को दृष्टि मे रख कर टीकाएँ इस काल मे लिखी गई. इसकी विवेचना की गई है।

इसी खण्ड मे मानस की टीकाओ के अन्य भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषाओं मे जो अनुवाद हुए है, उनका परिचय दिया गया है। संस्कृत मे तीन उर्दू में पाँच बंगला मे पाँच गुजराती मे दो मराठी मे तीन, कन्नड मे दो, तुलुगु मे दो, तमिल मे एक, असमिया में एक, मलयालन मे एक, उड़िया में एक, फारसी में चार, अंग्रेजी में छै, रूसी में एक, फ्रेन्च मे एक, जर्मन मे दो, नेपाली में एक, सिंधी मे दो—इनका परिचय या इनकी सूचना दी गई है।

योगदान एवं विशेषताएँ

(१) शोध ग्रन्थ द्वारा मानस-टीकाओ का अत्यन्त गंभीर शोध-परक मौलिक अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। अभी तक इस विषय पर ऐसा शोध पूर्णकार्य नहीं हुआ था।

(२) अनेक हस्तलिखित 'मानस' टीकाओं का पता शोध ग्रंथ के द्वारा चला है।

(३) शोध कर्त्ता ने बड़े श्रम एव लगन से 'मानस'—टीकाओ का विवरण प्रस्तुत किया है।

(४) हिन्दी मे पहिली बार टीका, वार्तिक, भाष्य, इत्यादि का प्रमाणित परिचय प्रस्तुत हुआ है जिनके आधार पर इसी वर्ग की 'मानस'—टीकाओ की परीक्षा की गई है।

(५) शोध ग्रन्थ से 'मानस' के गम्भीर अध्ययन एवं इसकी लोकप्रियता पर भरपूर प्रकाश पड़ता है। टीकाओ की जीवनी, जो इधर-उधर बिखरी पड़ी थी, हिन्दी-ससार के सामने आ गई है।

(७) 'मानस' के टीका-साहित्य में विदेशी एवं भारतीय भाषाओ के अनुवादो द्वारा 'मानस' की गरिमा पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

(७) शोध कर्त्ता ने पैनी दृष्टि एवं शोध-प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

अन्त मे, यह कह कर विराम लेना चाहता हूँ कि इस शोध ग्रन्थ को आज से दस वर्षों पूर्व (लेखक को पी-एच० डी प्राप्त होने पर) ही प्रकाश होना चाहिये था। विधि-विधान से अब भी इसका सुयोग मिला, वही शुभ है।

आशा है कि सुधी साहित्यकारो एव रामचरित मानस-प्रेमी विशाल जन-समुदाय मे इस ग्रन्थ का स्वागत होगा एवं इसे लोकप्रियता प्राप्त होगी।

१-११-१९७५

गौरी नाथ तिवारी

भू० पू० प्रोफेसर एव अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

सुधाकार भाष्य, विनायकी टीका, 'मानस' भाष्य (पं० रामवल्लभाशरण कृत) मानससटीक (बाबू श्यामसुन्दरदास कृत) दीनहितकारिणी टीका, रामचरितमानससटीक (महावीर प्रसाद मालवीय कृत) राम चरितमानस की टीका (समानार्थी श्लोक सहित) मानस (सुन्दरकाण्ड) सटीक, (शिवशंकरलाल व्यास कृत) मानस (सुन्दरकाण्ड) सटीक, (पं० शीतलाप्रसाद तिवारी कृत) रामायण भाष्य, मानस के अयोध्या काण्ड की टीका (लाला भगवानदीन कृत), *मानसपीयूष, मानस सटीक (रामनरेश त्रिपाठी कृत)* सुन्दर प्रकाश, देवदीपिका टीका।

प्रकरण चार

समन्वयात्मक व्याख्या प्रणाली की प्रधान टीकाएँ

तिमिरनाशक टीका, रामचरितमानससटीक (अवध बिहारी दास परमहंस कृत) विजया टीका, सिद्धान्त भाष्य।

प्रकरण पांच

'मानस' की अन्य टीकाए

प्रकरण छ

'मानस' के अनुवाद

हिन्दीतर भारतीय भाषाओ मे मानस के अनुवाद—संस्कृत, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, असमिया, मलयालम, उडिया, आदि भाषाओं में 'मानस' अनुवाद।

विदेशी भाषाओ मे 'मानस' के अनुवाद

फारसी, अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, नैपाली, मिश्री आदि भाषाओं म 'मानस के अनुवाद।

खण्ड तृतीय

मानस की टीकाओं की शास्त्रीय समीक्षा

'मानस' की टीकाओं का शास्त्रीय विवेचन, प्राचीन शास्त्र, आधुनिक शास्त्र, साहित्य शास्त्र।

प्रकरण एक

भाग-क

'प्राचीन शास्त्र परक 'मानस' की टीकाएँ

'मानस' की टीकाओं में प्रतिपाद्य दर्शनों का परिचय, वेदान्त दर्शन, शांकरमत या अद्वैत वेदान्त, अद्वैतवेदान्त का साहित्य, अद्वैत दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त, ज्ञान तत्त्व की महत्ता,

प्रमाणत्रय-श्रुति प्रमाण,प्रत्यक्ष-प्रमाण, अद्वैत मत या तर्क, अध्यास, विवर्तवाद, सत्तात्रय, उपाधि, सत् असत् और अनिवर्चनीय, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा जीव, जीव और साक्षी, माया जगत्। अद्वैत का सामन पक्ष।

भाग-ख

अद्वैत परक व्याख्या से युक्त मानस की टीकाएँ

विजयाटीका, विनायकी टीका, गीताप्रेस की टीका, स्वामी प्रज्ञानानंद कृत मानस की टिप्पणी, पं० सूर्यप्रसाद जी कृत टिप्पणी।

प्रकरण-दो

भाग—क

रामानुज दर्शन या विशिष्टाद्वैत

विशिष्टाद्वैत के आधारभूत सिद्धान्त, मोक्ष प्राप्ति, प्रमाणत्रय, श्रुति प्रमाण, रामानुज का प्रकार और प्रकारी भाव, विशिष्टाद्वैत के अनुसार द्रव्य विज्ञान-प्रकृति काल, अजड द्रव्य, पराक् तत्व, शुद्ध सत्व, ज्ञान प्रत्यक तत्व। ब्रह्म, जीव, जीव की कोटिया, नित्य मुक्त बद्ध, विशिष्टाद्वैत का साधन पक्ष।

भाग—ख

रामानुज सम्प्रदाय परक मानस टीका

मानसहृस।

प्रकरण-तीन

भाग—क

रामानन्द सम्प्रदायपरक मानस की टीकाए

रामानन्द और रामानुज सम्प्रदाय, दोनो सम्प्रदायो मे अन्तर, रामानन्द सम्प्रदाय या 'रामभक्ति सम्प्रदाय,' रामानन्द सम्प्रदाय की दार्शनिक विचार पद्धति रामानुज के विशिष्टाद्वैत वाद एवं रामानन्द दर्शन मे तात्विक समानता, रामानंदीय सम्प्रदाय के अनुसार-ब्रह्म (राम), शक्ति (सीता), जीव-बद्ध-मोक्ष साकेत प्रकृति आदि तत्वो का विवेचन।

रामानन्द सम्प्रदाय का साधन पक्ष-भक्ति के प्रकार, प्रपत्ति, न्यास

भाग—ख

रामानद सम्प्रदाय की विशिष्टाद्वैत दर्शन परक टीकाएँ-आनद लहरी, मानसभूषण (बैजनाथ जी कृत) सिद्धान्त भाष्य पं० रामवल्लभ शरण कृत टिप्पण, मानसमार्तण्ड मानसतत्व प्रबोधिनी तिलक (वाणवर्ती), श्री रामप्रसाद दीन कृत टिप्पण, प०

रामकुमार कृत टिप्पण (खरा), पं० रामकुमारदास रामायणी कृत टिप्पण, मानस परचरजा, मानसमयंक, मानसपीयूष।

प्रकरण–चार

भाग—क

द्वैत दर्शन

मध्व के अनुसार पांच प्रकार के मूल और नित्य भेद—१—ईश्वर और जीव का भेद, (२) ईश्वर और जड़ जगत् का भेद (३) जीव और जगत् का भेद (४) जीव और जीव का भेद (५) जड़ और जड़ का भेद। द्वैत दर्शन के अनुसार ईश्वर, जीव, जगत् और मोक्ष साधन सम्बन्धी विचारणा।

भाग—ख

द्वैत परक मानस की टीकाएं

रामायणपरिचर्या-परिशिष्ट प्रकाश, शीला वृत्ति।

प्रकरण–एक

भाग—क

हठयोग

गोरक्षोपदिष्ट योग मार्ग अथवा हठ्योग, हठयोग के प्रमुख अंग-आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसंधान।

भाग—ख

हठयोगपरक मानस के टीकात्मक ग्रन्थ

सन्त उन्मनी टीका, विजया टीका, मानस सिद्धार्थ बोध, बेनीदास दादू पन्थी कृत मानस टिप्पणी।

प्रकरण–एक

मानस की आधुनिकशास्त्रपरक टीकाएं मानस की समाजशास्त्र परक टीकाएं—

रामायण भाष्य, मानसपीयूष में प्रकाशित श्री राज बहादुर लामगोड़ा कृत टिप्पण, सुन्दर प्रकार।

प्रकरण-दो

राजनीतिकशास्त्र परक टीकाएं

मानसपीयूष में प्रकाशित पीयूषकार श्री अंजनीनंदनशरण तथा संत राम प्रसादशरण जी दीन कृत टिप्पणियां

प्रकरण-तीन

'मानस' की इतिहास शास्त्रपरक टीकाएं

सुन्दर प्रकाश।

प्रकरण-चार

'मानस' की विज्ञान परक टीकाएँ

मानसपीयूष मे प्रकाशित श्रीरामदास गौड कृत टिप्पण सुन्दर प्रकाश।

भाग-क

मानस की काव्यशास्त्रीय टीकाएँ

काव्यतत्व-अलंकार, शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार, दोष रति गुण, वक्रोक्ति, रस—स्थायी भाव-आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, संचारी। रस भेद—शृगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत, हास्य, शात, वात्सल्य, भक्तिरस।
शब्द शक्तियां या अर्थ प्रकार—अभिधा, लक्षणा।
निरूढि, प्रयोजनवती, व्यंजना—शाब्दी, आर्थी, ध्वनि।
ध्वनि के भेद—अविवक्षित वाच्य, विवक्षित वाच्य, औचित्य।

भाग-ख

मानस की काव्य शास्त्रीयतत्वपरक टीकाएँ

अनेक काव्यशास्त्रीय तत्वो से समन्वित टीकाएँ—मानस सटीक (बाबू श्यामसुन्दर दास कृत) अयोध्या काड टीका (लाला-भगवानदीन कृत) विजया टीका।

रसतत्वप्रधान टीकाएँ—आनन्द लहरी, मानसमयंक अलंकार तत्व प्रधान टीकाएँ-महावीर प्रसाद मालवीय कृत टीका, रामनरेश त्रिपाठी कृत टीका, परम हंस श्री अवध बिहारी दास कृत मानस सटीक, मानसपीयूषकार कृत टिप्पणी। औचित्य तत्वपरक टीकाएँ-मानसपीयूष मे प्रकाशित मानस-पीयूषकार की टिप्पणी तथा स्वामी प्रज्ञानानन्द कृत टिप्पणी, मानस पत्रिका मे प्रकाशित महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी कृत टिप्पणी या नोट।

भाग-ग

मानस की टीकाओ का रचनाशैली के आधार पर वर्गीकरण—
(१) मानस की पद्यात्मक टीकाएँ—(अ) पद्यात्मक टीकाओ का भाषागत वर्गीकरण-संस्कृत भाषा मे लिखित, एवं हिन्दी भाषा

कृति के संदर्भ में

अपनी बात

रामचरितमानस को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। सम्प्रति इसकी गणना विश्व की श्रेष्ठतम काव्य-कृतियों में की जाती है। नित्य-प्रति 'मानस' की लोकप्रियता एवं महत्ता अधिकाधिक बढती जा रही है। 'मानस' ने देश-काल की सीमाओं को पार कर अपने अमर सदेश को देश-देशान्तर में गुंजायमान कर दिया है। इसका महत्व एवं मूल्य शाश्वत एवं स्थायी है। 'मानस' के सत्य स्वरूप की उपयोगिता सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। 'मानस' जैसे रससिद्ध काव्यो के रचयिताओ के लिए ही महाकवि भर्तृहरि ने लिखा था—

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा ।
नास्ति येषा यश काये जरामरणजं भयम् ।।'

वस्तुत महाकवि संत तुलसीदास भी अपने अमर ग्रन्थ 'मानस' की रचना कर जरामरण विरहित यश कायपेण हो गये। उन्होंने स्वान्त सुखाय रचित अपने इस ग्रन्थ का लक्ष्य परान्त सुख हो रखा। इसी हेतु उनके 'मानस' मे सार्वजनीनता, नैतिकता एवं लोककल्याणमयी भावना की व्याप्ति है। 'मानस' की इन्ही विशेषताओ ने, इन्ही सनातन सत्यों ने, संसार के किसी भी कोने के 'मानस'—रसज्ञ को, चाहे वह इंग्लैण्ड का वासी हो, रूस का नागरिक हो अथवा नेपाल की उपत्यकाओ को ही अपनी जननी जन्म-भूमि मानता हो, अभिभूत किया है। यही कारण है कि हमें आज 'मानस' के अनुवाद अंग्रेजी, रूसी, जर्मनी, नेपाली, फारसी, उर्दू, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलुगू, उडिया आदि दर्जनो भारतीय-अभारतीय भाषाओ मे उपलब्ध हैं। इन सभी भाषाओ की भाषी जनता 'मानस' के अमृत-तत्व को प्राप्त कर संतोष एवं शान्ति की अनुभूति कर रही है।

'मानस' बडा ही विलक्षण काव्य है। एक ओर जहाँ यह अध्यात्म-तत्व से गर्भित एवं भक्ति रस से ओत-प्रोत है, वही दूसरी ओर, इसमे काव्य-तत्वों का सुन्दर सन्निवेश है। इतना ही नही, अनेक अनुसधान कर्त्ताओ ने तो इसमें कुल-धर्म, जाति-धर्म, देश-धर्म और विश्व-धर्म की व्याप्ति बताते हुए इसे लोकमगलकारी महानतम ग्रन्थों मे एक घोषित किया है। यही कारण है कि 'मानस' की सर्वतोमुखी पूर्णता पर रीझ कर सुधी रसज्ञो ने इस पर भाति-भाति के टीकात्मक ग्रन्थ लिखे। इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'मानस' के प्रणयन के दो ही दशको के पश्चात् मानस पर टीका-लेखन-कार्य प्रारंभ हो गया।

श्री रामू द्विवेदी कृत 'प्रेमरामायण' टीका (रचनाकाल : विक्रम की १७ वीं शती का छठा दशक) इस तथ्य का साक्षात् प्रमाण है।

'मानस' मे अतुल अर्थ-गाम्भीर्य है। 'मानस' के रसज्ञों ने इस पर विशाल टीकात्मक ग्रन्थो की रचना की है। विचित्रता तो यह है कि 'मानस' के विविध टीकाकारों ने इसके एक-एक पद के अनेक मनोनुकूल अर्थ निकाले हैं। कितनी टीकाएँ तो ऐसी मिलेंगी, जिनमें 'मानस' की प्रत्येक अर्द्धाली या व्याख्येय छंद के पाच-पांच, नौ-नौ एवं बारह-बारह अर्थ किये गये हैं। 'मानस' ही एक ऐसा काव्य है जिसकी एक अर्द्धाली पर १६,७५,१४६ अर्थों से युक्त टोका—'तुलसीसूक्तिसुधाकरभाष्य'—का प्रणयन किया गया है। इस प्रकार अर्थ-गाम्भीर्य की दृष्टि से रामचरितमानस विश्व-साहित्य मे अपने ढग का अनोखा ग्रन्थ है। इस काव्य पर अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में शताधिक टीकात्मक ग्रन्थ लिखे गये हैं। 'मानस' के इतने समृद्ध टीका-साहित्य पर अभी तक हिन्दी-साहित्यज्ञो का ध्यान नही गया था। अभी तक इसके इतने विशाल एवं विलक्षण टीका साहित्य पर कोई भी अनुसंधानात्मक एवं आलोचनात्मक ग्रन्थ नहीं प्रस्तुत किया गया था। इसी तथ्य को दृष्टि मे रखकर पूज्य डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने मुझे रामचरितमानस की टीकाओ का एक गवेषणात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी। मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ, गुरुचरण डा० गोपीनाथ जी तिवारी का योग्य निर्देशन सुलभ हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खण्डो मे विभक्त है। इन दोनों खण्डो के शीर्षक इस प्रकार हैं—

(१) 'मानस' की टीकाओं का शास्त्रीय विवेचन।

(२) 'मानस' की टीकाओ का ऐतिहासिक परिचय।

प्रत्येक खण्ड विविध अध्यायों मे विभक्त है और अध्याय यथापेक्षित प्रकरणो या भागो मे विभाजित है। प्रबन्ध में 'मानस' के टीकात्मक ग्रन्थों पर विचार करने के पूर्व ही पृष्ठभूमि के रूप में 'मानस' के टीकाकारों एवं व्यासों की विविध परम्पराओं का परिचय दिया गया है। इन परम्पराओ का 'मानस' की टीका रचना पद्धति पर बड़ा ही गंभीर प्रभाव पड़ा है। इस हेतु 'मानस' की टीकाओं पर विवेचना प्रस्तुत करने के पूर्व मानस की टीकाकार परम्पराओं का परिचय देना हमें आवश्यक प्रतीत हुआ। हमने इनसे सम्बद्ध सभी स्थानो, व्यक्तियो, पुस्तकों पत्रिकाओ, टीकात्मक ग्रन्थो से इस सामग्री का संचय किया। परपरा विशेष से सम्बन्धित 'मानस'—शिष्यों से पत्राचार करके या स्वय साक्षात्कार करके यथाभीष्ट सामग्री प्राप्त की। साथ ही टीकाकार-परंपराओं की पूर्ण एवं सुसम्बद्ध शृंखला उपस्थित करने के निमित्त इन परंपराओं से संबद्ध प्रमुख स्थानों-बड़ैया (मुंगेर बिहार), अयोध्या, वाराणसी और रामनगर की यात्रा कर तथ्यों की पूरी छान-बीन की है।

प्रबन्ध के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत प्रथमत हमने अर्थ-प्रकाशन की दो प्रमुख प्रणालियों-परोक्ष और प्रत्यक्ष-पर विचार किया है। इसके पश्चात् प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत आनेवाली निश्चित अर्थ-प्रणाली के, जिसमे व्याख्या की विविध विधाओं—टीका, भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टिप्पणी और कारिका-का सन्निवेश है, आधार पर 'मानस' के

टीकात्मक ग्रन्थो का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह कार्य सर्वथा मौलिक है। टीका, भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टिप्पणी और कारिका के लक्षणो के आधार पर 'मानस' की टीकाओ को परखने के पूर्व हमने संस्कृत के टीका-साहित्य पर संक्षिप्त रूप से विचार करते हुए, इन सभी व्याख्या शैलियों के स्वरूप एव लक्षण निर्धारित किये हैं। हमने इस गहन एव तात्विक विषय को विशद एव पूर्ण बनाने के हेतु संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के विविध मान्य कोशो, अन्य ग्रन्थो मे व्याख्या विधाओ के सम्बन्ध मे दिये गए विद्वानों के विचारो के अतिरिक्त संस्कृत एव हिन्दी के सुधी पडितो—डॉ० वीरमणि उपाध्याय, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पडित जानकी नाथ शर्मा (सम्पादन विभाग, गीताप्रेस) आदि-के सुझावो एव सम्मतियो से पर्याप्त सहायता ली है। इस प्रकार संस्कृत एव हिन्दी दोनो साहित्यो मे सांगोपांग रूप से व्याख्या विधाओ के लक्षणों के निरूपण का यह प्रथम प्रयास है। इस दृष्टि से इस प्रबंध का महत्व बहुत अधिक है। व्याख्या विधाओ का लक्षण निरूपित करने के लिए हमने प्रथमत विविध प्रामाणिक कोशो एव पुस्तको से इनके लक्षण उद्धृत किये है। इसके पश्चात् संस्कृत ग्रन्थो से इन विधाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। पुन हमने व्याख्या विधा विशेष के पूर्वोक्त विहित विविध लक्षणकारो के लक्षणों को ध्यान मे रखते हुए उसका एक सामान्य लक्षण प्रस्तुत किया है। तदनन्तर टीका, भाष्य, टिप्पणी, वार्तिक, वृत्ति, कारिका के शास्त्रीय लक्षणो के आधार पर मानस के टीकात्मक ग्रन्थो का पृथक्-पृथक् अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड के अन्तगत हमने 'मानस' के साढे तीन सौ वर्षों से अधिक लम्बे इतिहास पर विचार करते हुए, उसमे लिखी गयी टीकाओं का विवेचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया है। हमने 'मानस' के टीका-साहित्य के इतिहास को तीन कालों—प्रारंभिक, मध्य और आधुनिक मे विभाजित किया है। यह विभाजन, काल विशेष मे व्याप्त टीका रचना की विशेष प्रवृत्ति के आधार पर किया गया है। काल विशेष के प्रारम्भ में हमने उनका सामान्य परिचय दे दिया है। इसी परिचय के अंतर्गत हमने विवेचन काल की टीका रचना प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला है। इस खण्ड के अन्तर्गत लगभग ५० टीकाओ एव टीकाकारों का विस्तृत परिचय दिया गया है तथा लगभग ३५ अन्य हिन्दी टीकाओ एव विविध भाषाओ के अन्तर्गत हुए लगभग ४४ अनुवादात्मक टीका-ग्रन्थों का भी संक्षिप्त या सांकेतिक विवरण प्रस्तुत किया है। लेखक ने यह अध्ययन अयोध्या, वाराणसी, रामनगर एव बडैंया के विविध सार्वजनिक पुस्तकालयो और व्यक्तिगत संग्रहालयों से टीकात्मक पुस्तको को प्राप्त कर किया है। कुछ टीकाओ की खोज प्राचीन पुस्तको एव पत्रिकाओं के आधार पर ही की गयी है। इस प्रकार यह अध्ययन मौलिकता की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखता है। विविध भाषाओ मे किये गये 'मानस' के अनुवादो का परिचय, हमने अपने व्यक्तिगत प्रयास के अतिरिक्त, मानस के काशिराज संस्करण के परिशिष्ट पर दी गयी मानस के अनुवादो की सूची तथा दक्षिण की कुछ साहित्यिक संस्थाओ एव 'कल्याण' के संपादक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार

के द्वारा प्रदत्त 'मानस' अनुवादों के विवरणों के आधार पर दिया है। इस प्रकार इस खण्ड में 'मानस' के टीकात्मक ग्रन्थों को प्रचुर संख्या में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार इस प्रबन्ध के माध्यम से हिन्दी-साहित्य में सर्वप्रथम 'मानस' की टीकाओं के द्वारा 'मानस' के अर्थ-गाम्भीर्य के साथ-साथ उसको दर्शन, योग, काव्यशास्त्र, समाज विज्ञान, राजनीति-विज्ञान, आधुनिक विज्ञानपरक विशेषताओं का उद्घाटन भी किया गया है।

इसके अतिरिक्त यहाँ हम एक अन्य आवश्यक तथ्य को भी विज्ञापित कर देना आवश्यक समझते हैं कि हमने 'मानस' की विभिन्न टीकाओं के उद्धरण सम्बन्धी मूल पाठ उन टीकाओं में प्रकाशित पाठों के आधार पर ही रखे हैं। अन्यत्र उद्धृत 'मानस' की पंक्तियाँ गीता प्रेस से प्रकाशित 'मानस' के पाठ के आधार पर हैं।

अन्त में, एक विशेष बात और—प्रस्तुत कृति के द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत उल्लिखित तुलसी के प्रत्यक्ष 'मानस'—शिष्य—रामू द्विवेदी कृत प्रेमनारायण टीका तथा विप्रवर किशोरीदत्त एवं बूढ़े रामदास द्वारा प्रवर्तित 'मानस'—टीकाकार परम्पराओं की विवेचना महाकवि तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्यक् बोध-हेतु नयी दिशा का मार्ग दर्शन करेगी। ऐसा लेखक का दृढ़ विश्वास है।

श्री चिम्मनलाल जी गोस्वामी (संपादक-कल्याण कल्पतरु), श्री रामलालजी (पुस्तकाध्यक्ष, गीता प्रेस) एवं गीता प्रेस सपादन विभाग के अन्य सदस्यगण भी विशेष रूप से साधुवाद के योग्य हैं, जिन्होंने मुझे सोत्साह अपना सहयोग देने में तत्परता दिखायी।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, रामनगर राजपुस्तकालय, गीता प्रेस आदि संस्थाओं के प्रति भी साधुवाद विज्ञापित कर देना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। इन संस्थाओं से उदारतापूर्वक मुझे जो सहायता मिली, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है।

भगवत-लीला-लीन स्व० पिता श्री बद्रीनाथ चौबे का पुण्य स्मरण कर श्रद्धा अर्पित कर रहा हूँ, जिनके राम भक्ति के पवित्र संस्कार और प्रेरणा ने ही मुझे इस पुण्य पंथ पर अग्रसर किया।

यह प्रबन्ध बहुत पहले ही प्रकाशित हो जाना चाहिये था, परन्तु कतिपय अप्रत्याशित व्यवधानों के आ जाने के कारण इसके प्रकाशन का अवसर अब आया। संभावना प्रकाशन के भगीरथ प्रयासशील श्री जगदीश प्रसाद पाण्डेय 'पीयूष' को इस ग्रन्थ के प्रकाशन का पूरा श्रेय है। उनकी श्रद्धा मेरे प्रति शिष्यवत् है। वे स्वभावत धन्यवाद की अपेक्षा मेरे शुभाशिष के पात्र हैं।

'मानस'-प्रेमी गण एवं हिन्दी-साहित्य प्रेमियों को यह ग्रन्थ प्रियकर हो, यही मेरी हार्दिक आकांक्षा है। वस्तुत सुधी एवं प्रेमी जनों के लिये यह ग्रन्थ प्रस्तुत है।

सुल्तानपुर (अवध) — त्रिभुवननाथ चौबे

दीपावली, सं० २०३२ वि०

पृष्ठभूमि

'मानस' की टीकाकार-परम्पराऐं

यह सर्वविदित तथ्य है कि 'मानस' की रचना के पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास जी की ख्याति और माननीयता दिनोदिन अधिकाधिक बढ़ने लगी। जनता गोस्वामी जी एवं उनकी अमृतोपम जीवन दायिनी कृति—'मानस' की पूजक बन गयी। "मानस" के कितने ही श्रद्धालु पाठक, श्रोता, संत एवं विद्वान इनके शिष्य बनने मे अपने आपको कृतार्थ समझने लगे। कुछ तो सदा के लिए गोस्वामी जी की चरण-सेवा मे ही रह कर अपने जीवन को सार्थक मानने लगे।[1] गोस्वामी जी ने इनमे से कुछ अधिकारी शिष्यों को रामचरितमानस स्वय पढाया।[2] गोस्वामी जी के इन 'मानस'-शिष्यो ने 'मानस' का प्रचार कार्य बड़े ही मनोयोग एव उत्साह से किया।

गोस्वामी जी के शिष्य घूम-घूम कर 'मानस' का कथन-व्याख्यान करते थे। वे 'मानस' को अनुलिपियां स्वयं तैयार करते एवं दूसरो से अनुलिखित करवाते थे। इन अनुलिपियो को जनता मे वितरित करते थे।[3] पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार श्री किशोरी दत्त जी की टीका परम्परा की 'मानस' की प्रथम अनुलिपि सवत् १६४१ मे तैयार हो गई थी।[4] इनके अनुसार सवत् १६४१ के आसपास 'मानस' सर्वजन सुलभ हो गया था। यह तथ्य भी 'मानस' के तीव्र प्रचार कार्य की ओर स्पष्ट रूप से सकेत कर रहा है।

गोस्वामी जी के 'मानस'-शिष्यो ने रामचरितमानस की टीकाऐं भी लिखी। इसमे से कतिपय शिष्यो ने अपनी शिष्य-परंपराऐं भी चलायी जिनका अगले पृष्ठों मे सविस्तार उल्लेख किया जायगा। इस प्रकार 'मानस' के प्रचार-प्रसार का कार्य गोस्वामी जी से प्रारम होकर उनके शिष्यो-प्रशिष्यो ने 'मानस' का टीका-लेखन और व्याख्यान अपनी-अपनी परपरा से प्राप्त टीका—पद्धतियों के अनुसार किया है। इन टीका-

---

१. किशोरीदत्त जी का जीवन चरित-तुलसीपत्र' वर्ष ४, अंक ५, (श्रावण सं० १६७४ वि०) पृ० १२०-२४।

२ शिवलाल पाठक कृत मानसमयंक (बालकाण्ड), दोहा १२-१३ एव श्री बूढे रामदास जी की 'मानस' टीका-परम्परा पर लिखित, वदन जी पाठक कवित्त-मानसपीयूषकार कृत 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—मानसांक, कल्याण।

३. किशोरीदत्त जी का जीवन परिचय, अध्याय १।

४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित मानस के काशिराज संस्करण की भूमिका। पृ० १२।

परंपराओ के सभी शिष्य 'मानस' के व्यास थे और उनमे से अधिकांश 'मानस' के टीकाकार भी हुए। अगले पृष्ठों पर इस तथ्य पर प्रकाश डाला जायगा।

गोस्वामी जी के प्रत्यक्ष शिष्यो की महती संख्या मे से अभी तक उनके पाँच प्रमुख शिष्यों का ही पता लग सका है। उनके नाम हैं—विप्रवर किशोरीदत्त,[1] श्री रामू बूढ़े रामद्विवेदी,[2] दास जी संत जनजमवंत[3] एवं श्री आनन्द राम।[4] इनमें से प्रथम तीन ही गोस्वामी जी के 'मानस' शिष्य हैं, जिनमे से श्री किशोरी दत्त एवं बूढ़े रामदास द्वारा प्रवर्तित टीकाकार परंपराएँ आज तक चल रही हैं।

विप्रवर किशोरी दत्त द्वारा प्रवर्तित 'मानस'-टीकाकार परंपरा

रामचरित 'मानस' की मानससुबोधिनी' टीका के रचयिता विप्रवर किशोरी दत्त जी ने गोस्वामी जी से 'मानस' का तत्त्वार्थ प्राप्त किया था। उन्होंने अपने शिष्य अल्पदत्त खाकी बाबा को, जिन्होंने 'मानस कल्लोलिनी' टीका लिखी थी, चित्रकूट में 'मानस' पढ़ाया। अल्पदत्त जी ने 'मानसरसविहारिणी' टीका के रचयिता श्रीसंत रामप्रसाद जी को चित्रकूट मे ही 'मानस' का तत्त्वबोध कराया। संत राम प्रसाद जी से मानसमयंककार श्री शिवलाल पाठक ने 'मानस' का बोध प्राप्त किया। शिवलाल जी ने अपने परम प्रियशिष्य शेषदत्त को 'मानस' पढ़ाया[5] जो प्रख्यात रामायणी और टीकाकार हुए।[6] शेषदत्त जी ने अपने दो शिष्यो को 'मानस' पढ़ाया जिनमे एक स्वयं उनके ही पुत्र श्री जानकीप्रसाद जी थे, इन्होंने 'मानसकल्लोलिनी' पर 'प्रज्ञालिनी' नामक टिप्पणी लिखी थी और दूसरे 'मानस'-शिष्य थे—श्री महादेव दत्त जी जो बढ़ैया (मुंगेर) के निवासी थे। इनके द्वारा लिखित 'मानस' बालकांड की टीका मानसशंकावली का पता चला है।

श्रीजानकी प्रसाद जी के तीन 'मानस'-शिष्य हुए, उनमें से एक पटना निवासी रामायणी श्री गणेश प्रसाद जी थे, दूसरे भक्तवर श्री कोशवराम जी (मानस-गुटकाकार) और तीसरे भक्त लालचन्द जी थे। इनमें से गणेश जी के ही शिष्य 'मानसमयंक' टीका

---

१. शिवलाल पाठक कृत मानसमयंक, बालकांड, दोहा, १२-१३।
२. चंदन पाठक कृत तुलसी 'मानस' शिष्य परंपरा का परिचायक चरित्र, अ० पृ०।
३ आचार्य वि० प्र० मिश्र द्वारा सम्पादित 'मानस' के काशिराज संस्करण की भूमिका।
४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६१, अंक १, श्री विनयमोहन शर्मा का लेख।
५. वही, वर्ष ६४, अंक २, पृ० १२३—श्री रामदास का लेख।
६. विप्र किशोरीदत्त को प्रन्थसार ही दीन्ह। अलपदत्त पढ़ि तासि सों चित्रकूट महँ लीन्ह॥
राम प्रसादहि सो दई लहि तासें शिवलाल। दत्त पनीगहि जानि निज सो दीन्हें सुख माल॥
—'मानसमयंक' बालकांड, दोहा १२-१३।

के टीकाकार बाबू इन्द्रदेव नारायण सिंह थे।[1] मुझे बलरामपुर (गोंडा) के वयोवृद्ध रामायणी श्री महावीर प्रसाद जी से ज्ञात हुआ कि उनके गुरु श्री रामलाल जी (कोतवाल बलरामपुर स्टेट) भी गणेश प्रसाद जो के ही 'मानस'-शिष्य थे। रामलाल जी अपने समय के प्रख्यात रामायणियों में से थे। आपने 'मानस' पर कुछ टिप्पण रचे थे, जो सम्प्रति अनुपलब्ध हैं।

अयोध्या के दिवंगत संत श्री जानकीशरण 'स्नेहलता' ने अपने पिता श्री श्यामदास का भ. श्री जानकी प्रसाद जी का 'मानस'-शिष्य बताया है।[2] वे श्यामदास जी को गोस्वामी जी का सातवां और अपने आपको आठवां 'मानस'-शिष्य कहते थे।

शेषदत्त जी के द्वितीय 'मानस'-शिष्य श्री महादेव दत्त जी की बढ़ैया (मुंगेर) के अन्तर्गत प्रसरित शिष्य-परंपरा का परिचय हमें इस परंपरा के ही एक वर्तमान 'मानस' शिष्य श्री रामनन्दन जी से मिला है। रामनन्दन जी के अनुसार महादेव दत्त जी के 'मानस'-शिष्य श्री दीनदयालजी हुए, उनके शिष्य श्री रामसरोवरशरण जी थे। रामसरोवरशरण जी के तीन शिष्य श्री रामनन्दन जी, श्री रामदास जी एवं श्री रामनाथ जी (तीनों वर्तमान) हैं।[3] मुंगेर (बिहार) जिले के अन्तर्गत बढ़ैया नामक स्थान रामायणियों का एक गढ़ है। यहाँ के रामायणी पं० शिवलाल पाठक के कट्टर अनुयायी हैं। यहाँ से हम इसी टीका परंपरा की हस्तलिखित टीकाएँ—शेषदत्त कृत 'मानस' किष्किंधाकाण्ड) की टीका एवं महादेव दत्त जी कृत 'मानस' (बालकांड) की टीका मिली है। इसके अतिरिक्त यहीं के एक अन्य 'मानस' प्रेमी बाबू नीलकंठ जी से उनके पितामह गुरु श्री रामदत्त जी द्वारा विरचित 'मानस' के फुलवाई प्रसंग की टीका प्राप्त हुई। इन सभी टीकाओं का उल्लेख अगले अध्याय में यथा स्थान किया जायेगा।

गोस्वामी जी के शिष्य श्री किशोरीदत्त जी की इस सर्वसमृद्ध 'मानस' टीका-परंपरा का एक वृक्ष-चित्र अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

---

१ मानसमयंक सटीक, प्र० सं०, पृ० २६-२७।

२. जानकीशरण 'स्नेहलता' कृत 'मानसमार्तण्ड' टीका की भूमिका, पृ० ८।

३. श्री रामसरोवर शरण द्वारा विरचित किशोरीदत्त जी की टीका परंपरा की बढ़ैया शाखा का परिचय-महादेव दत्त जी कृत बालकांड की टीका का मुखपृष्ठ।

श्री महावीर प्रसाद जी
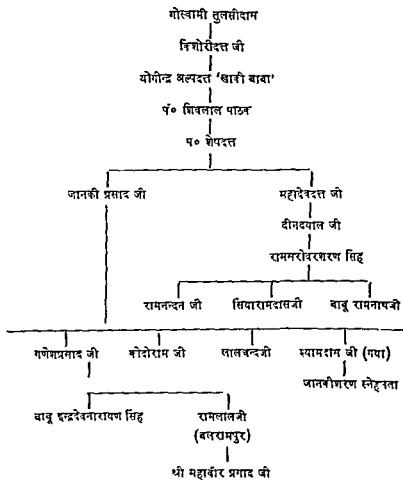
बूढ़े रामदास जी द्वारा प्रवर्तित टीकाकार-परंपरा

तुलसीदास के दूसरे 'मानस'—शिष्य श्री बूढ़े रामदास जी हैं, जिनकी एक सुविस्तृत 'मानस'—शिष्य-परंपरा है। इस परंपरा के आठवें शिष्य श्री वन्दन जी पाठक के अनुसार प्रथमतः तुलसीदास ने सारे 'मानस' का तात्पर्य बूढ़े रामदास जी को दिया। इसके पश्चात् बूढ़े रामदास जी ने इस 'मानस'—शिष्य-परंपरा को आगे बढ़ाया। इन्होंने रामदीन नामक एक ज्योतिषी को अपना 'मानस'-शिष्य बनाया। इन रामदीन जी ने 'मानस' का आजीवन कथन-व्याख्यान किया। रामदीन जी के शिष्य धनीराम जी हुए, धनीराम जी के शिष्य श्री मानदास हुए। मानदास जी के शिष्य सुप्रसिद्ध रामायणी

एवं तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ पं० रामगुलाम जी द्विवेदी (मिर्जापुर) हुए। पं० रामगुलाम द्विवेदी के शिष्य श्री चौपराम जी थे और चौपराम जी के शिष्य श्री वंदन पाठक हुए।[1] इन्होंने ही 'मानस' शंकावली लिखी थी। ये 'मानस' के सुप्रसिद्ध वक्ता थे।

'मानसपीयूषकार' श्री अंजनीनंदनशरण जी के अनुसार पं० रामगुलाम द्विवेदी के एक सुप्रसिद्ध शिष्य मुंशी छक्कनलाल जी थे। आपको द्विवेदी जी की 'मानस' सम्बन्धिनी सम्पूर्ण व्याख्या अक्षरशः स्मरण थी। अपने समय के प्रख्यात रामायणी एवं 'मानसतत्व-भास्कर' के रचयिता पं० रामकुमार जी ने आपसे ही पं० रामगुलाम जी की सम्पूर्ण 'मानस'—व्याख्यायें सुनकर नोट की थी। आप मुंशी जी को गुरु के ही रूप में मानते थे। पं० रामकुमार जी के 'मानस' शिष्य श्री देवीपलट तिवारी हुए। आप 'मानस' के प्रकृष्ट कोटि के व्यास थे। आपके 'मानस'-व्याख्यानों की प्रशंसा स्वयं महामना मालवीय जी भी किया करते थे।[2]

इस परंपरा के उक्त सुप्रसिद्ध रामायणी श्री वंदन जी पाठक की शिष्य परंपरा का विकास काशी में हुआ है। वंदनजी पाठक के 'मानस' शिष्य श्री छोटेलाल व्यास हुए छोटेलाल व्यास के शिष्य काशीनाथ जी थे। काशीनाथ जी के ही शिष्य काशी के वर्तमान प्रसिद्ध व्यास श्री शिवनारायण जी हैं। छोटेलाल व्यास के एक अन्य 'मानस'—शिष्य श्री हनुमानदास वकील भी थे,[3] जिन्होंने सुन्दर कांड पर 'रामायण भाष्य' नामक एक तिलक लिखा है। बूढ़े रामदास जी द्वारा प्रवर्तित टीकाकार-परंपरा का एक वृक्ष-चित्र अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

---

१. प्रथम श्री तुलसीदास जी 'मानस' गुरु से लहि,
तिन्ह दीन्ही बूढ़े रामदास को जनाय के।
ताते लहि रामदीन ज्योतिषी बखाने भले,
जन्म भरि गाई सब सुख पाय के।
तासों लही घनीराम संत भाव करि,
ताते पायो मानदास अति सुखदाय के।
पंडित गुलाम राम तासों लहि चौपराम,
ताको शिष्य कहै द्विज वंदन नव नाय के।
—श्री अंजनीनंदन शरण द्वारा लिखित 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—'मानसांक' कल्याण। गीता प्रेस।

२. श्री अंजनीनंदनशरण द्वारा लिखित 'मानस' के प्राचीन टीकाकार, शीर्षक लेख—मानसांक, कल्याण, गीता प्रेस।

३. रामायण भाष्य, प्र० सं०, की भूमिका।

बूढे रामदास जी द्वारा प्रवर्तित टीकाकार परंपरा का एक वृक्ष-चित्र
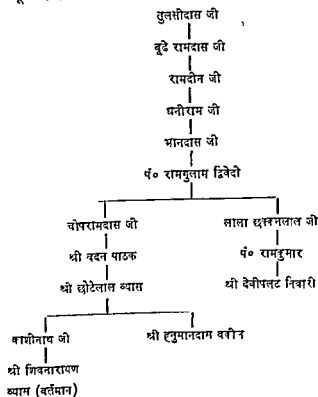
सुप्रसिद्ध 'मानस' संस्थानों में प्रवर्तित 'मानस'-टीकाकार-परंपराएँ

उपरोक्त टीकाकार-परंपराओं के अतिरिक्त 'मानस' की दो अन्य टीकाकार परंपराएँ भी हैं। ये टीकाकार परंपरायें गोस्वामी जी की शिष्य परंपरा से सम्बन्धित नहीं हैं, अपितु ये स्वतंत्र रूप से अयोध्या एवं रामनगर सदृश सुप्रसिद्ध 'मानस'—संस्थानों में पल्लवित हुई हैं। अतएव हमने इन टीकाकार-परंपराओं का नामकरण अयोध्या एवं रामनगर इन दो स्थानों के नाम पर ही किया है।

अयोध्या की 'मानस' टीकाकार-परंपरा

अयोध्या की टीकाकार-परंपरा के प्रवर्तक अयोध्या निवासी मानस के आनन्दलहरी टीकात्मक ग्रन्थ के रचयिता श्री करुणासिन्धु जी महंत माने जा सकते हैं। ये निरंतर रामचरित मानस की कथा जानकी घाट (अयोध्या) पर करा करते थे। इनके परम कृपा पात्र 'मानस'—श्रोता शिष्य बाबा जानकीदास जी ने इनके पश्चात् मानस की

कथा जानकीघाट पर कहनी प्रारंभ की।[1] आपने मानस का प्रचार-प्रसार बड़े सशक्त रूप से किया। अयोध्यान्तर्गत आपके मानस शिष्य-बाबा माधोदास तथा रामरत्नदास थे।[2] बाबा माधोदास जी के शिष्य सर्व श्री श्यामसुन्दरदास, बाबा रामदास, रघुनंदन-शरण, रामबालकदास रामायणी एवं रामनरायणदास जी थे। इनमे बाबा रामदास के शिष्य रामसुन्दर दास रामायणी (वर्तमान कथावाचक मणिराम छावनी) हैं। बाबा रामबालकदास जी ने प्रेमदास एव श्री रामस्वरूप दास (वर्तमान 'मानस' कथावाचक, बड़ी छावनी, अयोध्या) को मानस पढ़ाया था। उपर्युक्त रामायणियो मे बाबा रामबालक दास जी की 'मानस' टीका सम्प्रति उपलब्ध है, जिसका उल्लेख आगे द्वितीय खंड म यथास्थान किया जायगा। उक्त 'मानस'-शिष्य परपरा के रामायणियो एवं टीकाकारो के अतिरिक्त करुणासिन्धु जी की श्रृंगारी शाखा के तृतीय शिष्य श्री नन्दिनी शरण भी करुणासिन्धु जी की टीका-पद्धति से अत्यन्त प्रभावित हैं, परन्तु अभी तक इनके पूर्व या पश्चात् के 'मानस'—शिष्यो का कोई पता नही चला है।

यहा हम इस टीकाकार-परपरा का एक वृक्ष चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जो मानसपीयूषकार के अभिमत के आधार पर है।[3] इससे अयोध्या की 'मानस'—शिष्य-टीकाकार-परंपरा का यथोचित ज्ञान हो जाता है।

अयोध्या की टीकाकार परपरा का वृक्ष-चित्र

---
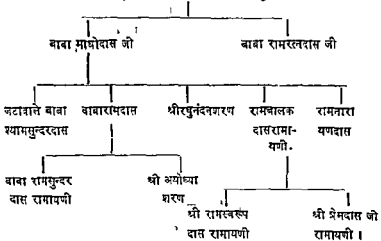
१ 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानमाक, कल्याण।

२. अयोध्या की 'मानस' टीकाकार परपरा का परिचय, अयोध्या के वर्तमान सुप्रसिद्ध रामायणी की रामस्वरूपदास जी के यहाँ सुलभ 'मानस' शिष्य-परंपरा की सूची।

३ श्री रामस्वरूपदासरामायणा के द्वारा दिनाक ५-१-१९६३ को लिखा हुआ पत्र।

टीकाकार-परंपरा के वर्तमान मानस-शिष्य श्री रामस्वरूप दास जी रामायणी भी इससे सहमत हैं।[1]

रामनगर राज्य की टीकाकार परम्परा

'मानस' की एक टीकाकार-परम्परा का सम्बन्ध रामनगर दरबार से सम्बद्ध टीकाकारों से माना जा सकता है। महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने अपने गुरु श्री काष्ठजिह्वा स्वामी द्वारा रामचरितमानस की रामायणपरिचर्या नामक टीका का प्रणयन कराया। कालान्तर मे इस टीका के गूढ भावों को स्पष्ट करने के निमित्त महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी ने स्वय ही 'रामायण परिचर्या' पर 'रामायण परिचर्यापरिशिष्ट' नामक टीका लिखी और 'रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट' के भावों के प्रकाशनार्थ 'रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश' की रचना, स्वयं महाराज के ही फुफेरे भाई श्री हरिहर प्रसाद 'सीतारामीय' ने की। महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के समय मे रामनगर राज्य मानस के अनुशीलन, मनन एवं व्याख्यान का एक केन्द्र ही हो गया था। रामनगर दरबार के तत्कालीन रामायण मानस-प्रेमियों मे आज भी आदर से स्मरण किये जाते हैं। इनमें सर्वश्री काष्ठजिह्वा स्वामी देव, महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह, बाबू प्रसिद्धनारायण सिंह, श्री हरिहर प्रसाद सीतारामीय (विरक्त होने के पूर्व), मुन्शी छक्कनलाल, पं० शिवलाल पाठक, बन्दन जी पाठक आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार रामनगर राज्य की टीकाकार-परम्परा को, जिसका प्रारम्भ काष्ठ-जिह्वा स्वामी देव से माना जा सकता है, परिणति रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाशकार हरिहर प्रसाद सीतारामीय तक ही हो जाती है। सम्प्रति इस परम्परा की कोई सुसम्बद्ध शृङ्खला नही मिलती है।

रामनगर राज्य की टीकाकार-परम्परा का वृक्ष-चित्र

श्री काष्ठजिह्वास्वामी 'देव'

|

महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह

|

बाबा हरिहर प्रसाद 'सीतारामीय'
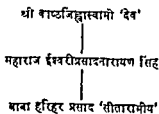
—०—

"मानस" के स्वतन्त्र टीकाकार

'मानस' के टीका-साहित्य में उन टीकाकारों की एक महती संख्या है, जो उक्त किसी भी टीकाकार-परम्परा के अन्तर्गत नहीं आते हैं। इस वर्ग मे प्राचीन एवं आधुनिक

---

१. वही।

दोनों कालों के 'मानस'-टीकाकार आते हैं। इनमें आधुनिक टीकाकारों की संख्या अधिक है। प्राचीन काल के परम्परा विरहित कुछ प्रमुख टीकाकारों के नाम ये हैं—श्री रामू द्विवेदी, श्री मधुसूदन सरस्वती, श्री अनन्य माधव, श्री संतसिंह पंजाबी, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, स्वामी हरिदास जी, लाला गार्ड एवं श्री बच्चू सूर।

'मानस' के परम्परा-निरपेक्ष आधुनिक टीकाकारों में उल्लेखनीय हैं—पं० सुधाकर द्विवेदी, श्री बाबूराम शुक्ल, श्री विनायकराव, श्री रामेश्वर भट्ट, बाबू श्यामसुन्दर दास, लाला भगवानदीन जी 'दीन', बाबू रामदास गौड, श्री शीतलाप्रसाद तिवारी, पं० रामनरेश त्रिपाठी एवं श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार।

प्रथम खण्ड

मानस की टीकाओं का शास्त्रीय विवेचन

प्रथम खंड

अध्याय—१

अर्थ-प्रकाशन की विविध विधाएं (टीका भाष्यादि)

अर्थ प्रकाशन की समस्या—

सामान्यत ऐसा होता है कि हम जो कुछ कहते-सुनते अथवा लिखते-पढते हैं, बहुत से शब्द या भाव तो ऐसे होते हैं, जो सहज ही बोधगम्य हो जाते हैं और उसमे बहुत कुछ ऐसे भी क्लिष्ट शब्द एव गूढ भाव भी होते हैं, जो समझ मे नही आते। अतएव उनके अर्थ को व्यक्त करने की अपेक्षा होती है। अर्थ व्यक्त करने की इसी प्रक्रिया को अर्थ प्रकाशन कहा जाता है। यह अर्थ प्रकाशन सामान्यत दो प्रकार का होता है। एक को हम शब्द सम्बन्धी अर्थ प्रकाशन कह सकते हैं और दूसरे को भाव या अभिप्राय सम्बन्धी। सुविधा के लिए इन्हें क्रमश शब्दार्थ प्रकाशन एवं भावार्थ प्रकाशन भी कहा जा सकता है।

साहित्य क्षेत्र और अर्थ प्रकाशन—

अर्थ प्रकाशन का अत्यधिक महत्व साहित्य-क्षेत्र मे है, क्योंकि साहित्य के अन्तर्गत घटना, चरित्र एव तथ्य विशेष को बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण, चमत्कारिक एवं अनुरंजक ढग से कहा जाता है। अतएव उसमें बहुत सी ऐसी बातें रहती हैं जिन्हे सामान्य पाठक नही समझ सकता है। उनका सम्यक् बोध मात्र विद्वानो एव रसज्ञों को ही हो सकता है। इसीलिए साहित्य के रसज्ञ पण्डित सामान्य जन को इसका बोध, अर्थ की विभिन्न पद्धतियों द्वारा कराते हैं। इस प्रकार चाहे वह वैदिक साहित्य हो या लौकिक, सर्वत्र अर्थ-प्रकाशन की आवश्यकता नि सदिग्ध है।

अर्थ प्रकाशन की प्राचीनता—

साहित्य-क्षेत्र मे अर्थ प्रकाशन की परम्परा के उद्भव का मूल हमे वेदो के आविर्भाव के थोडे समय पश्चात् ही मिल जाता है। अधिकाश भारतीय वेदज्ञ वेद को अपौरुषेय मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्रान्तदर्शी ऋषियो ने वेद-मन्त्रो का दर्शन किया था।[1] उन्होंने अपनी अगली पीढ़ी को इन वेदऋचाओ को अवश्य ही समझाया होगा। बस यही से साहित्य-क्षेत्र मे अर्थ प्रकाशन की परम्परा का सूत्रपात हुआ। तब से आज तक अर्थ प्रकाशन की यह परम्परा अपने विविध रूपो में पल्लवित-पुष्पित होती रही है।

---

१ श्री रामगोविन्द त्रिपाठी कृत वैदिक साहित्य प्रथम संस्करण, पृ० १७ १८।

अर्थ प्रकाशन की प्रमुख प्रणालियाँ

वेद से लेकर आज तक अर्थ प्रकाशन की दो प्रमुख प्रणालियाँ मिलती हैं। एक है परोक्ष और दूसरी है प्रत्यक्ष।

१—अर्थ प्रकाशन की परोक्ष प्रणाली—

इस प्रणाली में *अन्तर्गत मूल साहित्य का मात्र भाव या अभिप्राय ही प्रकाशित* किया जाता है। इसमें व्याख्येय के पदों का अर्थ नहीं रहता है। इस परोक्ष प्रणाली के अन्तर्गत भी दो प्रकार की शैलियाँ हैं। एक है अर्थ प्रकाशन की स्वतन्त्र प्रणाली (साहित्य *के रूप में*) और दूसरी है *अर्थ प्रकाशन की चित्र प्रणाली।*

अ—स्वतन्त्र प्रणाली—

अर्थ प्रकाशन की यह प्रणाली प्रधानतः वैदिक साहित्य के अन्तर्गत मिलती है। विद्वान् ऐसा मानते हैं कि वेद रचना के पश्चात् ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, वेदांगों, दर्शनों, स्मृतियों, पुराणों *आदि का प्रणयन वेदों का एक प्रकार से व्याख्या करने के हेतु ही किया गया था। आज भी ऐसा प्रवाद मान्यता है कि उक्त साहित्य में वैदिक ऋचाओं* का ही व्याख्यान किया गया है। डा० सम्पूर्णानन्द जी का तो कथन है कि प्रस्थानत्रयी का एक *अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के* इन दो मन्त्रों—

> 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
> तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
> कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
> एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥'

की ही व्याख्या के रूप में है।[१] डा० एम० के० गुप्त ने तो पृथक्शः आरण्यक, ब्राह्मण इत्यादि को वेदार्थ परम्परा के *अन्तर्गत माना है।*[२] *यह वेद की साक्षात् अर्थ प्रणाली* नहीं दृष्टिगत होती है, अपितु इसमें वेदों के तात्पर्य का प्रकाशन ही हुआ मिलता है।

ब—चित्र प्रणाली—

परोक्ष अर्थ प्रकाशन की इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी कथा गाथा अथवा भाव *को चित्र रचना के द्वारा व्यक्त किया जाता है। हमें इस प्रणाली का प्राचीन रूप* मन्दिरों, गुफाओं (एलोरा, अजन्ता आदि) एवं राजप्रासादों में अभिचित्रित एवं उत्कीर्ण कथा-गाथाओं के रूप में मिल जाता है। हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत जायसी के पद्मावत, *रामचरितमानस सचित्र, बिहारी के दोहों तथा साहित्यकार सीताराम के करुणाभरण*

---

१ वही, 'वैदिक साहित्य' का डा० सम्पूर्णानन्द जी द्वारा लिखित आमुख।

२ डॉ० एम० के० गुप्त कृत शोध प्रबन्ध, 'वेद भाष्य पद्धति को स्वामी दयानन्द सरस्वती की देन'।

नाटक के, जिसके अभी तक १७ चित्र प्राप्त हुए हैं,[1] प्रकरण विशेष के भावों को चित्रों के सहारे व्यक्त किया गया है।

२—अर्थ प्रकाशन की प्रत्यक्ष प्रणाली और उसके भेदोपभेद—

अर्थ-प्रकाशन की प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत मूल के पदों एवं भावों दोनों का अर्थ प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त किया जाता है। इसमें परोक्ष प्रणाली की भांति व्याख्येय के मात्र भाव या तत्व की ओर संकेत करके संतोष नहीं कर लिया जाता है, अपितु यह व्याख्येय की उसके पदार्थ एवं भाव अभिप्राय सहित, सर्वांगपूर्ण व्याख्या होती है। इस प्रत्यक्ष अर्थ प्रकाशन प्रणाली के भी दो भेद हैं। प्रथम है मौखिक एवं द्वितीय है लिखित।

अ—अर्थ-प्रकाशन की मौखिक प्रणाली—

इसे हम व्यास प्रणाली भी कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत व्याख्येय का अर्थ व्यास लोग अपनी कथात्मक शैली के अनुसार करते हैं। इसका प्राचीन रूप हमें पुराण-वाचक व्यासों एवं सूतों की कथाओं में मिल जाता है। आज भी धार्मिक साहित्य के कथन-व्याख्यान पर इस व्यास पद्धति का आधिपत्य बना हुआ है।

ब—अर्थ-प्रकाशन की लिखित प्रणाली—

इस प्रणाली को हम 'टीका' प्रणाली भी कह सकते हैं। यही प्रणाली विशुद्ध साहित्यिक अर्थ प्रणाली मानी जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत टीका अथवा व्याख्या की कई विधायें मिलती हैं, जिनमें टीका, भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टिप्पणी एवं कारिका के नाम उल्लेखनीय हैं। अगले पृष्ठों में हम इनके लक्षणों पर विस्तार से विचार करेंगे। अर्थ प्रकाशन की यही पद्धति हमारे विवेच्य-विषय 'मानस' की टीकाओं की समीक्षा का आधार है।

अर्थ-प्रकाशन की विविध प्रणालियों का एक वृक्ष-चित्र

अर्थ-प्रकाशन
- परोक्ष प्रणाली
  - स्वतन्त्र प्रणाली
  - चित्र प्रणाली
- प्रत्यक्ष प्रणाली
  - मौखिक अथवा व्यास प्रणाली
  - लिखित अथवा टीका प्रणाली
    - टीका
    - भाष्य
    - वार्तिक
    - वृत्ति
    - टिप्पणी
    - कारिका
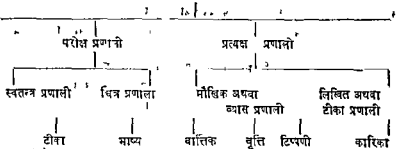
यह विचित्र संयोग है कि 'मानस' के टीका-साहित्य के अन्तर्गत हमें अर्थ-प्रकाशन की उपर्युक्त चारों प्रणालियों-स्वतन्त्र, चित्र, मौखिक एवं लिखित (टीका,

१. डॉ० गोपीनाथ तिवारी कृत 'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य' प्र० सं० पृ० २३।

भाष्य, वात्तिकादि)—का समावेश दृष्टिगत होता है। यहाँ हम इस तथ्य से सम्बन्धित एक संकेतात्मक परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

स्वतन्त्र प्रणाली—

अर्थ-प्रकाशन की स्वतंत्र प्रणाली के अन्तर्गत 'मानस सुधा' नामक एक ग्रन्थ आ सकता है, जिसके रचयिता श्री काष्ठजिह्वा स्वामी हैं। इस ग्रंथ में 'मानस' के विविध व्याख्येय पदों-सोरठों, दोहों, चौपाइयों—के भावों का निरूपण स्वतन्त्र ढङ्ग से कवितों में किया गया है। एक उद्धरण इस वस्तुतथ्य के उद्‌घाटनार्थ अलं होगा—

मूल—सो०—'जेहि सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥'

'मानस-सुधा'—द्वइ सुत सुन्दर गिरिजा जाये।
तारक मन्त्र स्वरूप षडानन,
प्रणव गजबदन सुघर सोहाए।
मायावाद तारकासुर हनि,
एक अमर संताप मिटाए।
अर्द्धचन्द्र अरु बिन्दु सीस धरि,
जगत विदित गननाथ कहाए।
जनक जननि सो जो पुजवाएउ,
जेहि अनादि तत्त्व श्रुति गाए॥
ताको आदि देव वर्णन करि,
तुलसिदास प्रथम गोहराए।

अर्थात् 'मानस' की अधिकारिणी श्री पार्वती जी के दो पुत्र हुए—षडानन और गजानन। षडानन तो साक्षात् षडाक्षर तारक मंत्र के स्वरूप ही हैं, जिन्होंने मायावाद रूपी (मिथ्याभिमान रूपी) तारकासुर का हनन करके देवताओं के दुःख को दूर कर दिया और गजानन ओंकार (ओ३म्) के द्वितीय विग्रह हैं, जिन्होंने श्री रामनाम के तुरीयातीत अर्द्धचन्द्र और बिन्दु को शीश पर धारण कर गणनाथ पद को प्राप्त किया। उसी प्रणव स्वरूप गणेश जी को, जिन्होंने अपने पिता-माता से भी पुजवाया (मुनि अनुसासन गनपत पूजे संभु भवानि), और जिन्हें श्रुतियाँ अनादि तत्त्व कह कर प्रतिपादित करती हैं, श्री गुसाईं तुलसीदास जी ने ग्रन्थ के आदि में पहले स्मरण किया है।[1]

चित्र प्रणाली—

इस प्रणाली के आधार पर रचित दो ग्रन्थ—'मानस' सचित्र एवं 'मानस' लीला मिलते हैं। इनकी रचना स्वर्गीय काशिनरेश श्री उदितनारायण सिंह ने करवाई

---

१. 'मानसभाष्य' तुलसी पत्र वर्ष ४, अंक ४, पृ० १०५-६।

थी।[१] इन ग्रंथो मे विविध चित्रो के सहारे 'मानस' को विषय-वस्तु एवं भावो का चित्रण किया गया है।

व्यास पद्धति—

व्यास पद्धति के माध्यम से 'मानस' का व्याख्यान तो स्वयं गोस्वामी जी के समय से ही होता चला आ रहा है। 'मानस' के व्यासो की कई परम्परायें हैं। इन 'मानस'—व्यास-परम्पराओ के अन्तगत बहुत से व्यास ऐसे भी हुए हैं, जिन्होने 'मानस' की प्रख्यात टीकाएँ लिखी हैं। इन 'मानस' व्यास परम्पराओ मे किशोरी दत्त, बूढे रामदास एव बाबा जानकीदास (अयोध्या) की परम्परायें विशेष महत्वपूर्ण हैं।[२]

अर्थ प्रकाशन की लिखित या टीका प्रणाली—

अर्थ प्रकाशन की इस प्रणाली के, जो विशुद्ध रूप के साहित्यिक है, आधार पर 'मानस' के प्राय सभी टीकात्मक ग्रन्थो का प्रणयन हुआ है। इस प्रणाली की सभी शैलियो—टीका, भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टिप्पणी, कारिका-के लक्षणो की संगति 'मानस' के विविध प्रकार के टीकात्मक ग्रन्थो से लग जाती है। अत हमे इसी अर्थ-प्रकाशिका प्रणाली की विविध विधाओ के लक्षणो की परीक्षा करनी है। इस हेतु प्रथमत हम इस अर्थ-प्रणाली की विधाओ—टीका, भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टिप्पणी और कारिका के संस्कृत ग्रन्थो मे विहित लक्षणो की सहायता से उनके स्वरूप पर विचार करेंगे।

---

१ मानसदीपिका' की ईश्वर कवि विरचित भूमिका।

२ 'मानस' टीकाकार परम्परायें, पृ०।

अध्याय—२

टीका एवं अन्य व्याख्या विधायें

संस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत टीका-साहित्य की गरिमा

वस्तुत टीका पद्धति, मात्र भारतीय वाङ्मय की देन है। इस पद्धति का उद्भव एवं विकास यहीं हुआ है। भारतीय ज्ञान राशि के पुंज को अक्षुण्ण, विवर्धमान एव सतत विकसनशील रखने मे टीका-साहित्य का कम महत्व नहीं रहा। वैदिक एवं संस्कृत-साहित्य की विशाल तथा भव्य टीका परम्परा की विविधता तथा विलक्षणता गौरवमय है। टीकाओ की प्रकृष्टता, सारगर्भितता एवं मौलिकता आदि विशेषताएं भारतीय विद्वान व्याख्याकारो की उन्नत मेधा की द्योतक हैं। संस्कृत का टीका-साहित्य महान् विचारको, प्रकाण्ड पंडितों एवं दिव्य विभूतियों की देन है। शंकर, रामानुज, वाचस्पति मिश्र, सायण एवं मल्लिनाथ प्रभृति विद्वानो का टीकाकार के रूप मे संस्कृत-साहित्य मे अवतरण इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

प्रत्यक्ष (लिखित) टीका पद्धति का स्वरूप एवं विकास—

जैसा ऊपर उल्लिखित कर दिया गया है कि अर्थ प्रकाशन की विशुद्ध साहित्यिक पद्धति उपजीव्य काव्यो पर प्रत्यक्ष टीका परम्परा के रूप मे मानी जाती है। इसी परम्परा मे व्याख्या अपनी सम्पूर्ण विधाओ (टीका, भाष्य, वृत्ति, कारिका, वार्तिक और टिप्पणी) के रूप मे पुष्पित एव पल्लवित हुई। इस परम्परा के प्राप्त टीका ग्रन्थो मे अष्टाध्यायी पर हुए कात्यायन के 'वार्तिक'[1] (खृष्ट पूर्व ४ थी शताब्दी) को प्राचीनतम माना जा सकता है। दर्शन ग्रन्थो[2] एवं स्वतंत्र वैदिक टीकाकारो[3] की उपलब्ध प्राचीनतम टीकाएं उसके पश्चात् की ही हैं। न जाने कितनी ही इनसे भी प्राचीनतर टीकाएँ कराल काल के मुख मे कवलित हो गई होगी। फलत टीकाओ के सुदूरतर इतिहास पर परदा पड़ गया है। परन्तु इतना तो निर्विवाद रूप से माना जा सकता है कि संस्कृत के टीका-साहित्य का विधिवत प्रारम्भ ईसा पूर्व चौथी शताब्दी मे हो गया था। संस्कृत टीका-रचना अबाध गति से १८वीं शती तक चलती रही। नव पंडित (१७वीं शती) जैसे

---

१ यहाँ के देशीय और पाश्चात्य विद्वानो ने स्वीकार किया है कि पतंजलि खृष्ट पूर्व २ री शताब्दी मे और कात्यायन खृष्ट पूर्व ४ थी शताब्दी मे आविर्भूत हो गए थे। (नगेन्द्रनाथ वसु कृत विश्वकोश, पृ० २१५, भाग १३)।

२ न्यायसूत्र पर वात्स्यायन कृत न्यायभाष्य (चौथी शताब्दी ई०) देवराजकृत भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ० २१६।

३ स्कन्दस्वामी कृत ऋग्वेद भाष्य रचनाकाल—सं० ६८७ वि० (रामगोविन्द त्रिपाठी कृत वैदिक साहित्य, पृ० ३६२)।

टीकाकार को इस परम्परा का अन्तिम स्तम्भ माना जा सकता है ! संस्कृत का यह विशाल टीका-साहित्य भारतीय ज्ञानधारा को वहन करने में अपना विशेष महत्व रखता है। मध्य-कालीन संस्कृत-साहित्य (७०० ई० १५०० ई०) में टीका पद्धति भी एक महत्वपूर्ण साहित्य-धारा के रूप में रही है। जहाँ तक इस काल के दर्शन एवं व्याकरण का प्रश्न है, उसका साहित्य तो टीकाओं का ही साहित्य कहा जा सकता है। टीकाओं की इतनी प्रधानता देखकर इस काल (मध्य काल) को 'टीका-युग' ही कहा जा सकता है। इतना तो सर्वमान्य ही है कि इस युग में संस्कृत वाङ्मय के समस्त क्षेत्र में टीका परंपरा को प्रमुखता प्राप्त थी। क्या वेद, क्या उपनिषद, क्या पुराण, क्या दर्शन, क्या व्याकरण, क्या साहित्य सभी विधाओं में टीकाएँ और टीकाओं पर टीकाएँ लिखी जा रही थीं। मूल ग्रन्थों की संस्तुति, विश्लेषण, सार (डाइजेस्ट) तथा निबन्ध-रचना एवं खण्डन-मंडन आदि टीकाओं के माध्यम से ही चल रहे थे।

इस टीका पद्धति का प्रारंभिक काल ई० सन् ७०० तक) माना जा सकता है, जो अत्यन्त उन्नत टीका-युग रहा है। वार्तिककार कात्यायन, महाभाष्यकार पतंजलि, नागार्जुन वात्स्यायन, तथा कुमारिल भट्ट जैसे मेधावी टीकाकार इसी काल की विभूतियाँ हैं। इस टीका परंपरा का मध्यकाल (ई० सन् ७०० से १६०० तक) स्वर्ण युग कहा जा सकता है, जिसके पोषक एवं समर्थक शंकराचार्य, रामानुज, श्रीधर स्वामी, वाचस्पति मिश्र, सायण एवं मल्लिनाथ सदृश मनीषी टीकाकार हैं। इसका अन्तिम अथवा अर्वाचीन काल (ई० सन् १६०० से आज तक) माना जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त दोनों कालों के सदृश टीकाकारों से यह काल हीन था। भले ही नन्द पंडित[1] स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे कतिपय उत्तम टीकाकार इस काल में भी मिल जाय।

उक्त अल्प-परिचय से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत के टीका-साहित्य का इतिहास विस्तृत है। इस सदर्भ में एक बात स्मरणीय है कि टीका की इस विस्तृत परम्परा में उसकी बहुविध व्याख्या विधायें अनुस्यूत हैं। ये विधायें टीका, भाष्य, टिप्पणी, वृत्ति, वार्तिक और कारिका के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सभी का एक सामान्य (जेनरल) और संयुक्त नाम 'टीका' दिया जा सकता है, भले ही इनका आन्तरिक स्वरूप सूक्ष्म भेद-प्रभेदों से युक्त हो, परन्तु एक 'टीका' शब्द ही इनका बोधक या वाचक हो जाता है। यहाँ पर 'टीका' शब्द या सामान्य (जेनरल) एवं व्यापक अर्थ में ही प्रयोग किया गया है। 'टीका' के अन्तर्गत आनेवाली सारी विधाओं (भाष्य, वृत्ति, वार्तिक, टीका इत्यादि) का मूलोद्देश्य व्याख्यातव्य साहित्य का स्तवन, समर्थन एवं विश्लेषण करना रहा है।

संस्कृत के समग्र टीका-साहित्य पर विवेचनात्मक दृष्टि डालने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् टीकाकार टीकात्मक ग्रन्थों के नाम, अपनी रुचि के अनुसार टीका, भाष्य आदि रख दिया करते थे, चाहे उनके सभी शास्त्रीय लक्षण उन टीकात्मक ग्रन्थों में मिलें या न मिलें। अतः इन टीकात्मक ग्रन्थों के नामों को देखकर हम इन्हें विभिन्न

1. History of Dharmshastra by Pandurang Vaman—Page 427

व्याख्या विधाओ को शास्त्रीय कसौटी पर खरा उतारना चाहें तो वे पूर्णतया शुद्ध नहीं उतर सकते। किसी टीका का नाम वृत्ति हो सकता है, परन्तु उसका स्वरूप भाष्य की सीमाओं मे भी समाविष्ट हो जाता है और कभी-कभी तो सामान्य से आगे भी बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए योग सूत्रों की प्रसिद्ध वृत्ति 'माठरवृत्ति' को ही लिया जा सकता है। उसका विस्तृत विवेचन तो कतिपय स्थलो पर भाष्य जैसा रूप प्राप्त कर लेता है। मौलिकता की दृष्टि से भी 'माठरवृत्ति' की विवेचनायें बेजोड़ हैं। प्रासंगिक कथाओ एवं स्वतंत्र कल्पनाओ के माध्यम से वृत्तिकार ने एक निराली व्याख्या प्रणाली ही स्थापित कर दी है। उसकी व्याख्या मे मौलिकता और विद्वत्ता के साथ मनोरंजन व्याख्यान शैली का त्रिवेणीवत् अपूर्व समन्वय है। यह व्याख्या संस्कृत-साहित्य मे अपना पृथक महत्व ही रखती है। इस प्रकार यह वृत्ति अपनी तथाकथित शास्त्रीय लक्षणों की सीमाओं मे नहीं बंध पायी है। ऐसे प्रतिभाशाली टीकाकार शास्त्रीय नियमों की सीमाओं से परे होकर अपने व्यक्तित्व के अनुरूप स्वतंत्र टीका ग्रन्थों की रचना किया करते थे। कालान्तर मे यही रचनायें, आकर ग्रन्थ बन जाती थी और ऐसे ही आकर ग्रन्थों के आधार पर टीका विधा विशेष के लक्षणों में परिवर्तन एवं संशोधन होता रहा है। इसी प्रकार के स्वतंत्र ग्रन्थो की कोटि मे स्मृतियो पर लिखित अपरार्क विज्ञानेश्वर आदि की टीकाएँ आती है। ये टीकाएँ अपने दूसरे वैशिष्ट्य से युक्त हैं। यदि इन टीकात्मक ग्रन्थो पर विवेचनात्मक दृष्टि डाली जाय तो एक ओर ये ग्रन्थ स्मृतिसार (डाइजस्ट) या स्वतंत्र निबन्धो की श्रेणी मे प्रधान रूप से रखे जा सकते हैं दूसरी और इनका टीकात्मक रूप भी प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है। इसका टीकात्मक रूप गौण ही है। द्वैतनिर्णयकार तो विज्ञानेश्वर को निबन्धकारों में उच्च स्थान देता है।[1]

ऐसा भी देखा जाता है कि किसी ग्रन्थ की व्याख्या का नाम भाष्य दिया गया है, परन्तु उसमे व्याख्येय का शब्दार्थ मात्र ही देकर या कतिपय स्थलों पर उसका सामान्य विश्लेषण देकर ही, भाष्यकार ने अपने वक्तव्य की इति श्री मान ली है। वेद के भाष्यों मे ऐसे उदाहरण सरलता से मिल सकते हैं। परन्तु सायण के भाष्य को इस तथ्य के अपवाद के रूप मे माना जा सकता है। यद्यपि उसकी भी प्रवृत्ति यत्र-तत्र सामान्य अर्थ देने की ओर ही रही है। इस विवेचन के साथ ही इस प्रकार के भाष्यों के रचयिताओ की कतिपय सीमाओं पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इन भाष्यो की संक्षिप्तता के कारण निम्नलिखित है—

(१) उपजीव्य शास्त्रों का अत्यधिक विस्तार।

(२) लेखन सम्बन्धी तत्कालीन असुविधायें।

---

1 Vigyaneshwar is described by the Dvait Nirnaya of Shankar Bhat as the most eminent of all writers of Nibandhas (from the History of Dharmashashtra by Pandurang Vaman—Pages 245 247)

(३) सर्वत्र विस्तृत व्याख्यान की अनपेक्षा।

इन तीन कारणों के अतिरिक्त इन वेद भाष्यों के विस्तृत न होने का कारण यह भी है कि वेदों के भाष्य के पाठक भी संस्कृत के विद्वान होते थे। भाष्य सभी वर्गों के पाठकों को दृष्टि में रखकर नहीं लिखे जाते थे। इन भाष्यों के लिए प्रबुद्ध एवं प्रकृष्ट कोटि के पाठकों की अपेक्षा होती थी। अतः ये भाष्य संक्षिप्त बन गए हैं। इन भाष्यों की सामासिक एवं सूक्ष्म भाषा शैली को समझने के लिए विद्वान पंडितों की अपेक्षा है। यदि आज का सामान्य आलोचक इन भाष्यों को देखेगा तो उसकी दृष्टि में ये सामान्य टीका के सदृश ही दृष्टिगोचर होंगे क्योंकि इन भाष्यों पर भाष्य के शास्त्रीय लक्षण घटते ही नहीं। परन्तु यदि ये आलोचक वैदिक भाष्यकारों की पूर्वकथित मीमांसा पर ध्यान दें तो उन्हें वास्तविकता की अनुभूति होगी।

दूसरी ओर जब वे (आलोचक एवं पाठक) ब्रह्म सूत्र या उपनिषदों के भाष्यों का अवलोकन करेंगे तो उन ग्रन्थों में उन्हें भाष्य के सभी लक्षण दीख पड़ेंगे। अतएव ये भाष्य उनकी दृष्टि में पूर्ण भाष्य होंगे। इन भाष्यों के विस्तार एवं उनमें भाष्य के सभी लक्षणों के समावेश का एक मात्र कारण मूलसूत्रों एवं मंत्रों का बाहुल्य सापेक्ष एवं सूक्ष्म सामासिक शैली में निहित रहा है। दस या पन्द्रह मंत्रों से युक्त उपनिषदों का सविस्तार एवं पांडित्यपूर्ण भाष्य अपने व्याख्येय या मूल से शतशः सहस्रशः दीर्घतर हैं। इस विस्तार का एक प्रमुख कारण साम्प्रदायिक भाष्यकारों द्वारा अपने साम्प्रदायिक विचारों का भी भाष्य के माध्यम से पल्लवन किया जाना है। इसके पुष्ट प्रमाण के रूप में शंकर और रामानुज के क्रमशः अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत परक भाष्य हैं।

अन्ततः निष्कर्ष यह है कि व्याख्या करते समय व्याख्याता विधा विशेष के जटिल नियमों से प्रायः मुक्त ही रहता था। उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं विशेष परिस्थितियां भी व्याख्यान के स्वरूप पर अपनी गहरी छाप डालती थी।

भारतीय साहित्य की ही क्या, अपितु सर्वसामान्य भारतीय की मूल प्रवृत्ति अपनी भारतीयता अपनी परम्परा अपनी सभ्यता और संस्कृति का पालन-पोषण करना है। वह (भारतीय) क्रांतिकारी नहीं अपितु शान्त एवं सहिष्णु है। उसे अपनी प्राचीनता से घृणा नहीं, अपितु मोह है। उसको अपने अतीत पर गर्व है न कि उसको और उसकी हीन दृष्टि। इसी से वह उसके विनाश की ओर उन्मुख न होकर उसको संवर्धना को ही अपना श्रेय और प्रेय मानता है। यही कारण है कि उसे अपने वेद पुराण उपनिषद् इतिहास एवं काव्यों के प्रति अटूट विश्वास है और उसमें उपलब्ध ज्ञान विज्ञान को जीवित रखने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता रहा है। इस कार्य को उसने व्याख्या के माध्यम से भी जीवित रखने की एक प्रमुख प्रणाली अपना ली। अतः वह अपने उपजीव्य साहित्य का प्रायः समर्थक ही रहा है। यदि किंचित भेद भी है तो मात्र व्याख्यानों की विभिन्न प्रकार की शैली में ही। कदाचित ही कोई टीकाकार ऐसा मिले, जो मूल का

छिद्रान्वेषण या उस पर कुठाराघात करना हो। अत एक वाक्य मे हम कह सकते है कि भारतीय टीका-साहित्य उपजीव्य ग्रन्थो की प्रशस्ति है।

इसी सदर्भ म व्याख्या विधाओ के सबध मे आचार्यों द्वारा विहित परिभाषाओं एवं लक्षणो को दे देना आवश्यक है, जिससे कि हम सस्कृत टीका साहित्य मे उपलब्ध विविध व्याख्या पद्धतियो (टीका, भाष्य, वार्त्तिक, वृत्तिक, टिप्पणी और कारिका) के वास्तविक स्वरूप से अवगत हो सकें।

अध्याय ३

प्रकरण—१

टीका

परिभाषा—

'टीका' पर विचार करते हुए अमरकोष के टीकाकार ने लिखा है—'टीक्यतेऽर्थो यथा। टीकृ गतौ। (म्वादिगण आत्मने० सेट)' गुरोश्चहल (३।३।१०३) इत्य। विषमपद व्याख्या'।[1]

पुन उपर्युक्त की टिप्पणी के अन्तर्गत आचार्य हेमचन्द्र का टीका-सम्बन्धी मत इस प्रकार है —

'हेमस्तु टीका निरन्तरव्याख्या इति मूलं सुगमाना विषमाणा
च निरन्तर व्याख्या यस्यासा इत्येवरीत्या व्याख्यातवान्।'[2]

अर्थात् पद के अर्थ का जिसके द्वारा सम्यक् बोध हो, वह टीका है, गत्यर्थक टीका धातु (म्वादि गणीय आत्मने पद सेट् धातु) से गुरोश्चहल (३।३।१०३) इस पाणिनि-सूत्र द्वारा 'अ' प्रत्यय करने से टीका शब्द बनता है—इसमें क्लिष्ट पदों की व्याख्या रहती है।

हेमचन्द्र ने तो, 'मूल' के सरल एवं क्लिष्ट सभी पदों की निरंतर व्याख्या, जिसमे की गयी हो, वही टीका है, इस प्रकार की टीका शब्द की व्याख्या दी है।

अमरकोष की उपर्युक्त परिभाषा का ही समर्थन नगेन्द्रनाथ वसु कृत विश्वकोश मे भी प्राप्त होता है—

(सं० स्त्री०) 'टीक्यते, गम्यते, वुद्ध्यते, वानया टीक घजर्थे क-टाप् च।
व्याख्याग्रंथ, किसी वाक्य या पद का अर्थ स्पष्ट करने वाला वाक्य।'[3]

अर्थात् टीका धातु का अर्थ अवबोधन (जानकारी) है। 'टीक' धातु मे भाववाची घ और स्त्री लिंगवाची टाप् प्रत्यय के योग से टीका शब्द बनता है।

वृहद् वाचस्पत्य-अभिधानकार, मात्र विषम पद-व्याख्या को ही टीका की परिभाषा मानते हैं—

---

१. अमरकोष (रामाश्रमी टीका सहित) ३।५।७ (पृ० ४१५) निर्णयसागर प्रेस, सन् १९२९ ई०।

२ वही।

३. नगेन्द्रनाथ वसु कृत विश्वकोश।

(स्त्री०) 'टीक्यते, गम्यते, ग्रन्थार्थोऽनया । टीक-करणे घ, घञर्थे क वा ।
विषम पद-व्याख्या रूपे ग्रन्थभेदे ।'[1]

अर्थात् टीका से ग्रन्थार्थ को समझा जाता है, उसका (ग्रन्थार्थ) का बोध किया जाता है। टीका शब्द टीक् धातु मे घञ्प्रत्यय लगाकर बना है। 'घञ्' के सयोग से टीक् धातु का रूपकरण कारक मे प्रयुक्त हुआ, या टीका शब्द की रचना 'क' प्रत्यय के आगम से हुई। यह ग्रन्थ (शास्त्र) का वह भेद है, जिसमे विषम पदो की व्याख्या की जाती है।

टीका के विषय मे सस्कृत-अग्रेजी कोष के रचयिता आप्टे का मत भी अमरकोष के ही परिभाषानुरूप है। वह टीका के अर्थ मे अग्रेजी के दो शब्दो 'कमेन्ट्री' एव 'ग्लोस' को देते हैं। पुन आप्टे कहते हैं—'टीक्यते ग्रन्थार्थोऽनया'[2] अर्थात् टीका वह व्याख्या-विधा है, जिससे ग्रन्थार्थ का ज्ञान प्राप्त किया जाय।

मोनियर विलियम्स ने संस्कृत-अग्रेजी कोश मे टीका शब्द के विषय मे विशेष कुछ न कहकर उसके (टीका के) पर्याय के रूप मे 'कमेन्ट्री', 'कमेन्ट' और 'ग्लोस' शब्द दिये हैं। उनके विचार से विशेषत एक व्याख्यान ग्रन्थ को टीका को ही टीका कहा जाता है। ऐसी ही शंकराचार्य के भाष्यो पर आनन्दगिरि की टीका है। इस तथ्य का पता उनके इस कथन से चलता है—

Commentary Gloss, especially on another commentary e g Anandgiri's Tika on Shankar's Bhasya[3]

डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र ने टीका की परिभाषा एवं उसके स्वरूप का निराकरण करते हुए लिखा है—

'टीका —टीकृ गतौ (भ्वादि०)+अ +स्त्री प्रत्यय टाप् (टीक्यते, गम्यतेऽर्थो यया सा (क) सामान्य अर्थ—१ —व्याख्यान ग्रन्थ, २—व्याख्या, ३—विवृत्ति। (ख) विशेष अर्थ—(१) विषम पद-व्याख्यान-रूपा वृत्ति'—तारानाथ कृत शब्दस्तोम महानिधि व्याख्या (भानुजी दीक्षित की रामाश्रमी) विषम पद—इस अर्थ के अनुसार टीका भी वृत्ति की ही भाँति सक्षिप्त होना चाहिए, क्योंकि उसमे केवल कठिन और दुरूह पदों का ही व्याख्यान होता है। परन्तु इसका विरोधी मत भी है, जिसके अनुसार टीका विषय पदो की ही व्याख्या नहीं, अपितु मूल के सुगम और दुर्गम सभी पदों की व्याख्या है (टीका निरन्तर व्याख्या—'सुगमाना विषमाणा च निरन्तरं व्याख्या'—हेमचन्द्र)।

यो तो सस्कृत के विशाल टीका-साहित्य मे शायद ही कोई ऐसी टीका मिले, जिसमें प्रतिपद व्याख्यान हो। परन्तु प्राय उपलब्ध सभी टीकाओ मे मूल के प्राय सभी पदो की व्याख्या मिलती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि दो चार टीकाओं में भले ही केवल विषमपदों का व्याख्यान हो और वे बहुत सक्षिप्त हो, परन्तु प्राय सभी

---

१. वृहद् वाचस्पत्य अभिधान पृष्ठ ३१८८ (प्रथम संस्करण)।
२ आप्टे कृत 'संस्कृत-अंग्रेजी कोश' (संस्करण काल १८९०)।
३ मोनियर विलियम्स कृत संस्कृत अंग्रेजी कोश।

टीका ग्रन्थों के सम्बन्ध में टीका का द्वितीय लक्षण ही अधिक घटित होता है।

संस्कृत का यह टीका-साहित्य मौलिक से कहीं अधिक विशाल है। इस कारण ग्रंथकारों में मौलिकता या स्वतन्त्र चिन्ता का अभाव या उसकी न्यूनता नहीं, अपितु संस्कृत भाषा और उसके शास्त्रों की गंभीरता और गहनता ही है, क्योंकि टीकाओं से भी पुराने वादों पर नये विचार, उन वादों का नई दिशाओं में विकास, उनका नये ढंग से मूल्यांकन आदि सभी कुछ मिलता है। इतने विशाल साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों की परिगणना भी कठिन है, परन्तु उनमें कुछ सर्वाधिक प्रसिद्ध ये हैं—उद्योतकर कृत न्याय वार्त्तिक पर वाचस्पति मिश्र की तात्पर्य टीका, सांख्य कारिका पर उनकी सांख्य तत्त्व कौमुदी, योगभाष्य पर तत्त्ववैशारदी तथा शंकर कृत वेदान्तभाष्य पर उनकी भामती तथा आनन्दगिरि की न्यायनिर्णय टीका, व्याकरण में महाभाष्य पर कय्यट कृत प्रदीप, भट्टोजी दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी पर ज्ञानेन्द्र की तत्त्व-बोधिनी, काव्यों में कुमार-संभव, रघुवंश, मेघदूत, किरातार्जुनीय, शिशु पालवध तथा नैषधचरित पर मल्लिनाथ की टीकाएँ तथा नैषध पर नारायण की टीका है। इसी प्रकार काव्य-शास्त्र में मम्मट के काव्य-प्रकाश पर चालीस से ऊपर टीकाएँ हैं। नाटकों पर राघव भट्ट की टीकाएँ सर्व-विदित हैं।

(ग) हिन्दी में टीका के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मध्यकालीन भक्ति रीति-काव्य पर ब्रज-भाषा गद्य में अनेक टीकाएँ मिलती हैं। जैसे चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर गुसाईं हरिराय की भाव प्रकाश टीका, साहित्य-लहरी पर सरदार कवि कृत टीका, भक्तमाल पर प्रियादास की टीका (पद्य में), हितहरिवंश के चौरासी पद पर तथा बिहारी सतसई पर, अनेक टीकाएं हैं। रामचरितमानस पर भी अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं।[1]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी टीका ग्रन्थों को स्वतन्त्र ग्रन्थ एवं ग्रन्थसार (डाइजेस्ट) के भी रूप में मानने के पक्षपाती हैं। उनका कथन है—

'मूल ग्रन्थ की टीकाएँ, उनकी भी टीकाएँ, इस प्रकार कभी-कभी छ छ, आठ-आठ पुश्त तक टीकाओं की परम्परा चलती गई। लेकिन ये टीकाएँ सर्वत्र चिन्ता पार-तंत्र्य की निर्देशक नहीं हैं, कभी-कभी स्वतन्त्र मतों के प्रतिपादनार्थ भी लिखा गई थी। शुरू-शुरू में तो यह बात और सच थी। ऐसी टीकाओं को असल में टीका न कहकर स्वतन्त्र ग्रन्थ ही कहना चाहिए।

शब्दों में जब अधिक अर्थ प्रकट करने की कोशिश की जाती है, तो इन छोटे-छोटे वाक्यों को सूत्र कहते हैं। जिसमें सूत्रों के सार-मर्म बताये जाते हैं, उसे वृत्ति कहते हैं। सूत्र और वृत्ति के परीक्षण को पद्धति कहते हैं। सूत्र और वृत्ति में बताये गए सिद्धान्तों पर आक्षेप करके फिर उनका समाधान करके, इन सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण

---

१ हिन्दी-साहित्य-कोश (डा० आद्याप्रसाद मिश्र) ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, पृ० सं० ३११-१२।

को भाष्य कहते हैं। भाष्य के बीच में जो विषय प्रकृत हों, उसे त्याग कर और दूसरे उसी से सम्बद्ध किन्तु अप्रकृत विषयों का जो विचार किया जाता है, उसे समीक्षा कहते हैं। इन सब में बताये गये विषयों का टीकन या उल्लेख जिसमें हो, उसे टीका कहते हैं।'[1]

टीका का उदाहरण—

मूल श्लोक—

> अथागराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी।
> नासौ न न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः ॥[2]

व्याख्या—

अथेति। अथ कुमार्यङ्गराजाच्चक्षुरवतार्य अपनीयेत्यर्थः जन्या मातृ-सखीम् 'जन्या मातृसखीमुदो' इति विश्व। सुनन्दा याहि गच्छेत्यवदत्। 'यातेति जन्यानवदत्' इति पाठे जनीं वधू वहन्तीति जन्या वधूबन्धवः तान्यात गच्छतेत्यवदत्। जन्यो वरवधूज्ञातिप्रियतुल्ये-हितेऽपि च इति विश्व। अथवा जन्या वधूभृत्या। भृत्याश्चापि नवोढाया इति केशव। संज्ञायां 'जन्या' इति यत्प्रत्ययान्तो निपातः यत्राह वृत्तिकार—'जनीं वधू वहन्तीति जन्या जामातुर्वयस्या' इति। यच्चामर: 'जन्या स्निग्धा वरस्य ये' इति तत्सर्वमुपलक्ष-णार्थमित्यविरोध। न चायमङ्गराजनिषेधो दुष्यदोषाभावि इष्टदोषादित्याहनेत्यादिना। असावङ्गराज: काम्य: कमनीयो नेति न। किन्तु काम्य एवेत्यर्थ। सा कुमारी सम्यग्द्रष्टुं विवेक्तुं न वेदेति न वेदैवेत्यर्थ। किन्तु लोको जनो भिन्नरुचिर्हि रुचिरमपि किंचित्कस्मैचिन्न रोचते। किं कुमो न हीच्छा नियन्तुं शक्यत इति भाव।

अर्थात् इसके पश्चात् कुमारी अङ्गराज के ऊपर से नेत्र हटाती हुई चली गई। *जन्या का अर्थ है मातृसखी जैसा कि विश्व नामक कोशकार ने कहा है*—'जन्या-मातृ सखीमुदो' अर्थात् सुनन्दा को 'यातेति' अर्थात् आगे चलो ऐसा कहा। किसी प्रति में 'याहीति जन्यामवदद्' के स्थान पर 'यातेति जन्यानवदत्' पाठ है। ऐसे पाठ में जन्या का स्वयंवरा कन्या के बान्धवगण ऐसा (पुलिंग बहुवचन) अर्थ होगा। जैसा कि विश्व कोशकार ने लिखा है 'जन्योवरवधूज्ञाति प्रियतुल्याहितेऽपि च' अथवा जन्य जो वधू के नौकर हैं। जैसा कि केशव ने अपने कोश में कहा है 'भृत्याश्चापि नवोढाया' कन्या के भृत्य भी जन्य कहे जाते हैं और जो 'संज्ञाया जन्या' सूत्र से जनि धातु से यत् प्रत्यय के निपातन से जन्या शब्द बनता है। इसी को वृत्तिकार ने जन्या का अर्थ जामाता के मित्र और अमरकोषकार ने वर के मित्रगण कहा। यह सब उपलक्षणार्थ है, विरोध में तात्पर्य नहीं। अङ्गराज को उसने क्यों नहीं पसन्द (स्वीकार) किया? क्या लड़की के देखने म

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' चतुर्थ, सं०, पृ० ११-१२।

२. मल्लिनाथ कृत 'रघुवंश की संजीवनी टीका' सर्ग ६, श्लोक ३०।

दोष है ? क्या अङ्गराज कुरूप है ? नहीं, अङ्गराज न तो कुरूप है और न तो कुमारी की अवलोकन-शक्ति में ही हीनता है, अपितु लोगों की रुचियाँ ही भिन्न-भिन्न होती हैं। किसी को कुछ प्रिय होता है, किसी को कुछ। क्या किया जाय, (किसी की) इच्छा-शक्ति का नियमन नहीं किया जा सकता।'

टीका का लक्षण—

उपर्युक्त समस्त विवेचन के पश्चात् हम टीका के सामान्य लक्षण इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं।

टीका के लक्षणकारों ने टीका के सम्बन्ध में दो मतों की स्थापना की है। अधिकांश लक्षणकार कहते हैं कि टीका विषम पदों की व्याख्या है। परन्तु आचार्य हेमचन्द्र का कथन है कि टीका 'निरन्तर पद व्याख्या' है। तात्पर्य यह है कि उनके मतानुसार टीका सरल, विषम सभी पदों की अबाध (कान्टीनुअस) व्याख्या है। डा० आद्या प्रसाद मिश्र दोनों परिभाषाओं को स्वीकार करते हुए परिभाषा (हेमचन्द्र कृत) को अधिक उपयुक्त मानते हैं। इसीलिए उन्होंने लिखा है प्राय आवश्यक सभी पदों की व्याख्या टीका में रहती है। यही बात यथार्थतः अधिकांश टीकाओं में रहती है। कुछ ही ऐसी इनी-गिनी टीकाएँ मिल सकती हैं, जिनमें मात्र विषम पदों की ही व्याख्या हो और वे मूल के अत्यन्त सीमित, अति लघु भाग का अवबोधन कराती हो। आगे चलकर टीका शब्द व्याख्या का वाचक हो गया।[1] सभी विधाओं के लिए यही टीका शब्द प्रयुक्त होने लगा। सामान्यतः हिन्दी में भी किसी भी प्रकार की व्याख्या को टीका ही नाम दिया जाता है, चाहे वे वृत्ति, टिप्पणी, वार्तिक, अथवा अक्षरार्थ एवं गद्यानुवाद-पद्यानुवाद, किसी भी शैली की (व्याख्या) क्यों न हो। परन्तु जहाँ तक 'मानस' के टीका-साहित्य का सम्बन्ध है, उसमें टीकाओं के भिन्न नाम—टीका, टिप्पणी, वार्तिकादि—मिलते हैं। 'मानस' के इन टीकात्मक ग्रन्थों पर विधा विशेष के शास्त्रीय लक्षण भी घटते हैं। जैसा अगले पृष्ठों में 'मानस' की विविध प्रकार की टीकाओं के विवेचन को देखने से स्पष्ट हो जायगा।

टीका की प्रमुख विशेषताएँ

(१) दुर्गम एवं दुर्बोध सुगम तथा सुबोध बनाने की प्रमुखतम व्यवस्था शैली टीका की यह प्रमुखतम विशेषता सर्वमान्य एवं सर्वज्ञात है।

(२) टीका में आप्त वाक्यों एवं मान्य ग्रन्थों के उद्धरण देकर अर्थ की पुष्टि की जाती है। इस प्रकार टीका बहुविध ज्ञान का भंडार कही जा सकती है।

(३) टीका पाण्डित्य और अद्भुत मेधा का परिचायक ग्रन्थ है। टीका किसी विद्वान् के शब्द-ज्ञान, उसकी प्रसंगानुकूल उपयुक्ततम अर्थ-संयोजना करने की क्षमता विविध अर्थों के विषय में उसकी सम्यक् धारणा, तदनन्तर अभीष्ट अर्थ की युक्ति-युक्त

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लि०, वाराणसी, पृ० ३११-१२।

प्रतिस्थापना एव गूढ गुत्थियो शकाओ का निराकरण तथा उसकी कारयित्री प्रतिभा की कसौटी है।

(४) टीकाओ मे प्रसिद्ध प्रचलित पाठ भेदो का भी सन्निवेश किया जाता है। जैसा की मल्लिनाथ, नारायण ने पाठ भेद देकर इसको चरितार्थ किया है। उपर्युक्त उद्धरण मे ही मल्लिनाथ ने 'जन्या' पद के पाठभेद की चर्चा चलायी है।

(५) मूल से संगति, आदर्श टीका की प्रमुख एव अपेक्षित विशेषता है। उनमे प्रासगिक एव संगत अर्थ-योजना अत्यंतावश्यक है। टीकाकार को किंचित भी व्यर्थ के विस्तार एव मूल से अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही है। इस विषय मे संस्कृत-साहित्य के प्रतिनिधि टीकाकार मल्लिनाथ का कथन ही प्रमाण है—

'इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यातं मया।
नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥'

अर्थात् यहाँ अन्वय मुख से ही सब कुछ व्याख्यान किया जा सकता है। न तो 'अमूल' लिखा जाता है, न कुछ अनावश्यक कहा जाता है।

(६) टीका मे मूल के सभी स्थलो की विशद, तर्कयुक्त तथा गंभीर व्याख्या नही हो सकती। विशिष्ट विशिष्ट स्थलो की ही उत्तम विस्तृत व्याख्या हो सकती है। अति सामान्य स्थलों को तो टीकाकार अधिकांशत, अछूता छोड कर ही आगे बढ़ जाता है। अत्यन्त साधारण स्थलो पर तो वह अन्वय मात्र ही देता है या बहुत तो कतिपय पदो का अर्थ भी दे देता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक की टीका दी जाती है—

मूल—'सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।
बिडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम् ॥'[2]

व्याख्या—सीतेति। सीता तं लक्ष्मणमुत्थाप्य वाक्य जगाद। किमिति है। सौम्य साधो ते प्रीतास्मि। चिराय चिरंजीव। यद्यस्मात्। बिडौजसेन्द्रेण विष्णुरुपेन्द्र इव अग्रजेन ज्येष्ठेन भ्रात्रा त्वमित्थं परवान्परतन्त्रोऽसि ॥ अर्थात सीता उन लक्ष्मण को उठाकर बोलीं। (क्या बोली ?) हे सौम्य, साधु आपके ऊपर मैं प्रसन्न हूँ। चिरजीवी हो। क्योंकि इन्द्र से विष्णु की तरह तुम ज्येष्ठ भ्राता (राम) के वशीभूत हो, उनकी आज्ञा पालन में तत्पर हो।

(७) टीका की रचना प्रक्रिया के सभी तत्वों (पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह, वाक्य-योजना एवं आक्षेप समाधान) की प्रत्येक स्थल मे उपलब्धि संभव नही है, क्योंकि सर्वत्र सभी तत्वों की संयोजना के लिए न तो अवकाश ही है, न आवश्यकता ही परन्तु पदार्थ एवं 'वाक्ययोजना' तो प्रत्येक स्थल की टीका मे आवश्यक है। ये ही दो तत्व तो टीका के मूलाधार हैं। कुछ विशेष स्थलो पर आक्षेप एवं समाधान सहित टीका के सभी तत्वों

---

१. हिन्दी साहित्य कोश 'ज्ञानमण्डल लि०', वाराणसी, पृ० ३११ १२।

२ मल्लिनाथ कृत रघुवंश की संजीवनी टीका—सर्ग १४ श्लोक ५६।

को देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ टीका के उपर्युक्त उदाहरण में टीका के क्रमश चार तत्व वर्तमान हैं एवं टीका के पांचवें तत्व आक्षेप एवं समाधान को हम निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या में देख सकते हैं—

मूल—'सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैनमुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिंग।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुर: स्थलेन ॥'[1]

व्याख्या—ननु रामायणे—(ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तप। अभिवाद्य तत: प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत्। इति भरतस्य कानिष्ठ्यं प्रतीयते किमर्थं ज्येष्ठ्यमवलम्ब्यानार्जवेन श्लोको व्याख्यात सत्यम्। किंतु रामायण श्लोकार्थष्टीकाकृतोक्त श्रूयताम्' ततो लक्ष्मणमासाद्य—'इत्यादिश्लोक आसादनं लक्ष्मणवैदेह्यो अभिवादनं तु वैदेह्या एव अन्यथा पूर्वोक्तं भरतस्य ज्येष्ठ्य विरुध्येनेति ॥

अर्थात् शंका—(बाल्मीकि) रामायण में (यह कहा गया है कि)—'प्रसन्न भरत लक्ष्मण और वैदेही का अभिवादन करके बोले' इस प्रकार भरत कनिष्ठ प्रतीत होते हैं। किस प्रकार ? (लक्ष्मण को) ज्येष्ठ समझकर (भरत को) सरलता से श्लोक की व्याख्या की गई है। (शंका का समाधान करते हुए टीकाकार का कथन है) सत्य है—रामायण के (उक्त) श्लोक का टीकाकार द्वारा जो अर्थ किया गया है (उसे) सुनिये। श्लोक में कथन लक्ष्मण और वैदेही के पास जाने का ही ज्ञापक है। प्रणाम केवल वैदेही को ही किया गया है। यदि ऐसा न माना जाय पूर्व कथित भरत का ज्येष्ठ्य वर्णन विरुद्ध हो जायगा।

(८) आदर्श टीका में महत्वपूर्ण स्थलों की विवेचनापूर्ण सम्यक् रीत्या व्याख्या की जाती है। टीकाकार अपने मौलिक विचारों के द्वारा गूढ एवं मार्मिक पदों का विश्लेषण करता है। इन पदों के व्याख्यान में अपनी सारी विद्वता को लगा देता है। निम्नलिखित व्याख्या को इसके ज्वलन्त प्रमाण के रूप में रखा जा सकता है—

मूल—वागर्थाविव सपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥[2]

व्याख्या—वागर्थाविति। वागर्थाविवेत्येक पदम्। इवेन सह नित्यसमासो विभक्त्यलोपश्च पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं चेति वक्तव्यम्। एवमन्यत्रापिद्रष्टव्यम्। वागर्थाविव शब्दार्थाविव सपृक्तौ। नित्यसबद्धावित्यर्थ। नित्यसंबद्धयोरुपमानत्वेनोपादानात्। 'नित्य शब्दार्थसम्बन्ध.' इति मीमांसका जगतो लोकस्य पितरौ। माता च पिता च पितरौ।' पिता मात्रा' इति द्वन्द्वैकशेष।' मातापितरौ पितरौ मातरपितरौ प्रसूजनयितारौ' इत्यमर। एतेन शर्वशिवयो सर्वजगज्जनकतया वैशिष्ट्यमिष्टार्थप्रदानशक्ति परमकारुणिकत्वं च सूच्यते। पर्वतस्यापत्य स्त्री पार्वती। 'तस्यापत्यम्, 'इत्यण्।' 'टिड्ढाणञ् इत्यादीना ङीप। पार्वती च परमेश्वरो पार्वतीपरमेश्वरौ। परमशब्द. सर्वोत्तम-

---

१ मल्लिनाथ कृत रघुवंश की संजीवनी टीका—१३ वां सर्ग श्लोक ७३,
२ वही, प्रथम सर्ग श्लोक १

त्वद्योतनार्थं । मातुरभ्यर्हितत्वादल्पाक्षरत्वाच्च पार्वतीशब्दस्य पूर्वनिपातः । वागर्थप्रतिपत्तये शब्दार्थयोः सम्यग्ज्ञानार्थं वन्देऽभिवादये । अत्रोपमालंकारः स्फुट एव । तदोक्तम्-स्वतः सिद्धेन भिन्नेन सपन्नेन च धर्मतः । साम्यमन्येन वर्ण्यस्य वाच्यं चेदेकगोपमा ।' इति । प्रायिकश्चोपमालङ्कारः कालिदासोक्तकाव्यादौ । भूदेवताकस्य सर्वगुरोर्मगणस्य प्रयोगाच्छुभलाभं सूच्यते । तदुक्तम्-'शुभदो मो भूमिमय ' इति । वकारश्चामृतबीजत्वात्प्रचयगमना दिशिद्धि ।

अर्थात् 'वागर्थाविव' यह एक पद है। इव के साथ इसका नित्य समास होता है। विभक्ति का लोप नहीं हुआ है। पूर्वपद अपनी स्वाभाविक दशा में रह गया है। इस तरह के अन्य उदाहरण भी मिलेंगे। 'वागर्थ' का तात्पर्य शब्दार्थ समझना चाहिए। 'सपृक्त शब्द और अर्थ की भांति नित्य सम्बद्ध, मीमांसकों का कहना है कि शब्द-अर्थ का सम्बन्ध नित्य है। जगत् का अर्थ लोक है, 'पितरौ' का अर्थ माता पिता दोनों है। 'पिता मात्रा' इस पाणिनि सूत्र के आधार पर द्वन्द्वैक शेष समास हुआ है, इसलिए दोनों का वाचक है। अमरकोषकार के अनुसार माता पिता के अर्थ में माता पितरौ, पितरौ और मातरपितरौ का प्रयोग होता है। इससे भगवान शंकर और पार्वती में समूचे संसार को उत्पन्न करने वाला होने के कारण विशेषता अर्थात् अभीष्ट वस्तु प्रदान करने की शक्ति और परम कृपालुता सूचित की गई है। पार्वती-पर्वत की संतान और स्त्री होने से पार्वती शब्द बनाता है। 'तस्यापत्यम्' सूत्र के अनुसार अण् प्रत्यय करने से पार्वत शब्द बना और उसमें टिड्ढाणञ् इत्यादि सूत्र से ङीप् करने से पार्वती शब्द बना है। पार्वती और परमेश्वर का द्वन्द्व समास करने से पार्वतीपरमेश्वरौ बना है। परम शब्द सर्वोत्तमता का द्योतक है। पार्वती का नाम पहले क्यों रखा ? माता को अत्यन्त पूज्य प्रदर्शित करने के लिए, तथा न्यूनअक्षर होने के कारण प्रथम रखा गया है। शब्दार्थ के सम्यग्ज्ञान के लिए इन दोनों की वंदना की गई है। इसमें उपमा अलंकार स्पष्ट है। जैसा कि इसका लक्षण बताते हुए कहा गया है उपमा अलंकार उसको कहते हैं जिसमें अन्य सम्पन्न भिन्न शब्द से समता प्रदर्शित की जाय। प्राय कालिदास के सभी काव्यों में उपमा अलंकार है। सबसे प्रथम श्लोक में प्रथम मगण का प्रयोग किया गया। उसका प्रयोग इसलिए किया है कि मगण का देवता पृथ्वी है। शुभ-लाभ की इसमें सूचना मिलती है जैसा कि कहा है—'मगण भूमिमय शुभदायक' है। पहले वकार क्यों लिखा है? वकार अमृत बीज है सदा जीवित रहेगा, इष्ट की प्राप्ति होगी, अन्य सिद्धियाँ भी मिलेंगी।

६—टीका की उत्कृष्टता बहुत कुछ टीकाकार की तटस्थवृत्ति में भी निहित होती है। जो टीका किसी प्रकार के पूर्वाग्रह किसी परम्परा या सम्प्रदाय विशेष से अनुप्राणित होकर नहीं लिखी जाती है, वही श्रेष्ठतम टीकाओं की कोटि में परिगणित होती है। श्रीधर स्वामी एवं मल्लिनाथ की टीकायें इसी प्रकार की हैं। निर्गुणवादी, अद्वैती श्रीधरस्वामी ने सगुणचरित सम्पन्न 'भागवत' की अत्यन्त श्रेष्ठ टीका की है। इसमें किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिकता या मतवादिता की गंध नहीं है। मल्लिनाथ

भी इस प्रकार के दोष से सर्वथा रहित हैं। किसी प्रकार के पूर्वाग्रह या दुराग्रहानुसार लिखी गई टीका में स्वभावत दोष आ जाते हैं, चाहे टीकाकार कितना ही सतर्क एवं विद्वान क्यों न हो। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर परम्परा से गर्हित भारतीय टीकाओं की भर्त्सना करते हुए उन्हें दोषपूर्ण बताया है।[1]

१०—खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति-टीकाकार मूल ग्रन्थ पर प्रहार नहीं करते, अपितु आपस म एक वर्ग के टीकाकार दूसरे वर्ग के टीकाकारों का बहुत ही कटु छिद्रान्वेषण युक्त खंडन-मंडन करते हैं। सम्प्रदाय एवं मतवाद के अनुरोध प्रतिरोध के ही कारण इस प्रवृत्ति की टीकाओं का प्रणयन होता है। जैसे विशिष्टाद्वैत वाले कभी अद्वैत के मतानुसार ब्रह्मसूत्र की व्याख्या नहीं मानेगे, उसी तरह वेदान्ती ब्रह्म को विशिष्ट मानकर किसी प्रकार श्रुति वाक्य का सगति नहीं बैठा सकेंगे। तात्पर्य यह कि इसी प्रकार के निरर्थक झगड़े चलते रहते हैं। एक बात स्मरणीय है कि रामचरितमानस की टीकाओं म इस प्रकार का साम्प्रदायिक अर्थ-सम्बन्धी खडन मडन भी चला है। इस प्रणाली के मूल ग्रथ को हानि ही पहुँचती है। यथार्थता की खोज अत्यन्त दुष्कर हो जाती है।

११—आंशिक टीकाएँ तथा सम्पूर्ण टीकाएँ दोनों प्रकार की टीकाएँ पायी जाती हैं। कतिपय टोकाएँ केवल एक सूक्त,[2] एक श्लोक,[3] एक या कुछ अध्यायों की ही होती हैं। दूसरी ओर सम्पूर्ण ग्रथ की टीकाएँ रची गई हैं।

१२—कतिपय टीकाएँ ऐसी भी होती हैं जो वर्ग विशेष के लिए ही उपयोगी हो सकती हैं। सभी टीकाएँ सभी की समझ म नहीं आ सकती हैं या सभी के लिए उपयोगी नहीं हो सकती हैं। जैसे—'भामती (वाचस्पति मिश्र कृत) टीका का बोध सभी नहीं कर सकते। दूसरी ओर व्याकरण की वररुचि प्राकृत टीका परीक्षार्थियों के लिए जितनी उपयोगी हैं, उतनी अन्य के लिए नहीं।

१३—टीका स्वत टीका सापेक्ष भी होती है। क्लिष्ट टीकाओं की सरल व्याख्या बिना उनके हेतु का समझना असम्भव हो जाता है। अतएव उनके बोधगम्यार्थ

---

1 'However who is acquainted with the character of Indian commentator, will admit that they seldom commit themselves to Novel theories, but almost always repeat what existed before in the tradition of their School, a fact which at once increases and diminishes the usefulness of their work'
From the History of Ancient Sanskrit Literature' by Max Muller Page 54. 1926 Ed. I (Bhuwaneshram Ashram—Allahabad)

२ वेद के पुरुषसूक्त पर अनेक टीकाएँ हैं।

३. भागवत की एक श्लोक (प्रथम श्लोक) की व्याख्या।

टीका की टीका एव उप-टीका लिखनी पडती है। पाणिनि की टीकाओ की परम्परा इसी प्रकार की है।

१४—टीका स्वय एक प्रकार की प्रशसात्मक समीक्षा है। इस तथ्य पर पिछले पृष्ठों पर पर्याप्त विचार किया गया है।

टीका की रचना प्रक्रिया के प्रमुख तत्व—

यह सर्वमान्य मत है कि 'व्याख्याग्रन्थ वृत्ति, भाष्य, वार्तिक, टिप्पणी आदि नाना शाखाओ मे विभक्त हैं। अत स्वत प्रकट है कि व्याख्या की रचना प्रणाली उपर्युक्त सभी विधाओ मे व्याप्त होगी। यह दूसरी बात है कि विधा विशेष मे व्याख्या रचना-प्रणाली के मूल सभी तत्वों का सन्निवेश हो या न हो, परन्तु आवश्यकतानुसार उनके यथावश्यक तत्वो का प्रयोग होगा ही। जैसे भाष्य के लिए व्याख्या के सभी तत्व आवश्यक हैं वृत्ति मे भी उनके पाँचो तत्वो की आवश्यकता पडती है, परन्तु उनमें प्रत्येक स्थल पर पाँचो तत्वों का विनियोग नही सभव है। टिप्पणी मे तो सभी तत्वो के विनियोग की आवश्यकता ही नही। वृत्ति की भाँति टीका मे भी व्याख्या के प्राय सभी तत्वो का आवश्यकतानुसार प्रयोग होता है। अतएव व्याख्या के निम्नलिखित ५ तत्व टीका के तत्वो के रूप मे भी प्रयुक्त होंगे। आचार्यों ने व्याख्या के पंच लक्षण दिए हैं—

'पदच्छेद पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना
आक्षेपस्य समाधान व्याख्यान पचलक्षणम्'
—पचविधासूत्रम् ?—

अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह, वाक्य-योजना एव आक्षेप तथा उसका समाधान ये व्याख्या के पाँच लक्षण (विधायें) हैं।

१—पदच्छेद—व्याख्येय मे कई पदो का सघटन रहता है। उन्हें स्पष्ट रूप से विश्लेषित करके अलग-अलग बता देना, टीकाकार का कर्तव्य है। टीका मे व्याख्येय पदो का उच्छेदन वाक्य-योजना के साथ ही हो जाता है। मल्लिनाथ कृत सजीवनी टीका के उपर्युक्त उदाहरणों मे पदों का उक्त रीति से उच्छेदन किया गया है। इसीलिए प्राय सभी टीकाओं मे अलग से पदच्छेद तत्व नही मिलता है।[1]

२—पदार्थोक्ति—व्याख्येय मे जितने पद दिए रहते हैं, प्राय उन सभी की टीका विवेचना की जाती है। कतिपय अत्यन्त सरल शब्दो को छोड भी दिया जाता है। एवं क्लिष्ट तथा विवादास्पद पदों की अत्यन्त विस्तारपूर्वक टीका की जाती है, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण मे 'जगत:पद' की विस्तृत पदार्थोक्ति से स्पष्ट है।

३—विग्रह—व्याख्येय के समस्त पदो का विश्लेषण ही विग्रह कहलाता है। जैसे 'वागर्थाविव—परमेश्वरौ' के 'पितरौ' पद की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ ने

१—नगेन्द्रनाथ वसु कृत शब्दकोश, २२ वाँ भाग, पृ० ४५३-५४।

'माता च पिता च पितरौ 'पितौमात्रा (पा० १।२।७०) इति द्वन्द्वकशेष । माता पितरौ पितरौ मातरपितरौ प्रसूजनयितारौ इत्यमर ।

४—वाक्ययोजना—समस्त वाक्य सूत्र अथवा श्लोक के विभिन्न पदों का टीका अन्वय ही वाक्य योजना के अन्तर्गत आता है। वाक्य योजना से ही पदों की परस्पर सगति स्थापित होती है। इस प्रकार का अन्वय संस्कृत के टीकाकारों की सभी टीकाओं का अत्यन्त अपेक्षित टीका तत्व रहा है। दण्डान्वय एव खडान्वय प्रणाली से वाक्य योजना की रचना की गई है। सस्कृत के प्रतिनिधि टीकाकार मल्लिनाथ तो यह स्पष्ट ही कहते हैं कि इहान्वयमुखेनैव सर्व व्याख्यायतेमया।

५—आक्षेप एव समाधान—व्याख्येय मे समाविष्ट आशका के निराकरण हेतु आक्षेप एव समाधान तत्व का समावेश किया गया है। ये आक्षेप स्थल विशेष मे एक कल्पप्रणाली के द्वारा समाधानित होते रहते हैं और कहीं-कहीं अनेक कल्प प्रणाली के अनुसार।

यहा कल्प का तात्पर्य प्रणाली विशेष मे है। किन्ही किन्ही स्थलो पर टीकाकार शका विशेष का एक प्रकार से समाधान करता है और कभी कभी किन्ही विशेष शकाओ का समाधान कई प्रकार से करता है। ऐसे अवसर पर उसका अतिम समाधान ही विशेष माननीय होता है। ऐसा व्याख्या के लक्षणकारो का मत है।[1]

प्रकरण २

व्याख्या की टीका विधा और मानस की टीकाएँ

इस व्याख्या विधा के अन्तर्गत आने वाली मानस की टीकाओं पर टीका के अधिकाश शास्त्रीय लक्षण घट जाते हैं। इन टीकाओ मे टीका के मात्र दो एक लक्षणो को ही प्रयुक्त नही किया गया है अथवा यदि इनका प्रयोग किया भी गया है तो एक निश्चित सीमा तक ही। टीका की परिभाषा देते हुए विद्वानो ने उसकी दो प्रकार की परिभाषाए दी हैं। टीका की एक परिभाषा के अनुसार टीका व्याख्येय के मात्र क्लिष्ट पदो की ही व्याख्या होती है और दूसरी परिभाषा के अनुसार उसमे क्लिष्ट एव सरल सभी पदो की निरन्तर व्याख्या की जाती है। जहा तक मानस की टीकाओ का प्रश्न है उन पर टीका की द्वितीय परिभाषा ही अधिक घटती है। मानस के टीकाकारो ने जिस स्थल की टीका की है उसके प्राय सभी पदो की निरन्तर व्याख्या की है।

टीका के पाच तत्व और मानस की टीकाएँ

जहाँ तक मानस की टीकाओ का सम्बन्ध है उनमे सर्वत्र सस्कृत-टीका विधा के उक्त पाँचो तत्वो—पदच्छेद पदार्थ विग्रह वाक्य-योजना एव शका-समाधान—का प्रयोग नहीं किया गया है। मानस की टीकाओ मे प्राय टीका के दो प्रमुख तत्व—पदार्थ

१—वही पृ० ४२४।

एवं वाक्य-योजना—ही आवश्यक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुत ये ही दो तत्त्व टीका के क्रमश प्राण एवं शरीर हैं। इन दोनों तत्त्वों के अतिरिक्त पदच्छेद, समास विग्रह एवं शंका-समाधान आदि तीन टीका तत्त्व और बच रहते हैं। 'मानस' की टीकाओं में पदच्छेद की कोई विशेष आवश्यकता नहीं, क्योंकि हिन्दी काव्य 'मानस' की पदावलियाँ संस्कृत की भाँति समस्त पद प्रधान नहीं हैं। अतएव इसके वाक्यांशों अथवा पदों को अलग अलग करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। रही विग्रह की बात 'मानस' में सामासिक पदों का अत्यधिक प्रयोग नहीं हुआ है। यदि कहीं ऐसे पद आ गए हैं तो कतिपय टीकाकारों ने उनका विग्रह कर भी दिया है। इस दृष्टि से सुधाकर द्विवेदी कृत 'मानस' पत्रिका, अञ्जनीनन्दन शरण कृत मानसपीयूष एवं विनायक राव कृत विनायकी टीका दर्शनीय है।

जहाँ तक शंका-समाधान संज्ञक टीका-तत्त्व की 'मानस' की टीकाओं के अन्तर्गत हुई नियोजना का प्रश्न है 'मानस' के टीका-साहित्य के प्रारम्भिक एवं मध्यकाल की प्राय सभी 'मानस' टीकाएँ शंका-समाधान तत्त्व से युक्त हैं। आधुनिक काल की भी कुछ टीकाएँ—दीनहितकारिणी, विनायकी, 'मानस सटीक (बा० श्यामसुन्दरदास कृत) मानस-पीयूष एवं विजया आदि टीकाओं में शंका-समाधानों की कमी नहीं है।

'मानस' की कुछ टीकाओं में प्रयुक्त अन्वय प्रणाली पर, जो वाक्य-योजना से ही सम्बन्धित है, भी विचार किया गया है। 'मानस' की कुछ ऐसी टीकाएँ हैं जिनमें कहीं-कहीं पर मूल की व्याख्या करते समय अलग से उसका अन्वय भी दे दिया गया है। ऐसी टीकाओं में मानसप्रचारिका, मानस-पीयूष, मानस सटीक (नगेशरमहन कृत) एवं 'विजया' आदि उल्लेखनीय हैं। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने योग्य है कि 'मानस' के अन्वय सापेक्ष व्याख्येय स्थल वे ही हैं जिनकी पद संयोजना सरल नहीं है। अन्यथा शेष सभी व्याख्येय पदों की परस्पर अन्विति तो टीकाकार द्वारा अपने अर्थ के अनुकूल मूल वाक्य की वाक्य योजना करते समय ही लग जाती है। अत यहाँ मूल से पृथक अन्वय की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

'मानस' के विशाल टीका-साहित्य से टीका विधा के अन्तर्गत आने वाले मानस के टीकात्मक ग्रन्थों में दो प्रकार की टीकाएँ मिलती हैं। इनमें से एक वर्ग में तो वे टीकाएँ रखी जा सकती हैं, जिनमें मानस के सम्पूर्ण (सातों) काण्डों की टीका की गई और दूसरे वर्ग में वे टीकाएँ आती हैं जिनमें 'मानस' के कतिपय काण्डों, कुछ प्रकरणों अथवा कुछ अर्धालियों पर टीकाएँ की गई हैं। सुविधा के लिए हम मानस की प्रथम वर्ग की टीकाओं का शीर्षक मानस की सम्पूर्ण टीकाएँ और दूसरे वर्ग की टीकाओं का शीर्षक मानस की आंशिक टीकाएँ दे रहे हैं। यहाँ पर एक विशेष तथ्य यह उल्लेखनीय है कि 'मानस' की उक्त दोनों वर्गों की टीकाओं में कुछ ऐसी भी टीकाएँ हैं जो व्याख्यात्मक हैं और कुछ ऐसी हैं जो अनुवादमूलक हैं। परन्तु 'मानस' की सम्पूर्ण टीकाओं में अनुवादमूलक टीकाओं का आधिक्य है। 'मानस' की वे सभी आंशिक टीकाएँ जो हिन्दी भाषा में निर्मित हैं, प्राय व्याख्यात्मक ही हैं। 'मानस' की विविध भाषाओं में हुई अनुवादमूलक टीकाओं की बात भी इन टीकाओं का हम मानस का अनुवादमूलक

टीकाओ के अन्तर्गत ही रख सकते हैं। इनमे भी 'मानस' की अक्षरार्थमूलक टीकाओ की ही भाँति टीका विधा के दो प्रमुख तत्वों–पदार्थ एवं वाक्य योजना–की भली विधि व्याप्ति मिल जाती है। इन अनुवादो मे अधिकाश 'मानस' के सातो काडो के अनुवाद हैं एवं कतिपय ऐसे भी हैं, जिनमे 'मानस' के कुछ काडो का ही अनुवाद हुआ है अथवा काड विशेष का ही अनुवाद हुआ है। 'मानस के सम्पूर्ण अनुवादो को हम 'मानस' की सम्पूर्ण टीकाओं और आशिक अनुवादो को आशिक टीकाओ की कोटि मे ही रख सकते हैं।

यहाँ हम 'मानस' की सम्पूर्ण एवं आशिक टीकाओ का वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे और साथ ही साथ प्रत्येक वर्ग मे आने वाली व्याख्यात्मक एव अक्षरार्थमूलक टीकाओ का भी निर्देश करते चलेंगे।

'मानस' की व्याख्यात्मक सम्पूर्ण टीकाएँ—

'मानस' की जिन टीकाओ में उसके सातो काडो की व्याख्यात्मक टीकाएँ की गई हैं, वे निम्नलिखित हैं—

मानप्रकाश, रामायण परिचर्या परिशिष्ट, मानस सटीक (पं० रामगुलाम द्विवेदी कृत), मानस हंस भूषण, मानस भूषण, अमृतलहरी, पीयूषधारा, मानस परचरजा, विनायकी मानसपीयूष, मानससटोक (बा० श्यामसुन्दर दास कृत), मानस सटीक (नंगे परमहंस), विजया आदि।

'मानस' की अक्षरार्थमूलक टीकाएँ—

इस वर्ग मे आने वाली टीकाओ मे मानस मुक्तावली, मानस सटीक (रणबहादुर सिंह कृत), गीता प्रेस की टीका, मानस सटीक (प० रामनरेश त्रिपाठी कृत), देवदीपिका आदि मुख्य हैं।

जैसा हम पूर्व ही कह चुके हैं कि 'मानस' की अक्षरार्थमूलक सम्पूर्ण टीकाओ मे 'मानस' के उन अनुवादो को भी रखा जा सकता है, जो हिन्दी उत्तर भारतीय-अभारतीय भाषाओं मे रचे गए हैं। अत इस वर्ग मे इन अक्षरार्थमूलक टीकाओ को स्थान दिया गया है। विविध भाषाओ मे हुए 'मानस' के सम्पूर्ण अनुवादो की तालिका निम्नलिखित दो प्रधान वर्गों मे दी जा रही है—

१ हिन्दी इतर भारतीय भाषाओ मे हुए 'मानस' के सम्पूर्ण अनुवाद—संस्कृत, बंगला, मराठी, तेलुगु, कन्नड, गुजराती आदि क्षेत्रीय भाषाओ मे हुए हैं।

२. हिन्दी-इतर अभारतीय भाषाओ मे 'मानस' के अनुवाद अंग्रेजी, फारसी, जर्मन, रूसी और नेपाली भाषा मे हुए हैं।

इन अनुवादों का यथावश्यक विवरण इस प्रबन्ध के 'मानस' की टीकाओ का 'ऐतिहासिक परिचय' शीर्षक खड मे आगे दिया जायगा।

'मानस' की आशिक टीकाएँ—

'मानस' की बहुत सी टीकाएँ ऐसी भी हैं, जो उसके सम्पूर्ण काडो पर न लिखी जाकर, उसके कतिपय काडा, प्रकरणो अथवा कुछ दोहों या उसकी किसी अर्धाली विशेष

पर ही लिखी गई हैं। 'मानस' की ये आंशिक टीकाएँ प्रायेण व्याख्यात्मक हैं। 'मानस' के आंशिक अनुवादों को हम 'मानस' की आंशिक टीकाओं में रख सकते हैं। ये अनुवादात्मक आंशिक टीकाएँ व्याख्यात्मक न होकर अर्थपरक हैं।

मानस की व्याख्यात्मक आंशिक टीकाएँ—

'मानस' की जितनी भी आंशिक टीकाएँ (अनुवादों को छोड़कर) हैं वे सभी व्याख्यात्मक ही हैं। इनमें मानस प्रचारिका, मानसतत्त्वभास्कर, संत उन्मनी मानस पत्रिका, मानसमार्तण्ड आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन आंशिक टीकाओं में कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें उनके रचयिताओं ने भाष्य नाम दिया है। परन्तु वे आती हैं टीका के लक्षणों के अन्तर्गत ही। अतएव हम उन्हें भी मानस की आंशिक टीकाओं के इस वर्ग में ही स्थान दे रहे हैं। इस प्रकार की टीकाओं में बाबूराम शुक्ल कृत तुलसी सूक्ति सुधाकरभाष्य एवं श्री हनुमानदास वकील कृत रामायणभाष्य उल्लेखनीय है।

'मानस' की अर्थाशयमूलक आंशिक टीकाएँ—

मानस की अर्थाशयमूलक आंशिक टीकाओं के अंतर्गत हिन्दी इतर भाषाओं में हुए अनुवादों को रखा जा सकता है। मानस के आंशिक अनुवादों के अन्तर्गत विविध भाषाओं में हुए मानस के अनुवाद उल्लेखनीय हैं। विविध भाषाओं के अंतर्गत हुए 'मानस' के कुछ आंशिक अनुवादों की संख्या निम्नलिखित है—

१ मलयालम भाषा के अन्तर्गत श्री वासुदेवन कृत रामचरित मानस के बालकांड का अनुवाद।

२ महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी कृत मानस के बालकांड के (पूर्वार्द्ध) का संस्कृत में पद्यानुवाद।

अपने शोध प्रबन्ध की सीमा देखते हुए यहाँ हम मानस की सभी टीकाओं का पृथक्-पृथक् शास्त्रीय अध्ययन नहीं प्रस्तुत कर सकते। अतः उदाहरण के रूप में मानस की एक प्रतिनिधि टीका पर ही टीका विधा के शास्त्रीय लक्षणों को घटित करते हुए 'मानस' की टीकाओं में संस्कृत टीका विधा के लक्षणों के अवतरण करने की शैली का निदर्शन कराया जायगा।

विजया टीका

मानसराजहंस पं० विजयानन्द कृत विजया टीका हिन्दी टीकाओं की व्याख्या का प्रतिनिधित्व भली भाँति करती है। इस टीका में हिन्दी की सीमाओं को देखते हुए टीका के सभी शास्त्रीय लक्षण प्राप्त होते हैं। टीका के प्रायः सभी तत्त्वों का समावेश बड़े ही व्यवस्थित ढंग से इसमें किया गया है। इस तथ्य के निदर्शनार्थ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

मूल— दो० तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बयन॥

चौ० देखन बागु कुंअर दोउ आए। बय किसोर सब भांति सुहाए।
स्याम गौर किमि कहउ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

अर्थ—(दो०) उसकी दशा सखियो ने देखी कि शरीर मे पुलक है, और आँखो मे आँसू है, सब मृदुवचन से पूछने लगी कि अपने हर्ष का कारण बतला।'

(चौ०) बाग देखने को राजकुमार आये हैं। अभी किशोरावस्था है, सब भांति सुन्दर हैं। सावरे गोरे को कैसे बखान कर कहूँ। वाणी को आँख नहीं है, और आँख को वाणी नही है।

व्याख्या—(दो०) सीता जी ने उनको अवस्था नहीं देखी, वर माँगने मे दत्त चित्त थी। सखियो ने देखा। प्रेम दशा की दशा कहते हैं, 'पुलक गात जल नयन।' यह संचारी भाव है, यह दशा मर्याद मे भी होती है, पर सखियां सयानी हैं, लख लिया कि यह सचारी भाव हर्ष का है। अत हर्ष का कारण पूछती हैं। सबके पूछने का प्रयोजन सीताजी का ध्यान आकर्षण करने के लिए है तथा अति उत्कंठा होने से है। प्रेम से प्रेरित है अत मृदुवाणी से पूछती हैं।

(चौ०) फूल के लिए आना नही कहती, राजकुमार हैं उन्हे फूल का क्या घाटा है। वे बाग देखने आये हैं। मन मे आया फूल भी तोडने लगे। अवस्था थोडी है, जवानी आया चाहती है, इसलिए 'बय किशोर' कहती हैं (यथा—आपोडशाच्च कैशोरं यौवनं स्यात्तत परम्)। केवल अवस्था ही नहीं सभी भाँति से मनोहर हैं, एक श्याम हैं और दूसरे गोरे हैं, मुख मे तो उनका बखान नही हो सकता। आँखो ने उन्हें देखा है, वे ही जानती हैं, पर उन्हे वाणी नही अत नहीं कह सकती, क्योकि कहने वाली वाणी है, उसे आँखें नही, उसने देखा नहीं वह कैसे कहे। भाव यह कि सखी प्रेम से शिथिल हैं, उसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का सम्बन्ध भी शिथिल हो गया है, उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि आँखो ने देखा है, उनमे यदि प्रकाश करने की शक्ति होती तो संभव है कि उस शोभा को व्यक्त कर सकती। वाणी को साक्षात्कार की शक्ति नही, वह कुछ भी उस शोभा को नही कह सकती। इस भाँति दोनो राजकुमारो की अलौकिक छवि को अवर्णनीय बतलाती है। यहाँ काव्यलिंग अलकार है (यथा—काव्यलिंग जब युक्ति सौं अर्थ समर्थ न होय।)।

'मानस' के मूल अंश की विजयानन्द जी कृत उक्त टीका पर टीका का 'निरंतर पदव्याख्या' परक लक्षण बडो ही उत्तम रीति से घटित होता है। टीकाकार ने प्रथमत मूल का एक सामान्य अक्षरार्थ दिया है। तदनन्तर उसने व्याख्येय के पदो की विस्तृत, मार्मिक और पांडित्यपूर्ण व्याख्या को है। टीकाकार ने अपनी टीका मे मूल का विशदार्थ, भावार्थ एवं अभिप्रायार्थ सभी ही विज्ञापित कर दिया है। साहित्यिक दृष्टि से भी उसका विवेचन ध्यान देने योग्य है। उसने शृंगार रस से ओत-प्रोत सखी की शिथिलावस्था एव उसके अन्तर्गत उन्मीलित हर्ष संचारी की ओर स्पष्टत सकेत अपनी व्याख्या के अन्तर्गत किया है। उसने ग्रथकार के द्वारा मूल की अर्द्धाली मे प्रयुक्त 'भूप

किशोर' शब्द की संयोजना सटीक बताते हुए संस्कृत के एक उद्धरण से उसकी पुष्टि की है।

हिन्दी काव्यों की टीकाओं में प्रयुक्त होने वाले दो अनिवार्य टीका तत्वों—पदार्थ एवं वाक्य-योजना—का ही टीकाकार ने उक्त टीका में प्रयोग किया है। संधि का समास विच्छेद योग्य कोई पद मूल में था ही नहीं, अतएव वहाँ 'विग्रह' की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है।

मूल के अर्थ का अनर्थ न हो जाय, अतएव टीकाकार ने मूल की सम्यक् वाक्य-योजना के प्रति बड़ी ही सतर्कता बरती है। अतः कहीं-कहीं पर वाक्य-योजना को अत्याधिक सगत रखने के निमित्त संस्कृत की 'अन्वय प्रणाली' को भी ध्यान में रखा गया है। जैसा कि 'हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई' बाल काड की इस अर्द्धाली की व्याख्या से व्यक्त हो रहा है—'जिस प्रकार दोनों भाइयों के साथ 'गवने' क्रिया का अन्वय है, उसी भाँति सराहत क्रिया शब्द का भी अन्वय दोनों भाइयों के साथ न होकर राम के साथ है[1]।' टीकाकार ने अपनी टीका के अन्तर्गत कहीं-कहीं पर 'शंका-समाधान' तत्व की भी नियोजना की है। उसने शंकास्पद स्थलों पर उठने वाली शंकाओं के समाधान भी मूल की व्याख्या करते हुए ही प्रकारान्तर से कर दिये हैं। उसने अन्य टीकाकारों की भाँति शंका-समाधान तत्व को मूल की व्याख्या से परे नहीं रखा है।

उदाहरणार्थ—'विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥' की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि 'यह शंका न उठानी चाहिये कि देवता की मूर्ति का हँसना उत्पात है। मूर्ति का हँस पड़ना एक बात है, और मुसकराहट मालूम पड़ना दूसरी बात है, कितनी मूर्तियाँ बनी ही ऐसी हैं, कि उनमें सदा मुसकराहट मालूम पड़ती है। तिस पर यहाँ तो आवेश का वर्णन है, पहिले मूर्ति हिली, तब मुसकराई, तब बोल भी उठी।'[2]

इस अर्द्धाली के सम्बन्ध में प्रायः लोग शंकायें करते हैं कि गोस्वामी जी ने यहाँ पार्वती की मूर्ति को हँसते हुए चित्रित किया है। हमारे यहाँ मूर्ति का हँसना अपशकुन माना जाता है। इसी शंका का निरसन करते हुए विद्वान् टीकाकार ने बताया है कि मूर्ति का आवेश (प्रेम भाव) में आकर मुस्कराना (हँसना नहीं) कभी भी उपद्रव का कारण अथवा अपशकुन नहीं है।

इस प्रकार एक आदर्श टीका की भाँति 'मानस' की विजया टीका में टीका के शास्त्रीय लक्षणों का समाहार मिलता है।

१. विजया टीका, प्रथम संस्करण, पृ० ४०१ (बालकांड)।
२. वही, पृ० ४०० (बालकांड)।

अध्याय—४

प्रकरण १

भाष्य

परिभाषा

अमरकोष की रामाश्रमी टीका में भाष्य की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

'भाष्यते सूत्रार्थो येन ।' ' भाष्य व्यक्तया वाचि' (म्या० आ० स०) 'कृत्य ल्युटोबहुलम् (३।३।११३) इति करणे ण्यत् ।' सूत्रार्थोवर्ण्यते यत्र वाक्यैं सूत्रानुकारिभि । स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्य भाष्यविदो विदु ।[1]

अर्थात् सूत्र का अर्थ जिसके द्वारा कहा जाय, जहाँ भाष् धातु का अर्थ है—सुस्पष्ट कथन । इसमे 'कृत्यल्युटो (३।.।११३) इस सूत्र से करण कारक मे ण्यत् 'प्रत्यय हुआ है ।' जहाँ सूत्र के पद के अनुसरण करने वाले वाक्यो द्वारा सूत्र का अर्थ वर्णित किया जाता है और फिर अपने पदो से अपना अभिप्राय भी व्यक्त किया जाता है, भाष्य के तत्व को समझने वाले उसे ही भाष्य कहते हैं ।'

विश्वकोष के अन्तर्गत भाष्य के विषय म इस प्रकार विचार किया गया है—

'भाष्यत विवृतया वर्ण्यते इति भाषण्यत्' ।[1] सूत्रो की, की हुई व्याख्या या टीका, सूत्र ग्रन्थो का विस्तृत विवरण या व्याख्या, २ किसी गूढ बात या वाक्य की विस्तृत व्याख्या ।'[2] पुन आगे विश्वकोषकार ने भाष्य के रूप पर विशद रूप से इस प्रकार प्रकाश डाला है—

'जिस ग्रन्थ म सूत्रानुसार पद के द्वारा सूत्र का अर्थ वर्णित होता है और निज के प्रयुक्त पद अर्थात् वाक्य भी व्याख्यात होते हैं, उसे भाष्य कहते हैं । भाष्य की रचना प्रगाढ है, कोई भाष्य का अभ्यार्य सहज है । तात्पर्यार्थ कुछ आसान है । कोई वृत्ति भाष्याकार और काई भाष्य भी व्याख्या की प्रणाली मे रचित देखा जाता है । उसम भाष्य का लक्षण बिल्कुल नही है ।'[3]

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार

'भाष्यं क्लीवलिंग (भाष्यते विवृतया वर्ण्यते इति । भाष+ण्यत्) चूर्णि. । इति क्षीरस्वामी । सूत्र विवरणग्रन्थ । तस्य लक्षणम् । 'सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदै सूत्रानुसा

---

१ अमरकोष (रामाश्रमी टीका सहित) पंचम संस्करण, पृ० ४५६, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।

२ नगेन्द्रनाथ वसु कृत विश्वकोश, भाग १६ ।

३. वही, भाग २१, पृ० ४५४ ।

रिभि । स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्य भाष्य विदो विदु । इति निरुक्तिप्रहटीकायां भरत । सूत्रार्थस्तात्र प्रपञ्चकम् । इति हेमचन्द्र । (भाष्यते प्रकटित । पण्त् ।) ग्रन्थ विशेष) इति माधव तिमयुरेश ।[1]

अर्थात् विवृति (विस्तृत टीका) द्वारा वर्णन करने को भाष्य कहते हैं। 'भाष् धातु म कृदन्त ण्यत् प्रत्यय लगाने से भाष्य शब्द बनता है। ऐसा वचन (क्षीर) स्वामी कृत निरुक्त की चूर्णिका टीका में है। सूत्र विवरण ग्रन्थ को ही विशेष रूप से भाष्य कहा जाता है। भाष्य का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—जहाँ सूत्रों के पद के अनुसरण करने वाले वाक्यों द्वारा सूत्र का अर्थ वर्णित किया जाता है और फिर अपने पदों से अपना अभिप्राय भी व्यक्त किया जाता है भाष्य के तत्व को समझने वाले उसे ही भाष्य कहते हैं।

संस्कृत अंग्रेजी (संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी) कोशकार वी० एस० आप्टे का कथन है कि—

भाष्य=Gloss commentary

4 Specially a commentary wh ch explains Sutras or aphorism word by wrd wi h comment of it s own

(सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदै सूत्रानुसारिभि । स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्य भाष्य विदोविदु)।

फणि (पतञ्जलि) भाषित भाष्य फक्किका

अर्थात् भाष्य-नाम कमेन्ट्री (टीका) को कहते हैं) जैसा कि वेदभाष्य से प्रकट है।[2] विशेषतया भाष्य वह टीका है जो सूत्रों या प्रमाणसूत्रों का प्रतिपद व्याख्यान करे साथ ही इन सब की समीक्षा भी उसमें प्रदर्शित की गई हो। जहाँ सूत्रों का अर्थ वर्णित किया जाता है और फिर अपने पदों से उसकी व्याख्या की जाती है भाष्य के तत्व को समझने वाले ने उसे ही भाष्य बताया है। इसके उदाहरण फणि द्वारा भाषित भाष्य फक्किका और पाणिनी के सूत्रों पर पतञ्जलि का महाभाष्य है।

आचार्य हेमचन्द्र भाष्य का लक्षण देते हुए कहते हैं—

सूत्रोक्तार्थ प्रपञ्चकम्[3] अर्थात् सूत्र का अधिक से अधिक विस्तार करके जो लिखा जाय वह भाष्य है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने (जैसा हमने पूर्व ही उल्लिखित किया है) भाष्य पर अपने निम्नलिखित विचार दिए हैं—

शब्दों से जब अधिक से अधिक काम प्रकट करने की कोशिश की जाती है तो इन छोटे छोटे वाक्यों को सूत्र कहते हैं। जिसमें सूत्रों के सार-मर्म बताए जाते हैं। उसे

१ शब्दकल्पद्रुम द्वितीय संस्करण भाग ३ चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।

२ संस्कृत अंग्रेजी कोश द्वारा आप्टे।

३ हेमचन्द्र कृत अभिधान चिन्तामणि (कोश) देवकाण्ड २/२१४

वृत्ति कहते हैं। सूत्र और वृत्ति के परामर्श की पद्धति कहते हैं। सूत्र और वृत्ति में बताए गए सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण को भाष्य कहते हैं।[1]

डा० आद्याप्रसाद मिश्र भाष्य का स्वरूप निर्धारण निम्नलिखित प्रकार से करते हैं—

'भाष्य—(भाष्+ण्यत्)।

(क) साधारण अर्थ—(१) वचन, उक्ति (२) बाद व्याख्यान ग्रन्थ जैसे सायण कृत ऋग्वेद भाष्य, महीधर कृत यजुर्वेद भाष्य, इत्यादि। ( ) भाषा ग्रन्थ (वाजसनेयी प्रातिशाख्य, गृह्य सूत्र तथा हरिवंश और महाभारत में निर्दिष्ट) इस अर्थ में भाष्य शब्द भाषा से निकला हुआ प्रतीत होता है। इस भाषा के अर्थ में भाषा का हिन्दी में प्रयोग तो 'भाषा भनिति मोरि मति थोरी' इत्यादि में प्राप्त है, पर संस्कृत में तो इसका अर्थ प्राचीन प्रतीत होता है।

(ख) विशेष अर्थ—(१) सूत्र ग्रन्थों के विशिष्ट शैली में लिखे गए भाष्य शबर कृत मीमांसा भाष्य, शंकराचार्य कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य, अध्यात्म या पतंजलि कृत महाभाष्य इत्यादि। इस शैली के व्याख्यान में पहले सूत्र पद का अभिप्राय सूत्रात्मक वाक्यों में अर्थ देकर फिर उन वाक्यों के पदों का भी विवेचन किया जाता है। इस प्रकार समस्त सूत्रार्थ प्रकट किया जाता है, जैसा कि भाष्य के निम्नलिखित प्राचीन लक्षण से ज्ञात होता है—

'सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः।'

(ग) हिन्दी में इसका अर्थ सामान्यतः कोष में व्याख्या ग्रन्थ से लिया जाता है।

(घ) उपर्युक्त व्यापक अर्थ में इसके पर्याय टीका, व्याख्यान आदि होंगे।

(ङ) 'ख' में दिया गया अर्थ व्यापक तथा विशिष्ट शैली का सूत्र व्याख्यान ग्रन्थ सीमित है।[2]

माष्य के उदाहरण

मूल—'वैश्वानरः साधारणशब्द विशेषात्।'[3]

भाष्य—को न आत्मा किं ब्रह्म (छान्दोग्य ५।११।१ इति)।

'आत्मानमेवेमं वैश्वानरं सम्प्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहि (छा० ५।११।६) ति चोपक्रम्य द्युसूर्यवाय्वाकाशवारिपृथिवीनां सुतेजस्त्वादिगुणयोगमेकैकोपासननिन्दया च वैश्वानरं प्रत्युपदेश्य सर्वाभिमानयुपक्रियायामद्यते यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते, स सर्वेषु लोकेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति', तस्याह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपो वायुः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरे

---

१ हिन्दी साहित्य का भूमिका, ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई पृ० १२।

२ हिन्दी साहित्य कोश, डा० म० वि०, प्र० म०, पृ० ५५४।

३. ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य का प्रथम अध्याय पाद २, अधिकरण ७, सूत्र २४।

वरपि पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्य-माहवनीय' (छा० ५।१८।२) इत्यादि। तत्र संशय किं वैश्वानरशब्देन जाठरो विनम्प-दिश्यते, उत भूताग्नि, अथ तदभिमानिनी देवता अथवा शारीर आहोस्वित्परमेश्वर इति। किं पुनरत्र संशयकारणम् ?' वैश्वानर इति जाठर भूताग्निदेवताना साधारणशब्द प्रयोगात्, आत्मेति च शारीरपरमेश्वरयो। तत्र कस्योपादान न्याय्यं कस्य वा हानमिति भवति संशय। किं तावत्प्राप्तं ? जाठरोऽग्निरिति, कुत ? तत्र हि विशेषेण क्वचित्प्रयोगो दृश्यते-'अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्त पुरुषे येनेदमन्न पच्यते यदिदमद्यते।' (बृ० ५।६) इत्यादौ। अग्निमात्रं वा स्यात्, तत्सामान्येनापि प्रयोगदर्शनात् विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्' (ऋ० सं० १०।८८।१२) इत्यादै। अग्निशरीरा वा देवता स्यात्, तस्यामपि प्रयोगदर्शनात्—"वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभि श्रीः।" (ऋ० स० १।९८।१) इत्येवमाद्याया श्रुतेर्देवतायामेव यथिपेताया संभवात्। अथा मन्त्राद-सामानाधिकरण्यादुपक्रमे च 'कौन आत्मा किं ब्रह्म' इति केवलात्म शब्द प्रयोगादात्मशब्द वशेन वैश्वानरशब्द परिणेय इत्युच्यते, तथापि शारीर आत्मा स्यात्, तस्य भोक्तृत्वेन वैश्वानरसन्निकर्षात्, प्रादेशमात्रमिति च विशेषणस्य तस्मिन्नुपाधिपरिच्छिन्ने सम्भवात्। तस्मान्नेश्वरो वैश्वानर इत्येव प्राप्तम्।

तत्र इदमुच्यते। वैश्वानर परमात्मा भवितुमर्हति। कुत ? साधारण शब्द विशेषात्, साधारण शब्दयोर्विशेष, साधारण शब्द विशेष यद्यप्यना वुभावप्यात्मवैश्वानर-शब्दो साधारण शब्दो—वैश्वानर शब्दस्तु त्रयाणा साधारण आत्मशब्दश्च द्वया —तथापि विशेषो दृश्यते,-येन परमेश्वरपरत्व तयोरभ्युपगम्यते—तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजा (छा० ५।१२।२) इत्यादि। अत्र हि परमेश्वर एव द्युमूर्धत्वादि-विशिष्टोऽवस्थान्तरगत प्रत्यगात्मत्वेनोपन्यस्त आध्यानायेति गम्यते, कारणत्वात्। कार-णत्वात्। कारणस्य हि सर्वाभि कार्यगताभिरवस्थाभिरवस्थावत्त्वाद्द्युलोकाद्यवयवत्वमुपपद्यते।' स सर्वेषु लोकेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मास्वन्नमत्ति' (छा० ५।१८।१) इति च सर्वलोकाद्याश्रयं फल श्रूयमाणं 'परमकारणपरिग्रहे सम्भवति, 'एवं ह्यस्य सर्वे पाप्मान प्रदूयन्ते' (छा० ५।२४।३) इति च तद्विद सर्वपाप्म प्रदाहश्रवणम्। ?' को न आत्मा किं ब्रह्म' (छा० ५।२४।३) इति चात्मब्रह्मशब्दाभ्यामुपक्रम, इत्येव मन्तानि ब्रह्म लिंगानि परमेश्वरमेव गमयंति। तस्मा-त्परमेश्वरः एव वैश्वानर। २४।

अर्थात् आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है (छा० ५।११।१) इति। 'आत्मा को ही वैश्वानर समझो (छा० ५।११।६)' 'यहाँ से आरम्भ कर स्वर्गलोक सूर्य आकाश, जल, पृथ्वी और अग्नि आदि एक-एक की उपासना की निंदा करते हुए वैश्वानर का उपासना को सर्वश्रेष्ठ बतलाकर कहा गया है कि जो इस अंगूठे के बराबर वैश्वानर आत्मा को प्रत्यक्ष रूप से जानते हुए उपासना करता है, वह उपासक समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है, समस्त लोकों और समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हो जाता है। इस वैश्वानर आत्मा का सिर ही द्युलोक है। चक्षु सूर्य है, प्राण ही पृथग्वर्त्मा (वायु) है, देह का मध्य भाग बहुल (आकाश) है, बस्ति ही रयि (अन्न) है। पृथ्वी ही दोनों चरण हैं, वक्षःस्थल

वेदी। है, लोम दर्भ है, हृदय, गार्हपत्याग्नि, मन, अन्वाहार्य पचन है और मुख आहवनीय है।' छा० ५।११।१८) इत्यादि। इस पर संदेह होता है कि यहाँ वैश्वानर शब्द से जठराग्नि का निर्देश होता है या साधारण अग्नि का या अग्नि अभिमानी देवता का। संशय का कारण क्या है ? (पूर्वपक्षी) बतलाता है कि वैश्वानर शब्द का प्रयोग जठराग्नि, साधारण अग्नि, अग्नि देवता, आत्मा तथा परमात्मा इन सबके अर्थ में एक प्रकार से, समान रूप से होता देखा गया है। यहाँ किसका ग्रहण, किसका परित्याग होगा—यह संशय है। (उत्तर पक्षी) पूछता है कि तुम्हारे विचार से क्या है ? जठराग्नि हमारे मत में है। क्यों ऐसा है ?

पूर्वपक्षी कहता है कि यह वैश्वानर अग्नि ही है जो अन्न को पचाती है, अन्न को भक्षण करती है। (बृ० उ० ५।९) अग्नि मात्र का वाचक इसलिए हो सकता है कि सामान्य अग्नि में भी इतना प्रयोग होते देखा गया है।' देवताओं ने वैश्वानर अग्नि को दिन का चिन्ह बताया (ऋ०१०।८ ।१) इत्यादि। अग्निदेव ने भी यह वैश्वानर सम्पूर्ण जीव लोकों को देने वाला राजा है, अतः उसमें हमारा मन लगे। (ऋ० १।५८।१) इस मंत्र में ऐश्वर्यवंत देवता का ही वर्णन संभव है, आत्म शब्द में भी वैश्वानर शब्द का समान रूप से प्रयोग हुआ है। आत्मा क्या है ? ब्रह्म क्या है ? इत्यादि (छा० ५।११।१) में वैश्वानर शब्द आत्मा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। (फिर पूर्वपक्षी) कहता है यहाँ शरीरी आत्मा ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, क्योंकि वही भोक्ता है। अंगुष्ठमात्र विशेषण भी उसी का उपलक्षण है। (उत्तरपक्षी कहता है) नहीं वैश्वानर तो परमात्मा का ही द्योतक हो सकता है। (पूर्वपक्षी कहता है) क्यों ? (उ० प०) साधारण शब्द, विशिष्ट शब्द का वाचक होने के कारण ये दोनों ही (अग्नि और आत्मा) साधारण शब्द हैं, इसलिए वैश्वानर किसी विशिष्ट शब्द का वाचक होना चाहिए, जिससे परमेश्वर का बोध हो। इस वैश्वानर रूपी आत्मा का सिर ही द्युलोक है इत्यादि। (छा० ५।१२।२) यहाँ परमेश्वर ही द्युलोक मूर्द्धा आदि विशिष्ट अवस्थाओं के अन्तर्गत रहकर प्रत्यक्ष आत्मा परमेश्वर) रूप से निर्दिष्ट हुआ है और उसी का जानने वाला ही सब लोकों, सब जीवों, सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हो सकता है। उसी को जानने वाले के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। (छा० ५।२४।३)। इस मंत्र के द्वारा उस परमात्मा को जानने वाले के सब पापों का प्रदाह सुना गया है। कौन आत्मा है, कौन ब्रह्म है (छा० ५।११।१)। यहाँ से लेकर अन्त तक ब्रह्म के लक्षण, परमेश्वर का ही बोध कराते हैं, अतः परमेश्वर ही वैश्वानर है।

द्वितीय उदाहरण

मूल—आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरंपुरः पितरंचप्रयन्त्स्वः[1]

पदपाठ—आ। अयम। गौः। पृश्निः। अक्रमीत्। असदत्। मातरम्। पुरः। पितरम्। च। प्रयन्। स्वः ? रिति स्वः ॥१॥

---

१ ऋक्संहिता सायण भाष्य मंडल १०, सूक्त १८९ का प्रथम मंत्र।

भाष्य—गोगर्गमनशील, पृश्नि—प्राप्त वर्ण प्राप्त तेजा, अय सूर्य आक्रमीत्-आक्रातवान्, उदायचलं प्राप्तवानित्यर्थं। आक्रम्य च पुर पुरस्तात् पूर्वस्या दिशि मातरं सर्वस्य भूतजातस्य निर्मात्री—पृश्नीमूतदत् आसीदति प्राप्नोति सदेश्छान्दसोमुड् लृदित्वाच्च्लेरङादेश तत पितरम् पालकं द्युलोकं च शब्दान्तरिक्ष च प्रयन् प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छन् स्व सुअरण शोभमानोभवति यद्वा पितर्र-स्वर्गलोक प्रयन्वर्तते।

हिन्दी—गौ अर्थात् गमनशील पृश्नि अर्थात् तेजस्वी आयम् सूर्य आक्रमीत प्राप्त किया उदयाचल (पर) पहुँच कर पूर्व की ओर सम्पूर्ण प्राणियों की माता पृथ्वी को प्राप्त करता है। सद् का वैदिक प्रक्रिया से लड्लकार मे (वैदिक प्रक्रिया से) (अड्) आदेश हो जाने से असदत् बना है। उसके बाद पितर अर्थात् पालक जो द्युलोक है और च शब्द से अन्तरिक्ष लोक को शीघ्र ही प्राप्त होता हुआ, सुशोभित होता है अथवा पितृ (स्वर्गलोक) को प्राप्त होता है।

भाष्य का लक्षण

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम भाष्य का सामान्य लक्षण इस प्रकार निर्धारित करेंगे—*भाष्य व्याख्या की वह विस्तृततम विधा है, जिसमें व्याख्येय के प्रतिपद का* व्याख्यान हो और स्वय भाष्यकार के भी कुछ अपेक्षित पदों का व्याख्यान किया गया हो। भाष्य के मुख्य तत्त्व पाच हैं—पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह वाक्य योजना एव पूर्व तथा उत्तर पक्ष। आदर्श भाष्य मे पाचो तत्त्व सम्यक् रूप से समाहित रहते हैं।

भाष्य की कतिपय विशिष्ट विशेषताएँ

(१) अधिकाश विद्वानो का मत है कि भाष्य प्राय सूत्र ग्रन्थों का ही होता है। परन्तु ऐसा कोई कठोर प्रतिबन्ध नहीं है। इस विषय पर पर्याप्त विवेचन हो चुका है।

(२) 'पूर्व पक्ष' एव 'उत्तर पक्ष' भाष्य के बहुत ही आवश्यक तत्त्व हैं। भाष्यो के अवलोकन से यही प्रतीत होता है।

(३) भाष्य सर्व सामान्य के लिए नहीं प्रणीत किया जाता है। भाष्य का अध्ययन करने के लिए पाठक की विद्वता की भी अपेक्षा है।

(४) भाष्य में सिद्धान्तों का भी निरूपण देखा जाता है। प्रतिभाशाली एवं मेधावी भाष्यकारों-शंकर, रामानुजाचार्यादि—ने अपने भाष्यो के माध्यम से क्रमश अद्वैत एवं विशिष्टा द्वैत का भी प्रतिपादन किया है।

(५) भाष्य में निरन्तर व्याख्या रहती है।

(६) भाष्य मे मूल की तो व्याख्या रहती ही है, उसके साथ ही साथ भाष्यकार के अपने पदों की भी व्याख्या रहती है।

(७) भाष्य मे भाष्यकार अपने मत के प्रतिपादनार्थ अथवा विषय की सम्यक् रीत्या व्याख्या करने के हेतु कभी-कभी व्याख्या का इतना विस्तार कर देता है कि विषयान्तर-सा प्रतीत होता है।

(८) भाष्य, व्याख्या परम्परा की विशालतम अर्थ-विधा है। टीका वृत्ति, वार्तिक टिप्पणी आदि विधायें उससे लघुतर हैं।

भाष्य-रचना प्रणाली के आधारभूत तत्त्व

भाष्य में भी टीका की भाँति व्याख्या के पाचों तत्त्वों—पदच्छेद, पदार्थोक्ति विग्रह, वाक्ययोजना एवं पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष को व्यवहृत किया जाता है। परन्तु भाष्य मूल का अत्यन्त विस्तृत व्याख्यान होता है। अत इसमे पहले व्याख्येय का उसके विभिन्न पदो के अनुसार व्याख्यान किया जाता है। इस व्याख्यान मे व्याख्येय-पदो का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है। इसके अनन्तर स्वय भाष्यकार ने जो मूल वाक्य का व्याख्यान प्रस्तुत किया है। यदि उसमे कोई व्याख्यान-सापेक्ष वस्तु शेष रह जाती है अथवा उसके निज के भावो मे, जिन्हे उसने उपर्युक्त व्याख्यान में विश्लेषित किया है, कोई शंकास्पद स्थल अस्पष्ट रह जाता है, तो टीकाकार स्वय उसका विस्तृत रूप से विवेचन प्रस्तुत करता है। उसका यह कार्य व्याख्या के प्राय पूर्व पक्ष या उत्तर पक्ष वाले तत्त्व के अन्तर्गत सम्पन्न होता है। वस्तुत भाष्यकार की मौलिक विवेचना उसकी तर्कना शक्ति, उसका ज्ञान एवं पाण्डित्य भाष्य के पूर्व पक्ष एवं उत्तर पक्ष का विशेष महत्त्व है। यहाँ हम शंकराचार्य कृत गीता भाष्य के एक उद्धरण से उपर्युक्त कथन की सत्यता दिग्दर्शित करा रहे हैं।

मूल — सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥[1]

भाष्य—सर्वाणि कर्माणि सर्वकर्माणि संन्यस्य परित्यज्य नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रतिषिद्धं च सर्वकर्माणि तानि मनसा विवेकबुद्ध्या कर्मादौ अकर्मसंदर्शनेन सन्त्यज्य इत्यर्थ, आस्ते तिष्ठति सुखम्।

त्यक्तवाङ् मन कायचेष्टो निरायास प्रसन्नचित्त आत्मन. अन्यत्र निवृत्तबाह्य सर्वप्रयोजन इति सुखम् आस्ते इति उच्यते।

वशी जितेन्द्रिय इत्यर्थ, क्व कथम् आस्ते इति आह—

नवद्वारे पुरे सप्त शीर्षण्यानि आत्मन उपलब्धिद्वाराणि अर्वाग् मूत्र रीषविसर्गार्थे तै द्वारै नवद्वार पुरम् उच्यते। शरीरं पुरम् इव पुरम् आत्मैकस्वामिकम् तदर्थप्रयोजनै श्च इन्द्रियमनोबुद्धिविषयै अनेकफलविज्ञानस्य उत्पादकै पौरै इव अधिष्ठितम्, तस्मिन् नवद्वारे पुरे देही सर्वं कर्म सन्यस्य आस्ते।

किं विशेषणम्, सर्वो हि देही संन्यासी असंन्यासी वा देहे एवं आस्ते, तत्र अनर्थक विशेषणम् इति।

उच्यते, य तु अज्ञो देही देहेन्द्रियसंघातमात्रात्मदर्शी स सर्वो गेहे भूमौ आसने वा आसे इति मन्यते। न हि देहमात्रात्मदर्शिनो गेहे इव देहे आसे इति प्रत्यय संभवति।

---

[1]. श्रीमद्भागवद् गीता (शांकरभाष्य) अध्याय ५, श्लो० १३ (पृ० १४२) गीता प्रेस।

देहादिसंघातव्यतिरिक्तात्मदर्शिन तु देहे आस इति प्रत्यय उपपद्यते ।

परकमणा च परस्मिन् आत्मनि अविद्यया अध्यारोपितानां विद्यया विवेकज्ञानेन मनसा सन्यास उपपद्यते ।

उत्पन्नविवेकज्ञानस्य सर्वकर्मसंन्यासिन अपि गेहे इव देहे एव नवद्वारे पुरे आसनम प्रारब्धफलकर्मसंस्कारशेषानुवृत्त्या देहे एव विशेषविज्ञानोत्पत्ते ।

देहे एव आस्ते इति अस्ति एव विशेषणफल विद्वदविद्वत्प्रत्ययभेदापेक्षत्वात् ।

यद्यपि कार्यकरणकर्माणि अविद्य ा आत्मनि अध्यारोपितानि सन्यस्य आस्ते इति उक्त तथापि आत्मसमवायि तु कर्तृत्व कारयितृत्व च स्यात् इति आशय आहे—

न एव कुर्वन् स्वय न कार्यकरणानि कारयन् क्रियासु प्रवर्तयन् ।

किं यत् तत् कर्तृत्व कारयितृत्व च देहिन स्वात्मसमवायि सत् सन्यासात् न भवति यथा गच्छत गति गमनव्यापारपरित्यागे न स्यात् तद्वत् किं वा स्वत एव आत्मनो नास्ति इति ।

अत्र उच्यते न अस्ति आत्मन स्वत कर्तृत्व कारयितृत्व च । उक्तहि अविकार्यो यमुच्यते 'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते इति । ध्यायतीव लेलायतीव (बृहदारण्यक उप० ४।३।७।) इति च श्रुते ॥

अर्थात् (वशी जितेन्द्रिय पुरुष) समस्त कर्मों को मन से छोड़कर अर्थात् नित्य नैमित्तिक काम्य और निषिद्ध— *इन सब कर्मों को कर्मादि में अकर्म-दर्शनरूप विवेक बुद्धि* के द्वारा त्यागकर सुखपूर्वक स्थित हो जाता है ।

मन वाणी और शरीर की चेष्टा को छोड़कर परिश्रम रहित प्रसन्नचित्त और आत्मा अतिरिक्त जब सब बाह्य प्रयोजनों से निवृत्त हुआ (वह) सुखपूर्वक स्थित होता है ऐसा कहा जाता है ।

वशी—जितेन्द्रिय पुरुष कहाँ और कैसे रहता है ? सो कहते हैं—

नौ द्वारवाले पुर में रहता है । अभिप्राय यह कि दो कान दो नेत्र दो नासिका और एक मुख *शब्दादि विषयों को उपलब्ध करने के ये सात द्वार शरीर के* ऊपरी भाग में हैं और मल मूत्र का त्याग करने के लिए दो नीचे के अंग में हैं इन नौ द्वारों वाला शरीर पुर कहलाता है । शरीर को एक पुर की भाँति पुर है जिसका स्वामी आत्मा है उस आत्मा के लिए ही जिनके सब प्रयोजन हैं एवं जो अनेक फल और विज्ञान के उत्पादक हैं उन इन्द्रिय मन बुद्धि और विषयरूप पुरवासियों से जो युक्त है उस नौ द्वार वाले पुर में देही सब कर्मों को छोड़ कर रहता है ।

पू०—इस विशेषण से क्या सिद्ध हुआ ? संन्यासी हो चाहे असंन्यासी सभी जीव शरीर में ही रहते हैं । *इस स्थल में विशेषण देना व्यर्थ है ।*

उ०—जो अज्ञानी जीव शरीर और इन्द्रियों के संघातमात्र को आत्मा मानने वाले हैं व सब घर में भूमि पर या आसन पर बैठता हूँ ऐसे ही माना करते हैं क्योंकि देहमात्र में आत्मबुद्धियुक्त अज्ञानियों को 'घर की भाँति शरीर में रहता हूँ' यह भाव होना संभव नहीं ।

परन्तु देहादि संघात से आत्मा भिन्न है ऐसा जाननेवाले विवेकी को 'मैं शरीर में रहता हूँ' यह प्रतीति हो सकती है।

तथा निर्लेप आत्मा में अविद्या से आरोपित जो परकीय (देहइन्द्रियादि के) कर्म हैं, उनका विवेक विज्ञानरूप विद्या द्वारा मन से संन्यास होना भी संभव है।

जिसमें विवेक विज्ञान उत्पन्न हो गया है, ऐसे सर्वकर्मसंन्यासी का भी घर में रहने की भांति नौ द्वारों वाले शरीर रूपी पुर में रहना प्रारब्ध कर्मों के अवशिष्ट संस्कारों की अनुवृत्ति से बन सकता है क्योंकि शरीर में ही प्रारब्धफलभोग का विशेष ज्ञान होना संभव है।

अतः ज्ञानी और अज्ञानी की प्रतीति के भेद की अपेक्षा से देहे एवं आस्ते इस विशेषण का फल अवश्य ही है।

यद्यपि कार्य करण और कर्म जो अविद्या से आत्मा में आरोपित हैं, उन्हें छोड़कर रहता है ऐसा कहा है तथापि आत्मा से नित्य सम्बन्ध रखने वाले कर्तापन और कराने की प्रेरकता ये दोनों भाव तो उस (आत्मा) में रहेंगे ही? इस शंका पर कहते हैं—

स्वयं न करता हुआ और शरीर इन्द्रियादि से न करवाता हुआ अर्थात् उनको कर्मों में प्रवृत्त न करता हुआ (रहता है)।

पू०—जैसे गमन करने वाले की गति गमनरूप व्यापार का त्याग करने से नहीं रहती वैसे ही आत्मा में जो कर्तृत्व और कारयितृत्व हैं, वे क्या आत्मा के नित्य संबंधी होते हुए ही संन्यास से नहीं रहते? अथवा स्वभाव से ही आत्मा में नहीं है?

उ०—आत्मा में कर्तृत्व और कारयितृत्व स्वभाव से ही नहीं हैं। क्योंकि 'यह आत्मा विकार रहित कहा जाता है। हे कौन्तेय! यह आत्मा शरीर में स्थित हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।' ऐसा कह चुके हैं एवं 'ध्यान करता हुआ-सा क्रिया करता हुआ-सा।' इस श्रुति से भी यही सिद्ध होता है।

। विद्वान् भाष्यकार शंकर ने प्रथमतः गीता के उपर्युक्त श्लोक के दोनों चरणों का उनके पदों के अनुसार विशद व्याख्यान किया है। भाष्यकार ने श्लोक के अन्तर्गत निरूपित विषय वस्तु का विस्तार से समझाया है। उदाहरणार्थ—यहाँ श्लोक के दूसरे चरण में आये हुए नवद्वार पद की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या दर्शनीय है। भाष्यकार ने श्लोक के भाष्य के अन्त में यह स्पष्ट कर दिया है कि आत्मा (देही) इस नवद्वारों वाले शरीर का स्वामी है और इन्द्रिया, मन, बुद्धि एवं विषयादि तत्त्व इस पुर के निवासी के रूप में है। कर्मादि का सम्बन्ध इन्हीं पुरवासियों से है न कि देही से। अतएव जो ज्ञानी जीव हैं, वे देह में आत्मबुद्धि नहीं करते हैं। इस प्रकार वे सदैव कर्मजाल से मुक्त रहते हैं एवं सुखपूर्वक इस कर्मजालमय शरीर में निवास करते हैं।

भाष्यकार ने देही की देहादि से निर्लिप्तता एवं उसकी कर्तृत्वहीनता सम्बन्धी सिद्धान्त का स्पष्ट वर्णन के लिए 'शंका समाधान' तत्त्व का आश्रय लिया है। आत्मा के

इन दोनों लक्षणों को उनने बड़ी ही तर्कपूर्ण शंकायें उठाकर उनका समुचित समाधान करते हुए बड़ी कुशलता से अपनी दार्शनिक विचारधारा के अनुकूल सिद्ध किया है।

इस प्रकार शंकराचार्य कृत उपर्युक्त भाष्योद्धरण में एक आदर्श भाष्य के प्रायः सभी अपेक्षित तत्वों एवं लक्षणों का सम्यक् रीति से समावेश मिलता है।

प्रकरण—२

भाष्यविधा और 'मानस' का टीका-साहित्य

'मानस' के विविध प्रकार के टीकात्मक ग्रन्थों में कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जो व्याख्या की भाष्य विधा के लक्षणों पर खरे उतरते हैं। रामचरित मानस के टीका-साहित्य के अन्तर्गत छः टीकात्मक ग्रंथ ऐसे मिलते हैं, जिन्हें उनके रचयिताओं ने स्वयं ही भाष्य कहा है।

'मानस' के इन भाष्यों एवं भाष्यकारों के नाम इस प्रकार हैं—

१—श्री बाबूराम शुक्ल कृत 'तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य'।

२—श्री रामवल्लभाशरण कृत 'मानस भाष्य।'

३—श्री हनुमानदास वकील कृत 'मानस भाष्य'।

४—श्री शिवरत्न शुक्ल कृत रामायण भाष्य'।

५—'श्री रामाशंकर प्रसाद कृत 'सुन्दर प्रकाश'।

६—श्री श्रीकान्तशरण कृत 'सिद्धान्त भाष्य'।

उपर्युक्त 'मानस-भाष्यों में' द्वितीय, चतुर्थ पंचम और षष्ठम ही भाष्य विधा के शास्त्रीय लक्षणों पर रचे गए हैं। प्रथम और तृतीय को केवल इसीलिए भाष्य नाम दे दिया गया है कि उनमें मूल के किसी न किसी प्रकार से अनेक अर्थ कर दिये गये हैं और इस प्रकार उसकी विस्तृत व्याख्या कर दी गयी है। परन्तु केवल विस्तृत अर्थ-योजना के आधार पर ही हम किसी टीकात्मक ग्रन्थ को भाष्य नहीं मान सकते हैं। वे ही ग्रंथ भाष्य की कोटि में आ सकते हैं, जो भाष्य के लक्षणों पर पूर्णरूपेण खरे उतर सकें। भाष्य-विधा के लक्षणों के अनुरूप 'मानस' के टीकात्मक ग्रन्थों पर विचार करने से पहले हम उन तथाकथित 'मानस'-भाष्यों पर विचार कर लेना चाहते हैं, जो भाष्य की शास्त्रीय प्रणाली के अनुकूल नहीं सिद्ध होते हैं।

भाष्य के शास्त्रीय लक्षणों पर विचार करते हुए प्रथमतः यह उल्लिखित कर दिया गया है कि भाष्य शास्त्रीय वाक्य में प्रयोग पद का सुगमत एवं सुसम्बद्ध विस्तृत व्याख्यान होता है और उसमें भाष्यकार 'मूल' के पदों के अतिरिक्त भाष्य के अन्तर्गत आए हुए अपने पदों के अस्पष्ट अभिप्रायों एवं अर्थों का भी विवेचन प्रस्तुत करता है। यह विवेचन प्रायः पूर्वपक्ष (शंका) एवं उत्तरपक्ष के अन्तर्गत होता है।

जहाँ तक 'मानस' के उपरोक्त दो तथाकथित भाष्यों-तुलसी सूक्ति सुधाकरी भाष्य और 'मानस भाष्य—का प्रश्न है, उनमें भाष्य के लक्षणों की व्याप्ति नह

मिलती, अपितु वे तो व्यास शैली की टीकाओ की कोटि म हो रखे जा सकते हैं। बाबूराम शुक्ल कृत तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य म तो 'मानस' की एक ही अर्द्धाली 'सब कर मत खग नायक एहा। करिय राम पद पकज नेहा।' क १६, ७५,१४६ अर्थ किये गये हैं। इन अर्थों की रचना करते हुए टीकाकार ने उक्त अर्द्धाली के पदो का मनमाना पदच्छेद उन पदो के अनेक अर्थ, एव मूल वाक्य का अनेक विध अन्वय करके लक्षाश अर्थों का सृजन किया है। इस टीका ग्रथ के अन्तर्गत न तो भाष्य शैली की व्याख्याओ के समान प्रतिपद का सुसगत, सुसम्बद्ध व्याख्यान ह और न भाष्य जैसा गम्भीर विवेचन ही / इसम तो केवल टीकाकार की प्रतिभा का विनियोग, कल्पनाओ से युक्त चमत्कारोत्पादक अर्थ रचना म ही हुआ है।

इसी प्रकार 'मानस' के सुन्दर काड पर लिखा हुआ हनुमानदास वकील कृत 'मानस भाष्य' भी अनेक अर्थों एव अनुरजक तथा चमत्कार परक व्याख्याओ से युक्त व्यास शैली की एक टीका है। उसम भी भाष्य जैसी विवेचनात्मक गभीर अर्थ-पद्धति का अभाव है।

भाष्य विधानुकूल 'मानस' के भाष्य

जैसा कि हम ऊपर सकेतित कर चुके हैं कि मानस क सम्पूर्ण टीका साहित्य म चार भाष्य सिद्धान्त भाष्य मानस भाष्य रामायण भाष्य, एव सुन्दर प्रकाश-ऐसे हैं, जिन्हे भाष्य विधा के शास्त्रीय लक्षणो के अनुकूल कहा जा सकता है। इन चारों भाष्यो म मात्र श्री श्रीकान्तशरण कृत सिद्धान्तभाष्य ही 'मानस' के सातो काण्ड का भाष्य है, अन्यथा शेष तीन 'मानस क आशिक भाष्य हैं। उनम रामवल्लभशरण कृत 'मानस भाष्य', 'मानस' के बालकाण्ड के प्रथम दोहे की अर्द्धाली सख्या २ ३ तक का ही भाष्य है। शिवरत्न शुक्ल कृत रामायण भाष्य 'मानस क किष्किधा काड पर ही लिखित है। श्री रामाशकर प्रसाद शुक्ल कृत 'सुदर प्रकाश भाष्य 'मानस' के सुन्दर काड का भाष्य है। इन सभी भाष्यो म भाष्य विधा के लक्षणानुसार मूल के प्रतिपद की विस्तृत एव निरन्तर व्याख्या है। भाष्यकारो ने अपने मतो एव अभिप्रायो का बडे तर्क वितर्क के साथ उपस्थापन करते हुए अपन मौलिक एव गभीर विवेचनपूर्ण व्याख्यान पद्धति का परिचय दिया है। इन भाष्यो म व्याख्या के पच लक्षणो-पदच्छेद पदार्थ, विग्रह, वाक्य-योजना एव पूर्वपक्ष तथा उत्तर पक्ष का यथा अवसर यथोचित प्रयोग किया गया है। इन तथ्यो की वास्तविकता का दर्शन उक्त किसी भी भाष्य के अन्तर्गत किया जा सकता है। यहाँ हम स्थान-सकोच से 'मानस' के उक्त चारो भाष्यो का पृथक पृथक *विवेचन न प्रस्तुत कर मानस के एक सर्वांगीण अशतम सिद्धान्त भाष्य का* ही भाष्य के शास्त्रीय लक्षणो के अनुकूल एक समीक्षात्मक परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

सिद्धान्त भाष्य

'मानस' के टीका-साहित्य के अन्तर्गत भाष्य की शास्त्रीय विधा के अनुकूल

लिखा गया था श्रीकान्त शरण कृत सिद्धान्त भाष्य अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस भाष्य पर भाष्य का यह लक्षण 'सूत्रार्थं । वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः । स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्य विदो विदुः ।' पूर्ण रीति से घटता है। इस भाष्य के अन्तर्गत 'मानस' के दार्शनिक भक्तिपरक एवं साहित्यिक सभी स्थलों की व्याख्या भाष्य शैली के तत्वों के आधार पर की गयी है। यहाँ हम 'मानस' की काव्यत्व से गर्भित एक अर्द्धाली का व्याख्यान उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूल—'चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कहँ गए नृपकिसोर मन चीता ।
जहँ बिलोक मृग-सावक-नयनी । जनु तहँ बरस कमल सित श्रेनी ॥'

शब्दार्थ—मृगसावक हिरन का बच्चा । बरिस वर्षा होती है ।
सित श्वेत । श्रेनी (श्रेणी)—पंक्ति ।

अर्थ—चौकन्नी होकर श्री सीताजी चारों दिशाओं में देखती हैं, राजकिशोर कहाँ चले गए। यही उनके मन की चिन्ता है। हिरन के बच्चे के समान नेत्रवाली सीताजी जहाँ देखती हैं मानो वहीं श्वेत कमलों की पंक्ति बरसती है।

विशेष (१) चितवत चकित चहूँ—श्री सीताजी का प्रसंग प्रथम—'चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत' (दोहा २२९) पर छोड़ा था, वहीं से मिलाकर फिर उसे उठाते हैं। अतः 'चितवति चकित'—कहा है। पूर्व कहा था—'सकल दिसि' वही यहाँ 'चहुँ दिसि' कह कर स्पष्ट कर दिया। वहाँ 'सिसु मृगी' कहा था, यहाँ 'मृग-सावक नयनी' कहा। वहाँ 'सभीत' कहा था यहाँ चिन्ता से सूचित किया।

चिन्ता यही है कि राजकिशोर चले तो नहीं गये। पाठान्तर 'मन चोता' भी है, इसका अर्थ होगा कि जिन्हें मन ने चुन लिया था, वरण किया था जो—'उनकी प्रीति पुनीत' पर कहा गया। 'नृप किशोर' कह कर स्वाधीनता एवं चंचलता सूचित की, क्योंकि राजपुत्र स्वतन्त्र होते हैं और किशोर अवस्था चंचल होती है।

(२) जहँ बिलोकि मृग सावक—श्री सीताजी की 'चितवनि' स्वच्छ है, इसलिए श्वेत कमलों की श्रेणी का बरसना कहा गया है। जिधर देखती हैं, उधर ही नलिनी का समूह देखने लगता है, इस तरह कमल-श्रेणी का बरसना युक्त है। विद्यापति भी कहते हैं—जहँ-जहँ नयन पसारे । तहँ-तहँ कमल विकासे । (पदावली)।

शंका—नेत्रों की सुन्दरता श्यामता और अरुणता में कही जाती है, यहाँ श्वेत रंग में किस लिए कही गई ?

समाधान—(क) श्वेत नेत्र अमृतमय प्रीति-भाव में, श्याम नेत्र विषमय वैरभाव में और लाल नेत्र मदमय मध्यस्थ भाव में मोहकता के लिए कहे जाते हैं, यथा 'अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार।' (रसलीन), इस दोहा में तीनों की दृष्टि से तीन प्रकार का 'चितवनि' कही गई है। यहाँ जानकी जी की चितवनि प्रेममय है, इसलिए उसका रंग श्वेत कहा है।

(ख) श्री सीताजी की 'चितवनि' पवित्र, निर्मल है। अत श्वेत कमल की उपमा दी गई है। वरसना वमम कहा गया है कि दार्शनिक दृष्टि मे भी ज्योति भी परमाणुओ का समूह है। ऐसा महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन मे निरूपित किया है। चकित 'चितवनि' है। अत लगातार वृष्टि हो रही है। नेत्र रूप सरोवर से निकले हुए विमल 'चितवनि' रूपी श्वेत कमलो की पक्ति बरस जाती है।

(ग) राजकिशोरी जी अभी स्नान करके सखियो के साथ पूजा म थी, इससे सात्विक ही शृगार किया है, जिससे नेत्र मे काजल नहीं है। कजरारे नेत्रो की उपमा श्याम सरोज (नीलकमल) से दी जाती है, यथा—'रूप रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ। नील-कमलसर-श्रेनि मयन जनु डारइ ॥ (जानकी मगल ६२)।

(घ) शृगार रस की दृष्टि से श्वेत नेत्र खटकेंगे अवश्य, पर इनका भी इसमें गौरव है। इस तरह की यहां शोभा समर का भी प्रसंग है। नेत्रो की वृष्टि ही बाण-वृष्टि है, कजरारे नेत्रो की दृष्टि अनी सहित बाण है और बिना शृगार के नेत्रो की दृष्टि बिना फर के पोथे बाण हैं। राजकिशोरी जी ने प्रतिपक्षी पर दया करके मोथे ही तीर चलाये हैं। वे इसी से वद कर लिए गये, यथा—'चली राखि उर स्यामल मूरति।' (दोहा २३४) तो फिर पैने बाणो की अवश्यकता हो नहीं रही, यथा—'गुड सो जो मरे ताहि न माहुर दीजिये'[1] कहावत प्रसिद्ध है।

सिद्धान्तभाष्यकार ने 'मानस' को उक्त चौपाई की भाष्य शैली के अनुकूल ही विस्तृत एव विशद व्याख्या की है, उन्होंने प्रथमत व्याख्येय के क्लिष्ट शब्दो का अर्थ दिया पुन उसका विशद अक्षरार्थ इसके अनन्तर उन्होंने मूल के प्रत्येक पद का विस्तृत विश्लेषण किया। अन्तत उन्होने व्याख्येय चौपाई की दूसरी अर्द्धाली के उत्तरार्द्ध पद की व्याख्या करते हुए सीताजी की 'चितवनि' को स्वच्छ बताते हुए उनकी 'कमलवत्' छवि की सटीक व्याख्या प्रस्तुत की है। टीकाकार ने सीता की स्वच्छ 'चितवनि' की और अधिक उपयुक्त एवं शंका निराआद व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए 'पूर्व एव उत्तरपक्ष' तत्व का आश्रय लिया है। उदाहरणार्थ उद्धरण मे उन्होंने श्वेत नेत्रो की सुदरता पर स्वयं शका उठायी है और अपने अभिप्रेत अर्थ के पक्ष मे उक्त शका का निरसन बड़े विस्तार से किया है।

इसी प्रकार 'मानस' के अन्य तीन भाष्यो 'मानसभाष्य', 'रामायण भाष्य' एवं 'सुन्दर प्रकाश'—म भी पाडित्यपूर्ण विस्तृत व्याख्यान प्रस्तुत किये गये हैं।

---

१ सिद्धान्तभाष्य प्रथम सस्करण पृ० ६७४-७५ (बालकाड)।

प्रकरण १

वार्त्तिक

'पाराशर उपपुराण' में वार्तिक की परिभाषा निम्नलिखित दी गई है —

'उक्तानुक्तदुरुक्तानांचिन्तायत्रप्रवर्तते ।
तग्रन्थ वार्तिकं, प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिण ॥'[1]

अर्थात् जिस ग्रन्थ में सूत्रकार द्वारा उक्त, अनुक्त और दुरुक्त विषयों पर विचार किया गया हो, उसे वार्तिक के विद्वान विचारक, वार्तिक कहते हैं।

वार्तिक की परिभाषा करते हुए शब्दकल्पद्रुमकार ने लिखा है—

'उक्तानुक्तदुरुक्तार्थकारको ग्रन्थ हेमचन्द्र ।'[2]

अर्थात् वार्तिक अर्थपरम्परा की वह पद्धति है जिसमें, जो कुछ कहा गया है, उसका अर्थ किया जाय, जो कुछ नहीं कहा गया है तथा जो कुछ अशुद्ध कहा गया है, उस पर विचार किया जाय। ऐसा हेमचन्द्र ने कहा है।

विश्वकोश में वार्तिक की परिभाषा एवं उसके स्वरूप पर निम्नलिखित शब्दों में विचार किया गया है—

'वार्तिक—(संस्कृत क्ली०) वृत्तिग्रन्थसूत्रोक्तवृत्त तत्र साधु
वृत्ति (कथादिभ्यष्टक् । पा० ४।४।१०२ । इति ठक् ।

१—किसी ग्रन्थ के उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थों को स्पष्ट करने वाला वाक्य या ग्रंथ ।'[3]

'जिस ग्रन्थ में उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थ स्पष्ट होता है, उसका नाम वार्तिक है, अर्थात् मूल में जो विषय कहा गया है, उसे स्पष्ट करने से मूल में जो नहीं कहा गया, है उसे परिव्यक्त या व्युत्पादित तथा मूल में जो दुरुक्त अर्थात् असंगत कहा गया है, उसका प्रदर्शन तथा ऐसे ही स्थानों में संगत अर्थ निर्देश करना वार्तिककार का कर्तव्य है।'[4] इस प्रकार विश्वकोशकार ने यहाँ वार्तिककार के कर्तव्य पर भी प्रकाश डाला है।

संस्कृत,अंग्रेजी कोशकार वी० एस० आप्टे वार्तिक की परिभाषा पर निम्नलिखित ढंग से विचार करते हैं—

---

१. युधिष्ठिर मीमांसक कृत 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास', पृ० २१०,—प० सं०
२. शब्दकल्पद्रुम।
३. नगेन्द्रनाथ वसु सम्पादित बंगला विश्वकोश का हिन्दी संस्करण।
४. वही, भाग २१।

'वार्तिक—३ Explanatory Glossorial—

An explanatory or supplementary rule which explains the meaning of that which is left unsaid and of that which is imperfectly said or a rule which explains what is said or but imperfectly said and supplies omissions.

(The term is particularly applied to the explanatory rules or Katyayan on Panini's Sutras'

अर्थात् वार्तिक[1] विश्लेषणात्क टीका

(क) (वृत्ति रूप मे विरचित ग्रन्थ) एक विश्लेषणात्मक या पूरक नियम जो, कुछ नही कहा गया है तथा जो कुछ अपूर्ण कहा गया है, उसके अर्थ या विश्लेषण करे या एक नियम जो, जो कुछ कहा गया है अथवा अपूर्णकहा गया है, उसकी व्याख्या करे और अपूर्तियो (ओमिसन्स) की पूर्ति करे। पुन वार्तिक वह ग्रन्थ है जिसमे, जो कुछ कहा गया है, जो कुछ नही कहा गया है (और) जो कुछ अशुद्ध कहा गया है, उसके चिंतन को व्यक्त किया जाय। यह विधा विशेषतया पाणिनि के सूत्रो पर कात्यायन के व्याख्यात्मक नियमो के लिए प्रयुक्त होती है।)

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि—

'मूल ग्रंथ के कथन के औचित्य विचार को वार्तिक कहते है।'[2]

पुन डा० आद्याप्रसाद मिश्र का वार्तिक के स्वरूप के निर्धारण के विषय मे निम्नलिखित विचार है—

'वार्तिक-वृत्ति-ठञ्-वृत्तौ साधु वार्तिक वृत्तिरूपेण कृतौ ग्रन्थों वार्तिकम्।

(क) साधारण अर्थ—१—व्यापार-कुशल वणिक् (क० स० सा०)

२—वार्ताहर

(ख) विशेष अर्थ—१—मूल मे कथित, अकथित या अस्पष्ट कथित अर्थ को स्पष्ट करने वाले नियम जैसा कि 'उक्तानुक्तदुरुक्तार्थं व्यक्तिकारितु वार्तिकम्' इस लक्षण से ज्ञात होता है।

२—वे ग्रन्थ जिनमे मूल का भाव स्पष्ट करने वाले ऐसे नियम दिये गये हो।

उपर्युक्त लक्षण पाणिनि की अष्टाध्यायी पर कात्यायन द्वारा लिखे गए वार्तिक के विषय मे विशेष रूप से घटित होता है और संभवत उन्ही को दृष्टि मे रखकर किया गया था। ये वार्तिक पाणिनि कृत सूत्रो की ही भाँति संक्षिप्त और गद्यात्मक हैं। पर इन्हें

---

१. वी० एस० आप्टे कृत संस्कृत अंग्रेजी कोश।

२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ६ (सातवी बार, जुलाई, १९६३)।

छोड़ प्राय अन्य सभी वार्तिक छन्दोबद्ध या पद्यात्मक हो हैं। ये सूत्रों तथा उनकी वृत्ति की अपेक्षा संक्षिप्त होते हैं। पर इसका अपवाद भी मिलता है। जैसे कुमारिल के 'श्लोक वार्तिक' तथा तंत्रवार्तिक' स्वामी शंकराचार्य कृत बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य पर सुरेश्वराचार्य के वार्तिक भाष्यों से छोटे नहीं, बहुत बड़े हैं। उद्योतकर मिश्र का न्यायवार्तिक भी वात्स्यायन के न्यायभाष्य पर लिखा गया है और यद्यपि संक्षिप्त नहीं कहा जा सकता, फिर भी ये वृत्ति और भाष्य के बीच के नहीं, भाष्यों के बाद के है। धर्मकीर्ति का 'प्रमाणवार्तिक' व्याख्यान ग्रन्थ नहीं, मौलिक ग्रन्थ है, इस पर (उनकी अपनी वृत्ति भी है। पर यह वृत्ति शब्द यहाँ टीका या व्याख्यान के सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त है।'[1]

वार्तिक के उदाहरण

यहाँ वार्तिक शैली के आधार पर होने वाले दुरुक्त, उक्त एवं अनुक्त के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

'दुरुक्त' का उदाहरण

मूल (सूत्र)—अर्थ हल् संधि --'न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२—पाणिनि-अष्टाध्यायी'[2]

उक्त सूत्र पर वार्तिक—'अनाम्नवतिनगरीणामितिवाच्यम्' (पदान्त 'ट' के परे यदि 'नाम' के अतिरिक्त कोई शब्द हो तो पूर्व नियम अर्थात् 'सकार का षकार होना', यह नियम लागू नहीं होगा, जैसे षट् सन्त ज्यों का त्यों रह जायगा। षट् ते भी ज्यों का त्यों ही रह जायगा।)

इस पर वार्तिककार कहता है कि यह नियम उपयुक्त नहीं है। केवल 'नाम्' ही नहीं, नाम्, नवति और नगरी ऐसा सूत्र घटना चाहिए था अर्थात् सूत्र मे 'नवति' और 'नगरी' का भी योग होना चाहिए।

'उक्त' का उदाहरण

उपर्युक्त वार्तिक में ही 'दुरुक्त' के साथ ही 'उक्त' का भी प्रकारान्तर से कथन हो गया। 'अनाम्' के संकेत से पूर्वकथित भी आ गया। यहाँ एक तथ्य सदा ध्यान मे रखने योग्य है कि वार्तिक मे प्राय 'दुरुक्त एवं अनुक्त का ही कथन व्याख्यान विशेष रूप से किया जाता है। 'दुरुक्त' और 'अनुक्त' के कथन के साथ ही उक्त की भी समीक्षा हो सकती है।

'अनुक्त' का उदाहरण

'अनुक्त' का एक उदाहरण शंकर-भाष्य (बृहदारण्यक उपनिषद्) पर सुरेश्वराचार्य कृत वार्तिक से दिया जा रहा है। शंकर नेबृहदारण्यक उपनिषद् का भाष्य करतेहुए

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भा० सं० लि०, पृ० ७०८-९ (प्र० म०)
२. पाणिनी कृत अष्टाध्यायी (कात्यायन कृत वार्तिक सहित)।

अध्याय ३ ब्राह्मण ८ मंत्र ४ के भाष्य में 'आकाश' शब्द की व्याख्या नहीं की है। वार्तिककार ने इस 'अनुक्त' पद का विस्तृत व्याख्यान किया है—

मूल—स होवाचैतद् वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमो वाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रं मवागमनो तेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥ ॥

अर्थात् उस याज्ञवल्क्य ने कहा,' है गार्गि। उस इस तत्व को वे ब्रह्मवेत्ता 'अक्षर' कहते हैं, वह न मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न बड़ा है, न लाल है, न छाया है, न तम (अंधकार) है, न वायु है, न आकाश है, न संग है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कान है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, उसमें न अन्तर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता, उसे कोई भी नहीं खाता।'

भाष्य

स होवाच याज्ञवल्क्य एतद् वै तद् यत् पृष्टवत्यसि कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रतिश्चेति, किं तत् ? अक्षरम्-उन्न क्षीयते न क्षरत्तीति चाक्षरम्-तदक्षरं हे गार्गि ब्राह्मणा ब्रह्मविदोऽभिवदन्ति। ब्राह्मणाभिवदनकथनेन-नाहमवाच्यं वक्ष्यामि न च न प्रतिपयेयम्-इत्येवं दोषद्वय परिहरति।

एवमपाकृते प्रश्ने पुनर्गार्ग्या. प्रतिवचनं द्रष्टव्यम्-ब्रूहि किं तदक्षरम् ? यद् ब्राह्मणा अभिवदन्ति, इत्युक्त आह अस्थूल तत् स्थूलादन्यत्, एवं तहं यंणु ? अनणु, अस्तु तर्हि ह्रस्वम्, अह्रस्वम्, एवं तर्हि दीर्घम्, नापि दीर्घदीर्घम्, एवमेतैश्चतुर्भि परिमाणप्रतिषेधैद्रंव्य धर्म. प्रतिषिद्ध, न द्रव्यं तदक्षरमित्यर्थः।

अस्तु तर्हि लौहितो गुण, ततोऽप्यन्यदलोहितम्, आग्नेयो गुणो लोहित; भवतु तहर्यपा स्नेहनम्, न, अस्नेहम्, अस्तु तर्हिच्छाया, सर्वथा प्यनिर्देश्यत्वात्, छायाया अप्यन्यदच्छायम्, अस्तु तर्हि तम, अतम, भवतु वायुस्तर्हि, अवायु, भवेतर्ह्याकाशम्, अनाकाशम्, भवतु तर्हि सगात्मकं जतुवत्, असंगम्, रसो स्तु तर्हि, अरसम् तथा गन्धोऽस्त्वगधम्, अस्तु तर्हि चक्षु, अचक्षुष्कम्-न हि चक्षुरस्य करण विद्यतेऽतोऽचक्षुष्कम्, 'पश्यत्यचक्षु' (श्वेत० उ० ३।१९) इति मन्त्रवर्णात्।

तथाश्रोत्रम्, 'स शृणोत्यकर्णः' (श्वेता० उ० ३।१९) इति भवतु तर्हि वागवाक्, तथामन; तथातेजस्कम्-अविद्यमानं तेजोऽस्य तदतेजस्कम्, न हि तेजोऽग्न्यादिप्रकाशनदस्य विद्यते, अप्राणम्-आध्यात्मिको वायु प्रतिषिध्यतेऽप्राणमिति, मुखं तर्हि द्वारं तदमुखम्, अमात्रम्-मीयते येन तन्मात्रम् अमात्रं मात्रारूपं तत्र भवति, न तेन किञ्चन्मीयते, अस्तु तर्हिच्छिद्रवत्, अनन्तरम्-नास्यान्तरमस्ति, सम्भवेद् तर्हि बहिस्तस्य, अबाह्यम्, अस्तु तर्हि भक्षयितृ तत्, न तदश्नाति किञ्चन, भवेत्तर्हि भक्ष्यं कस्यचित्, न तदश्नाति कश्चन, सर्वविशेषणरहितमित्यर्थं एकमेवाद्वितीयं हि तत् केन किं विशिष्यते ॥८॥

अर्थात् उस याज्ञवल्क्य ने कहा—तूने जिसके विषय में पूछा था वह आकाश किसमें ओतप्रोत है? यह कहा है। वह क्या है? अक्षर जो क्षीण नहीं होता अथवा क्षरित नहीं होता वह अक्षर है सो हे गार्गि! उसे ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता लोग अक्षर कहते हैं। ब्राह्मण कहते हैं इस कथन के द्वारा मैं अवाच्य का वर्णन नहीं करूँगा तथा यह भी नहीं कि मैं उसे नहीं जानता इस प्रकार सूचित करके दोनों दोषों का परिहार करते हैं।

इस प्रकार प्रश्न का निराकरण हो जाने पर फिर गार्गी का यह प्रश्न समझना चाहिए अच्छा तो बतलाओ ब्रह्मवेत्ता लोग जिसका वर्णन करते हैं वह अक्षर क्या है? ऐसा कहे जाने पर याज्ञवल्क्य कहते हैं—वह अस्थूल स्थूल से भिन्न है तो क्या अणु (सूक्ष्म) है? नहीं अनणु (सूक्ष्म से भिन्न) है अच्छा तो ह्रस्व (छोटा) होगा? नहीं वह ह्रस्व भी नहीं है ऐसी बात है तो वह दीर्घ हो सकता है? नहीं दीर्घ भी नहीं है अदीर्घ है इस प्रकार इससे स्थूलत्व (मोटाई) आदि परिमाण का प्रतिषेध करनेवाले इन चार पदों द्वारा द्रव्य धर्म का निषेध किया गया है। तात्पर्य यह कि वह अक्षर द्रव्य नहीं है।

तो फिर वह लोहित (लाल) गुण हो सकता है? नहीं उससे भी भिन्न अलोहित है लोहित अग्नि का गुण है अच्छा तो जल का गुण है अच्छा तो जल का गुण स्नेह (द्रवीभाव) होगा? नहीं वह अस्नेह है तो फिर वह छाया होगा? नहीं सर्वथा ही अनिर्देश्य होने के कारण छाया से भी भिन्न अच्छाय है तो फिर तम होगा? नहीं अतम है अच्छा तो वह वायु होगा? नहीं वह अवायु है तो फिर आकाश होगा? नहीं अनाकाश है तो फिर जतु (लाख) के समान सङ्गवान होगा? नहीं वह असंग है तो रस होगा? नहीं अरस है अच्छा तो गन्ध होगा? नहीं? अगन्ध है तो फिर चक्षु होगा? नहीं अचक्षुष्क है इसके चक्षु इन्द्रिय नहीं है इसलिए यह अचक्षुष्क है जैसा कि यह चक्षुहीन होने पर भी देखता है इस मन्त्रवर्ण से प्रमाणित होता है।

इसी प्रकार वह कर्णहीन होकर भी सुनता है इस श्रुति के अनुसार अश्रोत्र है तो फिर वाक् होगा? नहीं अवाक् है तथा अमन है और इसी प्रकार अतेजस्क जिसमें तेज नहीं है ऐसा अतेजस्क है क्योंकि अग्नि आदि के प्रकाश के समान इसमें तेज नहीं है अप्राण-ऐसा कहकर शरीरान्तर्गत वायु का प्रतिषेध किया जाता है अतः अप्राण है। तो फिर वह मुख यानी द्वार है? नहीं वह अमुख है यह अमात्र है जिससे माप किया जाय उसे मात्र कहते हैं वह अमात्र अर्थात् मात्रारूप नहीं है उससे किसी का भी माप नहीं किया जाता तो फिर वह छिद्रवान् होगा? नहीं वह अनन्तर है उसमें अन्तर (छिद्र) नहीं है तो फिर उसका बाह्य तो सम्भव हो ही सकता है? नहीं वह अबाह्य है अच्छा तो वह भक्षण करने वाला होगा? नहीं वह कुछ भी नहीं खाता तब वह स्वयं ही किसी दूसरे का भक्ष्य हो सकता है? नहीं उसे कोई भी खाता नहीं तात्पर्य यह है

कि वह समस्त विशेषणों से रहित, वह तो द्वितीय से रहित अकेला ही है, फिर किससे किसका विशेषित किया जाय ? ॥८॥'

वार्तिक

> 'देशकालौ च सूत्रेण स्थूलौ देशात्मक ततः ।
> विद्यन्नाऽऽकाशमत्रेति सूचनायाऽनुवादगी ॥७॥
> आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहेज्जनिम् ।
> इत्याह कारणं ब्रह्म श्रुतिराकाश शब्दतः ॥८॥
> आसमन्तात्काशते यमित्याकाशत्वमात्मनः ।
> जगत्कारणता तस्य सर्ववेदान्त सम्मता ॥९॥

श्री हरिहर कृपालु द्विवेदी ने इस वार्तिक का निम्नलिखित रीति से हिन्दी-अनुवाद किया है।

'देशकालौ च इत्यादि। 'आकाश' शब्द यहाँ अव्यक्त वाचक है प्रसिद्ध आकाश का वाचक नहीं है, इस अभिप्राय को सूचना के लिए अनुवाद किया गया है प्रसिद्ध आकाश जगत् का एक देश होने से जगदात्मक सूत्र के अन्तर्गत ही है। सूत्र से सम्पूर्ण जगत् अनुस्यूत (ग्रथित) है और आकाश देशात्मक है, अतः यहाँ आकाश उक्त अर्थ का वाची है, प्रसिद्ध आकाशवाची नहीं है।

शंका—आकाश शब्द भूताकाश में रूढ है, फिर उसे यहाँ कारणवाची कैसे मानते हो ?

समाधान—आकाश एवं 'नाम रूपयोर्निर्वहिता' इस श्रुति में आकाश शब्द से ब्रह्म को ही कहा गया है। भूताकाश नाम और रूप का उत्पादक नहीं हो सकता और सर्वान्तरत्व विशेषण भी अनात्मपदार्थ में युक्तियुक्त नहीं होता, अतः समस्त जगत् का आन्तरत्व रूप से श्रुत आकाश ब्रह्म के अतिरिक्त नहीं हो सकता। यद्यपि 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः', 'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' 'ज्यायानाकाशात्' इत्यादि श्रुतियों में एवं अन्य शास्त्र तथा लोक में भी आकाश शब्द से भूताकाश का बोध होता है तथा श्रुति में भी ब्रह्मशब्द के तात्पर्य से बार बार आकाश शब्द का प्रयोग देखा जाता है।' 'को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेषआकाशआनन्दो न स्यात्', सर्वाणि भूतानि आकाशादेवोत्पद्यन्ते' इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म के तात्पर्य से ही आकाश पद का प्रयोग आया है, अतः यहाँ पर आकाश शब्द किस तात्पर्य से प्रयुक्त हुआ है, ऐसा संशय होता है तथापि यहाँ पर याम्य तावत आकाश शब्द आकाश ब्रह्म का ही, जो जगत् का कारण है, वाचक है, भूताकाश का नहीं।' आकाशस्तल्लिङ्गात्' इस सूत्र में इस प्रकार निर्णय हो चुका है, वही निर्णय यहाँ भी लागू है ॥७-८॥

'आममन्तात्' इत्यादि । योगवृत्ति से भी आकाश शब्द का बोधक होता है, इस अभिप्राय से 'आ समन्तात्काशते' यह व्युत्पत्ति प्रदर्शन है । वस्तुतस्तु व्युत्पत्ति प्रदर्शन अनावश्यक है । पूर्वोक्त प्रबल प्रमाण से जगत्-कारण ब्रह्म मे आकाश शब्द का प्रयोग समर्थित हो चुका, अत योग प्रदर्शन की अपेक्षा नही होती । फिर भी किसी को ऐसा दुराग्रह हो, तो उसके सन्तोष के लिए व्युत्पत्ति का भी प्रदर्शन किया गया है । सब वेदान्तो का यही निर्णय है कि ब्रह्म ही जगत् का कारण है ॥६॥'[1]

वार्तिक का लक्षण

इस उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् वार्तिक का सामान्य लक्षण इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है—

'जिस ग्रन्थ से (व्याख्येय का) उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थ स्पष्ट होता है, उसका नाम वार्तिक है । अर्थात् मूल मे जो विषय कहा गया है, उसे परिव्यक्त या व्युत्पादित करना, तथा मूल में जो दुरुक्त अर्थात् असंगत कहा गया है, उसका संकेत करता उसका सगत अर्थ करना, वार्तिककार का कर्त्तव्य है । कुमारिल भट्ट का तंत्र वार्तिक जैमिनीय सूत्र पर, शंकर स्वामी के भाष्य के ऊपर रचा गया है । इस प्रकार सिद्ध होता है *प्राय वार्तिक सूत्रों और भाष्यादि व्याख्यात्मक ग्रन्थों पर रचा जाता है ।*

वृत्ति, भाष्य आदि मूल ग्रन्थ की सीमा का अतिक्रमण नही कर सकते । परन्तु वार्तिककार स्वतंत्र एवं स्वाधीन है । भाष्यकार आदि की स्वाधीन चिन्ता हो नहीं सकती, किन्तु वार्तिक के लक्षणों की ओर ध्यान देने से ही विज्ञात होता है कि वार्तिककार मे स्वाधीन चिन्तापूर्ण मात्रा मे विकास पाती है । (वार्तिक) कई जगह सूत्र और भाष्य का खंडन करता है ।'[2]

वार्तिक की विशेषताएँ

१—वार्तिक की रचना अनौचित्य के उन्मूलन एवं औचित्य के स्थापनार्थ होती है ।

२—वार्तिककार स्वतन्त्र मत का आरोपण करता है । वह स्वतन्त्र रूप से विषय विशेष पर चिन्तन एवं विचारणा कर सकता है ।

३—वार्तिक रचना के लिए वार्तिककार को भी मूलग्रन्थकार की ही भांति विषय-मर्मज्ञ एवं कुशल होना चाहिए ।

४—वार्तिक एक प्रकार की समीक्षा पद्धति है, जिसमें प्राय दोषार्थ (दुरुक्तार्थ) की ओर वार्तिककार की दृष्टि अधिक रहती है ।

---

१ बृहदारण्यकोपनिषदे (सानुवाद शांकरभाष्य सहित) अध्याय ३, ब्राह्मण ८, (गीताप्रेस प्रकाशन) पृ० ७५८-७६१ ।

२ नगेन्द्रनाथ बसु कृत बंगला शब्दकोश का हिन्दी संस्करण भाग ।

५—वार्त्तिक प्राय सूत्रो की भांति सूक्ष्म और गद्यात्मक होते हैं, परन्तु कुछ वार्तिक ऐसे भी मिलते हैं, जो छन्दोबद्ध एवं पद्यात्मक भी होते हैं।

६—कतिपय वार्तिक ऐसे प्राप्त होते हैं, जो विस्तार एवं विवेचन मे किसी भी भाष्य से कम नही, जैसे भट्ट कुमारिल का श्लोकतंत्र वार्तिक एव शंकराचार्य कृत बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य पर सुरेश्वराचार्य कृत वार्तिक।

७—कुछ वार्तिको के ऐसे उदाहरण भी प्राप्त होते हैं, जो स्वतन्त्र ग्रन्थ सदृश हैं। इसका पुष्ट प्रमाण धर्मकीर्ति का प्रमाण वार्तिक है।

८—वार्तिक के अन्य नाम भी हैं। भाष्यसूत्र मे भर्तृहरि ने महाभाष्य-दीपिका मे दो स्थानो पर वार्तिको के लिए भाष्य सूत्र पद का प्रयोग किया है। सायण ने अपनी धातुवृत्ति मे वार्तिक के लिए अनुस्मृत शब्द का प्रयोग बताया है।

एक बात सर्वथा स्मरणीय है कि मौलिकता एव पाण्डित्य की दृष्टि से व्याख्यान पद्धति मे भाष्य के समकक्ष ही वार्तिक का स्थान भी है। यही कारण है कि साख्य सप्तति की युक्तिदीपिका टीका मे पदकार के नाम से एक वार्तिककार का नामोद्धरण किया गया है। पदकार शब्द का प्रयोग प्राय. महाभाष्यकार के लिए किया जाता था।'[1]

प्रकरण २

वार्तिक-विधा और 'मानस' का टीका-साहित्य

'मानस' के विविध प्रकार के टीकात्मक ग्रन्थो मे कुछ ऐसी भी रचनायें हैं, जो वार्तिक शैली मे लिखी गयी हैं। जैसा कि पूर्वत कहा गया है कि वार्तिक शैली की व्याख्यायें किसी ग्रन्थ के उक्त (कथित) अनुक्त (अकथित) एव दुरुक्त (अशुद्ध कथित) अर्थों का प्रकाशन करती है। वार्तिक ग्रन्थ मूल एव टीकात्मक दोनो प्रकार के ग्रन्थो पर लिखे जाते हैं। जहाँ तक 'मानस' के टीका-साहित्य का सम्बन्ध है, उसमे मूल एव टीकात्मक दोनो प्रकार के ग्रन्थों पर वार्तिक रचनायें हुई हैं। मूल (रामचरितमानस) पर महन्त रामचरणदास करुणासिन्धु कृत 'आनन्दलहरी' वार्तिक है। शिवलाल पाठक कृत मानसमयक तथा अभिप्रायदीपक सदृश टीकात्मक ग्रन्थो पर क्रमश बाबू इन्द्रदेव-नारायण कृत मानसमयकचन्द्रिका' एवं स्नेहलता (जानकीशरण) कृत 'अभिप्रायदीपक-चक्षु संज्ञक' वार्तिक है। इसी प्रकार 'मानस' की टीका 'रामायणपरिचर्या' पर 'रामयण-परिचर्या परिशिष्ट' एवं 'रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश' नामक वार्तिक लिखे गये हैं। इन सभी वार्तिकों के सम्बन्ध मे एक तथ्य सदैव स्मरणीय है कि इनमे अपने उपजीव्य ग्रन्थो के मात्र 'उक्त', एव 'अनुक्त' अर्थों का ही स्पष्टीकरण किया गया है।

---

१. युधिष्ठिरमीमासक कृत 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' पृ० २०६।

व्याख्येय के दुरुत्तार्थ पर इन वार्तिककारों ने विचार नहीं किया है। सम्भवतः इसका मूल कारण यही रहा है कि 'मानस' एवं 'मानस' की टीकाओं के जितने वार्तिककार हुए हैं उनमें अपने व्याख्येय ग्रन्थों के प्रति अटूट श्रद्धा और आदर का भाव रहा है, इसके अतिरिक्त 'मानस' की टीकाओं के वार्तिककार तो एक प्रकार से अपने उपजीव्य टीकात्मक ग्रन्थों की उत्तरवर्ती परम्परा के ही टीकाकार रहे हैं। अतएव इन वार्तिककारों को अपने गुरुओं द्वारा व्याख्यात ग्रन्थों में कोई 'दुरुत्तार्थ' मिला ही नहीं, जिसका वे अपने वार्तिक ग्रन्थों म प्रत्याख्यान करके, उसकी युक्तियुक्त व्याख्या प्रस्तुत करते।

हम 'मानस' के टीका साहित्य में उपलब्ध वार्तिकों को इन दो कोटियों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) मूल पर लिखित वार्तिक।

(२) टीकात्मक ग्रन्थों पर लिखित वार्तिक।

१—मूल (रामचरितमानस) पर लिखित वार्तिक

आनन्दलहरी 'मानस' के सम्पूर्ण वार्तिकों म मात्र 'आनन्दलहरी' ही एक ऐसा वार्तिक ग्रन्थ है, जो 'रामचरितमानस' पर लिखा गया है। इसके रचयिता हैं रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य महंत रामचरणदास जी 'करुणासिन्धु'। इन्होंने 'मानस' पर अपनी टीकात्मक रचना 'आनन्दलहरी' के अन्तर्गत स्वयं कई बार यह घोषणा की है कि 'मैं रामचरितमानस पर वार्तिक लिख रहा हूँ।' उदाहरणार्थ यहाँ उनका इसी अभिप्राय का एक कथन उद्धृत किया जा रहा है—

> 'वंदी श्री गुरु पवनसुत कृपा रूप श्रीराम।
> सुन्दर पर वार्तिक करौं रामचरण सिधि काम॥
> सुन्दर सुन्दर काण्ड पर प्रथम तरंग बखानि।
> रामचरण वार्तिक करौं पवनतनय गुणखानि॥'[1]

उन्होंने रामानन्दलहरी के अन्तर्गत 'मानस' के कथित एवं अकथित विषयों की व्याख्या की है। 'मानस' में जो विषय कथित है, उसका तो आनन्दलहरीकार ने तो सुस्पष्ट एवं विस्तृत व्याख्यान किया ही है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए आनन्दलहरी के अन्तर्गत हुई 'मानस' की कोई भी व्याख्या ली जा सकती है। परन्तु उन्होंने उक्त के अतिरिक्त मानसकार द्वारा अनुक्त (अकथित) विषय का भी दिग्दर्शन कराया है। ये अनुक्त व्याख्यान प्रायः आनन्दलहरी के अन्तर्गत राम के माधुर्योपासना परक व्याख्यानों में ही मिलते हैं। इस सम्बन्ध में स्वयं करुणासिन्धु जी के अनुयायी—राममति के रसिक उपासकों के अनुयायियों का यह कथन सर्वथा ध्यान देने योग्य है कि 'स्वयं तुलसीदास जी ने करुणासिन्धु जी के रूप म अवतरित हो 'मानस' की आनन्दलहरी नामक टीका

---

१. रामानन्दलहरी प्रथम संस्करण (सुन्दरकाण्ड) पृ० १।

लिखी और 'मानस' की रचना करते समय राम का जो गुप्त शृंगार (अकथित (अनुक्त) रह गया था, उसका व्याख्यान अपनी टीका के माध्यम से किया।[1]

यहाँ हम आनन्दलहरी नामक वार्तिक से, वार्तिक शैली का एक व्याख्यान प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूल— 'सीतहि पहिरावे प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सादर॥'

वार्तिक—

इहाँ श्री रामचन्द्र शान्त रस, शृंगार रस, वीर रस, इत्यादिक मुनिन के अनुभव में जनावते हैं अरु देवतन को जनावते हैं पुनि श्री रामचन्द्र श्री जानकी जी को फूलन के भूषण अंग अंग प्रति अति आदर ते पहिरावते भये तब श्री जानकी को श्री रघुनंदन जी के साथ रास विहार करिवे की इच्छा है तब श्री जानकी जी श्री रघुनंदन जी को फूलन को शृङ्गार कौन है पुनि जानकी जी न अपने अंग ते अनेकन सखी उत्पन्न कौन है जिनके संग महाराम होत भयो राम विलास करिकै पुनि समस्त सखिन को श्री जानकी जी अन्तर्भूत करि लीन है पुनि फटिक शिला पर श्री राम जानकी जी फूलन कर शृंगार किहें बैठे हैं अति शोभित हैं या वही अति शोभा धारण किहे सते।'[2]

उपर्युक्त अर्द्धाली की वार्तिक शैली में व्याख्या करते हुए करुणासिन्धु जी ने सीता राम के गुप्त शृंगार का वर्णन किया है। उन्होंने मानसकार द्वारा कथित राम द्वारा सीता की शृंगार रचना तो कही ही है, साथ ही साथ सीता द्वारा राम की शृंगार रचना तथा उनके द्वारा 'महाराम' रचाने का जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह 'अकथित' विषय है। रसिक भक्त महंत करुणासिन्धु जी ने मानसकार के इस अकथित विषय का भी व्याख्यान सीता राम के गुप्त शृङ्गार के इस प्रकरण में प्रस्तुत किया है।

'मानस' के टीकात्मक ग्रन्थों पर लिखित वार्तिक—

'मानस' के तीन टीकात्मक ग्रन्थों—रामायणपरिचर्या, मानसमयंक एवं मानस-अभिप्रायदीपक पर वार्तिक टीकाओं की रचना हुई है, इनमें रामायण परिचर्या जो एक संक्षिप्त एवं गूढ भाव मूलक टीका है, उसके अर्थ के प्रकाशनार्थ महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने 'रामायणपरिचर्या परिशिष्ट' नामक वार्तिक लिखा। रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट की रचना के पश्चात् भी रामायणपरिचर्या के सभी भावों का प्रकाशन नहीं हो पाया और 'मानस' के सभी व्याख्येयों का उक्त दोनों ग्रन्थों में अर्थ नहीं किया गया था, अतएव उन दोनों टीकाओं से भावों तथा 'मानस' के जिन रचनों की टीका उन ग्रन्थों में नहीं की गई थी, उनकी व्याख्या रामायणपरिचर्या परिशिष्टप्रकाश नामक टीकात्मक ग्रंथ में हुई है। इस प्रकार रामायणपरिचर्या पर रामायण-

---

१ राममक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्रथम संस्करण, पृ० १५६-६०।

२. 'आनन्दलहरी' (अरण्यकांड) द्वितीय संस्करण, पृ० ३।

परिचयापरिशिष्ट एवं रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट पर रामायण परिचर्यापरिशिष्टप्रकाश को भी वार्तिक शैली के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

पं० शिवलाल पाठक कृत 'मानसमयंक' जो सूत्रबद्ध शैली में 'मानस' के महत्त्वपूर्ण स्थलों का व्याख्यान ग्रंथ है, उस पर बाबू इन्द्रदेवनारायण सिंह ने 'मानसमयंक चन्द्रिका' नामक एक वार्तिक लिखा है। उसमें उन्होंने मयंककार द्वारा 'कथित' भावों का व्याख्यान किया है, साथ ही साथ उनके द्वारा 'अकथित' विषयों का भी व्याख्यान प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार शिवलाल जी पाठक के दूसरे ग्रंथ में 'मानसअभिप्रायदीपक' पर, जो मानसमयंक की ही शैली में लिखित 'मानस' का एक टीकात्मक ग्रंथ है, पाठक जी की ही परम्परा के शिष्य जानकीशरण स्नेहलता ने वार्तिक शैली की टीका लिखी है। इस वार्तिक का नाम 'मानसअभिप्रायदीपकचक्षु' है।

उपर्युक्त सभी वार्तिकों से यहाँ उद्धरण न प्रस्तुत कर, इन 'मानस' के टीकात्मक ग्रंथों पर लिखित एक प्रतिनिधि वार्तिक 'मानसमयंकचन्द्रिका' से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूल

> 'लोन्ह लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥
> उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहु प्रयागू॥
> सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम प्रेम सिसु सोहा॥
> चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
> मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

मानसमयंक दोहा

> 'लला लड़ैती के विषे, मैथिल को अनुराग।
> सो उर लाये तोरितन, बोरे मने प्रयाग॥२७६॥
> सिय सनेह जो ज्ञान पर, सो बट बढ़िगो पार।
> जो ज्ञानहु हरि प्रेम भर, सो गहि मुजा उबार॥२७७॥

वार्तिक (मानसमयंकचन्द्रिका)

मूल का भावार्थ—'राजा जनक ने पावन पाहुनी प्रेम प्राण स्वरूपिणी जानकी जी को हृदय में लगाया। तत्पश्चात् हृदय में प्रेम समुद्र उमड़ा, तब राजा का मन मानो प्रयाग हो गया। अर्थात् जैसा मार्कण्डेय को जब भगवान ने प्रलय की लीला दिखाई तो प्रयाग डूब गया और अक्षयवट उस प्रलय में बढ़कर जल के ऊपर रहा, जिस प्रकार सीता स्नेह रूपी वट बढ़ गया अर्थात् जानकी जी का प्रेम अनुरागसिन्धु के ऊपर रहा पुनः जिस प्रकार अक्षयवट पर मुनि ने एक बालक देखा जिसके अवलम्ब से बचे उसी प्रकार यहाँ सीता प्रेम रूपी अक्षयवट पर राम प्रेम रूपी शिशु विराजमान था और राजा का चिरजीव मुनि रूपी ज्ञान व्याकुल हो रहा था सो राम प्रेम रूपी शिशु का अवलम्ब पाकर

डूबने से बच गया। वहाँ मार्कण्डेय मुनि मोहवश व्याकुल थे यहाँ राजा का ज्ञान मोहवश नहीं व्याकुल है पर श्री राम जानकी के प्रेम की महिमा है अर्थात् ज्ञान प्रेम से व्याकुल रहता है।

मयंककार कहते हैं कि राजा को राम जानकी दोनों में अनुराग है सो जानकी को हृदय में लाते ही अनुरागसिन्धु ज्ञान तट को तोड़ कर राजा के मन प्रयाग को बोर दिया ॥२७६॥ और सीय प्रेम रूपी सुन्दर बट बढ़ गया। और जो (हरि) श्री रामचन्द्र का प्रेम ज्ञान को (मरण) पोषण करने वाला है, वहाँ ज्ञान की भुजा को पकड़ कर उबार लिया। संदर्भ यह कि राम प्रेम जानकी प्रेम के द्वारा प्राप्त होता है जो ज्ञान का अवलंब है ॥२७७॥[1]

यहाँ वार्तिकार ने प्रथमतः उपर्युक्त रूपक की सांगोपांग व्याख्या प्रस्तुत की है। इसके उपरान्त उसने व्याख्येय पर मयंककार कृत दो दोहों में कथित भाव की व्याख्या की है। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि मयंककार ने मूल का मात्र भाव ही दिया है, उसने मूल के प्रतिपद का व्याख्यान नहीं किया है। उसने केवल यही बताया है कि किस प्रकार जानकी को हृदय से लगाते ही जनक के मन में राम के प्रति प्रेम का अपार समुद्र बढ़ गया। यहाँ ज्ञान को राम के प्रेम के आश्रित बताया गया है। इस प्रकार मयंककार के दो दोहों में ही उपर्युक्त पाँच अर्द्धालियों का विस्तृत व्याख्यान समाविष्ट नहीं हो सका है। अतएव मयंककार द्वारा कथित सूत्रबद्ध भावों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करते हुए वार्तिककार (इन्द्रदेवनारायण सिंह) ने उनके द्वारा 'अकथित' भावों का भी व्याख्यान अपने वार्तिक 'मानसमयंकचन्द्रिका' में किया है।

---

१. मानसमयंक (सटीक) प्रथम संस्करण (अयोध्या कांड), पृ० २८१-८६।

अध्याय ६

प्रकरण १

वृत्ति

परिभाषा

सूत्रस्यार्थविवरण वृत्ति (का तन्त्र)। सूत्र सब लघु हैं अर्थात् बड़े नहीं अल्प अक्षर अल्पपदयुक्त हैं। सुतरा ये व्याख्या सापेक्ष हैं। व्याख्या न रहने से सूत्रादि का यथार्थ तात्पर्य हृदयगम नहीं होता। यह व्याख्या वृत्ति भाष्य, टीका, टिप्पणी आदि अनेक शाखाओं में विभक्त हैं।[१]

मानविकीकोश के अंतर्गत डा. जायाप्रसाद मिश्र ने वृत्ति पर निम्नलिखित रूप से विचार किया है—

वृत्ति १—वृत्त+क्तिन् (क) साधारण अर्थ—१ सत्ता, भाववर्तमानता २ स्वभाव ३ दशा अवस्था, ४ व्यवहार, आचरण, ५ जीविका, जीवनोपाय (वर्तते अनयेति करणे क्तिन्) ६ भृति पारिश्रमिक, ७ घूमना, चक्कर, ८ पहिये या वृत्त (गोल) की परिधि।

(ख) विशेष अर्थ—किसी मौलिक ग्रंथ विशेषत सूत्र-ग्रंथ की सूक्ष्म संक्षिप्त विवृत्ति या टीका जैसे अष्टाध्यायी पर जयादित्य और वामन द्वारा 'रचित' काशिका वृत्ति 'यास्क कृत निरुक्त पर दुर्गाचार्य कृत ऋज्वार्थी नामक वृत्ति। वृत्ति सामान्यत वार्तिक और भाष्य दोनों की अपेक्षा संक्षिप्त होती है पर आगे चलकर जब यह शब्द व्याख्या मात्र का वाचक बन गया तब ग्रंथकारों या लेखक स्वेच्छानुसार अपने व्याख्यान ग्रंथों का नाम वृत्ति टीका टिप्पणी आदि रखने लगे। और यह शब्द सूत्रों तक सीमित न रह गया। भाष्यकार के शब्दों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'वृत्ति मूल में संक्षिप्त ही थी।'

अथ कठोपनिषद्वल्लीनां सुखप्रबोधनार्थं मल्पग्रंथावृत्तिरारभ्यते।'

उषा वा अश्वस्य इत्येवमाद्या वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषद्। तस्या इयमल्प ग्रन्था वृत्तिरारभ्यते। (बृहदारण्य शा० भा०)[१]

वृत्ति का उदाहरण

सूत्र—योग चित्तवृत्ति निरोध।

चित्तस्य निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावपरिणाम रूपस्तासां निरोधो बहिर्मुखतया परिणतिविच्छेदादन्तर्मुखतया प्रतिलोम परिणामेन स्वकारणे लयो योग इत्याख्यायते। स च निरोध सर्वासां चित्तभूमीनां सर्व प्राणिनां धर्म कदाचित् कस्याचित् बुद्धिभूमावाविर्भवति। ताश्च क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तस्य

---

१ नगेन्द्रनाथ वसु कृत विश्वकोश।

भूमयश्चितस्यावस्थाविशेषा. । तत्र क्षिप्तं रजस उद्रेकादस्थिरं बहिर्मुखतया सुखदु:खादि-विषयेषु विकल्पितेषु व्यवहितेषु संनिहितेषु संनिहितेषु वा रजसा प्रेरितं, तच्च सदैव दैत्य-दानवादीनाम् । मूढं तमस उद्रेकात् कृत्याकृत्यविभागमन्तरेण क्रोधादिभि' विरुद्धकृत्येष्वेव नियमितं, तच्च सदैव रक्ष: पिशाचादीनाम् । विक्षिप्तं तु सत्वोद्रेकाद्वैशिष्ट्येन परिहृत्य दु:खसाधनम् सुखसाधनेष्वेव शब्दादिषु प्रवृत्त, तच्च सदैव देवानाम् । एतदुक्तं भवति । रजसा प्रवृत्ति रूपं तमसा पराकारनियतं, सत्वेन सुखमयं चित्तं भवति । एतास्तिस्त्रश्चिता-वस्था समाधावनुपयोगिन्य । एकाग्र निरुद्धरूपे द्वे च सत्वोत्कर्षाद्यथोत्तरमवस्थितत्वात् समाधावुपयोगं भजेते । सत्वादि क्रम व्युत्क्रमे तु अयमभिप्राय । द्वयोरपि रजस्तमसोत्य-न्तहेयत्वेऽप्येतदर्थं रजस प्रथमुपादनं, यावन्न प्रवृत्तिर्दर्शिता तावन्निवृत्तिर्न शक्यते दर्शयितु-मिति द्वयोर्व्यत्ययेन प्रदर्शनम् । सत्वस्य त्वेतदर्थं पश्चात् प्रदर्शनं यत्तस्योत्कर्षणोत्तरे द्वे भूमीयोगोपयोगिन्याविति । अनयोर्द्वयोरेकाग्र निरुद्धयोर्भूम्योर्यश्चितस्यैकाग्रताख्य परिणाम स योग इत्युक्तं भवति । एकाग्रे बहिर्वृत्तिनिरोध । निरुद्धे च सर्वसां वृत्तीना संस्काराणा च प्रविलय इत्यनयोरेव भूम्योर्योगस्य संभवत ।[1]

अर्थात् निर्मल सत्व परिणाम रूप चित्त की अङ्गाङ्गि भाव परिणाम रूप जो वृत्तिया हैं, उनका निरोध योग है। यहाँ निरोध शब्द का अर्थ बहिर्मुख परिणाम के विच्छेद पूर्वक अन्तर्मुखता के द्वारा विलोम परिणाम से आत्मकरण, परमात्मा मे लय से है। इस प्रकार का निरोध अनेक चित्तभूमि मे से किसी एक चित्तभूमि मेआविर्भूत होता है। ये चित्तभूमिया क्षिप्त (गिरी हुई), मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध आदि विशेष अवस्थाएँ ही हैं। रजोगुण सेउद्रिक्त होकर अस्थिर होना बहिर्मुखता के कारण सुख दु खादि विषयों मे तिरो-हित,समस्त पदार्थों की कल्पना मे प्रवृत्त होना ही क्षिप्त चित्तभूमि है। देवताओ एवं दानवो की नित्य अवस्था यही रहती है। तमोगुण से उद्रिक्त होकर कर्तव्याकर्त्तव्य की परवाह न करते हुए क्रोधादि के द्वारा सदासिद्ध अवस्था है। सत्वगुण के उद्रेक से दु ख साधनो का परित्याग कर शब्द, स्पर्श, गन्धादि सुख-साधनो मे प्रवृत्त रहना विक्षिप्तावस्था है। यह देवो को सदा सुलभ है।

साराश यह है कि—चित्त रजोगुण से प्रवृत्तिरूपमय, तमोगुण से परापकार निरत एव सत्वगुण से सुखमय होता है। चित्त की ये तीनो अवस्थायें अनुपयोगिनी हैं। शेष दो एकाग्रता तथा निरुद्ध चित्तवृत्तियाँ सत्वोत्कर्ष के कारण समाधि के लिए उत्तरोत्तर उपयोगिनी हैं। सत्वादिक्रम के विपरीत वर्णन मे यह अभिप्राय है कि रज-तम दोनों ही अत्यन्त हेय हैं। इसीलिए रजोगुण का ग्रहण पहले किया। जब तक प्रवृत्ति नही दिख-लायी जायगी तब तक निवृत्ति भी नही होगी। इसलिए इन दोनो के विपरीत दिखाया गया। सत्व वर्णन सबसे पीछे इसलिए दिखाया गया कि उसको उत्कर्षणा के लिए

---

१. भोजदेव विरचित राजमार्तण्ड वृत्ति (पातंजल योग-सूत्र समाधिपाद सू० २) चौखम्बा संस्कृत सीरीज कार्या०, विद्याविलास प्रेस, सन् १९३० ई०।

उत्तरोत्तर दोनो भूमिया योग के लिए उपयोगी हैं। एकाग्र तथा निरुद्ध इन उभय मौम भूमियों मे एकाग्रता रूप परिणाम ही योग है। यह एकाग्रता बाह्य-वृत्ति के निषेध तथा सभी वृत्तियो के संस्कारों के प्रविलय (नष्ट) हो जाने पर एक अन्य भूमि पर ही सम्भव है।

वृत्ति का लक्षण

इतने विवेचन के पश्चात् हम वृत्ति का एक सर्वमान्य लक्षण इस प्रकार दे सकते हैं—

उपर्युक्त सभी लक्षणो का निष्कर्ष यह हुआ कि वृत्ति मूलत सक्षिप्त ग्रन्थ (सूत्र या काव्य) की ही टीका होती है। यह भी टीका की भाँति एक प्रकार की व्याख्या होती है। टीका और इसमे एक प्रमुख भेद यह है कि यह प्राय सूत्र ग्रन्थो की ही टीका होती है और यदि अन्य ग्रन्थो पर भी लिखी गयो तो भी इसका स्वरूप सूक्ष्म एवं सक्षिप्त ही रहता है। यह व्याख्या विद्या, व्याख्या विस्तार मे टीका से लघु एवं टिप्पणी की अपेक्षा विस्तृत होती है। इसमे व्याख्येय के प्राय समस्त पदो का भाव दिया जाता है।

वृत्ति की विशेषताएं

(१) वस्तुत वृत्ति प्रथमत सूत्रो पर ही लिखी जाती थी। वृत्ति मे सूत्रो के मर्म की विशद व्याख्या होती थी।

(२) कालान्तर में यह व्याख्या मात्र की द्योतिका हो गयी। अतएव किसी प्रकार की व्याख्या के लिए प्रयुक्त होती है।

(३) इसमे व्याख्य की विस्तृत रूप से सतर्क व्याख्या की जाती है। मुख्य प्रतिपाद्य विषय सम्बन्धित गूढ शब्दों की व्याख्या पर वृत्तिकार सभी दिशाओं से विचार करता है, जैसा कि राजमार्तण्ड वृत्ति के उपर्युक्त उद्धरण मे 'वृत्ति' (चित्तवृत्ति) शब्द की व्याख्या से प्रकट है।

(४) कतिपय वृत्तिया ऐसी मिलती हैं, जो भाष्य से लघु नहीं कही जा सकती, हालांकि लक्षणकारों ने वृत्ति को भाष्य एवं वार्तिक से लघु ही बताया है। परन्तु उक्त कथन अकाट्य नहीं है। सांख्यकारिका पर माठरवृत्ति किसी भी प्रकार भाष्य से कम नहीं है। उसमें प्रत्येक पद की व्याख्या बडी सहेतुक, मार्मिक, विद्वत्तापूर्ण एवं अपने ढंग की निराली है। इस प्रकार हरिहरानन्द की भास्वती वृत्ति एवं धातु पर सायणाचार्य की माधवीय वृत्ति भी बडी ही श्रेष्ठ कोटि की विस्तृत व्याख्यात्मक रचनाएँ हैं।

(५) वृत्ति मे भी टीका की ही भाँति व्याख्या-पद्धति के तत्वो का प्रयोग होता है।

प्रकरण २

वृत्ति विधा और 'मानस' का टीका-साहित्य

अनेक प्रकार की व्याख्या-विधाओं से सम्पन्न 'मानस' के टीका-साहित्य मे एक टीकात्मक ग्रन्थ ऐसा भी मिलता है जिसमें वृत्ति संज्ञक व्याख्या-विधा के लक्षण मिलते

है। एक ग्रन्थ का नाम भी 'शीला' वृत्ति ही है। वृत्ति का लक्षण निरूपित करते समय हम कह चुके हैं कि वृत्ति व्याख्या की यह विधा है, जिसमे सूत्र ग्रन्थो या ऐसे ही संक्षिप्त ग्रन्थो की सरल-सूक्ष्म एवं संक्षिप्त व्याख्या की गयी हो। यह व्याख्या विधा टीका की अपेक्षा कुछ लघु है, परन्तु इसमे टिप्पणी की भाँति मात्र विषम पदों का ही व्याख्यान नहीं होता, यद्यपि यह भी टिप्पणी की भाँति टीका की भी टीका के रूप मे हो सकती है।

'मानस' की शीला वृत्ति—

जहाँ 'मानस' पर लिखित स्वामी हरिदास जी कृत 'शीला' वृत्ति का प्रश्न है, उसमे भी 'मानस' के किन्हीं-किन्हीं विशेष स्थलो की एक सामान्य सी व्याख्या दी गयी है। इस प्रकार यह भी वृत्ति के लक्षणो के अनुसार संक्षिप्त व्याख्येय की संक्षिप्त एवं सूक्ष्म व्याख्या ही है, जैसा कि शीला वृत्ति के निम्नांकित उद्धरण से व्यक्त हो रहा है।

मूल—जद्यपि सम नहिं राग न दोषू। गहहिं न पाप पुण्य गुण दोषू।
तदपि करहि सम विषम अहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुमारा॥

वृत्ति—यद्यपि श्री राम जी सम है सब मे टिके, काहू सो राग रोष नही गुणदोष नहीं गहते तदपि सम विषम विहार करते भक्त अभक्त हृदय के अनुसार प्रह्लाद को रक्षा किए अरु हरिणाकुश के उदर फारि डारे यह विषम व्यावहार है।'[1]

वृत्तिकार ने उपरोक्त दो दोहो के पश्चात् इस एक अर्द्धाली का एक सामान्य सा अर्थ कर दिया है। उसने उक्त चौपाई का मात्र अक्षरार्थ या अन्वयार्थ ही किया है। हाँ, उसने 'भक्त' एवं 'अभक्त' के प्रति भगवत के सम विषम व्यावहार के स्पष्टीकरण के लिए भक्त प्रह्लाद एवं हिरण्य कश्यप के उदाहरण प्रस्तुत कर दिये हैं।

---

१. शीला वृत्ति, द्वितीय संस्करण, पृ० ३४३-४४।

प्रकरण १

टिप्पणी

परिभाषा

टिप्पणी की परिभाषा देते हुए वाचस्पत्याभिधानकार ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

'टिप्पणी-स्त्री-टिप्-क्विप्-टिपा पन्यते स्तूयते पन् घञर्थे
के गौरा० ङीप् । टीकायाम् । सा च टीका, गदाधर कृता च ।'

(टिप् धातु मे क्विप् प्रत्यय लगाने से टिप् शब्द हुआ । 'टिप्' के द्वारा जिसका पणन् (स्तवन) हो, उसका नाम टिप्पण है । 'गौर' आदि शब्दो से ङीप् प्रत्यय करके जैसे स्त्री लिंगवाची शब्द बनते हैं, वैसे ही टिप्पण शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय करने से टिप्पणी शब्द बना । यह टीका तथा व्याख्या का ही एक प्रकार का भेद है । जैसे चिन्तामणि टीका, दीधिति व्याख्या आदि ।)

टिप्पणी के विषय मे आप्टे का कथन है कि—

"A Gloss, a comment some time used in the sense of a Gloss on Gloss as Kayyat's commentary on the "Mahabhashya" or Nego-Jibhatta's Gloss on Kayyat's Gloss"

अर्थात् टिप्पणी एक प्रकार की टीका है, कभी-कभी इसका अभिप्राय एक टीका की टीका, से भी लिया जाता है । जैसे महाभाष्य के ऊपर कयूयट की टिप्पणी और नागोजी भट्ट की टिप्पणी कयूयट की ही उपर्युक्त टीका पर ।

श्री आद्याप्रसाद मिश्र टीका के लक्षणों की व्याख्या इन शब्दो मे करते हैं—

'टिप्पणी (टिप्+क्विप् टिपा, सा पण्यते स्तूयते इति टिप्पणी टिपा पण् अच्) ।

(क)—१ संक्षिप्त टीका विषम स्थलो का व्याख्यान । २. टीका की टीका जैसे महाभाष्य की कयूयट कृत प्रदीप टीका की नागेश कृत उद्योत टिप्पणी)

(ख)—हिन्दी मे टिप्पणी शब्द, प्राय अंग्रेज़ी के नोट शब्द का अर्थ देता है । 'टीक', 'टीका' के साथ समास (टीका टिप्पणी) के रूप में प्रयुक्त होने पर आलोचना, दोष दर्शन, छिद्रान्वेषण, या नुक्ताचीनी का अर्थ देता है ।

(ग)—इसके पर्याय टीका, वृत्ति, व्याख्या इत्यादि शब्द हैं । व्याख्या विस्तृत होती है । टीका भी टिप्पणी की अपेक्षा विस्तृत ही कही जायगी ।

टिप्पणी तो टीका की टीका है। उसके दुरूह और अस्पष्ट स्थल को सरल और स्पष्ट करती है।'[1]

दीपिका, दीपिनी, टिप्पणी का निम्न उदाहरण टिप्पणी की विशेषता को व्यक्त कर रहा है —

मूल—'भूताना देवचरितं दु खाय च सुखाय च ।
सुखायेवेहि साधूनान्त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥५॥'[2]

(श्रीधरकृत) भावार्थ दीपिका-देवैरपिमहतामुपमानमनुचितमित्याह-भूतानामिति । देवाना चरितमतिवृष्ट्यादि भूताना दु खायाऽपि भवति त्वादृशां त्वया सदृशानाम् अच्युते आत्मा येषा तेषा ॥५॥

उपर्युक्त भावार्थ दीपिका पर राधारमण गोस्वामी कृत दीपिका, दीपिनी, टिप्पणी—'उपमानं, सादृश्य'[3]

(भावार्थ दीपिका-महात्माओ की तुलना देवताओ से करना अति अनुचित है, क्योंकि देवता के द्वारा अतिवृष्टि आदि दु ख होते हैं, पर आप जैसे महात्मा से, जिनकी आत्मा सदा भगवान से लगी है, (केवल) सुख ही सुख होता है।)

दीपिका, दीपिनी, टिप्पणी—
उपमानं उपमा देने का तात्पर्य सादृश्य दिखलाना है।

टिप्पणी का लक्षण

विविध विद्वानो द्वारा विहित टिप्पणी के उपर्युक्त लक्षणो एवं उद्धरणो को देखते हुए उसके सामान्य लक्षण के रूप मे हमारी निम्नलिखित धारणा बनती है—

टिप्पणी वह संक्षिप्त टीकात्मक ग्रन्थ है, जिसमे मूल ग्रन्थ या टीकात्मक ग्रन्थ के क्लिष्ट अंशो की सरल व्याख्या की गयी हो। यह व्याख्या विधा की सबसे लघु शैली है।

टिप्पणी की विशेषताएँ

(१) टिप्पणी व्याख्यान वस्तु के दुरूह पदो के व्याख्यार्थ लिखी गई संक्षिप्त टीका होती है।

(२) यह टीका, व्याख्या, विवृत्ति, वृत्ति आदि के ही समानान्तर चलती है, अपितु उनकी पर्याय ही है। परन्तु यह लघुतम व्याख्या विधा है।

(३) हिन्दी में 'टिप्पणी' शब्द अंग्रेजी के 'नोट' शब्द का वाचक है।

(४) टिप्पणी शब्द आलोचना के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ३११।

२. भागवत (अष्ट टीका का सहित) एकादश स्कंद, अध्याय २, श्लोक ५।

३. वही।

(५) संस्कृत-साहित्य में टिप्पणी मूल एवं टीकात्मक दोनो प्रकार के ग्रन्थो पर होती है।

प्रकरण—२

व्याख्या की टिप्पणी विधा और 'मानस' का टीका-साहित्य—

मानस' के समृद्ध टीका-साहित्य मे व्याख्या की अन्य विधाओ के समान टिप्पणी शैली के भी कुछ टीकात्मक ग्रन्थ मिलते हैं। टिप्पणी का लक्षण बताते हुए पूर्वत हम यह निवेदित कर चुके हैं कि टिप्पणी मूल एव टीकात्मक ग्रन्थो के विषय तथा अस्पष्ट स्थलो की व्याख्या होती हैं। जहाँ तक 'मानस' के टिप्पणी-साहित्य का प्रश्न है, उसमें मूल (मानस') एव ('मानस' के) टीकात्मक दोनों प्रकार के ग्रन्थो पर लिखित टिप्पणियाँ मिलती हैं। इस प्रकार 'मानस' के टिप्पणी-साहित्य को दो वर्गों म बांटा जा सकता है। एक वर्ग में मूल पर लिखित टिप्पणियाँ आती हैं और दूसरे वर्ग मे 'मानस' के टीकात्मक ग्रन्थो पर लिखित टिप्पणियाँ समाविष्ट हैं।

१—मूल ('मानस') पर लिखित टिप्पणियाँ—

'मानस के विविध व्याख्येयो पर लिखित टिप्पणियो मे बाबा रामबालकदास कृत 'मानस' टिप्पणी तथा मानस पीयूष में प्रकाशित पं० रामकुमार जी, प्रज्ञानानन्द जी सरस्वती प्रोफेसर, रामदास गौड, पं० रामकुमार दास 'रामायण' तथा स्वयं 'मानस पीयूषकार' के टिप्पण-विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ हम 'मानस' पर लिखित रामबालकदास कृत 'मानस'—टिप्पणी में प्राप्त 'टिप्पणी विधा' के शास्त्रीय लक्षणों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं—

'मानस' टिप्पणी—अयोध्या की बडी छावनी के सुप्रसिद्ध व्यास श्री बाबा रामबालकदास ने रामायणियो के बोधार्थ 'मानस' के विभिन्न प्रकरणों के विषम एवं महत्त्वपूर्ण पदों की टिप्पणियाँ लिखी हैं। इस तथ्य का उद्घाटक एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल—राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँति॥

टिप्पणी—१. लहर।

२. जैसे उस मानस में बहु प्रकार की मछली है तैसे इस मानस मे धारि जाति की, कवित्त, की, है, सोई, बहु भाँति, की मछरी है, १.

धुनिकाव्य १, अवरेब काव्य २, गुन काव्य, जाति काव्य ४।

अब हम उनके द्वारा 'ध्वनि' काव्यांग पर लिखित विस्तृत टिप्पणी उद्धृत करते हैं—

'धुनि काको कहे शब्दार्थ मिलो धुनि ॥ यथा ॥ बरन अर्थ ते अधिक जहँ उपजावे बहु बात। धुनि ताको कहत है जाको मत अवदात ॥ इति तुलसी भूषने ॥ यथा पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। अस कहँ मन बिहँसी इक आली ॥ पुन गोतमतिय गति सुरति करि नही परसति पगपानि। मन बिहसे रघुवंश मनि प्रीति अलौकिक जानि। पुन राम सप्रेम कहा मुनि पाही। नाथ कहिअ हम कैहि मग जाही ॥ इत्यादि। बचन सो धुनि काव्य जाने सो इस काव्य मे बडी मीन सउरी पढिन रोहू आदि है जैसे बडी मीन जल के भीतर रहत है तैसे धुनि शब्द के भीतर रहत है भेदी जानत है।'[1] यहाँ पर टीकाकार ने मूल मे कतिपय मुख्य शब्दो 'लहर' एवं 'ध्वनि' आदि पर ही टिप्पणी की है।

टीकात्मक ग्रंथो की टिप्पणियाँ—

श्री संतसिंह पजाबी द्वारा लिखित भावप्रकाश और पं० शेषदत्त जी की टीका—मानसप्रबोधिनी पर टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं। भावप्रकाश टीका की टिप्पणियो के रचयिता बाबू रामदीन जी और महादेव प्रसाद जी हैं। इन लोगो ने भावप्रकाश टीका के उन कुछ विशिष्ट स्थलो पर टिप्पणियाँ लिखी हैं जो अस्पष्ट हैं। श्री शेषदत्त जी की 'मानस' प्रबोधिनी टीका पर बाबू चण्डीप्रसाद द्वारा लिखित टिप्पणी विस्तृत है। उस टिप्पणकार ने अपने भावो के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट टीकाकारो—रामचरणदास करुणासिन्धु, बाबा हरिहर प्रसाद इत्यादि—के भी टीकात्मक भावो को उद्धृत किया है। इस तथ्य पर हम इस प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड मे विस्तार से विचार करेंगे।

यहाँ हम भाव प्रकाश टीका पर लिखित टिप्पणी से एक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए 'मानस' की टीकाओ पर हुई टिप्पणियो की व्याख्या पद्धति का दिग्दर्शन करायेंगे—

मूल— सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥

भावप्रकाश टीका—'कीश मुनीस बनो मोही रहते हैं सो इहाँ सीताराम चन्द्र के गुण समूह ही मयेपवित्र बने तिनो मे बुद्धि के संचार करण कर भया जिनको विशुद्ध विज्ञान ऐसे जो वालमीकि अरु हनुमत जो है तिनको अहं वन्दे। टिप्पणी—'कीश' का अर्थ बानर।[2]

यहाँ टिप्पणकार ने 'भावप्रकाश टीका मे दिए गए 'कीश' शब्द का सरलार्थ 'बानर' कर दिया। कहीं-कहीं पर टिप्पणकार ने 'मानस' के उन पदो का भी अर्थ किया है, जिन्हें भावप्रकाशकार ने छोड दिये हैं जैसे

मूल— 'सकुच बिहाय मागु नृप मोही।
मारे नहि अदेय कछु तोही ॥

१—रामबालक दास कृत मानस टिप्पणी, प्र० स०, पृ० ७० (बालकाड)।
२—भावप्रकाश टीका (सटिप्पण) प्र० सं०, पृ० ४, बालकाड।

भावप्रकाश टीका—हे नृप अगमता की सग त्याग कर नृसक माग जाते ऐसी कोऊ वस्तु नही जो मैं तुमको न देवो। तब भगवान की कृपा आपने पर देखि के साभिप्राय सम्बोधन देता हुआ राजा अपणा प्रयोजन करता है।

टिप्पणी—'सकुच छोड के नृप मुझसे माग वा मुझको माग प्रभु अतरयामी है, इसो से ऐसा कहा।'[१]

'भावप्रकाशकार' ने 'सकुचविहाय' पदो का अर्थ नहीं किया था। अत टिप्पण-कार ने अपनी टिप्पणी मे इसके अर्थ-अभिप्राय को स्पष्ट कर दिया।

१—वही, पृ० २२५ (बालकांड)।

अध्याय ८

प्रकरण १

कारिका

परिभाषा

बृहद्वचस्पत्यअभिधानकार ने कारिका की परिभाषा करते हुए लिखा है—

कारिका (स्त्र कृ० भावे ण्वुल्)

'विवरणश्लोके अल्पाक्षरेण बह्वर्थज्ञापक श्लोकभेदे ।'[1]

अर्थात् कारिका श्लोको का वह भेद है जो विवरणात्मक हो और अल्प अक्षरों से बहुत अर्थो का ज्ञान कराता हो ।

बृहद् हिन्दी शब्द कोश तथा हिन्दी शब्द सागर मे इसे स्पष्ट रूप से श्लोकबद्ध व्याख्या कहा गया है ।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का अभिमत है कि सिद्धान्त मात्र का जिसमे प्रदर्शन हो, उसे कारिका कहते हैं । उनका आगे कहना है कि 'वार्तिक और कारिका के सिवाय बाकी जितने हैं, उसको यहाँ साधारण शब्द टीका द्वारा प्रकट किया गया है ।'[2]

तात्पर्य यह है कि वे इन दोनो विधाओ को टीका सामान्य शब्द से अवश्य कुछ परे रखते हैं, परन्तु उनके मत से कारिका भी व्याख्या के विस्तृत आयाम मे ही स्थान पाती है ।

अंग्रेजी-संस्कृत कोशकार वी० एस० आप्टे ने भी बहुत कुछ प्राचीन आचार्यों के समान ही लिखा है कि—

'A memerial verse or a collection of such verses or gramatical, philosophical, scientific subjects eg Bhartiharis' Karikas on Greammer'

अर्थात् कारिका स्मरण करने योग्य वे पद या श्लोक हैं, जो व्याकरण, दर्शन एवं वैज्ञानिक विषयो पर लिखे गये हो, जैसे भर्तृहरि द्वारा व्याकरण पर लिखी गई कारिकायें ।

हेमचन्द्र के अनुसार कारिका की परिभाषा निम्नलिखित है—

'कारिका तुस्वल्प वृतौ बह्वोरर्थस्य सूचनी' इति हेमचन्द्र ।'[4]

---

१. वाचस्पत्यअभिधान पृ० १९४३ (प्र० सं०) ।

२ हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १२ पाँचवीं बार, बम्बई ।

३ अंग्रेजी-संस्कृत कोश, आप्टे कृत ।

४ अभिधानचिन्तामणि, देवकाण्ड २।२५८ ।

अर्थात् कारिका उस छोटी वृत्ति को कहते हैं, जो बहुत से अर्थों का बोध कराती है।

आद्याप्रसाद मिश्र कारिकाओं के लक्षण एवं स्वरूप पर विचार करते हुए लिखते हैं कि।

'कारिका—(कृ + ण्वुल (अक) स्त्री प्रत्यय आ)

(क) साधारण अर्थ— १—क्रिया, कार्य।
२—नटी, नर्तकी।
३—शिल्प, वाणिज्य, व्यापार।
४—यातना, रोग।

(इस अर्थ में इस शब्द की व्युत्पत्ति कृ (हिंसार्थक) ण् वुल कर्तरि स्त्री प्रत्यय 'आ' होगा और इस विग्रह 'कृणान्ति हन्ति इति कारिका' इस प्रकार होगा।)

५—रोग, नाशिका, कैंटकारि (सुश्रुत)

(कृणान्ति हन्ति रोगमिति कारिका-व्युत्पत्ति सं० ४ की भाँति)।)

(ख) विशेष अर्थ—दर्शन, व्याकरण, साहित्य आदि शास्त्रों पर लिखे गए एवं थोड़े शब्दों में बहुत सा शास्त्रार्थ व्यक्त करने वाले श्लोक विशेष। छन्दोबद्ध होने से इन्हें स्मरण करना सरल होता है। कारिका में पद्य की भाँति स्मरण करने तथा सूत्र की भाँति अधिक बातों को थोड़े शब्दों में कहने की सुविधा होती है। (राहुल सांकृत्यायन कृत बौद्ध दर्शन, किताब महल, पृ०६३)।

संस्कृत का कारिका साहित्य बहुत विशाल, साथ ही साथ बड़ा गंभीर एवं महत्वपूर्ण है। नागार्जुन की माध्यमिक कारिकायें जो शून्यवाद (वस्तु शून्यता) की प्रतिपादक हैं, कारिका शैली की सर्वाधिक प्राचीन प्रतिनिधि हैं। माध्यमिक कारिका के अतिरिक्त नागार्जुन की 'युक्तिषष्ठिका' तथा 'विग्रहव्यावर्तिनी' एवं शून्यता सप्तति नामक कृतियां भी कारिका शैली में ही हैं। नागार्जुन (ई० द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्ध) को इस शैली का प्रवर्तक कहा जाता है। नाट्यशास्त्र पर भरत मुनि की कारिकायें जो भरत सूत्रों के नाम से अभिहित हैं, अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। मौलिक कारिकायें संभवत: नागार्जुन की कारिकाओं से प्राचीन हैं। इनके अतिरिक्त सांख्य शास्त्र पर ईश्वर कृष्ण (ई० द्वितीय या तृतीय शताब्दी) की सांख्य कारिका (सांख्य सप्तति) व्याकरण शास्त्र पर भर्तृहरि की कारिकायें, साहित्य शास्त्र पर मम्मट की १४३ कारिकायें जिन पर स्वरचित वृत्ति है, और सम्पूर्ण ग्रन्थ साहित्य शास्त्र में काव्य प्रकाश के नाम से सर्व प्रसिद्ध है तथा न्याय शास्त्र पर विश्वनाथ न्याय पंचानन की कारिकावली, जिसका दूसरा नाम 'भाषापरिच्छेद' भी है, एवं जिस पर ग्रन्थकार की स्वरचित वृत्ति न्याय-मुक्तावली के नाम से दर्शन साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है, इत्यादि ग्रन्थ संस्कृत के कारिका-साहित्य के अमूल्य अंश हैं[१]।'

---

१ हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लि०, प्र० बार, पृ० २२४।

कारिका का उदाहरण

मूल मंत्र—जागरितस्थानो बहि प्रज्ञ सप्ताग एकोनविंशति मुख.
स्थूल भुग्वैश्वानर प्रथम पाद. ॥२॥[1]

अर्थात् जाग्रत अवस्था जिसका (अभिव्यक्ति) स्थान है, जो बहिष्प्रज्ञ (बाह्य विषयो का प्रकाशन करने वाला) सात अंगो वाला, १६ मुखो वाला और स्थूल विषयो का भोक्ता है, वह वैश्वानर पहला पाद है।)

बहिष्प्रज्ञ पद की व्याख्या करते हुए संस्कृत साहित्य के महारथी कारिकाकार गौडपाद ने निम्नलिखित कारिका लिखी है—

(अत्रैते श्लोकोभवति)
'बहिष्प्रज्ञोविभुर्विश्वोह्यन्त प्रज्ञस्तुतैजस.।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधास्थित ॥१॥'

अर्थात् विभु विश्व बहिष्प्रज्ञ है, तैजस अन्त प्रज्ञ है तथा प्राज्ञ घनप्रज्ञ है (प्रज्ञानघन है)। इस प्रकार एक ही आत्मा तीन प्रकार से कहा जाता है।

कारिका का लक्षण

उपर्युक्त उद्धरणो के आधार पर हम कारिका की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं—

'कारिका सूत्रात्मक ढग से लिखी गई वह श्लोकबद्ध व्याख्या-पद्धति है, जिसके द्वारा उपजीव्य ग्रन्थ के व्याख्येय विशेष का बहुत सा अर्थ विज्ञापित हो।'

इस व्याख्या विधा मे टीकाकार मूल विषय का व्याख्यान स्वतन्त्र ढंग से करता है। वह व्याख्येय के प्रतिपद का व्याख्यान करने के लिये बाध्य नहीं है। कारिकाकार केवल मूल के अभिप्राय का अपने मौलिक विचारो एवं भावो के रूप मे प्रस्तुत करता है।

कारिका की विशेषताएँ

१—कारिका मे किसी विषय के समग्र ज्ञान को थोडे शब्दो मे अनुस्यूत कर प्रकट किया जाता है।

२—सूत्रात्मक स्वरूप मे होने के नाते यह शीघ्र कण्ठस्थ की जा सकती है।

३—सूत्रात्मक एवं बहुअर्थ-गर्भित होने के कारण यह स्वयं व्याख्या सापेक्ष होती है।

४—कारिकाओं मे सामान्यत सिद्धान्त प्रतिपादित रहता है।

५—कारिका शैली ग्रन्थकार के ज्ञान की कसौटी होती है। इसकी सामासिक शैली मे सारा पाण्डित्य प्रतिभासित होता है। गौडपाद, ईश्वर कृष्ण एवं मम्मट कृत कारिकायें इसी तथ्य का उद्घाटन करती हैं।

---

१. माण्डूक्योपनिषद् (गौड पाद-कारिका सहित), १।१।

६—कुछ विद्वान कारिका को टीका पद्धति में न रखकर इसे स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रन्थ घोषित करते हैं। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि कारिका ग्रंथ स्वतंत्र रूप से सिद्धान्त ग्रन्थ होते हुए भी अपने उपजीव्य विषयों का व्याख्याता भी होता है, जैसे काव्यप्रकाश पर मम्मट की कारिकायें तो श्लोक-शैली में लिखित एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में हैं और दूसरी ओर माण्डूक्य उपनिषद् पर लिखित गौड़पाद की कारिकायें तो माण्डूक्य उपनिषद् के तत्वों की सूत्र शैली-बद्ध व्याख्यायें हैं।

प्रकरण—२

व्याख्या 'कारिका' विधा और 'मानस' का टीका-साहित्य

व्याख्या की विविध विधाओं के अन्तर्गत कारिका शैली का भी अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है। कारिका के लक्षण पर विचार करते हुए पिछले पृष्ठों पर हम विवेचित कर चुके हैं कि व्याख्या की इस शैली के अन्तर्गत 'सूत्र' शैली परक श्लोक *विस्तृत अर्थ से युक्त रहते हैं। इन श्लोकों में बहुत सा भाव गर्भित रहता है।* व्याख्या की इस कारिका शैली के दो टीकात्मक ग्रंथ मानस के टीका-साहित्य के अन्तर्गत मिलते हैं ये दोनों ग्रंथ हैं—'मानस अभिप्राय दीपक' और 'मानस मयंक'। इन दोनों के रचयिता पं० शिवलाल जी पाठक हैं। इन दोनों ग्रंथों के अन्तर्गत सूत्र शैली में 'मानस' के विविध प्रकरणों के भाव आबद्ध हैं। पाठक जी ने 'मानस' सम्बन्धी अपने विलक्षण भावों को दोहे सदृश सामासिक शैली के छंद में अनुबद्ध कर दिया है। हिंदी का यह दोहा छंद संस्कृत की श्लोक शैली के ही अनुरूप होता है। कारिका शैली के इन दोनों ग्रंथों पर दो व्याख्या (वार्तिक) ग्रंथ पाठक जी के ही दो प्रशिष्यों द्वारा लिखित हैं। मानसमयंक पर बाबू इन्द्रदेव नारायण सिंह कृत 'मानस' मयंक चन्द्रिका नामक वार्तिक है तथा मानस-अभिप्रायदीपक पर जानकी शरण स्नेहलता द्वारा मानसअभिप्रायदीपकचक्षु संज्ञकवार्तिक व्याख्या लिखी गयी है।

इन व्याख्याकारों ने भी पाठक जी कृत उपर्युक्त दोनों टीकात्मक ग्रंथों को सूत्र शैली में आबद्ध बहुअर्थज्ञापक (कारिका शैली परक) व्याख्या ही माना है।[1] ये दोनों ग्रंथ एक ही शैली में एक ही व्यक्ति के द्वारा लिखे गए हैं। अतः इनमें से किसी के भी कारिका शैली के विज्ञापक एक उद्धरण से उनकी व्याख्या शैली का परिचय मिल सकता है। हम यहाँ पाठक जी कृत 'मानस' के प्रथम टीकात्मक ग्रन्थ 'अभिप्रायदीपक' से एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूल— तव प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी।
तव रिपु नारि रुदन जलधारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥

---

1. मानसमयंक चन्द्रिका, प्रथम सं० श्री बाबू इन्द्रदेवनारायण द्वारा लिखित भूमिका पृ० १०।

अभिप्राय दीपक दोहा—

कन सोखे लखि सिंधु ढिग, मरे धीग कर जानि।
हरषे कीश पसार कर, करे दीठ जुग मानि॥

दोहा—(अभिप्राय दीपक चक्षु)—

मूल का भाव यह है कि—हनुमान जी ने कहा कि हे प्रभु ! आपके प्रताप रूपी बडवाग्नि से यह जल सागर पहिले ही सूख गया था, परन्तु आपके शत्रु की स्त्रियों के रोने की जल धारा से वह फिर भर गया। इसी से वह खारा हो गया, इस अत्युक्ति[1] को सुनकर कपि गण हर्षित हुए। इसी भाव पर दीपककार कहते हैं—(कन सोखे लखि सिंधु ढिग) जिन श्री रामचन्द्र जी के कण मात्र प्रताप से समुद्र सूख गया वह स्वयं समुद्र के निकट विद्यमान हैं तो इस समुद्र के लिए चिन्ता क्या ? सूखा ही हुआ है। (मरे धीग कर जानि) और राक्षस गणों को मरे तुल्य जानकर कपि गण हर्षे। (पसार-कर) विस्तार सृष्टि कर्ता ब्रह्मा अर्थात् जामवन्त (करे दीठ जुग मानि) दोनों सागरों को मानकर दृष्टि किया भाव दोनों की हस्ती मानी। परन्तु हनुमान जी ने श्री राम प्रताप से दोनों का अभाव माना।'[1]

कारिका शैली में लिखित, 'मानसअभिप्राय दीपक' के एक ही दोहे में इतना अधिक भाव गर्भित है। दोहे का इतना विस्तृत भाव 'मानस अभिप्रायदीपकचक्षुकार श्री जानकीशरण स्नेहलता द्वारा उद्‌घाटित किया गया। उपर्युक्त उद्धरण के द्वारा भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि 'मानस अभिप्रायदीपक', 'बहु अर्थ' प्रकाशक व्याख्या-विधा की 'कारिका' शैली के ही अन्तर्गत लिखा गया है।

---

१. उपर्युक्त प्रसंग में अत्युक्ति अलंकार है जिसका लक्षण यह है, यथा—

दो॰ जहाँ दीजिये योग्य को, अधिक योग्य ठहराइ।
अलंकार अत्युक्ति तेहि, वर्णत हैं कविराइ॥

परन्तु यहाँ सन्देह होता है कि हनुमान जी ने झूठा क्यों कहा ? इस संदेह के निवारणार्थ पाठकजी ने मानस मयंक में कहा है यथा—

पय निधि सोखे के हिये, अति उक्ती ठहराइ।
रघुनन्दन पावक समर, नारद बच दरसाइ॥
(म॰ लं॰ दो॰ १६)

अर्थात् अत्युक्ति के अभ्यन्तर (नारद बच) नारद पंचरात्र कथित श्रीराम-चन्द्र जी और अग्नि के युद्ध का कथन किया है और युद्ध में अग्नि का शिर भगवान के चन्द्र से कटकर समुद्र में गिरा और जल सूख गया। तब अग्नि की स्त्री स्वाहा पति के मरने से विलाप करने लगी। उसके आँसू से समुद्र फिर भर गया। अतएव जल खारा हो गया। इस कारण हनुमान जी की उक्ति सत्य है।'
(—मानस अभिप्राय दीपक सटीक, प्र॰ सं॰, पृ॰ ३२२-२३।)

१. मानस अभिप्राय दीपक सटीक प्र॰ सं॰ पृ॰ ३२२-२३।

प्रथम खण्ड

मानस की टीकाओं का ऐतिहासिक परिचय

द्वितीय खण्ड

काल-विभाजन

रामचरितमानस का टीका-साहित्य लगभग उतना ही प्राचीन है, जितना स्वयं रामचरितमानस। पीछे पृष्ठभूमि मे इस तथ्य पर विस्तृत रूप से विचार किया जा चुका है कि किस प्रकार तुलसीदास और उनके शिष्यो 'मानस' के प्रणयन के पश्चात् ही उसके सम्यक् प्रचारार्थ उसका कथन-व्याख्यान बहुत ही सशक्त रूप से प्रारंभ कर दिया। उनके शिष्यो एव हितैषियो ने मुख्य रूप से 'मानस' की प्रतिलिपियाँ एव टीकाएँ रचकर भी इस प्रचार कार्य को सवर्द्धित किया।

'मानस' के सम्पूर्ण टीका-साहित्य मे तीन ऐसी टीकाएँ मिलती हैं, जिनकी रचना गोस्वामी जी के समकालीन टीकाकारो द्वारा हुई है। इनमे से एक टीका गोस्वामी जी के शिष्य रामू द्विवेदी कृत प्रेमरामायण है, दूसरी टीका गोस्वामी जी के प्रशंसक[1] एवं तत्कालीन प्रसिद्ध अद्वैती विद्वान श्री मधुसूदन सरस्वती कृत मानसनिरूपिणी है और तीसरी टीका गोस्वामी जी के ही अन्य शिष्य श्री किशोरी दत्त जी कृत मानससुबोधिनी है। ये तीनो टीकाएँ पद्यबद्ध हैं। इनमे मुख्य अन्तर यही है कि प्रथम दो टीकाएँ सस्कृत भाषा मे है, जब कि मानससुबोधिनी दोहे छद मे आबद्ध हिन्दी भाषा मे रचित है।[2] इन तीनो टीकाओ म मानसनिरूपिणी एव मानससुबोधिनी अभी तक अप्राप्य ही हैं। मात्र प्रेमरामायण टीका के भी तीन ही काड—अयोध्या, किष्किंधा एव सुन्दर प्राप्त होते हैं।[3] प्रेमरामायण टीका के रचनाकाल का कोई अंतरंग या बहिरग साक्ष्य नही मिलता है, परन्तु इसके सुन्दर काड की प्रथम अनुलिपि सवत् १६६२ मे हुई है।[4] यह अनुलिपि काशिराज के पुस्तकालय (रामनगर) मे सुरक्षित है।[5] जब इस काण्ड का अनुलिपि-काल सवत् १६६२ विक्रमी है, तब इसकी रचना इसके कुछ वर्षो पूर्व हुई थी। अनुमानत प्रेमरामायण का रचना-काल सवत् १६६० वि० के आस-पास ठहरता है।

---

१. 'आनन्दानने ह्यस्मिञ्जगमस्तुलसीतरु।
कविता मञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥'

२ द्रष्टव्य मानस के प्रारंभिक काल की टीकाओं परिचय, खड २।

३ आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'मानस' के काशिराज सस्करण की भूमिका।

४ वही, भूमिका।

५. 'मानस' के काशिराज संस्करण की भूमिका।

जब तक कोई अन्य टीका इसके पूर्व को हमे नही मिल जाती है, तब तक हम प्रेम-रामायण को ही 'मानस' को प्रथमलिखित टीका मान सकते हैं।

सम्प्रति हमारे समक्ष 'मानस' की टीकाओ के ऐतिहासिक विवेचन के लिए प्रेमरामायण के रचना-काल से लेकर आज तक का लगभग तीन सौ साठ वर्षों का इतिहास प्रस्तुत है। यह समस्या उठती है कि हम 'मानस' के टोका साहित्य के इस ३६० वर्षों के इतिहास का काल विभाजन किस अधार पर करें। यदि मानस' के सम्पूर्ण टीकासाहित्य का आलोडन किया जाय तो उसमे विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर रचित टीकाओं के भिन्न भिन्न प्रकार के समुदाय मिलेंगे। साथ ही यहाँ एक तथ्य यह भी स्मरण रखने योग्य है कि टीकाओं की रचना की ये प्रवृत्तियाँ ऐतिहासिक कालानुक्रम के अनुसार ही समय-समय पर परिवर्तित होती रही। 'मानस के टीका-साहित्य का ऐतिहासिक काल विभाजन इन विशेष प्रवृत्तियो के आधार पर ही करना समीचीन होगा।

हमे 'मानस' के सम्पूर्ण टीका-साहित्य मे प्रधान रूप से निम्नलिखित तो प्रवृत्तियाँ व्याप्त दृष्टिगत होती हैं—

१—आध्यात्मिक या भक्तिपरक प्रधान टीका रचना की प्रवृत्ति—यह प्रवृत्ति 'मानस' की टीका रचना के प्रारम्भ से लेकर विक्रम संवत् १९०० तक 'मानस' के टीका-साहित्य मे प्रधान रूपेण परिलक्षित होती है।

२—'व्यास' प्रणाली की टीका रचना प्रवृत्ति—'मानस' के टीका-साहित्य म इस प्रवृत्ति का दर्शन सवत् १९०० विक्रमी से लेकर संवत् १९५० वि० तक मिलता है।

३—साहित्य प्रधान टीका रचना प्रवृत्ति—इस प्रवृत्ति का दर्शन मुख्यतया सवत् १९५० वि० से लेकर आज तक की रचित टीकाओं मे होता है।

उपर्युक्त काल विभाजन-व्यवस्था के अनुसार हम उक्त तीनो प्रवृतियो के कालो का नाम इस प्रकार भी रख सकते हैं—

१—'मानस' के टीका-साहित्य का प्रारम्भिककाल (स० १६६० वि० से १९०० वि०)।

२—मध्यकाल (स० १९०० वि० से सं० १९५० वि०)।

३—आधुनिक काल (स० १९५० वि० से आज तक)।

'मानस' के टीका-साहित्य का प्रारम्भिक काल

(सामान्य परिचय)

जिस काल म, 'मानस' के टीका-साहित्य का आविर्भाव हुआ, उस हिन्दी-साहित्य का भक्ति काल कहते हैं। 'मानस' की टीका-रचना विक्रम की १७ वीं शताब्दी के तीसरे चरण से प्रारम्भ होती है। उस समय सम्पूर्ण भारत भक्ति की पावन पयस्विनी मे आकठ मग्न हो, भगवत चिन्तन म लीन था। भारत मे भक्ति-युग का यह वह समय था, जब निर्गुण ब्रह्म की ध्यानोपासना निरन्तर मंद होती जा रही थी और राम एवं कृष्ण की आराधना

के रूप मे ब्रह्म की सगुणोपासना दिनोंदिन सशक्त हो रही थी । सूर एव तुलसी ने क्रमश कृष्ण एवं राम के सगुण रूप का, जो भव्य, उत्कृष्ट, मन रजक एवं लोक रजक चित्रण अपने काव्यो मे किया, उससे सारे उत्तरी भारत की जानता अभिभूत हो उठी । वह राम-कृष्ण की सगुणाराधना की ओर उन्मुख हो गयी ।

जहाँ तक रामभक्ति का प्रश्न है, उसके प्रवर्तन का श्रेय स्वामी रामानंद जी को है परन्तु राम की सगुणोपासना का पूर्ण विकास महात्मा तुलसीदास के ही द्वारा हुआ । राम भक्ति के अमर गायक महाकवि सन्त तुलसीदास ने अपने इष्टदेव के नाम रूप, लीला-धाम का उत्कृष्टतम चित्रण रामचरितमानस मे किया । रामचरितमानस म निरूपित, भगवान राम के आदर्श भगवत-स्वरूप की ओर समस्त राम भक्ति जनता की वृत्ति उन्मुख हुई । उसे रामचरिमानस म तुलसीदास द्वारा निरूपित भक्ति पद्धति, अपने इष्टदेव राम तक पहुँचने के लिए राजपथ सदृश प्रतीत हुई । तुलसीदास द्वारा प्रवर्तित भक्ति पद्धति के प्रति राम भक्तो का इतना अधिक आकर्षण बढा कि वे स्वय, तुलसीदास के अनुगामी बन गये और उन्हीं के साथ रामभक्ति के प्रचार प्रसार मे लग गये ।

राम भक्ति के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ 'मानस' के प्रणयन के पश्चात् उसमे निरूपित राम की सगुणोपसना का बहुत ही शक्तिशाली ढग मे प्रचार प्रसार किया गया । राम भक्ति के इस तीव्र प्रचार का ही यह फल था कि स्वय तुलसीदास के समय मे उत्तरी भारत की जनता के साथ दक्षिणी भारत की भक्ति प्राण जनता भी तुलसीदास के द्वारा प्रदर्शित राम भक्ति-मार्ग पर चलने लगी । इसका ज्वलत प्रमाण तुलसीदास के महाराष्ट्रीय शिष्य सन्त जनजसवत के द्वारा महाराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत भगवान् राम की दास्य भक्ति का प्रचार किया जाना है ।

तुलसीदास राम की भक्ति दास्य भाव से करते थे । वे राम को दास्य भाव की भक्ति के प्रबल समर्थक थे । उन्होने 'मानस' के अतिरिक्त अपने शेष सम्पूर्ण साहित्य मे दास्य भाव की भक्ति का ही प्रतिपादन किया है ।[1] उन्होने भगवत-उपासना क हेतु रागानुगा भक्ति के पच भावो—शान्त, दास्स, सख्य, वात्सल्य एव दाम्पत्य—मे से दास्य को ही वरेण्य माना । तुलसीदास ने सख्य एव दाम्पत्य भाव को रसिका भक्ति को कभी नही सराहा । उनकी दृष्टि मे ये भक्ति पद्धतियाँ गुह्य एव रहस्यपूर्ण शृगार-तत्त्वो से युक्त होने के कारण अग्राह्य थीं । अतएव उनके अनुसार जिसके प्रति हमारी पूज्य भावना है, जो हमारी श्रद्धा भक्ति का पात्र है, उसके प्रति हमारे लिए उक्त प्रकार की शृगारिक भक्ति-भावना का प्रदर्शन कदापि श्रेयस्कर नही । यही कारण है कि हम तुलसीदास को सदैव-गभीर एव पार्यादित दास्य भक्त्योपासना मे प्रवृत्त पाते हैं । उन्हें यदि अपने पूज्य

१. सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

मानस किष्किधा काड, दोहा ३, गीता प्रेस ।

देवो के शृंगार का वर्णन भी करना पड़ा, तो उसे भी उन्होंने मर्यादित ढंग से ही वर्णित किया। अमर्यादित एवं उच्छशृंखल शृंगार वर्णन की ओर उनकी किंचित भी रुचि नहीं थी। उनकी इसी प्रवृत्ति का दर्शन तो 'मानस' के कैलाश प्रकरण (बाल काड) के अन्तर्गत शिव पार्वती के शृंगार चित्रण के समय उनके निम्नलिखित कथन मे मिलता है—

'जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु कहउ बखानी।'[1] यह है तुलसी की आदर्श भक्ति पद्धति का दृढ एव भव्य रूप।

१७ वीं शताब्दी मे जिस समय तुलसीदास द्वारा प्रवर्तित उक्त प्रकार की मर्यादित गम्भीर दास्य भावानुगा राम-भक्ति की दीप्ति से सम्पूर्ण राम भक्त समुदाय आलोकित हो रहा था, उसमे कुछ समय पूर्व ही राम-भक्ति मे रसिकोपासना (सख्य एव दाम्पत्य भाव की भक्ति पद्धति) का भी जन्म हो चुका था। तुलसीदास के परम मित्र एव प्रशसक श्री नाभादास जी के गुरु श्री अग्रदास (देव) १६ वी शती के अन्त एव १७ वी शती के प्रारम्भ) ने राम भक्ति के अन्तर्गत रसिक सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर दिया था। कृष्ण-भक्तों की भाँति वे भी अपनी वाटिका मे लाल (राम) एवं लली (सीता) के रास विहार आदि की झाकी रचाया करते थे।[2] तुलसीदास के समय (१७ वी शता) मे तो इस शाखा का कोई उल्लेखनीय विकास न हुआ, परन्तु १८ वी एव १९ वी शती मे राम-भक्ति के इस रसिक सम्प्रदाय का पर्याप्त विकास हुआ। इसने राम-भक्तो पर अपना खूब प्रभाव जमाया। इस शाखा के आचार्यों एवं अनुयायियो ने राम सम्बन्धी ग्रन्थो का भी व्याख्यान अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुरूप करना प्रारम्भ कर दिया। आगे हम इस रसिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तो पर आधारित 'मानस' की कई टीका परम्पराओं का उल्लेख करेंगे। इस प्रसंग मे हमे रसिक सम्प्रदाय से प्रधान रूप से प्रभावित एक टीका-परम्परा भी मिलती है, जिसका प्रवर्तन स्वयं तुलसीदास के एक पट्ट 'मानस' शिष्य किशोरीदत्त के द्वारा हुआ है। स्वयं महात्मा तुलसीदास से इन लोगो का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्री अनन्य माधव जैसे रसिक सत तो तुलसीदास के परम श्रद्धालु थे।[3] उन्होने 'मानस' पर एक टीका भी लिखी थी।

'मानस' के टीका-साहित्य के आदि काल पर, जिसका प्रारम्भ तुलसीदास के समय से ही हो जाता है, राममभक्ति की इन दोनो धाराओ दास्यानुगा एवं रागानुगा रामभक्ति—का बड़ा ही व्यापक प्रभाव पड़ा। इन दोना भक्ति धाराओं के अनुयायियो ने अपने-अपने भक्ति-भावानुकूल 'मानस' की टीकाएँ लिखनी प्रारंभ कर दी। फलत तुलसीदास के समय मे ही 'मानस' के टीका-साहित्य के अन्तर्गत टीकाकारा के दो वर्गों का आविर्भाव हो गया। इन दोनो-दास्यभावानुगा परक एव रागानुगा भक्ति परक टीकाओ की परम्परा

---

१. रामचरितमानस (बालकाण्ड) दोहा १०३, अर्द्धाली ४।
२. रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय प्र० सं० पृ० १८०-८१
३. वही पृ० १०६।

का प्रवर्तन तुलसीदास के ही दो 'मानस'-शिष्यो किशोरीदत्त जी एवं श्री वृढेरामदासजी द्वारा हुआ। ये दोनो टीका परम्परायें आगे चलकर खूब पल्लवित हुईं। जैसा कि आगे उल्लेख किया जायगा 'मानस' के टीका साहित्य के प्रारम्भ काल के उत्तरार्द्ध वि० की १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध) मे जिन दो टीका परंपराओ का उदय हुआ, उनमे अयोध्या की टीका परपरा तो पूर्ण रूपेण राम की रागानुगा या मधुरा भक्ति के सिद्धान्तों पर आधारित है और दूसरी टीका परंपरा भी, जिसे रामनगर की टीका परपरा कहा गया है, प्रधानत दास्य भक्ति-भावानुगा है और साथ ही न्यूनाधिक रूप से राम की रागानुगा-भक्ति से प्रभावित है।

इस प्रकार 'मानस' के टीका-साहित्य के प्रारंभिक काल की चारो टीका परंपरायें राम भक्ति परक हैं। इनमे राम भक्ति के विविध तत्वो का समास-व्यास पद्धति से प्रतिपादन किया गया है। आगे इन परंपराओ की टीकाओ का विवेचन मे इन सारे तथ्यो पर प्रकाश डाला जायगा।

प्रारंभिक काल की टीकाओ की भाषा

प्रारम्भिक काल मे संस्कृत एव हिन्दी दोनो भाषाओ मे 'मानस' टीकाएँ लिखी गयीं। संस्कृत म लिखी गयी 'मानस' की जिन दो टीकाओ से हम अवगत हैं, उनमे से से प्रथम है, रामू द्विवेदी कृत प्रेमरामायण एव द्वितीय हैं, मधुसूदन सरस्वती कृत मानस निरूपिणी। दोना टीकाएँ श्लोक बद्ध पद्यात्मक हैं। अभी तक केवल प्रेमरामायण टीका ही खण्डित रूप मे उपलब्ध है। उसकी भाषा बडी ही सरल एव मजुल है। कही-कही तो उसमे हिन्दी की पदालिया भी बडी ही कुशलता से विन्यस्त हैं। उदाहरणार्थ, प्रेमरामायण टीका की निम्नलिखित पक्तियाँ देखिये—

'भाष रामायणस्यैषा टीका नीका नया कृता।
नीरसस्य परं फीका यो हीका कुटिल सदा॥'

उपर्युक्त संस्कृत श्लोक म हिन्दी के 'फीका' एवं 'हीका' शब्दो का पुट बहुत ही सुन्दर एवं अभिप्राय युक्त है। 'मानस' की प्रेमरामायण टीका की उपरोक्त पक्तियों का 'मानस' की निम्नलिखित अर्द्धालियो के साथ कैसा सटीक सम्बन्ध है—

'निज कवित केहि लाग नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।
प्रभु पद प्रीत न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागहि फीकी॥'

कहने का तात्पर्य यह कि गोस्वामी जी के शिष्यों एव स्नेहियो के द्वारा लिखी गयी 'मानस' की संस्कृत टीकाओं की भाषा भी उन्ही की भाषा के समान सरल सरस एवं अमित अर्थ की व्यंजक है।

जहाँ तक हिन्दी भाषा मे लिखी हुई टीकाओ का प्रश्न है, आदिकाल मे जितनी भी टीकाएँ लिखी गयी, चाहे वे पद्यात्मक हो अथवा गद्यात्मक, सभी की भाषा पर टीकाकारो की स्थानिक (क्षेत्रीय) भाषा का भी कुछ प्रभाव पडा है।

'मानस' के टीका-साहित्य के प्रारंभिक काल के अन्तर्गत प्रणीत टीकाओं में किशोरीदत्त की शिष्य परंपरा की ही टीकाएँ पद्यात्मक हैं। इन टीकाओं की भाषा व्रज है। इस परंपरा की पद्यात्मक भाषा पर कूट शैली का बहुत अधिक प्रभाव है। यह कूट शैली संभवत इसीलिए अपनायी गयी है कि जिससे इस परंपरा की अर्थ-पद्धति का ज्ञान मात्र इसी परम्परा के अधिकारी शिष्य कर सकें। शिवलाल पाठक जी ने अपनी टीका मानसमयंक के विभिन्न काडो की पुष्पिकाओ मे इसी प्रकार मत प्रकट किया है।[1]

आदिकाल मे व्रज भाषा गद्य मे लिखित टीकाएं भी मिलती हैं इनमे रामचरण-दासकृत आनन्द लहरी, सतसिंह पंजाबी कृत भावप्रकाश एवं आदि टीकाएं उल्लेखनीय हैं। मानस की गद्यात्मक टीकाओ की रचना का प्रारम्भ संवत् १८६५ से प्रारम्भ होता है।[2] इन टीकाओं के अन्तर्गत व्रज भाषा गद्य पुष्ट एवं परिमार्जित कोटि का नहीं है। भाषा भावो को पूर्ण रूपेण स्पष्ट करने मे समर्थ नही है। वाक्य विन्यास बड़ा ही असबद्ध एवं शिथिल तथा दुरूह है। भाषा मे व्याकरणिक त्रुटियां भी हैं। इस काल की टीकाओ की भाषा के सम्बन्ध मे पंडित रामचन्द्र शुक्ल निम्नलिखित कथन सर्वथा सत्य है कि—

'गद्य लिखने की सम्यक् परिपाटी का सम्यक् प्रचार न होने के कारण व्रज भाषा गद्य जहाँ का तहाँ रह गया। उपर्युक्त वैष्णव वार्ताओं पर उसका जैसा परिष्कृत और सुव्यवस्थित रूप दिखाई पड़ा वैसा फिर आगे चलकर नही। काव्यो की टीकाओं आदि मे थोड़ा बहुत गद्य देखने मे आता था, वह बहुत ही अव्यवस्थित और अशक्त था। उसमें अर्थों और भावों को सम्बद्ध रूप मे प्रकाशित करने की शक्ति न थी। ये टीकाएँ संस्कृत की 'इत्यमर' और 'कथम् भूतम' वाली टीकाओं की पद्धति पर लिखी जाती थीं। इससे उनके द्वारा (व्रजभाषा) गद्य की उन्नति की संभावना न थी। भाषा ऐसी अनगढ़ और लद्दड़ होती थी कि मूल चाहे समझ मे आ जाय पर टीका की उलझन से निकलना कठिन समझिये। सरदार कवि अभी हाल मे हुए हैं। कविप्रिया, रसिकप्रिया, सतसई आदि की उनकी की भाषा और भी अनगढ़ एवं असबद्ध है।'[3]

इसका सही 'मानस' की टीकाओं की भाषा का स्वरूप भी बहुत शुक्ल जी के उपर्युक्त कथन के अनुरूप है कार्ष्ठजिह्वास्वामी कृत रामायण परिचर्या टीका की भाषा का एक नमूना लीजिये:

मूल—दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग्य उर आवहिं जासू।

---

१ शिवलाल जी पाठक की टीका मानसमयंक का परिचय।

२ आनन्द लहरी की टीका का रचना प्रारंभ संवत् १८६५ है—वरणामणिमाला प्रथम सं०, अयोध्या कांड, पृ० १६-१७।

३ पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास, ना० प्र० सभा, द्वाद० सं० पृ० ३७३-७४।

टीका—'अर्थ दोप के ऊपर काजर रहत है मनि मे केवल प्रकाश अगिन सलाई संयोग से दृष्टा स्वत. प्रकाश है और फल तुल्य ।'[१]

भाषा की टीकाओ मे टीकाकारों की अपनी स्थानिक भाषा का भी प्रयोग हुआ है। जैसे अवधवासी रामचरणदास जी कृत आनन्दलहरी टीका की भाषा अवधी से भी प्रभावित है। उसमे प्रयुक्त आपके लिये 'रौरे' किया है के लिए 'कोन' एवं जानोगे के लिए 'जानब' शब्दो का प्रयोग अवधी भाषा परक ही है। काष्ठजिह्वास्वामी की भाषा पर भी बैसवाडी का प्रभाव परिलक्षित होता है, उसकी रामायणपरिचर्या टीका में भी कितना के लिए 'तनो' एवं कई के लिए 'कइउ' शब्दो का प्रयोग इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। इसी प्रकार अमृतसर के संतसिंह पंजाबी की टीका भाव प्रकाश मे पंजाबी से प्रभावित हिन्दी गद्य का रूप दर्शनीय है। इस सम्बन्ध मे आगे इन टीकाओ का परिचय देते समय विस्तार से विचार किया जायगा। साथ ही इन टीकाओ की भाषा मे पंडित ताऊपन भी मिलता है।। उनमे 'जाते भये', 'जो है सो' आदि जैसे पंडिताऊ शब्दो के प्रयोगो की कमी नही है।

इस काल की अधिकाश टीकाओ की भाषा मे 'मानस' की भाषा का अनुसरण किया गया। किन्ही-किन्हीं टीकाओ मे तो व्याख्यातव्य विशेष की टीका करते समय 'मानस' मे प्रयुक्त पद या शब्द को अविकल रूप से ले लिया गया है।

शैली—आदि काल मे 'मानस' की टीकाएं गद्यात्मक, पद्यात्मक एवं गद्य-पद्य मिश्रित तीनो रूपों मे लिखी गयी हैं। गद्य पद्य मिश्रित टीका की रचना करने का श्रेय केवल जिह्वास्वमी को है। इन्होने अपने टीका-रामायण परिचर्या मे गद्य और पद्य दोनो शैलियों का प्रयोग किया है। टोकाओं की शैली पर पंडिताऊ अथवा व्यास शैली का प्रभाव है।

छन्द—पद्यात्मक टीकाओ मे प्रायः दोहे छन्द का ही प्रयोग हुआ है। केवल काष्ठजिह्वास्वामी कृत गद्य-पद्य मिश्रित टीका-रामायणपरिचर्या मे ही कहीं-कहीं पर सवैये अथवा कवित छंदो का प्रयोग हुआ है।

अंत में हमे आदि काल की टीकाओं के सम्बन्ध में एक और मुख्य बात कहने को शेष रह गयी है, वह यह है कि यद्यपि इस काल की टीकाओ की प्रधान प्रवृत्ति भक्तिपरक व्याख्यान की ओर रही, तथापि 'मानस' के काव्यशास्त्रीय पक्ष को त्याज्य नहीं समझा गया है। इन टीकाकारो ने 'मानस' के काव्यशास्त्री तत्त्वो का भी व्याख्यान बड़े मनोयोग से किया है। इस दृष्टि से इस काल की कोई भी टीका देखी जा सकती है। हम आदि कालीन टीकाओ की काव्यशास्त्र परक व्याख्यान प्रणाली पर आगे बडे विस्तार से करेंगे।

'मानस' के टीका-साहित्य का आदिकाल सर्वविध सम्पन्न एक समृद्ध टीका-काल है। इस काल की टीकाओ मे टीकाकारो की बहुमुखी टीका-रचना पद्धति का दर्शन तो मिलता ही है, साथ-साथ उनके 'मानस' के प्रति अचूक एवं अटूट श्रद्धा एवं उनके प्रति निःस्वार्थ सेवा भावना का भी सम्यक् परिचय मिलता है।

---

१ रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्र० सं०, खड्गविलास प्रेस, बाकीपुर (पटना) पृ० ६।

अध्याय १

'मानस' की टीकाओं एवं टीकाकारों का परिचय

'मानस' की टीकाओं के परिचय के साथ-साथ हम इन टीकाओं रचयिताओं (टीकाकारों) का भी एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे। टीकाओं के साथ-साथ टीकाकारों का भी परिचय देने का मुख्य कारण यह है कि टीकाकार विशेष का व्यक्तित्व एवं उसकी परम्परा विशेष उसकी टीका के निर्माण में प्रभावकारी रही है। हमने इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए इस परिचय वाले अध्याय के अन्तर्गत व्यवस्थित रूप से प्रथमतः टीकाकार विशेष का परिचय दिया है, तदोपरान्त टीका का परिचय दिया गया है। सुविधा की दृष्टि से हमने टीकाकार विशेष का परिचय देने के पूर्व उसकी कृति का नामोल्लेख कर दिया है। 'मानस' की टीकाओं का यह आलोचनात्मक एवं परिचयात्मक विवेचन उनके रचना-काल क्रम के आधार पर किया गया है।

'मानस' की संस्कृत टीकाएं

ऐसा संकेत हमने पहले ही कर दिया है कि 'मानस' के टीका-साहित्य के प्रारम्भिक काल में 'मानस' की संस्कृत टीकाएं भी लिखी गयीं और इन संस्कृत टीकाओं का प्रणयन स्वयं गोस्वामी जी के ही समय में होने लगा था। इस सम्बन्ध में यहाँ एक बात जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह यह कि 'मानस' की प्रथम टीका 'प्रेमरामायण' संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। इस प्रकार 'मानस' की टीकाओं का प्रारंभ संस्कृत भाषा में आबद्ध टीकाओं से ही होता है।

'मानस' की हिन्दी टीकाओं की भाँति इसकी संस्कृत टीकाओं की कोई परम्परा विशेष नहीं उपलब्ध होती है। जहाँ तक इस काल की संस्कृत टीकाओं में व्याप्त रचना-प्रवृत्ति का प्रश्न है, 'मानस' की इन संस्कृत टीकाओं में उसकी हिन्दी टीकाओं की भाँति भक्तिपरक रचना प्रवृत्ति व्याप्त है। यहाँ इन टीकाओं का परिचय देते हुये इस तथ्य पर विस्तार से विचार किया जा रहा है।

'प्रेमरामायण' टीका-टीकाकार रामू द्विवेदी

तुलसीदास जी के प्रत्यक्ष 'मानस'-शिष्यों में प्रेमरामायणकार श्री रामू द्विवेदी भी एक थे।[1] इनके पिता का नाम मुकुन्द द्विवेदी था, जो किन्हीं विष्णु द्विवेदी के अनुज थे।[2] रामू द्विवेदी काशी में ही रहते थे। ये गोस्वामी जी के रामचरितमानस के प्रमुख प्रचा-

---

१ 'राम किङ्करेण माधवा कृतं यदद्भुतं काव्यमस्य सेवकेन रामुणापि पठ्यते'—मानस के काशिराज संस्करण की भूमिका, पृ० १३।

२, तात स्यातमतिर्मुकुन्द इति यो विष्णुद्विवेदानुजो, वही।

रकों में थे। इन्हें संस्कृत भाषा का पर्याप्त ज्ञान था। तभी तो 'मानस' के प्रेमियों ने इन्हें 'मानस' की टीका संस्कृत भाषा में लिखने की प्रेरणा दी। काशीवासी तुलाराम नामक एक 'मानस' प्रेमी सज्जन पर आपका विशेष अनुराग था। आपने उन्हीं के हेतु 'मानस' की प्रेमरामायण नामक टीका लिखी थी।[1]

रामू द्विवेदी के काव्य गुरु भी श्री गोस्वामी जी ही थे।[2] तुलसीदास के प्रति इनकी अपार श्रद्धा थी। ये उन्हें हनुमान जी का साक्षात् अवतार ही मानते थे।[3] इन्होंने अपने गुरु महात्मा तुलसीदास के व्यक्तित्व का साक्षात् परिचय अपनी प्रेमरामायण टीका में इस प्रकार दिया है—

> गौरं 'रा' पदमात्रसंश्रवणतोप्युद्भूतरोमाकुरं,
> वक्ष श्रीतुलसीप्रब्द्धगुटिकामालं पटीशालिन।
> वारंवारमिदं पद् ' भरतु मैं ठाढे' ति गाढं स्वरं,
> गायन्त नरूपिणंकमपि तं वदेनवद्यं हितं ॥[4]

अर्थात् 'तुलसीदास जी गौरवर्ण के हैं, राम शब्द के 'रा' अक्षर के उच्चारण मात्र से पुलकित हो जाते हैं। वे कौपीन पहनते हैं और 'भरतु मैं ठाढे' (गीतावली, अयोध्या काड के ७० वें) पद को गाढ स्वर से बार-बार गाया करते हैं।' रामू द्विवेदी द्वारा दिये गए गोस्वामी जी के उपर्युक्त परिचय में ही पता चल जाता है कि उन्हें गोस्वामी जी का परम सान्निध्य प्राप्त था और वे उनके विश्वास पात्र शिष्यों में थे।

'प्रेमरामायण' टीका

'मानस' की प्रेमरामायण टीका संस्कृत श्लोकों में आबद्ध एक पद्यात्मक टीका है। इसके रचयिता स्वयं रामू द्विवेदी ने इसका परिचय देते हुए बताया है कि 'भाषा रामायण (रामचरितमानस) की यह टीका उत्तम कोटि की है।[5] जैसा हम पहले कह आये हैं, प्रेमरामायण टीका की रचना काशी स्थित तुलाराम नामक एक सज्जन के लिए हुई थी। उन्होंने इसकी अनुलिपि भी तैयार की। प्रेमरामायण के सुन्दर काण्ड की इस अनुलिपि का समय सवत् १६६२ वि० है। अतएव इसकी रचना इसके कुछ वर्ष पूर्व

---

१. शुद्धेदुस्वच्छ की तिर्द्दशस्थ तनम्यावर्वथ प्रवचकाश्या, दास तुलस्या वितृतिर्मपि तुलारामनाम्नो हिताय। वही।

२- वदेहं तुलसीदासं निवास जानकीपते। सत्यप्रसादेन रामू को भूकोऽपि कविता गत.। वही।

३. खण्ड ३, अध्याय १, पृ०।

४. 'मानस' के काशिराज संस्करण की भूमिका, पृ० १४।

५. भाषारामायणस्येषा टीका नौका मयाकृता।
नीरमस्य परं फीका यो ही का कुटिल. सदा ॥
मानस काशिराज संस्करण की भूमिका।

अवश्य सम्पन्न हो चुकी थी। सम्प्रति इसके तीन ही कांड मिलते हैं—अयोध्या, किष्किंधा एवं सुन्दर। अयोध्या कांड की तीन प्रतियों का पता चला है। ये तीनों प्रतियाँ काशिराज के संग्रहालय, रामनगर, रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता एवं इंडिया हाउस लंदन में सुरक्षित हैं। सोसाइटी वाले हस्तलेख में कुल ५७ पन्ने हैं, जिसमें से १-१०, १२-२०, ४१-४७, ४८ संख्यक पन्ने नहीं हैं। श्री हरप्रसाद शास्त्री ने इस हस्तलेख को सत्रहवीं शताब्दी का माना है। प्रेमरामायण एक सर्गबद्ध रचना है। प्रत्येक कांड के सर्गों की संख्या इस प्रकार है—

अयोध्या	—	२१
किष्किंधा	—	६
सुन्दर	—	६

कांडों का यह सर्ग विभाजन 'मानस' के उत्तर कांडान्तर्गत, कागभुशुण्डि द्वारा गरुड़ को 'मानस' की कथा सुनाते समय जितने प्रकरण संकेतित किये गये हैं, उन्हीं पर आधारित हैं।[१] इस सूचना के आधार पर इतने तथ्य-प्रकाश में आते हैं कि प्रेमरामायण टीका की रचना संवत् १६६० के लगभग पूर्ण हो चुकी थी। यह टीका पूर्ण रूप में थी, परन्तु सम्प्रति खण्डित रूप में ही मिलती है। इसमें भी काण्डों का विभाजन 'मानस' के सात कांडों के आधार पर ही किया गया था, जिसकी अनुलिपि का काल भी वस्तुतः १७ वीं शताब्दी है। इसे प्रसिद्ध साहित्यकार एवं हस्तलिपि विशेषज्ञ श्री हरप्रसाद शास्त्री ने भी मान लिया है।

श्री रामू द्विवेदी के अनुसार उनकी प्रेमरामायण टीका की एक परंपरा है, जो श्री हनुमानजी से सम्बन्धित है। इसके अनुसार हनुमान जी ने प्रथमतः प्रेमरामायण (रामचरितमूलक ग्रन्थ हनुमन्नाटक) की रचना की। उन्होंने इसे पत्थरशिलाओं पर लिखा। प्रेम रामायण की रचना पूर्ण हो जाने पर उन्होंने इसे आदि कवि वाल्मीकि को सुनाया। परन्तु आदि कवि ने उसे सराहा नहीं। इस उपेक्षा से विक्षुब्ध हो श्री हनुमान जी ने गिरि खंडों पर लिखे गए समस्त प्रेमरामायण को समुद्र में डुबो दिया। वे ही पवन पुत्र हनुमान तुलसीदास के रूप में जन्मे और उन्होंने सुन्दर देश भाषा में उसे पुनः अद्भुत रूप में निबद्ध किया। मैं (रामू द्विवेदी) इसी मानस की टीका संस्कृत श्लोकों में कर रहा हूँ।'[२]

---

१ 'मानस' के काशिराज संस्करण की भूमिका।

२. 'प्रेमरामायण पूर्वं यत्कृतं वायुसूनुना लिखित्वा नटकेस्तस्तटकेष महीभृतां। नाटकं श्रावयामास मुनिं प्राचेतसं मुदा नाभिनंदि तदा तेन निजग्रन्थविलोपनात्। स्फटिक-पन्माऽक्ति सिन्धौ पर्वतान्गर्ववर्जितं तदेव तुलसीदास रूपिणा वायुसूनुना। सुदेश भाषयासर्वंनिबद्धं पुनरद्भुतं। श्रीरामचरणांभोजप्रमेदं क्षेमदं नृणां। तस्येव टीका सनुश्लोकैर्यंयामति भाषाबोधविधुरां विदुषां बोधकारिणी। 'मानस' के काशिराज संस्करण की भूमिका पृ० १४।

इस प्रकार प्रमरामायण की उपर्युक्त परंपरा के अनुसार राम् द्विवेदी कृत प्रमरामायण टीका भी अपनी परंपरा के पूर्ववर्ती दास्यभक्ति प्रधान रामचरितात्मक ग्रंथों की भांति दास्यभावानुगाभक्तिपरक ही रचना निश्चित होती है।

इसके अतिरिक्त टीकाकार ने अपनी टीका के प्राक्कथन एवं पुष्पिकाओं में बार बार अपने आपको रामकिंकर श्री तुलसीदास का दास बताया है और स्वयं को इस रामकिंकर परम्परा का अनुवर्तक।[1] यह तथ्य भी प्रमरामायण की दास्यानुगाभक्ति-भावपरकता के ही ओर सकेत करता है।

मानसनिरुपिणी टीका

टीकाकार श्री मधुसूदन सरस्वती

श्री मधुसूदन सरस्वती के प्रशंसक एवं मित्र थे। ये तुलसीदास के बहुत बाद तक मुगल बादशाह शाहजहां के शासन काल (१६८५ १७१५ ई०) में वर्तमान थे। ये बंगाल प्रान्त के फरीदपुर जिले के कोटालिपाड़पुर ग्राम के निवासी थे। अपनी संस्कृत शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् श्री मधुसूदन जी काशी चले आये। यहां पर ये एक अद्वैती विद्वान् स्वामी विश्वेश्वरानंद सरस्वती से अद्वैत सम्प्रदाय के अन्तर्गत दीक्षित हो गये।[2] सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् मधुसूदन सरस्वती के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने आजन्म कठोर ब्रह्मचर्य का पालन किया।

श्री मधुसूदन सरस्वती अपने समय के प्रकाण्ड संस्कृत पंडित एवं अद्वैत मत के सर्वश्रेष्ठ आचार्य थे। कहते हैं कि जीवन की उत्तरावस्था में आपका असीम अनुराग सगुण लीलावतारी भगवान् कृष्ण में हो गया और आपने अपना शेष जीवन भी उन्हीं की लीलाभूमि व्रज में ही व्यतीत किया।

मधुसूदन सरस्वती ने अद्वैत मत प्रतिपादक अनेकानेक ग्रन्थ लिखे। आपने सगुण ब्रह्म की लीला के निरूपक भागवत एवं भगवद्गीता सदृश ग्रन्थों की टीकाएँ भी की। आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएं निम्नलिखित हैं—

(१) वेदान्त कल्पलतिका।
(२) सिद्धान्तबिन्दु।
(३) संक्षेप शरीरिक व्याख्या।
(४) गूढार्थदीपिका (भागवत की टीका)।
(५) गूढार्थदीपिका (गीता की टीका)।
(६) महिम्न स्तोत्र।

---

१ विश्वनाथ प्रसाद जी का लेख आज साप्ताहिक विशेषांक दि० ११ अप्रैल, सन् १९५४ ई०।

२ कल्याण (वेदान्तांक परिशिष्ट) गीता प्रेस।

(७) भक्ति रसायन।[1]

मानसनिरूपिणी

श्री मधुसूदन सरस्वती कृत मानसनिरूपिणी, संस्कृत भाषा में लिखित 'मानस' की एक पद्यात्मक टीका है।[2] सम्प्रति यह टीका अनुपलब्ध है। अतएव इसका विशेष परिचय देना शक्य नहीं है।

मधुसूदन सरस्वती कृत भगवद्गीता और भागवत की तात्विक एवं भक्ति परक टीकाओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि 'मानस' की 'मानस'—निरूपिणी टीका भी उक्त टीकाओं के सदृश निश्चय ही एक उत्कृष्ट कोटि की भक्तिपरक टीका रही होगी।

---

१. वही।

२ तुलसी पत्र वर्ष ३, अंक १, २, पृ० १५—'मानस' पर टीकात्मक ग्रन्थ शीर्षक लेख।

अध्याय २

प्रकरण १

'मानस' की हिन्दी टीकायें

आदि काल के अन्तर्गत प्रणीत हिन्दी टीकाओं का वर्गीकरण हम दो प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियों के आधार पर कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में वे टीकायें आती हैं, जो शृंगारभावानुगा राम-भक्ति परक हैं और द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत दास्यभावानुगा राम-भक्ति परक टीकायें रखी जा सकती हैं।

'मानस' की शृंगारभावानुगा राम भक्ति परक टीकायें

राम-भक्ति के रसिक सम्प्रदाय की शृंगारिक भक्ति का 'मानस' के टीका-साहित्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। 'मानस' की दो विशाल टीका परंपरायें—विप्रवर किशोरीदत्त जी की एवं अयोध्या की टीका परम्परायें—तो विशुद्ध रूप से राम की मधुरा अथवा शृंगारिक भक्ति के सिद्धान्तों को प्रतिपादित है। इसके अतिरिक्त इस शृंगारिक भक्ति के सिद्धान्तों की न्यूनाधिक रूप से व्याप्ति रामनगर राज्य की 'मानस—' टीका-परंपरा एवं मानस की परंपरा निरपेक्ष अन्य टीकाओं में भी दृष्टिगत होती है। अतएव शृ गारानुगाभक्तिभावपरक 'मानस' की इन टीकाओं का आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत करने के पूर्व हम यहाँ रामभक्ति के रसिक या 'शृ गारी' सम्प्रदाय एवं उनके शृंगारिक भक्ति के स्वरूप पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना आवश्यक समझते हैं।

रामभक्ति का रसिक सम्प्रदाय एवं उसकी रसिक भक्ति

भागवत-जगत् में भगवान के दो रूप ही प्रधान रूप से पूज्य हैं—एक है उनका महत् शक्तिशीलयुक्त ऐश्वर्यशाली रूप और दूसरा है उनका कोटि काम सम सुन्दर एवं अलौकिक मधुर लीला का विलासी रूप। परमेश्वर के मधुर रूप की दिव्य झाँकी हमें भगवान कृष्ण में मिलती है। मधुरोपासक वैष्णव भक्त इन्हीं की मधुरा भाव की भक्ति में लीन रहते हैं। भागवत पुराण कृष्ण की मधुरा भक्ति का आकर ग्रन्थ है। परन्तु मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम में भी शक्ति-शील के साथ सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय है। राम-भक्तों की अनुरक्ति उनके इन तीनों रूपों—तत्वों की ओर रही है। जहाँ वे एक ओर भगवान राम के आदर्श शील एवं अनुपम शक्ति से प्रभावित हो उनकी दास्य भाव की भक्ति में सतत लीन हुए, वहीं उनके सौन्दर्य के प्रति भी उनकी एकान्तिक पूज्य भावना लगी हुई थी। यद्यपि भगवान राम के महदैश्वर्य शाली एवं मर्यादाशाली रूप की दास्यो-पासना के सम्मुख इन भक्तों की मधुरोपासना दमित सी थी। परन्तु मधुरोपासना का सूत्र राम भक्ति में वर्तमान था अवश्य। अनुसंधित्सुओं के अनुसार राम के मधुर रूप की उपा-

सना का उदय रामानन्द के बहुत पूर्व अलवारों एवं रामानुज के शिष्य—प्रशिष्यों में हो चुका था।[१] राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय स्वामी अग्रदास जी को दिया जाता है, जो तुलसीदास जी के पूर्ववर्ती थे। 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' ग्रन्थ के रचयिता का कथन है कि 'रसिक रामोपासना, साधना और साहित्य दोनों दृष्टियों से, पठकोप (नम्मालवार) से लेकर श्री कृष्णदासपयहारी (अग्रदास के गुरु) तक इतनी विकसित हो चुकी थी कि उसके बिखरे सूत्रों को एकत्र कर एक नई साधना पद्धति का रूप दिया जा सकता था। व्यष्टिप्रधान होने के कारण अब तक अपनी साधना को रहस्यमय बनाये रखने में ही आचार्य लोग उसकी मर्यादा की रक्षा समझते थे, किन्तु ज्यों-ज्यों साधकों की संख्या बढ़ती गयी उसे एक व्यवस्थित रूप देने का अनुभव विचारशील राम भक्त करने लगे। उनमें अग्रदास पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी भाषा में 'ध्यानमंजरी' की रचना कर रसिक साधना का एक व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया और शताब्दियों से 'रहस्य' बने हुए भावों को समाज के सामने रखा।[२] इस प्रकार रामानन्द के प्रशिष्य श्री अग्रदास ने, जिनका संवत् १६३५ विक्रमी में वर्तमान बताया जाता है,[३] राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके रसिकोपासना सम्बन्धी ग्रन्थों में अष्टयाम शृंगाररस सागर पदावली, एवं कुंडलिया आदि प्रसिद्ध हैं।[४]

राम की यह रसिक भक्ति या मधुरोपासना पंचरसात्मिका है। इसमें शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं शृंगार पाँचों भक्ति रसों का अन्तर्भाव है। परन्तु इन पाँचों भावों में केन्द्रीभूत सत्ता 'शृंगार' की ही है। यह भक्ति रसों में भी रस राज माना जाता है। सभी रसों की अंतिम गति यही शृंगार रस है। यही रसिकोपासकों का चरम लक्ष्य है। भगवत के साथ इसी रस का आनन्द लेने के हेतु रसिकोपासक सारी साधना करता है। रामानुगा भक्ति के प्रेमा, परा एवं प्रौढ़ा भेदों में, प्रौढ़ा भक्ति अंतिम एवं श्रेष्ठतम है। यह भक्ति इसी शृंगार भाव में पहुँच कर प्राप्त की जा सकती है।

रसिक सम्प्रदाय या सखी सम्प्रदाय के मूल तत्व

रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक अग्रदास के अनुसार राम के प्रत्येक रसिकोपासक को दो प्रकार की सेवायें करनी चाहिए—१, मानसी सेवा और २ बाह्य सेवा।[५]

मानसी सेवा—साधक को नित्य प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठकर प्रथमतः अपने गुरु का स्मरण करना चाहिये। इसके अनन्तर लक्ष्मण सहित श्री सीताराम युगल सरकार का स्मरण करना चाहिये। पुनः क्रम से भगवान के हनुमान अंगद विभीषण भरत शत्रुघ्नादि

---

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्रथम संस्करण, पृ० ७७-७६।

२. वही, पृ० ८८

३. रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी पर उसका प्रभाव, प्र० सं०, पृ० २१२।

४ राम भक्ति साहित्य में मधुरोपासना, प्र० सं०, पृ० ३।

५. रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी पर उसका प्रभाव, प्र० सं० पृ० २१६।

पार्षदो, राम के आठ सखाओ, दम्पत्ति की सेवा करनेवाली आठ सुखियो एवं आठ दासियो का ध्यान करना चाहिये। इतनी प्रारम्भिक ध्यानोपासना कर लेने के पश्चात् साधक स्नान मुद्राकण आदि अपने नित्य कर्म करके भगवत की मानसी तथा बाह्य सेवा मे विधिवत प्रवृत्त हो। मानसी ध्यान करते समय रसिक को इक्कीस योजना विस्तृत दिव्य साकेत धाम का स्मरण करना चाहिये, इसके मध्यस्थ एक अशोक बन के अन्तर्गत रत्न मन्दिर की स्थिति हो और इस मन्दिर मे एक दिव्य सिंहासन 'सुभायमान' हो जिस पर अपने परिकरों—पार्षदो सखी-सखाओ से सेव्यमान रसिको के प्राण धन परम रूपवान भगवान राम एव भगवती सीता वर्तमान हो। वहाँ उनकी आठो सखियो एव सखाओ का दिव्य स्थिति विभिन्न दिशाओ म स्थित भिन्न-भिन्न निकुंजो मे बताई गयी है। इनकी विस्तृत विवरण अग्रदास कृत ध्यानमंजरी एव अष्टयाम मे दिया गया है।

अग्रदेव जी ने लक्ष्मण, श्यामला, हंसी, सुभगा, वंशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा एव इन्द्रिरावती आदि आठ सखियो एव सुमोन्न, समुद्र, सुचन्द्र, जयतेज, वरिष्ठ, ज्य-शील अनंगजित एवं वायव्य आदि आठ सखाओ का ही नाम बताया था। परन्तु आगे चलकर इस सम्प्रदाय के एक आचार्य बाल अली के शिष्य श्री रूप सखी जी ने ७०० सखियों की कल्पना की, साथ ही साथ कृष्ण भक्तों के समान उनके भिन्न भिन्न यूथो एवं यूथेश्वरियो की भी कल्पना की। इस रसिक सम्प्रदाय के प्रसिद्ध अर्वाचीन आचार्य महंत रामचरणदास ने गान, मज्जन, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, लेपन, वसन, भूषण, धूप, दीप, स्वाद, पान, सुगन्ध, आरती वाद्य, पूलमालचरमर, व्यजन आदि से भगवान की सेवा करने वाली अनेक सखियो की भी कल्पना कर ली। इनमे ललित एव राजा सखियो के भी नाम आ गये।[1] इन्ही रामचरण दास तथा इनके शिष्यो ने भगवानराम एवं सखियो के भावना सम्बन्ध के आधार पर राम भक्ति के सम्प्रदाय के अन्तर्गत-स्वसुखी एवं तत्सुखी सज्ञक दो शाखाओ का प्रवर्तन किया। ये दोना शाखायें कृष्ण की मधुरोपासना के क्षेत्र म नायिका की दृष्टि से किये गये मधुर रति के तीन प्रमुख भेदो मे से साधारणी एव समर्था के सदृश हैं।[2]

स्वसुखी शाखा—इस शाखा के प्रवर्तक महत रामचरणदास हैं। इसके प्रमुख अनुयायी रसिक अली जी हैं। शाखा का मूल सिद्धान्त यह हे कि भगवान एवं सखियो का सम्बन्ध पति-पत्नी का सम्बन्ध है। सखिया राम की भोग्यायें हैं। सीताजी से इनका सपत्नी का भाव है। इस सम्प्रदाय की आद्याचार्या च चारुशीला जी हैं।[3] ये सखिया म प्रधान हैं। इनके ही अपर विग्रह पवनपुत्र हनुमान हैं। महंत जी ने अपन इस शृङ्गारिक भक्ति के समर्थन मे हनुमत्संहिता, अमररामायण, भुसुण्डिरामायण, महारामायण,

१. वही, पृ० २२०।
२ वही, पृ० २२०।
३ रामभक्तिसाहित्य मे मधुरोपासना, प्रथम संस्करण, पृ० ३०।

कौशल खड, महारासोत्सव एवं लोमश सहितादि ग्रन्थो से प्रमाण दिया है। कौशल खंड इस सम्प्रदाय का सर्वप्रधान आदर्श ग्रन्थ है। इसमें कुल ३६७२ श्लोक हैं। ग्रन्थ मे विवाह के पूर्व गोप, गधर्व सब राजकन्याओ के साथ एवं विवाहोत्तर देवकन्या गंधर्वकन्या राजकन्या साध्युत, गुह्यक देवकन्या, दक्षकन्या, नागकन्या के साथ किये गए अनेक रासो का ही वर्णन है। इसमे रामलीला पूर्णत कृष्णलीला के समान ही चित्रित है।[१]

तत्सुखी शाखा— महत रामचरणदास के ही शिष्य श्री जीवाराम युगलप्रिया ने इस शाखा का प्रवर्तन किया। इनके अनुसार सखियो की स्थिति भगवान राम के साथ पति-पत्नी भाव की नही, अपितु सखी भाव की है। ये सखिया दम्पत्ति युगल (सीताराम) के क्रीडा विलास की तटस्थ भाव से मात्र दर्शिका है। इस शाखा मे सीता जी की प्रमुख सखियो के नाम इस प्रकार बताये गए हैं—कमला, विशदा, विमला, चन्द्रकला, चारुशील चन्द्रावती, चन्द्रा, शीला, पद्मा, पद्मनी और चम्पक कली। इनमे चन्द्रकला सर्वप्रमुख है।[२] इनके अतिरिक्त इस शृगारी शाखा के अन्तर्गत सख्य, दास्य, वात्सल्यादि भावो से भी राम की ध्यानोपासना चली है।

सख्य भाव—राम के भत्रीपुर, गुरुपुत्र आदि उनके सखा थे। उन्हीं का सम्बन्ध मानकर इस रसिक सम्प्रदाय के भक्त भी राम की सख्य भाव से ध्यान-आराधना करते हैं।

शृगारान्तर्गत दास्य भावना—दम्पत्ति सेवा मे जो अष्ट दासियाँ लगी रहती हैं तथा सीता के साथ जो छोटे-छोटे बालक आये थे आदि का सम्बन्ध मानकर सेवा करनेवाले साधको का भक्ति दास्य भाव की है।

वात्सल्य भाव—राम के माता-पिता एवं गुरुजनो का सम्बन्ध रखकर उनका ध्यान करने वाले साधको की भक्ति वात्सल्य भाव की मानी जाती है। पं० उमापति त्रिपाठी राम की भक्ति वशिष्ठ भाव से करते थे[३] मिथिला के महात्मा सूर किशोर सीताजी को अपनी पुत्री मानकर जनक के भाव भक्ति-साधना करते थे।[४]

इन भावो के अतिरिक्त परमहस रामप्रसाद जी भगवान राम को दूलह मानकर उनकी ध्यानोपासना करते थे। काष्ठजिह्वास्वामी ने इस रसिकोपासना के साथ सख्यम का समन्वय किया था।

बाह्य सेवा—बाह्य सेवा के अन्तर्गत अग्रदेव जी ने अष्टयामीय उपासना का निदर्शन किया है। आठो पहरा म भगवान राम की जो नित्य क्रियायें हैं, उनके अनुसार साधक को भगवान की परिचर्या करनी पडती है। इसमे उन उनके जागरण से लेकर

१. वही, पृ० ११४।
२ रामानन्द सम्प्रदाय एवं उसका हिन्दी पर प्रभाव, पृ० २२२-२३।
३ राममक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४५७।
४ रामानन्द सम्प्रदाय तथा उसकी हिन्दी पर प्रभाव, पृ० २२५।

शयन पर्यन्त तक की सारी क्रियाओं का विधान करते हुए उनकी उपासना करनी होती है।[1] इस विधान में भगवान के अर्चा (मूर्ति) रूप को ही व्यवहार में लाया जाता है।

रसिक सम्प्रदाय की शृंगारी भक्ति की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ

भगवान राम की मधुरोपासना वहीं है, जो कृष्णोपासकों की। अपितु इसमें भगवान राम के मर्यादा एवं ऐश्वर्य का भी विशेष ध्यान रहा गया है। साथ ही इनकी विशिष्ट मान्यतायें भी हैं, जो इसे एक विशिष्ट मधुरोपासना सिद्ध करती हैं। राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय की इन प्रमुख विशेषताओं का एक संकेतात्मक परिचय हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

रसिकों का माध्यम मार्ग—भगवान राम के मधुर रूप के साथ उनके ऐश्वर्यशाली रूप की भी उपासना रसिक संतों के द्वारा हुई है। इस सम्प्रदाय की अष्टयाम सेवाविधि में भक्त के लिए भगवान के केलि-कुंज में रमण करने के अतिरिक्त, उनकी परिचर्या करने का भी विधान है, जो दास्य भावानुकूल है। इस सम्प्रदाय में राम के मधुर रूप के साथ, वात्सल्य, स्वामित्व, सुशीलता, सौन्दर्य, सर्वज्ञत्व, कारुण्य, सर्वशक्तित्व, सर्वव्यापकत्व, सर्वपूर्णत्व, ज्ञान, दया, कृतज्ञता, क्षमा, सौहार्द एवं तेज आदि १६ गुणों से समन्वित ऐश्वर्यमय रूप का भी निरन्तर ध्यान किया जाता है। इस प्रकार यह मधुरोपासना भगवान की 'मधुरा' एवं 'दास्य' दोनों प्रकार की भक्ति के तत्वों से समन्वित है।

मर्यादा—चिन्तकों के मन में यह आशंका घर कर सकती है कि यहाँ मर्यादा एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न एक पत्नीव्रत भगवान राम को सखियों के क्रीडा-विलास रास-विहार में प्रवृत्त कर उनकी मर्यादा की अवमानना की गयी है। परन्तु ऐसा सोचना सत्य से परे है। वस्तुतः ये सखियाँ सीता से अभिन्न हैं। उनकी उत्पत्ति तो दिव्य एवं पवित्र है। 'दिव्य साकेत धाम में युगल प्रभु के श्री अंगों से कोटि-कोटि सखियों का आविर्भाव होता है।[2] डॉ० भगवती सिंह के अनुसार ये सभी सखियाँ राम की आह्लादिनी शक्ति सीता की अंश हैं और इन्हीं के द्वारा राम से इनका सम्बन्ध होता है।[3] 'सीता' तत्व की इस दार्शनिक व्याख्या से राम के एक पत्नीव्रत एवं उनकी मर्यादा की रक्षा हो जाती है।

हनुमान में श्रद्धा—इस सम्प्रदाय में राम के प्रधानतम सेवक हनुमान के प्रति बड़ी ही श्रद्धा प्रदर्शित की गयी है। वे सम्प्रदाय की एक प्रधान सखी चारुशीला के अमर विग्रह हैं।

तुलसी में एकान्त श्रद्धा—इस सम्प्रदाय के अनुयायी तुलसीदास में पूज्य भावना रखते हैं। वे उनके ग्रन्थ रामचरितमानस को सम्प्रदाय का उपजीव्य ग्रन्थ मानते हैं। संत तुलसीदास से इन रसिक संतों के श्रद्धा-सद्भाव का संबंध बहुत पुराना है। स्वयं

---

१. वही, पृ० २२५-२६।

२. राम भक्ति साहित्य में मधुरोपासना प्र०, म०, पृ० ४।

३. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० १५४।

तुलसीदास के समकालीन रसिक संत नाभादास इनको आदर की दृष्टि से देखते थे। एक दूसरे समकालीन रसिकोपासक सत अनन्य माधव तो इन्हें राम की सखियो मे प्रधान मानते थे।[१]

अर्वाचीन एव आधुनिक संतो की तुलसी मे अत्यन्त निष्ठा रही है।

इनमे रामचरणदास महत, जीवाराम युगलप्रिया, रामरसरगमणि आदि रसिक महात्माओ के नाम प्रमुख हैं। इन्होंने अपने शिष्यो एव सुहृदो को तुलसी मे एकांत श्रद्धा रखन का उपदेश देते हुए तुलसी का अनक विधि से स्तवन किया है।

तीर्थों मे आस्था—सीता राम की प्रमुख विहार-स्थलियो—अयोध्या, मिथिला, चित्रकूटादि म इन 'शृगारी' सतो की अनुकरणीय निष्ठा है। वे इन तीर्थों की प्रति वर्ष यात्रा करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

'मानसमकरन्द' टीका :

टीकाकार-श्री अनन्य माधव जी

श्री अनन्य माधव तुलसीदास के समकालीन थे। ये राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय के अनुयायी सत थे। भवानीदास ने अपने गोसाईंचरित में इनका निवास-स्थान अवध मे रसूलाबाद के निकट कोटरा नामक गाँव बताया है।[२]

इनकी गोस्वामी जी मे बडी निष्ठा थी। ये तुलसीदास के कृपापात्रो म से थे। इसका उल्लख उन्हीं के शब्दो मे सुनिये—

> 'सकल सखियन मे सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
> करो सेवन रुचिर रुचि सो सुजस की बानी कहौ।
> दास यह तुव अनन्य तापर रीझि चरनन तर परौ।
> अहो तुलसीदास तुम्ह ही कृपा करि अपनी करी॥[३]

इस पक्तियो स स्पष्ट है कि अनन्यमाधव जी तुलसीदास को राम की परिचारिक सखियो म अग्रणी मानते थे और स्वय को तुलसीदास का कृपा-पात्र।

मानसमकरंद टीका

श्री अनन्य माधव कृत 'मानसमकरंद' टीका 'मानस' को एक पद्यात्मक हिन्दी टीका है।[४] हमे केवल 'तुलसी पत्र' पत्रिका के अन्तर्गत ही इस टीका का उल्लेख मिला है। अभी तक यह टीका देखन में नहीं आयी और न तो कहीं अन्यत्र से ही इसके विषय म

१. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ११०।
२. वही प्र० सं०, पृ० ११०।
३. व्रजनिधि ग्रन्थावली—हरि पद सग्रह, प्र० सं०, पृ० २७५-७६।
४. तुलसीपत्र, वर्ष ३, अंक १-२, पृ० १५

विशेष सूचना मिली है। अतएव निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि अनन्य माधव जी ने यह टीका कब लिखी एवं इसका रूप-आकार कैसा है।

इनके व्यक्तित्व को देखते हुए यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यह मधुरा-भाव की टीका होगी, क्योंकि टीकाकार स्वयं तुलसी को 'युगलसरकार' की सभी सखियों में सबसे प्रधान सखी स्वीकार करता है। यदि टीकाकार को दस्य भाव अभिप्रेत होता, तो वे तुलसीदास को भगवान राम का एक श्रेष्ठ दास मानते।

शृंगारानुगा भक्ति-भावपरक 'मानस' की टीकाएँ

'मानससुबोधिनी' टीका

टीकाकार श्री किशोरीदत्त जी

किशोरीदत्त जी गोस्वामी जी के प्रत्यक्ष 'मानस'—शिष्य थे।[1] इनका जन्म उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत बादा जिले के यमुनातट स्थित चन्दवारा नामक ग्राम में हुआ था। इसके पिता का नाम कुबेर दत्त था। पं० कुबेर दत्त जी छः भाई थे, उनमें मात्र कुबेर दत्त को ही एकमेव संतान किशोरी दत्त जी थे। अतएव समग्र परिवार का स्नेह इन्हें प्राप्त था। इनका पालन-पोषण बड़े ही प्यार से किया गया। कहते हैं कि १२-१३ वर्ष की अवस्था तक ये बाल-क्रीडा में ही रत रहे। इस अवधि तक इनकी कुछ भी शिक्षा-दीक्षा न हो सकी। जब इनका विवाह हो गया, तब इनकी शिक्षा की ओर इनके पिता जी का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने स्वयं इन्हें पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। किशोरी दत्त जी बड़े ही कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। इन्होंने शीघ्र ही लघुकौमुदी का ज्ञान प्राप्त कर लिया। किशोरी दत्त जी की शिक्षा और आगे न हो सकी, क्योंकि शीघ्र ही इनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया। इस समय इनकी अवस्था १७-१८ वर्ष की थी। किशोरी दत्त जी के हृदय पर अपनी पिता की मृत्यु से मार्मिक आघात लगा। ये अहर्निश पितृ-शोक में ही विह्वल रहा करते थे। इनको इस संतप्तावस्था में देख कर इनके पितृव्य भी बड़े ही चिन्तित हुए। वे इनकी दुःखित मनोवस्था को परिवर्तित करने का हर सम्भव यत्न करते थे, परन्तु सभी प्रयास निष्फल सिद्ध होते थे।

अन्ततः एक दिन किशोरी दत्त जी के चचा मनोहर दत्त इन्हें भगवान राम की रम्य विहार-स्थली चित्रकूट का भ्रमण कराने के लिए ले गये, परन्तु इस रमणीय भूमि पर पहुँच कर भी इनके चित्त को तनिक भी शान्ति एवं प्रसन्नता न मिली। वे वहां भी

---

१. (अ) मानसमयंक, बालकाड, दोहा १२,

(ब) तुलसीपत्र वर्ष ४, अंक ५, पृ० १२०-२४ 'श्री तुलसी सतसंग के सच्चे सेवक' लेख-माला का प्रथम लेख।

(स) कल्याण (मानसाक) 'मानस प्राचीन टीकाकार' शीर्षक लेख।

(द) श्री जानकीशरण स्नेहलता कृत मानसमार्तंड टीका की भूमिका।

(य) 'मानस' के काशिराज सस्करण की भूमिका, पृ० १२।

दो दिनों तक पूर्व की भाँति ही अन्यमनस्कावस्था मे पड़े रहे। तीसरे दिन स्फटिक शिला पर इन लोगो का महात्मा तुलसीदास से साक्षात्कार हुआ। उनका दिव्य दर्शन प्राप्त कर ये लोग पूर्ण तथा परितृप्त हो गए। मनोहरदत्त जी ने किशोरी दत्त के मनस्ताप का सविस्तर निवेदन गोस्वामी जी से किया। उदारचेता संत तुलसीदास जी का हृदय किशोरी दत्त जी के दुःख से द्रवित हो गया। उन्होंने बालक किशोरी दत्त को ज्ञानोद्बोधित करने के निमित्त अपने 'रामचरित मानस' के निम्नलिखित दोहे का पाठ किया—

'लव निमेष परिमानु जुग, बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु को दंड॥'[1]

इस दोहे का अमोघ प्रभाव किशोरी दत्त पर पडा। उनकी चित्त-वृत्ति ही बदल गयी। उनकी जैसे प्रज्ञा ही लौट आयी। उन्हें आत्म ज्ञान हो गया। उनकी सारी अन्यमनस्कता जाती रही। उनका मन मुदित हो गया। उनकी आँखो मे भगवत्प्रेम के आँसू छा गए। वे गोस्वामी जी के चरणो मे साष्टांग पड गए। तत्काल ही काव्य प्रतिमा सम्पन्न बालक किशोरी दत्त जी के मुख से गोस्वामी के प्रति सहज कृतज्ञताभिव्यंजक निम्नलिखित दोहा स्फुरित हुआ—

'भव सागर नर नाव वहँ पार करइ को सेइ।
संत बिना या जीव की और कौन सुधि लेइ॥'[2]

इस पर गोस्वामी जी ने भी अपने इस आर्त अधिकारी जन की पीडा का आव-सन करते हुए, उसे इन शब्दो से आश्वस्त किया—

'जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥'[3]

इस घटना से किशोरी दत्त जी के हृदय में गोस्वामी जी के प्रति असीम श्रद्धा जाग्रत हो गयी। उन्होंने अपने पितृव्य मनोहर दत्त जी को घर लौटा दिया और स्वयं गोस्वामी जी के सान्निध्य म रहकर उनकी सेवा मे लीन हो गए।

कुछ ही दिनों के पश्चात् गोस्वामी जी ने किशोरी दत्त जी को अधिकारी समझ उन्हे स्वयं ही 'मानस' पढ़ाया। किशोरी दत्त जी ने 'मानस' का तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् 'मानस' के प्रचार-प्रसार का बीड़ा सोत्साह उठाया। वे जन-सामान्य में 'मानस' की कथा बड़े ही प्रभावशाली ढग से कहने लगे। वे 'मानस' का व्याख्यान अपने गुरु के वचन—'जे गावहिं यह चरित सँभारे। ते एहि ताल चतुर रखवारे' के अनुसार ही किया करते थे। किशोरी दत्त जी 'मानस' का अर्थ सामान्य रीति से ही नहीं करते थे, अपितु वे इस बात का सदा ध्यान रखते थे कि वस्तुत 'मानस' का स्वरूप

---

१. रामचरितमानस, लंका कांड, दोहा १।
२. तुलसीपत्र, वर्ष ४, अंक ५, पृ० १२१।
३. वही, पृ० १२१।

काव्यात्मक से अधिक आध्यात्मिक है। उसमें 'चारिउ वेद पुरान अष्ट दश छओ शास्त्र सब ग्रन्थन को रस। तन-मन-धन संतन को सरबस, सार अंश सम्मति सब ही की' सन्निविष्ट है। इस रहस्य को उद्बोधित करने के लिए उन्होंने भारत के अनेक प्रान्तों में भ्रमण किया। आपके सत्संग एवं प्रवचन से भव-तार-ग्रस्त लक्षाधिक आर्त्तजनों ने शांति प्राप्त की। 'मानस' के प्रसारार्थ ही आपने 'मानस' की बहुत सी प्रतियाँ तैयार करवाईं और उन्हें संतों एवं जन-सामान्य में वितरित करके 'मानस' का प्रचार किया। वे अपने श्रद्धालुओं एवं हितैषियों से 'मानस' की प्रतियाँ तैयार करवाते थे। आमेर सम्बन्धी 'मानस-प्रचार' यात्रा से लौटते समय, संगरपुर निवासी उनके एक श्रद्धालु भक्त श्री अजीत सिंह ने एक लिपिक भी उनकी सेवा में नियुक्त कर दिया था, जिसने किशोरी दत्त जी के सान्निध्य में रहकर मानस की ६४ प्रतियाँ तैयार की थी। ये सभी प्रतियाँ संत-मण्डली में 'मानस' के प्रचारार्थ वितरित कर दी गयीं।[1]

आपके जीवन-चरित के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि आपके 'मानस' प्रचार का मुख्य क्षेत्र राजस्थान, पश्चिमी एवं दक्षिणी उत्तर-प्रदेश तथा उत्तरी मध्य-प्रदेश था। किशोरी दत्त जी के परम अधिकारी 'मानस-शिष्य' एवं 'मानस' के प्रचारक योगीन्द्र श्री अल्पदत्त 'खाकी बाबा' थे, जिनके सम्बन्ध में आगे उल्लेख किया जायगा। आपके कई संस्कृत विद्वान् शिष्य भी 'मानस' के प्रचारक थे। इनमें से मिथिला निवासी महेशचन्द्र ठाकुर भी एक थे, जिन्होंने संस्कृत में न्यायमार्तण्ड की पदवी प्राप्त की थी। इन्होंने काशी में जाकर मानस का प्रचार किया और शीघ्र ही काशी के 'मानस' विरोधी संस्कृत पंडितों पर अपनी धाक जमा ली थी।[2]

जिस समय किशोरीदत्त जी उत्तर-काशी में 'मानस' का प्रचार कर रहे थे, इनका सत्संग शिवाजी के गुरु स्वामी समर्थ रामदास से हुआ था। उनको भी आपने 'मानस' के प्रचारार्थ 'मानस' की एक हस्तलिखित प्रति दी थी। स्वामी जी भी श्री किशोरी दत्त जी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने महाराष्ट्र में जाकर रामायण प्रचार की एक संस्था[3] स्थापित की, जो वहाँ चिरकाल तक वर्तमान रही।[4]

गोस्वामी जी के 'मानस'—शिष्य होते हुए भी किशोरी दत्त जी भगवान राम के शृङ्गारोपासक भक्त थे। इनके परमाराध्य रसिकबिहारी, सौन्दर्यनिधान, किशोर युवराज भगवान राम थे। अपने इष्ट देव के इसी स्वरूप का दर्शन इन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री

---

१. तुलसी पत्र, वर्ष ४, अंक ५, पृ० १२२-२३।

२. वही, पृ० १२३।

३. लेखक ने इस संस्था के सम्बन्ध में महाराष्ट्र प्रान्त के आधुनिक मानस प्रचारक एवं मानस टीकाकार श्री प्रज्ञानान्दजी से पत्र-व्यवहार किया, परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई सूचना नहीं दी।

४. तुलसीपत्र, वर्ष ४, अंक ५, पृ० १२४।

अल्पदत्त स्वामी को कराया था ।[१] इनके समय में राम भक्ति का रसिक सम्प्रदाय तीव्र गति से विकसित हो रहा था और इस सम्प्रदाय ने इन्हें अत्यधिक प्रभावित भी किया । इस सम्बन्ध मे एक तथ्य सदैव ध्यान मे रखने योग्य है कि 'मानस' का प्रचार करते समय सतोविशेषतया, राम भक्त सतो, से किशोरी दत्त जी का सम्बन्ध बहुत ही दृढ़ हो गया था । उनके प्रचार क्षेत्र—राजस्थान, चित्रकूटादि मे, राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय का उस समय जोर था । अतएव राम भक्तो से नित्य सम्बन्ध होने के कारण, इन पर राम भक्ति की रसिकोपासना का प्रभाव भी निरन्तर बढ़ता गया । स्मरणीय है कि इसी काल मे किशोरीदत्त जी ने 'मानस' को 'मानसप्रबोधिनी' संज्ञक अपनी शृङ्गारानुगा भक्ति परक टीका लिखी थी । इन्होंने विक्रम संवत् १७४३ मे मदाकिनी मे प्रवेश करके अपना प्राण त्याग किया था ।[२]

किशोरी दत्त जी का साहित्य—'मानससुबोधिनी' के अतिरिक्त किशोरी दत्त जी ने 'किशोरी जी का नख शिख वर्णन' नामक एक शृङ्गारिक मुक्तक काव्य-ग्रंथ लिखा था । कहा जाता है कि इसमे दोहे बिहारी के दोहो के सदृश उत्कृष्ट हैं ।[३] सम्प्रति यह ग्रंथ अनुपलब्ध है ।

मानससुबोधिनी

किशोरी दत्त जी कृत 'मानससुबोधिनी' अवधी भाषा के अन्तर्गत दोहे-छन्द में निबद्ध, 'मानस' की पद्यात्मक टीका है ।[४] यह टीका अपूर्ण है । इसका पूर्वार्द्ध ही पूर्ण हो चुका था कि किशोरी दत्त जी का अंतिम समय आ पहुँचा । उन्होंने इसके उत्तरार्द्ध की रचना का भार अपने सुयोग्य शिष्य (खाकी बाबा) पर छोड़ दिया था ।[५] अतएव इसका रचना काल किशोरीदत्त जी की मृत्यु संवत् १७४३ वि० के आस पास मानना चाहिए । सम्प्रति यह टीका अनुपलब्ध है । जहाँ तक इस टीका मे निरूपित तात्विक सिद्धान्त का सम्बन्ध है, यह राम की शृङ्गारानुगाभक्तिपरक सिद्धान्तो के आधार पर रचित होनी चाहिए । इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित बाह्य प्रमाण को प्रस्तुत कर रहे हैं—

१—मानससुबोधिनीकार राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय का अनुयायी था । अतएव उसकी टीका में इस भक्ति-परक दृष्टिकोण का प्राधान्य होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हिन्दी साहित्य के मध्यकाल की भक्तिपरक रचनाओं का स्वरूप उनके कृतिकारों की भक्ति सम्बन्धी मान्यताओं पर ही आश्रित है ।

---

१ खाकी जी की जीवनी, खण्ड २, अध्याय २ ।
२ तुलसीपत्र वर्ष ४, अंक ५—तुलसी सत्संग के सच्चे सेवक—किशोरी दत्त जी शीर्षक लेख ।
३ मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—कल्याण मानसांक ।
४. 'मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख' वही, गीता प्रेस ।
५. अल्प दत्त जी की जीवनी, खण्ड २, अध्याय २ ।

२—किशोरी दत्त जी द्वारा प्रवर्तित 'मानस' की टीका-परम्परा के सभी शिष्य टीकाकार राम के शृङ्गारोपासक हैं। उनकी टीकाएँ भी शृङ्गारानुगामक्ति भाव परक हैं। उन्होंने इसी शृङ्गारानुगामक्ति भाव परक मानस-अर्थ परम्परा का निर्वाह अपनी टीकाओं में किया, जो उन्हें अपनी परंपरा के आदि-गुरु (किशोरी दत्त) से मिली थी।

३—किशोरी दत्त जी के नाम से, जो एक और रचना 'किशोरी जी का नख-शिख वर्णन' मिली है, वह भी शृङ्गारानुगामक्तिभावपरक है। अतएव किशोरी दत्त जी कृत मानसप्रबोधिनी टीका भी मधुराभक्तिपरक ही होनी चाहिए। पीछे जीवनी में किशोरी दत्त जी के मुख से नि:सृत एक दोहे का उल्लेख है, उसके आधार पर उनके दोहों की भाषा शैली पर मानसकार तुलसी की पूर्ण छाप प्रकट है।

मानसकल्लोलिनी टिप्पणी

टिप्पणकार—योगीन्द्र अल्पदत्त जी 'खाकी बाबा'

मानसकल्लोलिनीकार योगीन्द्र अल्पदत्त 'खाकी बाबा' का समय विक्रम की १८ वीं शताब्दी है। ये किशोरी दत्त जी के प्रत्यक्ष 'मानस'—शिष्य थे। इनका जन्म बुलन्दशहर जिले के अन्तर्गत अहार नामक ग्राम में हुआ था। 'खाकी' जी पंडा केशवराम के पुत्र थे। इनका बचपन का नाम रामकृष्ण था। इनके माता-पिता की मृत्यु इनके बचपन में ही हो गई थी, परन्तु इनकी शिक्षा बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से हुई थी। उन्होंने संस्कृत व्याकरण की आचार्य श्रेणी तक शिक्षा पायी थी।

युवावस्था के प्रारम्भ में ही इनके मन में घर-गृहस्थी के प्रति तीव्र विराग जाग्रत हो गया। कहते हैं कि एक दिन सहसा ये घर छोड़ कर दो ढाई मील की दूरी पर स्थित भगवती अम्बिका के मंदिर पर आकर रहने लगे। वह मंदिर एक सुनसान जंगल में स्थित था। वहाँ दिन में तो पंडे पुजारियों एवं दर्शनार्थियों की चहल-पहल मची रहती थी। परन्तु रात को वह स्थान एकदम निर्जन हो जाता था। ऐसी विजन एकांत स्थली में अल्पदत्त जी नितांत अन्यमनस्क भाव से पड़े रहते थे। इसी प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। चौथे दिन इनके सगे-सम्बन्धी इन्हे किसी न किसी प्रकार घर ले जाने को उद्यत हुए। उन्होंने इन्हे बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु ये घर लौटने को तैयार न हुए। अन्ततः घरवाले विवश होकर चले गए। उसी दिन रात को भगवती अम्बिका ने इन्हे स्वप्न में आदेश दिया कि 'तुम यदि सांसारिक बन्धनों से मुक्ति चाहते हो, तो शीघ्र ही चित्रकूट चले जाओ, वहीं तुम्हारा मनोभिप्सित पूर्ण होगा।' अम्बिका का आदेश पाते ही ये चित्रकूट चले आये। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि वे किसी प्रकार चित्रकूट चले गये।

चित्रकूट आकर इन्होंने मंदाकिनी के तट पर स्थित अपना आसन लगाया। ये पूर्व की भाँति यहाँ भी दिन भर उदासीन अवस्था में बैठे रहे। संध्या के समय वयोवृद्ध महात्मा किशोरी दत्त जी से घाट पर इनका समागम हुआ। किशोरी दत्त जी ने इनसे पूछा—'वत्स, तुम क्यों इतने उदास हो? तुम्हें भूख-प्यास लगी है? इस पर अल्पदत्त

जी ने उत्तर दिया 'महाराज ! मैं जन्म-जन्म का भूखा-प्यासा हूँ, मेरी भूख-प्यास कभी मिटी ही नहीं।' महात्मा किशोरी दत्त जी ने सब उनके मन की सारी स्थिति भाँप ली। वे दोनों सज्जन घंटों एक दूसरे को देखते रहे। कुछ समय के पश्चात् किशोरी दत्त जी ने कहा 'क्यों वत्स तुम्हारी भूख मिट गयी न ? जाओ मंदाकिनी के जल से अपनी प्यास भी बुझा लो।' अल्पदत्त जी उठकर मदाकिनी तट पर गए। कहते हैं कि मदाकिनी के जल में उन्हें भक्त मन-रंजक दाशरथी भगवान राम की अपार शोभा का दर्शन प्राप्त हुआ। वे आश्चर्य चकित हो बोल उठे, ''महात्मन्, जल के भीतर कोई अत्यन्त सुन्दर राजकुमार जल विहार कर रहा है।'' इस पर महात्मा किशोरी दत्त जी ने हँस कर उत्तर दिया 'वे ही मेरे इष्ट देव (राम) हैं, वे यहाँ नित्य विहार करने आया करते हैं।' इनके इन वचनों को सुनते ही अल्पदत्त जी स्तब्ध रह गये। उनकी आँखों में प्रेमाश्रु छा गया, परन्तु शीघ्र ही जब वह नयनाभिराम दृश्य इनकी आँखों से तिरोहित हो गया, तब भागवत-वियोग की परम व्याकुलता के कारण ये वहीं मूच्छित हो गए। अन्तत महात्मा किशोरी दत्तजी ने यत्न करके इन्हें सुस्थिर किया और भगवद्दर्शन की महत्ता एवं मर्म का इन्हें ज्ञान कराया। वे इन्हें अपने आश्रम में ले आये। उन्होंने इन्हें मंत्र-दीक्षित किया तथा इनका नाम 'अल्पदत्त' रखा। अब ये रामकृष्ण से 'अल्पदत्त' हो गये।

अल्पदत्त जी ने अपने गुरु की सेवा तन मन से की। इन्होंने गोस्वामी जी कृत सम्पूर्ण कृतियों का अध्ययन किया। किशोरीदत्त जी ने इन्हें अधिकारी समझ कर 'मानस' पढ़ाया और आज्ञा दी कि 'मानस' के सम्यक् बोधार्थ तुम सम्पूर्ण वेद वेदांगों का परिशीलन कर डालो। संस्कृत व्याकरण के आचार्य अल्पदत्त जी बड़ी ही अभिरुचि एवं उत्साह से वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथों के अध्ययन में लग गए। अभी वे उत्तर मीमांसा ही समाप्त न कर पाये थे कि इसी बीच उनके गुरु का साकेतवास हो गया। जब किशोरी दत्त जी ने महाप्रस्थान के पूर्व अल्पदत्त जी से अपने इन चार आदेशों का पालन करने के लिए कहा—

१ तुलसी साहित्य का प्रचार करना।

२ मत मतान्तरों के दुराग्रहों को शमन करने की चेष्टा करना।

३ मानससुबोधिनी के उत्तरार्द्ध की पूर्ति करना।

४. रहस्य की बात किसी अनधिकारी को न बतलाना।

गुरु की मृत्यु के अनन्तर, कुछ दिनों तक अल्पदत्त जी चित्रकूटाचल पर ही रहे। इस बीच इनकी प्रखर तपोसाधना की ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी थी। आपके गुरु के निकट दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ लगती। बड़े-बड़े विद्वान् एवं सामंत-नरेश आदि इनकी सेवा में उपस्थित होते थे। पन्ना की महारानी की इनमें बड़ी ही श्रद्धा थी। दर्शनार्थियों की अत्यधिक भीड़ के कारण योगिराज अल्पदत्त जी की परलोक-साधना एवं 'मानस' परिचर्या में बाधा पड़ने लगी। अतएव उन्होंने चित्रकूट से प्रस्थान कर दिया।

वे प्रयाग होते हुए 'सीतावट' तीर्थाश्रम पर पहुँचे। यहाँ इनको शान्ति की प्रतीति हुई। अतएव वे यहीं रुक गए। इसी पुण्यभूमि पर अल्पदत्त जी ने 'मानस' पर मानसकल्लोलिनी नामक छः हजार दोहों की एक टिप्पणी लिखी।[1] यहाँ पर रहते समय आप स्नान करने के पश्चात् समस्त शरीर पर खाक मल लिया करते थे। अतएव आपको लोग 'खाकी' बाबा के नाम से अभिहित करने लगे। यहीं पर पन्ना नरेश छत्रशाल (सं० १७०६-१७८६ वि०) के गुरु अक्षरअनन्य[2] कवि इनका दर्शन करने आये और वे खाकी बाबा के परम भक्त बन गए। उन्होंने खाकी बाबा से मंत्र-दीक्षा भी ली तथा वे बहुत दिनों तक इनकी सेवा में रहे। कालान्तर में अक्षरअनन्य जी जब चित्रकूट तपस्या करने चले, तब खाकी बाबा भी सीतावट से चल दिए और काशी होते हुए कुसम्ही (कौशम्बी, गोरखपुर के पास) जंगल में चले आये।

कुसम्ही में भी उनकी तपोसाधना बड़े ही प्रखर रूप में चली। यहाँ भी उनके दर्शनार्थियों एवं श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती। आर्त, अर्थार्थी एवं ज्ञानी सभी प्रकार के भक्त-श्रद्धालु आप की सेवा में एकत्र होते थे। आपके श्रद्धालुओं में तत्कालीन मझौली नरेश भी थे, जिन्हें आपकी कृपा से पुत्रलाभ हुआ था। आप के परम शिष्यों में दो मुसलमान फकीर भी थे जिनका नाम रोशनअलीशाह और सिराजुद्दीन था। इनमें श्री रोशनअलीशाह पर खाकी बाबा की विशेष कृपा थी। उन्हें इनका सहज स्नेह प्राप्त था। कहते हैं कि जब एक बार रोशनअलीशाह को किसी अनिवार्य कारणवश गोरखपुर त्यागना पड़ा, तब खाकी बाबा भी कुसम्ही की तपोभूमि छोड़ कर पुनः चित्रकूट आ गए।

इस बार चित्रकूट जाकर खाकी बाबा तुलसी एवं उनके साहित्य के प्रचार में बड़े मनयोग से प्रवृत्त हुए। उन्होंने तुलसी-जयन्ती के बड़े ही विशाल समारोह की योजना बनायी, जिसमें भारतवर्ष के कोने-कोने के विद्वान् संत महात्मा एवं राजे-महाराजे आमंत्रित थे। श्रावण शुक्ला सप्तमी के अवसर पर तुलसीजयंती का समारोह बड़ी ही धूम-धाम से मनाया गया था। तुलसीदास का रथ राजापुर से सजा कर चित्रकूट तक खींच कर लाया गया था। रथ के साथ-साथ बड़े-बड़े महात्मा एवं भगवत-भक्त थे। इस तुलसीजयन्ती समारोह में कई दिनों तक हवन यज्ञ का कार्य चलता रहा। विद्वानों का सत्संग एवं 'मानस' का पाठ बड़ी भव्यता से सपन्न हुआ। लोगों का कहना है कि यह अभूतपूर्व तुलसी जयन्ती समारोह था। तुलसीजयन्ती के काफी दिनों तक सन्तमहात्मा रुके रहे। उनका परस्पर सत्संग चलता रहा। कालान्तर में अन्य सभी लोग तो चले गये, परन्तु अयोध्या के संत परमहंस रामप्रसाद जी खाकी बाबा की सेवा में रह गये। उनकी श्रद्धा-भक्ति से प्रसन्न हो खाकी बाबा ने उन्हें 'मानस' पढ़ाया। आगे चलकर इन्हीं संत रामप्रसाद जी ने 'मानस' पर मानसरसविहारिणी टीका लिखी।

---

१. तुलसीपत्र, वर्ष ४, अंक २, पृ० २४१।
२. पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'।

चित्रकूट में खाकी बाबा की तपश्चर्या एवं मानस प्रचार अपनी तीव्र गति में चल रहा था। खाकी बाबा भी अब चित्रकूट मे ही सुस्थिर रूप से रह कर भगवत परिचर्या मे लीन रहना चाहते थे। इसी बीच इनके पुराने श्रद्धालु शिष्य श्री रोशनअलीशाह, जिन्हें मुगल बादशाह मुहम्मद शाह से गोरखपुर में मियां बाजार की जमीन भी मिल चुकी थी, पुन गोरखपुर आ गये थे। यहाँ उनका चित्त भी गुरु के वियोग के कारण सदा अशान्त रहता था। अतएव उन्होंने एक व्यक्ति के हाथ एक मार्मिक विनय-पत्र[2] खाकी बाबा के पास चित्रकूट भेजा। पत्र की करुणोत्पादक पंक्तियों को पढ़ कर दयालु सन्त खाकी बाबा अत्यन्त द्रवित हो गए। वे चित्रकूट में रुक न सके और तत्काल ही पुन कुसम्हा की तपोभूमि आ गए। यहां गुरु शिष्य का पुन: सत्संग चलने लगा। कहते हैं कि सत्संग (जो प्राय रात ही मे होता था) करते-करते पूरी रात बीत जाती थी। अन्तत खाकी बाबा ने अपनी शताधिक वर्षों की दीर्घायु भोग लेने के पश्चात् चिर समाधि ले ली। इनकी समाधि आज भी गोरखपुर मे बैंक रोड पर स्थित है। श्रद्धालु लोग आज भी वहाँ जाकर श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं।

मानसकल्लोलिनी टीका

योगीन्द्र अल्पदर्श खाकी कृत मानसकल्लोलिनी टीका किशोरीदत्त की शृंगारानुगा 'मानस' टीका-परम्परा की द्वितीय टीका है।

इस टीका का रचनाकाल हमें विक्रम १८ वी शताब्दी का तृतीय चरण मानना[1] चाहिए जैसा कि हमें उनके जीवन चरित से इसका आभास भी मिलता है। उनके जीवन-चरित से यह ज्ञात होता है कि किशोरीदत्त जी की मृत्यु सं० १७४३ वि० के पश्चात् वे कुछ दिनों तक चित्रकूट मे रहे, तदोपरान्त सीताबट आकर उन्होंने मानसकल्लोलिनी की रचना की। यदि अपने गुरु (किशोरी दत्त) के मृत्योपरान्त १०-१५ वर्ष भी खाकी बाबा चित्रकूट रुके हों, तब भी मानसकल्लोलिनी की रचना का प्रारम्भ संवत् १७६० के आस-पास ही होना है और ६००० दोहों में 'मानस' की टिप्पणी प्रतीत करने में भी पर्याप्त समय लगना संभव है। सं० १७७५ तक तो यह कार्य पूर्ण ही हो गया होगा।

---

१. कल्याण (योगांक) बालक राम विनायक द्वारा लिखित-खाकी बाबा का जीवन-वृत्त।

२. रोशनअलीशाह द्वारा खाकी बाबा के पास भेजे गये पत्र की पंक्तियाँ निम्न लिखित हैं—

'कोटि-कोटि प्रभु विनय करौं कर जोर।
चरन कमल में लागल मनवां मोर॥
मन देखन सब दिन छिन घबराय।
हरि दरसन लागि मनवां कतहिं न जाय॥'

कल्याण (योगांक)—बालकरामविनायक जी द्वारा लिखित खाकी बाबा का जीवन वृत्त।

मानसकल्लोलिनी रामचरितमानस की सांगोपांग व्याख्या नहीं है। अपितु वह उसके मुख्य-मुख्य स्थलों पर की गयी व्याख्यात्मक टिप्पणियों के एक विशाल संग्रह के रूप में है। ये टिप्पणियाँ दोहों में है। मानसकल्लोलिनी के दोहों की संख्या ६००० बतायी जाती है।[1] सम्प्रति उसके कुल ७४ दोहे ही प्राप्त हैं, जो बाबू इन्द्रदेवनारायण द्वारा मानसमयंक सटीक। मे प्रकाशित कराये गये हैं।[2] इन चौहत्तर दोहों मे १२ दोहे 'किष्किधाकाड' की अर्द्धाली 'छिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित यह अधम सरीरा' के 'पंचतत्व' शब्द की एक विस्तृत टिप्पणी के रूप मे है। शेष ६२ दोहों मे लंकाकाड के 'वेद स्तुति प्रकरण' की व्याख्यात्मक टिप्पणी की गयी है। मानसकल्लोलिनी विविध कल्लोलों (प्रकरणों) में विभाजित है, जैसाकि 'वेदस्तुति' प्रकरण की समाप्ति पर दी गयी पुष्पिका से ज्ञात होता है।[3]

मानसकल्लोलिनी के प्राप्त दोहों की टीका पद्धति का विवेचन करने पर पता चलता है कि मानस कल्लोलिनी टीका की अर्थ-पद्धति की आधारशिला आध्यात्मिक है। यह टीका भक्ति परक दृष्टिकोण से लिखी गयी है। टीकाकार स्वयं वेद-वेदान्त का प्रबुद्ध पंडित था। उसने *मानसकल्लोलिनी के अन्तर्गत 'मानस' की* वेद, उपनिषद्, *दर्शन* एवं पुराण सम्मत, व्याख्या दी है। उसकी टीका पर राम भक्ति की मधुरोपासना का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। मानससुबोधिनी की भाषा अवधी है। वह बहुत कुछ गोस्वामी जी की भाषा के अनुरूप है। परन्तु साम्प्रदायिक दुराग्रह अथवा 'मानस' की अर्थ-परम्परा को अपने सम्प्रदाय मे सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति के कारण इसकी भाषा दुरूह हो गयी है। इसमें क्लिष्ट एवं अल्प प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। कूट शैली का भी प्रयोग यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। इन सभी तथ्यों के प्रकाशनार्थ, मानसकल्लोलिनी से, 'मानस' के वेद स्तुति प्रकरण के एक छन्द व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है—

मूल

'अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
पट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधिकटु मधुर बेलि अकेलि जेति आश्रित रहे।
पल्लवत फलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥

१. (अ) तुलसीपत्र, वर्ष ४, अंक १०, पृ० २४१।
(ब) कल्याणमानसांक—'मानस' के प्राचीनटीकाकार शीर्षक लेख।

२. मानसमयंक सटीक प्र० सं०, पृ० ३८६ (किष्किधाकाड) एवं पृ० ६१६-६३५ (उत्तर काड)

३. मानसमयंक सटीक, प्र० सं०, पृ० ६३६।

टिप्पणी

'अहो रसीले रस भरे, रसिक सीय रस भून।
आपे तरु संसार हो, आपे पक्षी रूप ॥
मूल काठ त्वच स्कन्ध अरु, साखा पल्लव फूल।
फल पक्षी संसार तरु, को सब कहो सतूल ॥
रेफ मूल जिसु मूल सों, त्वच अरु सत रज क्रोध।
चारि रंग के चारि त्वच, सेत सेत पुनि सोध ॥
अरुण स्याम स्कन्ध पट, पच भूत श्रुति मून।
सेर पष्ठ अस्कंध बहु, औ विकल्प बहु गून ॥
अनें वहिन हरि नमसि महि, मन पट स्कन्ध प्रकास।
मन असंख्य लसि कहन की, होत न हिये हुलास ॥
नीर नीर के रंग जो, अग्नि रंग अरुणार।
हरी हरित महि पीत रंग, वियत विरामे कार ॥
पंचविंश साखा भये, एक एक के पांच।
पीत सेत श्रम मन रुधिर, लार नीर से राच ॥
लखो हुतासन क्रान्तहूं, आलस निद्रा भूख।
अरु जल पेक्षित ये अहैं, साखा पंच अदूख ॥
धावन उद्धरन पगधरन, परसन हूं सकुचान।
अहि अहार से पंच ये, साखा कहे सुजान ॥
वियत अरामे काम सर, गादा सतार लोभ।
कामानुज रतिपति गती, मती हतो ही छोभ ॥
मही महीरुह जो मही कंध पंच ता बीच।
अस्थि माम नाडी त्वचा, तनरुह अनरम सींच ॥
एक एक के कंध मों, युग पल्लव युग फूल।
एक एक फूल के समे मध्य युगल फल तूल ॥
ज्ञान कर्म इन्द्री युगल, पल्लव जन पे मूल।
रसना गुण भेंटी अहे, षटरस फूले फूल।
फूले युगल फल बहु मधु, मशामश प्रमान।
युग फल चाखत वदन ह्वै, पक्षी परम सुजान ॥
दूजे इन्द्री कर्म जो, पल्लव लिंग प्रमान।
मिथुन गुण भेंटी अहे बीरज सुमन समान ॥
फले युगल फल निय पुरुष, अवगुण गुण बहु मीठ।
विहरत सदा विहंगवर, प्रजापतीहूं गीठ ॥
दृग पल्लव के बीच हूं, भेंटी रूप बखान।
सुमन रूप गुण गद अगद, मीठो बहु परमान ॥

भये पतंग पतंग तहं, पद पल्लव के बीच।
भेंटी गमन गमन सुमन, सुपथ कुपथ फल हीच।

सोरठ

देत आप मा बास, अन्त काल उदवासि जग।
पक्षी सोई खास, बसत निरन्तर सबन्हि हिय॥
त्वच पल्लव मेटी परस, तत सुख फूले फूल।
कर्म कुकर्महि युगल फल, पक्षी सुरपति तूल॥
श्रुति पल्लव के बीच हूँ, मेटी गुण दरसाई।
श्रवन फून फल फल आम पक आसा पक्षी खाइ॥
बाकी मेटी जानिये, सुग्व पल्लव के बीच।
अर्थ फूल फल युगल अर्थानियें सोच॥
बहिन विहंग विहरे तहा, मही कन्ध महूँ दोइ।
पल्लय इन्द्री कर्म अरु, ज्ञान मानिये होइ॥
नासा पल्लव भेटि गुन, गंध फूल फल दोइ।
सुमग सुवास कुबासहूँ, खग धन्वन्तर होइ॥
गुन पल्लव भेंटी गुदा, इच्छा फल प्रधान।
त्यागे फल लागे तहा, अन्तक मग परमान॥
विश्व विटप तूं धन्य है, निते फुले फल भार।
मल तिहारो रेफ है, ताते परे उदार॥'[1] (३१-५६ दो०)

'मानस' के उपर्युक्त छन्द की व्याख्या करते हुए राम के शृंगारीमक्त टीकाकार ने राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय की मान्यतानुकूल, आदर्शशीलचरित नायक, परम ब्रह्म राम को 'सीता' रस का रसिक बताया है। उसने उन्हे संसार के रस का भोक्ता भी कहा है, जो मधुरा भगवदोपासना पद्धति के अनुसार भगवान का एक प्रधान गुण है।[2]

वेदो की स्तुति प्रकरण के विश्व विटप रूप ब्रह्म राम के स्तवन को प्रस्तुत करने वाले उक्त छंद की व्याख्या उपनिषदो एवं दर्शनो मे वर्णित सृष्टि रचना के सिद्धान्तो के आधार पर की गयी है। अपनी परपरा के अर्थ को उसके अधिकारी 'मानस'—शिष्यो के लिए ही सुरक्षित रखने के प्रयत्न मे टीका की भाषा जटिल एवं दुर्बोध हो गयी है।

---

१ मानसमयंक सटीक, प्र० स० पृ० ६२६-३१ (मानसकल्लोलिनी-पंचम कल्लोल, उत्तर काण्ड)

२. चिज्जगत में एक मात्र भगवान ही भोक्ता हैं, शेष समस्त चिरसत्व गण प्रकृत रूप मे उनकी भोग्या हैं—(राम भक्ति साहित्य म मधुरोपासना-प्र० सं०, पृ० २३)।

उपर्युक्त दोहो मे मन के लिए श्रुति शून्य[1] (दो० ३४) वायु के लिए 'अहिअहार' यमराज के लिए 'अन्तक' प्रभृति कूटपदो एव जल के लिए 'अर्न' (दो० ३५), रोम के लिए 'तनरुह' (दो० ४१) सदृश अप्रचलित एवं जटिल शब्दो का प्रयोग टीकाकार की इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। इस प्रवृत्ति को अपनाने का एकमेव कारण यही है कि उसे अपने गुरु से यह आदेश भी तो मिल चुका है कि 'मानस' के तत्वार्थ की रक्षा करना और उसे अनाधिकारी शिष्य को न देना।[2] खाकी बाबा ने गुरु आज्ञा का सम्यक् रीति से पालन भी किया। इसी संकुचित साम्प्रदायिक भावना के कारण मानसकल्लोलिनी टीका का पर्याप्त प्रचार-प्रसार जन-सामान्य मे न हो सका और उसे लोकप्रियता भी नही प्राप्त हो सकी। यही कारण है कि इस ग्रन्थ का सरक्षण भी न हो सका और वह आज विखण्डित रूप मे, मात्र कुछ दोहो मे ही अवशिष्ट है।

मानस रस विहारिणी टीका

टीकाकार-संत परमहंस रामप्रसाद जी

खाकी बाबा के 'मानस' शिष्य परम हस राम प्रसाद जी का समय विक्रम की १८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं १६ वीं शती का पूर्वार्द्ध है। गंगातट स्थित जाफराबाद के निवासी थे। ये राममक्ति के रसिक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनकी किशोरी (सीताजी) मे अनन्य निष्ठा थी। ये राम का ध्यान उनके 'दूलह' रूप मे करते थे। कालान्तर मे सीताराम के धाम अवध मे आकर जानकीघाट पर रहने लगे थे।[3]

रसिक प्रकाश भक्तमालकार के अनुसार परमहंस जी को वेद वेदांग वेदभाष्य एवं षट्शास्त्र एवं सभी वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्त कंठस्थ थे। इनकी मानस म उद्भुत गति थी। उसे यह रसिक सिद्धान्त मूलक ग्रन्थ मानते थे तथा अपने शिष्यो को भी 'मानस' के इसी शृंगारिक रूप का अवबोधन कराते थे। कोई भी सजातीय रसिक भक्त मिल जाता जो उससे बड़े मनोयोग न सत्संग करते थे।

रामप्रसाद जी भगवान राम की मधुरोपासना भक्ति के बड़े पक्षपाती थे। इन्होंने वाल्मीकीरामायण के अन्तर्गत अपने युगल सरकार (सीताराम) की मधुर विलास-लीला का ही प्रसार पाया था एवं उसका व्याख्यान इसी भाव से करते थे। पं० रामगुलाम

---

१. श्रुति का अभिप्राय अंक ४ एवं शून्य ०, इस प्रकार ४० की सख्या अर्नी। ४० सेर का मन होता है। अत खाकी बाबा ने श्रुति शून्य शब्द को मन के अर्थ म इसी कूटशैली के आधार पर प्रयुक्त किया है।

२. खाकी बाबा की जीवनी, खण्ड २, अध्याय २।

३. जीवाराम कृत रसिक प्रकाश भक्त माल, पृ० ४३।

द्विवेदी इनके मंत्र-शिष्य थे।[1] शिवलाल पाठक[2] ने आपसे 'मानस' पढ़ा था। आप बड़े गुणग्राही एवं ज्ञान पिपासु थे।

रामप्रसाद जी का साहित्य—रामप्रसाद जी ने रामचरितमानस की मानसरस-विहारिणी नामक एक टीका लिखी थी।[3]

मानसरस विहारिणी टीका

परमहंस जी कृत 'मानस' को मानसरसविहारिणी टीका एक पद्यात्मक रचना है।[4] यह सम्प्रति अनुपलब्ध है।

किशोरी दत्त जी की शृङ्गार भावानुगा टीका परम्परा की टीका होने के कारण इसे भी अपनी परम्परा की पूर्ववर्ती टीकाओं की विशेषता से युक्त होनी चाहिए।

मानसरसविहारिणीकार स्वयं एक प्रसिद्ध रसिक सत थे। वह बाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस दोनों का व्याख्यान मधुरभाव भक्ति से सिद्धान्तानुसार करते थे। उन्होंने अपने 'मानस'-शिष्यों को भी 'मानस' का रसिक सिद्धान्त परक तत्त्वार्थ प्रदान किया था। इसका ज्वलन्त प्रमाण उनके 'मानस' शिष्य शिवलाल पाठक की रसिकोपासना प्रधान मानसमयक टीका है। अतएव उनकी 'मानस' की टीका भी अवश्य ही राम भक्ति की मधुरोपासना के सिद्धान्तों को प्रतिपादित रचना रही होगी।

मानसमयंक एवं अभिप्रायदीपक टीकाएँ

टीकाकार पं० शिवलाल पाठक

पं० शिवलाल जी पाठक गोस्वामी जी की शिष्य परम्परा के चौथे टीकाकार हैं। ये परमहंस रामप्रसाद जी के 'मानस'-शिष्य थे। पाठक जी का जन्म गोरखपुर जिलान्तर्गत सोनहुला नामक ग्राम में फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी संवत् १८१३ वि० में हुआ था।[5] इनके पिता देवी दत्त पाठक और माता सोलंखी देवी थीं। जन्म के दस महीने पश्चात् ही इन्हें मातृ-वियोग हुआ। पिता का दूसरा विवाह हो गया। विमाता का इनके

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृ०, ४३।

२. (अ) भगवती प्रसाद सिंह कृत राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४३३ (प्र० सं०)।
 (ब) बाबू इन्द्र देवनारायण सिंह द्वारा लिखित पाठक जी की जीवनीमानसमयंक, प्र० सं०।
 (स) कल्याण (मानसाक) 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख।

३. (अ) मानसमयंक सटीक की भूमिका।
 (ब) मानसमार्तण्ड टीका की भूमिका।
 (स) 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख। कल्याण 'मानसाक'।

४. अध्याय—प्रकरण 'मानस' की पद्यात्मक टीकायें।

५. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२२।

साथ अच्छा व्यवहार न था। अन्तत वे नौ वर्ष की ही आयु में घर त्याग कर वाराणसी चले आये। यहाँ पर इन्हीं की जन्मभूमि क्षेत्र के निवासी गोरखी नामक एक हलवाई ने इन्हें प्रश्रय दिया। कालान्तर में इन्होंने काशी के एक षड्शास्त्री विद्वान् पं० शिवलोचन जी के सान्निध्य में संस्कृत शिक्षा ग्रहण किया। पं० शिवलोचन जी के ही शिष्यत्व में ये षड्शास्त्र के पारंगत विद्वान् हुए। कुछ ही दिनों के पश्चात् पाठक जी की गणना काशी के चोटी के संस्कृत पंडितों में होने लगी। शीघ्र ही इनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। आप वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत के उत्तम वक्ता थे। शास्त्रार्थ में भी बड़े निपुण थे।[1]

पाठक जी की विद्वता की प्रसिद्धि सुनकर अयोध्या के तत्कालीन सुप्रसिद्ध संत एवं रामायणी परमहंस रामप्रसाद जी भी इनसे संस्कृत पढ़ने काशी आये थे। इन्हीं परमहंस जी से पाठक जी को भाषा काव्य रामचरितमानस की महत्ता का ज्ञान हुआ। इस सम्बन्ध में एक रुचिकर कथानक प्रसिद्ध है। कहते हैं कि जब परमहंस रामप्रसाद जी की पाठशाला में संस्कृत पढ़ते थे, तब अनध्याय के समय पाठक जी की अनुपस्थिति में पाठशाला के विद्यार्थीगण परमहंस जी से 'मानस' की कथा कहलवाते थे। परमहंस जी 'मानस' की कथा बड़े ही रुचिकर एवं प्रभावशाली ढंग से कहा करते थे।

एक बार जब पं० शिवलाल जी पाठक कार्यवश रामनगर चले गए थे, तब छात्र मंडली ने परमहंस जी से अनुरोध करके 'मानस' की कथा प्रारंभ करायी। उस दिन कथा खूब जमी। सन्ध्या हो गयी, सूर्य डूब गये, परन्तु किसी को इसकी कुछ सुध न रही। सभी परमहंस जी के अमृतवत 'मानस' व्याख्यान के रसानन्द में मग्न थे। पाठक जी भी रामनगर से शीघ्र ही लौट आये, उन्हें 'मानस' कथा का यह अपूर्व दृश्य देखकर बड़ा विस्मय हुआ। वे स्वयं परमहंस जी की कथा से प्रभावित हो पाठशाला भवन के द्वार पर एक कोने में 'मानस' की कथा सुनने लगे। पंडित जी भी 'मानस' रस में तल्लीन हो गये। उनके भावमग्न आँखों में प्रेमाश्रु छा गये। कथा समाप्त हुई। सभी शिष्य

---

[1] 'ज्ञानघन स्वयं व्यक्त सच्चिदानन्द, महाशिवदानी चली चली फूटि बमरानि की।
'पण्डित प्रवीन सोमवासर समीचीन जबहिं उत्पानी सप्तमीनि घाटी उनकी।
विदित सानहुला ग्राम देवीदत्त विप्रधाम जाये मानौ जग माता सद्विपन की।
शिवलाल पाठक सों ज्ञानी भक्त सरनाम बनि बनि देरी धारै चरनन की॥'
'मास दस बीतने सुमाता छाड़ि स्वर्ग गई बारे ते विमाता सी कुमाता-कौप में पले।
नवम बरस लागे गेह भ्रष्ट-नेह त्यागे जनना बचन श्रम सुनि काशी को चले।
राखउ देशवारो जाति गोरखी सुमन्दकार शिवलोचन मिश्र ढिग विद्या पढ़े भले।
बकता भारत वाल्मीकि के शस्त्र शास्त्र माँहि पर दीपित हूँ दनदले॥
—पं० प्रवीन कृत शिवलाल पचक का प्रथम एवं द्वितीय कवित्त (मानसमयंक सटीक में प्रकाशित पाठक जी की जीवनी, पृ० २३-२४।)

पाठक जी को इस दशा में देखकर स्तमित हो गये। वे इधर-उधर खिसकने लगे। परन्तु परमहंस जी को सारा रहस्य ज्ञात हो गया। वे स्वय आकर पाठक जी के चरणो गिर पड़े और कहने लगे 'श्रीमान् को बडा कष्ट हुआ, आपको मेरे कारण इतने समय तक बाहर रहना पडा। पाठक जी के भावुक हृदय पर संत परमहंस जी की इस नम्र वाणी का और भी गहरा असर पडा। वे स्वय प्रेम विह्वल हो परमहंस जी के चरणो मे गिर पड़े। इस पर परमहंस जी ने विस्मित होकर कहा पडित जी, आप यह क्या अनर्थ कर कर रहे हैं? इस पर पाठक जी ने उत्तर दिया 'महाराज' अब आप मुझे इन चरणो मे ही पड़े रहने दें। कुछ न कहें। मुझे अंगीकार करें। मुझ देहाभिमानी, जात्याभिमानी एवं विद्याभिमानी पर कृपा करिये। मैं आपको 'मानस' कथा सुनकर आज कृतकृत्य हुआ। आप मुझे 'मानस' का तत्वार्थ प्रदान कीजिये।'

परमहंस जी पाठक जी के बहुत आग्रह करने पर उन्हे 'मानस' पढ़ाने को तैयार हुए। उन्होंने पाठकजी को प्रथमत मन्त्रराज (ओ३म्रामायनम) का उपदेश देकर अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। इसके पश्चात् अब पाठक जी परमहंस जी की गुरुभाव से सेवा करने लगे। जब तक शिवलालजी पाठक ही सभी के पूज्य थे। उन्होंने किसी को शीश नही झुकाया था। यदि प० शिवलाल पाठक जी किसी के सम्मुख इस प्रकार विनत हुए तो वह परमहंस जी ही थे। परमहंस जी ने 'मानस' पढ़ाने के पूर्व इनसे मानस का १०८ नवाह्निक पाठ करने का करवाया। इसके पश्चात् 'मानस' पढ़ाया। अब पाठक जी की 'मानस' मे अनन्य रूप से निष्ठा हो गयी।'[1]

'मनास' का अध्ययन कर लेने के पश्चात् पाठक जी भाषा काव्य रामचरित-मानस के प्रबल प्रचारक हो गये। वे घूम घूम कर 'मानस' को कथा कहने और 'मानस' की प्रतियाँ तैयार करवा कर जन-सामान्य में वितरित करते थे। काशी के संस्कृत-पडितों ने प्रथमत उनके इस कार्य का तीव्र विरोध किया, परन्तु पाठक जी ने सबको यथोचित उत्तर देकर शान्त किया। आप रामचरितमानस के भी उद्भट व्यास थे। आपकी कथा मे 'मानस' प्रेमियो की महती भीड होती थी। एक बार काशी मे ही 'मानस' के बालकाण्ड की कथा की समाप्ति पर आपकी व्यास गद्दी पर चढ़ावे मे ७५,००० से अधिक रुपये आये थे।'[2] तब से आपकी धाक काशी के पडितो पर पूर्ण रूप से जम गयी। आपने उक्त

---

१. वाद पटुता सी वनिता मन हरन हार सुकविसरदार, राम भक्ति रस छाके हैं।
वेद और पुरान, कुरान, जैन जिन्द ज्ञान तुलसीकृत काव्य के समान नही आके हैं॥
रामप्रसाद दास सन्त पाद पद्म छाडि 'पंडित प्रबीन' कहो नाय शीश काके हैं।
धन्य शिवलाल शक्तिधर सा भरान जिन मानो कामिनी की ओर नहि ताके हैं॥
—पंडित प्रबीन कृत शिवलाल पचक का तृतीय कवित्त—मानसमयक सटीक मे लिखित पाठक जी की जीवनी, पृ० २४।

२. मानसमयक सटीक प्र० स०, पृ० २८—पाठक जी की जीवनी।

सारी धन-राशि को, पंडितो एवं साधुओ सन्यासियों मे वितरित कर दिया। पचगंगा पर एक विशाल यज्ञ भी किया। पाठक जी का जीवन एक त्यागी संत का जीवन था। इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रखा था। इनका प्रबल तेज प्रताप तत्कालीन विद्वद्वृन्द मे छाया हुआ था।[१] अनुमानतः इनका साकेतवास काल १९वीं शताब्दी का अंतिम चरण ठहरता है।

पाठक जी का साहित्य—पाठक जी ने वाल्मीकि रामायण पर भाव प्रकाश नामक एक उत्कृष्ट टीका लिखी थी। श्रीमद्भागवत की श्रीधरी टीका की भी आपने व्याख्या की थी। संस्कृत सम्बन्धी ये रचनायें मानस के प्रभाव मे आने के पूर्व की हैं। कहते हैं कि जबसे ये मानसज्ञ बन गये, तबसे इन्होंने संस्कृत साहित्य को छुआ भी नही। ये एकनिष्ठा से 'मानस' की ही सेवा में लग गए। अपने जीवन के उत्तरार्ध में इन्होंने 'मानस' की दो टीकाएं अभिप्रायदीपक चक्षु एवं मानसमयंक लिखी। आपके द्वारा लिखित मानस भाव प्रभाकर नामक एक और ग्रंथ का पता चलता है। परन्तु सम्प्रति वह अप्राप्त है।

पंडित जी राममक्ति के रसिक सम्प्रदाय के संत थे। आपकी युगल सरकार मे परम निष्ठा थी।[२] इनकी राम के प्रति सख्य भाव की भक्ति थी। ये भगवान राम के साथ अपना सम्बन्ध वशिष्ठ पुत्र-सुयज्ञ-का मानते थे।[३]

मानसअभिप्रायदीपक

श्री किशोरी दत्त जी की 'मानस' टीका-परम्परा के महान मानसज्ञ विद्वान् टीकाकार पं० शिवलाल पाठक कृत मानसअभिप्रायदीपक ७०० दोहों मे लिखित मानस की सात कांडों की एक सूत्रात्मक टीका है। इसीलिए हमने इसे संस्कृत की 'कारिका' शैली के टीकात्मक ग्रंथों की कोटि म रखा है। इस टीका का रचना-काल विषयक कोई भी सूचना हमें न तो टीकाकार के द्वारा मिलती है और न अन्यत्र ही कहीं से। केवल इस परम्परा के आठवें शिष्य श्री जानकी शरण स्नेहलता का कहना है कि मानसअभिप्राय-दीपक की रचना मानसमयंक के प्रणयनान्तर सम्पन्न हुई।[४] परन्तु हमे उनका यह मत बहुत युक्तियुक्त एवं सत्य नही प्रतीत होता। यदि हम मानस अभिप्रायदीपक का सूक्ष्म अन्वेषण कर तो इसमें हमे ऐसे संकेत उपलब्ध होते हैं,[५] जो इसे मानसमयंक की पूर्ववर्ती टीका ही नहीं, अपितु पं० शिवलाल पाठक कृत 'मानस' की सर्वप्रथम टीका सिद्ध करते हैं।

---

१. वही, पृ० २८—पंडित प्रवीन कृत शिवलाल पाठक का तृतीय चरित।
२. मानसमयंक सटीक—पाठक जी का जीवन वृत्त—पृ० २६।
३. वही, बालकांड, दोहा १ से ८।
४. रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२३।
५. मानसअभिप्रायदीपक चक्षु की भूमिका।

अभिप्रायदीपक (बालकाड) के चौथे एवं पाँचवें दोहे मे टीकाकार ने स्पष्टत लिखा है कि मैंने इसके पूर्व वाल्मीकि रामायण पर उपासनात्मक तिलक तो बड़ी ही सरलता से लिख लिया था, परन्तु आज रामचरितमानस जैसे भावमय काव्य की टीका-अभिप्रायदीपक—लिखने मे मेरा मन स्वय इतना भाव-प्रवण हो जाता है कि मैं इसके अर्थाभिप्राय को लिखने मे अशक्तता की अनुभूति कर रहा हूँ।[1] अभिप्रायदीपक की इन पंक्तियो से यही तथ्य ध्वनित हो रहा है कि सस्कृत भाषा और साहित्य के महापडित और पक्षपाती पाठक जी ने पूर्वत वाल्मीकि रामायण की एक मर्मोद्घाटिनी टीका लिखी थी, परन्तु जब वे प्रसिद्ध रामायणी सत राम प्रसाद जी की 'मानस कथा' से अत्यन्त प्रभावित हो, भाषा काव्य 'मानस के अनन्य भक्त, प्रचारक एव वक्ता हो गए तो उन्हे 'मानस' ही सर्वाधिक श्रेष्ठ ग्रन्थ प्रतीत हुआ। उन्हे इसके अर्थगाम्भीर्य के समक्ष वाल्मीकि रामायण भी फीकी लगने लगी। इतनी भावुकता से उनके द्वारा 'मानस' की अर्थअगमता या गुणानुवाद उनके प्रथम तिलक म ही सभव है। इस प्रकार हमे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त तथ्य से गर्भित 'मानसअभिप्राय दीपक' ही शिवलाल जी पाठक की प्रथम 'मानस' टीका है।

उपर्युक्त विशेषताओ के अतिरिक्त हमे मानसअभिप्रायदीपक मे कुछ ऐसी प्रमुख विशेषतायें मिलती हैं, जो यह स्पष्ट रूप स सकेतित करती हैं कि यह मानसमयंक की पूर्ववर्ती टीका-रचना है। कारण है—(१) मानसअभिप्रायदीपक के आकार की ही बात ले लीजिये। मानसमयक म १९६८ दोहे हैं, जबकि मानसअभिप्रायदीपक मे ७०० दोहे हैं। मानसअभिप्रायदीपक 'मानस' की एक लघु एव सूत्रात्मक साकेतिक टीका रचना है, जो मानस के अभिप्राय को पूर्ण रीत्या वहन करने मे पूर्णत सक्षम नही प्रतीत होती है। अत पाठक जी को 'मानस' पर मानसमयक नाम की एक सुविस्तृत टीका, जिसका आयाम अभिप्रायदीपक का लगभग तिगुना है, लिखनी पड़ी। (२) मानस अभिप्रायदीपक के ही अर्थों का विस्तार मयंक मे दिखाई पडता है। (३) मानसअभिप्राय दीपक की रचना-शैली की पूर्ण छाप मानसमयक पर परिलक्षित होती है, जिसका आगे विस्तार से यथा स्थान वर्णन किया जायगा। इन सभी तथ्यो से मानस अभिप्रायदीपक को शिवलाल-पाठक की टीकाओं म ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान देने वाली हमारी धारणा और भी पुष्ट हो जाती है।

मानसअभिप्रायदीपक की रचना पाठक जी ने अपने 'मानस' शिष्य श्री शेषदत्त

---

१ शब्द ब्रह्म के उर पयठि, बैठि जाह्नवी कल। श्रीमद् आरप पर रचेऊँ तिलक उपासन मूल। अभिप्राय दीपक लिखत, हींचत अगमा पखि। मानस उर्मि माल लखि, चित्त बेहाल विशेखि।

—मानस अभिप्राय दीपक—बालकाड—दो० ४-५।

जी के लिए ही की थी।[1] इसमें केवल अधिकारी (उनकी टीका-परम्परा के 'मानस' शिष्य) विद्वान का ही प्रवेश हो सकता है।[2] इसी कारण इसकी रचना-शैली बड़ी ही गूढ़ एवं सांकेतिक है। यह 'मानस' की सांगोपांग टीका नहीं है, अपितु विशिष्ट व्याख्यातव्य स्थलों की एक सूत्रात्मक टीका है, जिसमें कहीं पर उनका भाव, कहीं अभिप्राय अथवा कहीं संदर्भ मात्र ही दे दिया गया है। टीका के अन्तर्गत 'मानस' के संस्कृत श्लोकों का अर्थ किया ही नहीं गया है। यह 'मानस' से सम्बन्धित एक उपासनामूलक ग्रन्थ है। इसमें राम की रागानुगाभक्ति का प्रतिपादन बड़े ही मनोयोग से किया गया है।[3] इसमें 'मानस' के साहित्यिक रूप का विश्लेषण गौण ही है। कहीं-कहीं पर व्याख्यातव्यों में व्याप्त अलंकारों का उल्लेख कर दिया गया है।

टीका के अन्तर्गत व्यासों की अर्थ शैली का अनुगमन किया गया है। टीकाकार की अर्थ शैली में सांकेतिकता एवं सूत्रात्मकता के समावेश से अत्यन्त दुरूहता आ गयी है। इसका अर्थ बिना इसकी टीका के समझा ही नहीं जा सकता है। टीका की भाषा में कूट पदों एवं *अप्रयुक्त अथवा अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से टीका और अधिक दुर्गम हो गयी* है। टीका की भाषा व्रज (बोली) है। उसमें संस्कृत के शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। अभिप्रायदीपक के इस एक ही उदाहरण से उसकी समस्त प्रमुख विशेषतायें प्रकाश में आ जायेंगी।

मूल— 'राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा।
सवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपन अस उपदेसा॥
नृप जुवराज राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥
अभिप्राय दीपक दोहा—दीप्त भाव आमलक कर, शीशम सव्य निहारि।
यम द्रिग करि रुह स्वेत लखि, रघुबर बुद्ध विचारि॥'

इसकी व्याख्या अभिप्रायदीपक चक्षुकार ने इस प्रकार की है—

'दीप्त (राजसी) भाव से राजा ने हाथ में आमलक (दर्पण) लेकर अपना शीशम (मुकुट) देखा जो सव्य (बायीं) ओर झुका था। अतएव उन्होंने उसे यमद्रिग (दाहिनी) ओर खिसकाया। इतने में उनकी दृष्टि काना के समीप श्वेत हो गए बालों पर पड़ी तो राजा ने सोचा कि अब वृद्धावस्था आ गयी। अतएव राम को राज्य सौंप कर वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लेना चाहिए।'[4]

---

१. मानसअभिप्रायदीपक पुष्पिका (किष्किंधा कांड)।
२. पर्व मति कम जासु उर उदै मानसी पाय
पंचामृत मन लाइ पढ़ सो अधिकार सुहाय॥ (मानसअभिप्रायदीपक, पृ० ४)।
३. पच अग लखियाय वसु, रमै विषय सो जान।
भिन्न प्रयोजन धनुधर, इन का किये पायन॥ वही, पृ० ४।
४. अभिप्रायदीपक चक्षु, दोहा ४ (अयोध्या कांड) पृ० १२३-२४।

उपर्युक्त व्याख्यातव्य अर्द्धालियो के भावो का उद्घाटन अभिप्रायदीपककार ने बड़े ही रुचिकर ढंग से एक ही दोहे मे कर लिया है। उसमे 'मुकुट सम कीन्हा' की व्याख्या के निमित मुकुट के बायीं ओर झुके होने की सूचना भी पाठको को दे दी गयी है। इस प्रकार एक रोचक तथ्य का समावेश टीकाकार ने अपनी टीका मे कर दिया है। इस दोहे के अन्तर्गत राजसो के लिए 'दीप्त' दर्पण के लिए 'आमलक', मुकुट के लिए 'शोशम' जैसा अप्रचलित शब्दो एवं इसी प्रकार दाहिनी ओर के लिए 'पमदिग सद्गुण' कूट पदो का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है।

मानसमयंक

मानसअभिप्रायदीपककार पडित शिवलाल जी पाठक की दूसरी 'मानस' टीका 'मानस मयंक' है। यह भी अभिप्रायदीपक के समान कारिका शैली के अन्तर्गत लिखा गया है। इस टीका का स्थान 'मानस' की शीर्षस्थ टीकाओ मे है। मानसमयक राम की मधुरा भक्ति का प्रतिपादक एक उत्तम ग्रन्थ है।

मानसमयंक का रचना काल संवत् १८७५ विक्रमी है।[1] मानसमयंक टीका का प्रथम प्रकाशन बाबू इन्द्रदेवनारायण सिंह की टीका सहित संवत १९७७ विक्रमी (सन् १९२०) मे खड्गविलास प्रेस मे हुआ। मानसमयक मानस के सातो काडो की एक पद्यात्मक टीका है। सम्पूर्ण मानसमयक १६६८ दोहों मे है। बाल, अयोध्या, आरण्य, किष्किधा, सुन्दर, लका एवं उत्तर काडो की टीका क्रमश ३३२, ३१५, १०२, २६०, १०८, ३११ एव ५०१ दोहो मे परिबद्ध है।[2]

मानसमयक, रामचरितमानस की सागोपाग टीका नही है, अपितु यह उसके सातो काण्डो के विशिष्ट स्थलो की एक ऐसी टीका है, जिसमे कही पर व्याख्यातव्य के भावार्थ कही अभिप्रायार्थ या ध्वन्यार्थ अथवा कही उसका मात्र संदर्भ ही दिया गया है। 'मानस' के कुछ दोहो को जिसे प्रकरण विशेष कहा जा सकता है, टीका करने के पश्चात् मयंककार ने प्रकरण विशेष के सम्पूर्ण पक्तियो का साराश या उन पर विशेष भाव संक्षेप मे 'मयूख' शीर्षक अपने दोहों के अन्तर्गत दे दिया है। इस प्रकार 'मानस' के जिन पदो का उसने अर्थ नहीं किया है, उनकी भी एक सक्षिप्त टीका हो गयी है।

मानसमयंक राम की रागानुगाभक्ति की प्रकाशिका एक अन्यतम 'मानस' टीका है। इसके अन्तर्गत राम भक्ति की 'पंचरसात्मिक मधुरा उपासना' के तत्वों का सम्यक् रीत्या समावेश है। इसमे राम के परतम स्वरूप, राम के पचाग, रूप, लीला, धाम एवं धारणा का प्रतिपादन किया गया है। टीकाकार ने 'मानस' की भक्ति एवं उपासना मूलक

---

१ सायक मुनि वसु नाग मन, दत्त बार गुरु जान।
पाठक श्री शिवलाल जू रचत चन्द्र कर खान ॥ मानसमयंक (बालकाड) दोहा-६।

टीका करते हुए उसके साहित्यिक उपादानों, विशेषत अलंकार के निरूपण पर भी विशेष ध्यान दिया है।

इस संदर्भ में स्वयं मानसमयंककार कृत निम्नलिखित घोषणा ध्यान देने योग्य है—'भूषण सारी पंचरंग, रस गन बार अनूप। पंचभाव सर अंग रस, नव पर नित्य स्वरूप', जिसका अर्थ मानसमयक चन्द्रिकाकार के अनुसार इस प्रकार है—

'यह चन्द्रिका (मानसमयंक) अलंकारो (भूषण) से तथा पंचरग अर्थात् पच कला सयुक्त रेफ अर्थात् राम नाम रूपी (सारी) वस्त्र से विभूषित और (रस) भक्ति प्रतिपादन अनूपवाद (गण) समूह मय वेष्टित है, पुन पाचो भाव—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार और (सर) राम पंचाग यही इस चन्द्रिका मे रस है। यह चन्द्रिका (नव) नवधा-भक्ति के परे दशधा के यथार्थ स्वरूप का बोध कराने के पश्चात् नित्य परस्वरूप (श्रीरामचन्द्र) का बोध कराने मे समर्थ है।[1]

मानसमयक एक सांकेतिक सूत्रवत रचना है। इसकी अर्थ शैली इतनी गूढ है कि इस टीका का संबोध इस परम्परा के टीकाकारो को ही हो सकता है। यह उन्हीं के लिए रचित भी है। स्वयं मयंककार ने कई स्थलों पर कहा है कि मैं इस टीका को अपने शिशुवत 'मानस'-शिष्य शेषदत्त के निमित्त लिख रहा हूँ।[2] आज भी परम्परा-इतर मानसज्ञ या साहित्यज्ञ को भी इसका सम्यक् बोध दुर्लभ ही है। 'मयंक' की इसी गुह्य एवं गूढ़ रचना-शैली के कारण इसको सम्प्रदाय के बाहर लोकप्रियता न मिल सकी। टीकाकार की अर्थ-शैली पर व्यासो की अर्थ शैली का प्रभाव है। मयक के अन्तर्गत कूट पद्यो एवं अल्प प्रयुक्त अथवा अप्रचलित शब्दो के कारण उसकी भाषा अत्यन्त दुरूह हो गयी है। इस पद्यात्मक टीका की भाषा ब्रज है। इसमें सस्कृत के शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया गया है। कुछ ऐसे शब्दो का भी प्रयोग हुआ है, जो गुढ़े हुए से प्रतीत होते हैं। शब्दो के मूल रूप को भी तोड़ मरोड़ कर विकृत कर दिया गया है।

यहाँ मानसमयंक के कुछ उद्धरण उसकी सामान्य विशेषताओं के परिचयार्थ अपेक्षित हैं। हम मयंक से दो उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जो उसके संदर्भपरक एवं अभिप्राय परक अर्थ के उत्तम उदाहरण हैं।

१—संदर्भगतअर्थ

मूल— 'सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुण जसि अहिनी॥
पंचवटी सो गइ इक बारा। देखि विकल भइ जुगल कुमारा॥''

टीका— 'जने बाद षट दिवस के मातुल पितु बध कीन्ह।
मानिनी को जन वन दियें किय गुन पिंजर लीन्ह॥'

मानसमयंक चन्द्रिकाकार ने इन दोहों की व्याख्या इस प्रकार की है—

---

१. मानसमयंक सटीक, प्र० सं०, दोहा—७, पृ० २५।
२ मानसमयंक (बालकांड दोहा १३) तथा अयोध्याकांड की पुष्पिका।

"रावण ने सूर्पणखा का ब्याह विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से कर दिया था। छठे ही रोज सूर्पणखा को पुत्र हुआ तब रावण ने विद्युज्जिह्व को मार डाला और सूर्पणखा को 'जनस्थान' म रहने की आज्ञा दे दी और उसके पुत्र का 'जनस्थान' क्षेत्र के अन्तर्गत ही एक पिंजरे मे बन्द कर दिया। एक दिन लक्ष्मण जब फल लेन गये तो दुष्ट ने लक्ष्मण जी को देखकर हंस दिया, इस पर लक्ष्मण जी का बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे भस्म कर दिया। इस समाचार को जब देवर्षि नारद के द्वारा सूर्पणखा ने पाया तो वह प्रतिकारार्थ पंचवटी आयी।"[1]

उपर्युक्त संदर्भ प्रधान अर्थ म टीकाकार ने सूर्पणखा के पचवटी आगमन के रहस्य का उद्घाटन करते हुए इतिपरक वृत्तान्त दिया है।

अभिप्रायपरक अर्थ

मूल— 'काज हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई॥'

टीका— भूमारो श्रुत सी मिले, ताहि मिले पर धाम।
तू जीते तसु हठ रहे, मत्र मंघ मम जाम॥'

मानसमयक के उपर्युक्त दोहे का स्पष्टीकरण मानसमयकचन्द्रिकाकार ने इस प्रकार किया है—

'रामचन्द्र न अगद को लकान्तर्गत दौत्यकर्म के सम्पादनार्थ भेजते हुए कहा कि हे अगद, तुम रावण से ऐसी बातें करना, जिससे पृथ्वी भार रहित (श्रुत) हो जाय, जानकी (सी) मिल जाये, तुम विजयी बनो और उसको परम धाम मिले, उसका हठ रहे और मेरा मत्य सघता बनी रहे।'[2]

तुलसीदास का स्वयं अभिप्राय जो कुछ भी रहा हो, परन्तु मयककार इन अर्द्धालियो का आशय, उपर्युक्त रीति से ही समझाया है। इस प्रकार के ही अर्थों को मानस के रामायणी लोग 'मानस' का तात्त्विक अर्थ कहते हैं।

मयक के दूसरे अर्थोद्धरण के दोहे मे प्रयुक्त 'सी' अक्षर का सांकेतिक अर्थ सीता है। टीकाकार के द्वारा विद्यमान रहने के अर्थ म 'जाम' जैसे अल्प-प्रचलित या अप्रचलित शब्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

मानसमयंक और अभिप्रायदीपक

मानसमयंक एवं मानस अभिप्रायदीपक के सामान्य परिचय से यह व्यक्त हो रहा है कि शिवलाल पाठक कृत 'मानस' की इन दोनो टीकाओं मे अत्यधिक समानता दृष्टिगत होती है। साथ ही साथ उनमें परस्पर कुछ भिन्नतायें भी हैं, जिनका दिग्दर्शन यहाँ सक्षिप्त

१ मानसमयंक सटीक, प्र० सं०, पृ० ३२१-२२ (अरण्यकाड)।
२ मानसमयक सटीक, प्र० सं०, पृ० ५१२ (लका काड)।

रूप से किया जा रहा है। प्रथमतः हम उसकी परस्पर समरूपता पर विचार करेंगे। इसके अनन्तर उनकी विभिन्नता पर विचार किया जायगा।

समरूपता

दोनों टीकाओं के रचयिता एक ही (शिवलाल पाठक) हैं। पाठक जी ने दोनों टीकायें अपने शिष्य (शेषदत्त) जी के लिए लिखी हैं। दोनों टीकायें प्रमुख रूप से राम भक्ति की रसिक सम्प्रदाय की मधुरा भक्ति-उपासना से प्रभावित हैं। दोनों की अर्थ-शैली सांकेतिक एवं सूत्रात्मक हैं। दोनों में दोहा छन्द एवं ब्रजभाषा पद का प्रयोग किया गया है। दोनों टीकाओं के अन्तर्गत प्रायः समान भाव भी दिये गये हैं। अन्तर नगण्य है--'मानस' के एक ही प्रसंग पर दोनों टीकाओं मे किये गये अर्थों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

मूल-- *'मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोहत तैसी॥*
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहइ सकल सोभा अधिकाई॥

अभिप्राय दीपक-दोहा मणि माणिक मुक्ता सरिस भक्ति ज्ञान अरु कर्म।
सुकवि कवी को कवित्त अस वक्ता बुध जन पर्म॥[1]

अर्थात् मणिमाणिक्य और मुक्ता को क्रमशः भक्ति, ज्ञान और कर्म के सदृश जानना चाहिए। भक्ति, ज्ञान अरु कर्म मय काव्य सुकवि के हृदय से प्रकट होता है और वह वक्ता (मानसव्यासो एवं रसज्ञो (बुधजन) के स्तवन एवं मूल्यांकन द्वारा शोभा पाता है। अब इसी प्रसंग पर मयंक के निम्नांकित दोहे मे निरूपित भाव द्रष्टव्य है :

'कवि फणीन्द्रगिरि गज जए भक्ती ज्ञान सुकर्म।
मणि मुक्ता माणिक मुक्ता लसे, सत बुध बुधि पर्म'॥[2]

कवि रूपी फणीन्द्र (सर्पराज) गिरि और गज से भक्ति ज्ञान और कर्म विषयक कविता रूपी मणि माणिक और मुक्ता प्रगट होकर क्रम से संत पंडित और बुद्धिमान के हृदय में शोभित होती है।

यहाँ दोनों टीकाओं मे भावसाम्य के साथ-साथ शब्द साम्य भी है। परन्तु मानस-मयंक की, जो परवर्ती रचना है, शैली अभिप्रायदीपक की अपेक्षा अधिक विशद है। 'मानस' के कितने ही व्याख्यातव्यों के टीकात्मक दोहे भी दोनों टीकाओं मे एक ही हैं। उदाहरणार्थ--अभिप्रायदीपक अयोध्या कांड दोहा ९६, मानसमयंक अयोध्या कांड दोहा २१६ एवं मानस-अभिप्रायदीपक लंका कांड दोहा ५७ तथा मानसमयंक लंका कांड दोहा १६३ दर्शनीय है।

---

१ मानसअभिप्रायदीपक चक्षु (बालकांड), प्र० सं०, दोहा-२५।
२. मानसमयंक सटीक (बालकांड) प्र० सं०, दोहा ७८।

भिन्नता

(१) आकार—अभिप्रायदीपक ७०० दोहों की एक लघु रचना है जब कि मानस-मयंक का आयाम उसका लगभग तीन गुना विस्तृत है।

(२) भाव एवं अर्थ विस्तार—अभिप्रायदीपक के अन्तर्गत जिन पदों का अर्थ एक ही या दो दोहे में किया गया है, मयंक के अन्तर्गत उन्हीं पदों का अर्थ कई दोहों में व्याख्यात है एवं इनके अनेक अर्थ भी किये गये हैं।

एक दूसरी विशेषता जो मयंक में है, वह यह कि इसके अन्तर्गत अव्याख्यात एवं व्याख्यात सभी स्थलों का सार मयूखों में दे दिया गया है, जब कि अभिप्रायदीपक के अन्तर्गत ऐसा कोई विधान नहीं मिलता है।

(३) संस्कृत श्लोकों की टीका—मानसअभिप्रायदीपक में संस्कृत श्लोकों का अर्थ नहीं दिया गया है, जब कि मानसमयंक में इनका अर्थ किया गया है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मानस अभिप्रायदीपक संक्षिप्त टीका थी, अतएव टीकाकार ने इन संस्कृत श्लोकों का अर्थ नहीं दिया। साथ ही भाषा काव्य 'मानस' में प्रवेश एवं उसमें अत्यधिक रुचि हो जाने से उसकी संस्कृत भाषा के प्रति अरुचि सी हो गयी थी। शायद इस कारण भी उन्होंने इनका अर्थ नहीं किया हो। परन्तु कालान्तर में जब उन्होंने अपने परमाराध्य गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा विरचित इन श्लोकों के महत्व एवं लोकप्रियता पर विचार किया होगा, तब अपनी दूसरी टीका में इनका अर्थ देकर अपनी भूल का परिमार्जन भी कर दिया।

अयोध्या की शृंगारानुगाभक्ति भाव परक टीका-परम्परा

अब हम मानस के टीका-साहित्य के आदिकाल के अन्तर्गत उद्भुत एवं पल्लवित अयोध्या की टीका-परंपरा के टीकाकारों एवं टीकाओं का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करेंगे। इस परंपरा के प्रवर्तक हैं राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय के उन्नायक एवं मानस के सुप्रसिद्ध टीकाकार महंत रामचरण दास 'करुणासिन्धु'। अत इन्हीं की टीका से हम इस टीका-परंपरा का ऐतिहासिक परिचय प्रारंभ कर रहे हैं।

आनन्दलहरी टीका

टीकाकार-महन्त रामचरण दास 'करुणासिन्धु'

राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य रामचरणदास जी 'करुणासिन्धु' अयोध्या के विख्यात 'मानस' टीकाकार थे। अब तक मानस-प्रेमियों एवं साहित्यकारों की की भी सामान्यत यही धारणा थी कि 'मानस' के आदि टीकाकार भी श्री रामचरणदास ही थे, परन्तु अनुसंधान इसका दूसरा रूप ही प्रकट करता है। रामचरण दास के पूर्व के दशाधिक टीकाकारों का पता चलता है, जिनका उल्लेख भी हमने पूर्व पृष्ठों में कर दिया है। हाँ, 'मानस' के एक प्रबुद्ध भक्त टीकाकार के रूप में 'करुणासिन्धु' का परम महत्व है। उनके अनुयायियों का तो यह दृढ़ विश्वास है कि 'स्वयं गोस्वामी तुलसीदास

ने रसिक सम्प्रदाय म 'मानस' के गुप्त शृंगार को प्रकट करने के लिए रामचरणदास के रूप मे अवतार लिया था।[1]

करुणासिन्धु जी का जन्म सवत् १८१७ विक्रमी के लगभग प्रतापगढ जिले के अन्तर्गत हुआ था।[2] इसके पिता श्री जानकीवर तिवारी गोपालपुर ग्राम के निवासी थे।[3] कहते हैं कि शैशवावस्था से ही युगल सरकार-सीताराम के प्रति इनमे शृंगारिक भाव की भक्ति के लक्षण दृष्टिगत होने लगे थे। उसी समय य अपने बाल मित्रो को (सीताराम को) सखियो के रूप मे सजाकर रामलीला का विधान किया करते थे।[4] घर पर ही इन्हें साधारण शिक्षा मिली थी। अनमोदकुमारी नामक एक सुन्दरी ब्राह्मण कन्या से इनका विवाह भी हुआ था।[5] उसके साथ इन्होने थोड़े दिनो तक गृहस्थी भी निबाही। कालान्तर मे प्रतापगढ के नरेश ने इन्हें अपना राज-पुरोहित बनाना चाहा, परन्तु इन्होने उसे स्वीकार न किया। अन्तत प्रतापगढ नरेश के बहुत अनुनय विनय पर इन्होंने उनके राज्यकोषाध्यक्ष पद का कार्य समाला।[6] परन्तु कुछ ही वर्षो बाद इन्हें यह कार्य राम भक्ति में अत्यन्त बाधक प्रतीत हुआ। अतएव उन्होने शीघ्र ही इस पद से मुक्ति ले ली। इस प्रपचगत कार्य से मुक्ति पाते ही उनके मन म जगत् के प्रति पूर्ण विराग भावना का उदय हो गया। उनकी ससार सम्बन्धी सारी आसक्ति में भगवत-अनुरक्ति मे परिवर्तित हो गयी। वे एक दिन चुपके से घर से निकल पड़े और अयोध्या आ गये। यहाँ पर सत रामप्रसाद बिन्दुकाचार्य के सान्निध्य मे रहने लगे। बिन्दुकाचार्य जी के आदेशानुसार इन्होने उन्ही के शिष्य श्री रघुनाथ दास से मन्त्र-दीक्षा ली, परन्तु रसिक भक्ति भाव की दीक्षा का ग्रहण तो आपने स्वामी रामप्रसादजी से ही किया।[7] आपकी दोनो गुरुओ म प्रबल निष्ठा थी।[8]

रामचरणदास जी के विरक्त हो जाने के थोड़े ही दिन पश्चात् इनके सम्बन्धी इन्हे खोजते हुए अयोध्या पहुँचे। उन्होने इन्हें घर लौटा ले जाने का बहुत प्रयास किया,

---

१. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० स०, पृ० १५६।

२ 'रामचरण सिय राम रसिक अनन्य जिन, मानस रामायण को तिलक गुनीना है।
मानसमति पूषण रहित दोष दूषण, कितान नैन मोचन को पूषण प्रवीनो है॥
गोपित शृगार रस सारस प्रसिद्ध करि, भक्ति भामिनी को भूषण नवीना है।
गूढ जानि निज ग्रन्थ अर्थ को प्रसिद्ध हेतु, स्वय अवतार श्री गोसाईं जनु लीनो है।
रसिक प्रकाशभक्तमाल—पृ० ६०।

३ राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, ४१८।

४ करुणामणिमाला, प्र० सं०, पृ० १।

५ वही, पृ० ५।

६ वही, पृ० ६।

७ वही, पृ० ४१६।

८ अजय सीर निधि उदय चंद श्री रामप्रसाद।
पूरण प्रेम पीयूम नैम जस जुग भुरग बस॥

परन्तु अन्तत उन्हें निराशा ही हाथ लगी। ये अयोध्या मे ही स्वामी प्रसाद जी की सेवा मे निश्चिन्त भाव से रहने लगे।

कुछ दिनो तक अयोध्या मे निवास करने के पश्चात् करुणासिन्धु जी स्वामी रामप्रसाद जी के साथ चित्रकूट चले गये। यही पर इन्होंने राम की मधुरोपासना के रहस्य का ज्ञान प्राप्त किया और वही रसिक साधना का अभ्यास किया। चित्रकूट से अयोध्या लौटने के पश्चात् ये पुन राम की रसिक भक्ति के केन्द्र स्थल रैवासे चले गये और वही पर इन्होने सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थ 'अग्रसागर' तथा अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थो का अध्ययन किया। रैवासे से लौटने के पश्चात् करुणासिन्धु जी राम भक्ति का मधुरा भक्ति के पूरे विज्ञ बन चुके थे। उन्होने अपने रसिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'स्वसुखी'[१] संज्ञक रसिकोपासिका धारा का प्रवर्तन किया। इन्होंने अपने सम्प्रदाय की अधिष्ठात्री देवी चारुशीला (सीता की अष्ट सखियो मे प्रधान) के नाम से चारुशीला भवन एवं चारुशाला बाग का निर्माण, जानकीघाट (अयोध्या)पर कराया और यहीं पर अपना गद्दी भी स्थापित की। 'करुणासिन्धु' जी ने अपने पूर्ववर्ती समस्त, प्रमुख साम्प्रदायिक ग्रन्थो की खोज करके उन्हें व्यवस्थित किया और सम्प्रदाय के अन्तर्गत उनका प्रचार किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वयं रसिकोपासना सम्बन्धी बीसो ग्रंथों की रचना करके सम्प्रदाय के साहित्य को समृद्ध किया। वस्तुतः अग्रदेश जी ने तो रामभक्ति के रसिकसम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, परन्तु उसे संगठित कर और चरम विकास पर पहुँचाने का श्रेय महत 'करुणासिन्धु' जी को ही है।

रामचरणदास जी बडे ही निस्पृह सत थे। आपको लोकैषणा एवं वित्तैषणा की स्वसुख के निमित्त तनिक भी आकांक्षा न थी। वे भगवान राम के सिवा अन्य किसी के याचक थे ही नही। इस सम्बन्ध मे तो उनकी यह उक्ति सर्वथा सार्थक हो थी कि 'बात यह को नहिं सुनत हमी ? भजि रघुनाथ जाचत जो औरहिं तो मुख मलो ममी।'[२] आपको जो कुछ भी अयाचित सम्पदा मिल जाती, उसे आप संतसेवा म लगा देते थे।

सुजस प्रकासमयूप बचन कुमुद चकोर जन।
संत गुरु भगवंत भाव यक समसीतल मन॥
करि आपु सरिस सब विधि उभय श्री रघुनाथप्रसाद गुर।
प्रभु जुगल पदुम पद वदि रज रामचरण जो कहे फुर॥
—रामनवरत्नसार संग्रह, पृ० ८५—राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२१-२२।

१. रामानन्दसम्प्रदाय और उसका हिन्दी पर प्रभाव, प्र० सं०, २२१ एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००५ वि०, पृ० १५३।

२. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२०।

उनकी संत-सेवा से प्रसन्न होकर अवध के तत्कालीन नवाब आसफुद्दौला ने उन्हें जानकी घाट की सारी भूमि अर्पित कर दी थी।[1]

करुणासिन्धु जी के तीन प्रमुख शिष्य—श्री जीवाराम युगल प्रिया, श्री जनकराज किशोरी शरण रसिक अली एवं हरिदास थे। इन तीनों शिष्यों ने राम भक्त के रसिक सम्प्रदाय के सैद्धान्तिक एवं साधना पक्ष को दृढ़ एवं सशक्त किया।

'करुणासिन्धु' जी के श्रद्धालुओं में रीवानरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह का स्थान प्रमुख है। आप 'करुणासिन्धु' जी के भक्ति-पंथ के अनुयायी थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् एवं रामायणी श्री रघुनाथदास षट्शास्त्री (रामनगर) आपसे सत्संग लाभ करने काशी से अयोध्या आये थे। स्वयं मानसमर्मज्ञकार पं० शिवलाल जी पाठक ने आपकी टीका को आदर दिया था एवं उसका परिशीलन किया था। पाठक जी ने करुणासिन्धु जी से रसिकोपासना विषयक सत्संग भी किया करते थे।[2]

कहते हैं कि सुप्रसिद्ध रामायणी पं० रामगुलाम द्विवेदी प्रायः इनसे सत्संग करने के निमित्त अयोध्या आया करते थे। इन दोनों सज्जनों में परस्पर परम हार्दिक प्रीति थी। इन लोगों ने एक ही दिन परलोकवास करने का भी संकल्प किया था। कहते हैं कि इन दोनों महानुभावों ने एक ही दिन इह लीला का त्याग कर साकेत लोक की दिव्य लीला में प्रवेश किया था।[3] करुणासिन्धु जी का मृत्युकाल माघ शुक्ल ६ संवत् १८८८ विक्रमी है।[4]

करुणासिन्धु जी का साहित्य

हमने पिछले पृष्ठ में यह संकेतित किया है कि करुणासिन्धु जी ने राम की रसिकोपासना से सम्बन्ध प्रचुर साहित्य का सृजन किया था। इन समस्त ग्रन्थों में उनकी रामचरित मानस की टीका-आनन्दलहरी-सर्वाधिक महत्व की है। 'मानस' की आनन्द-लहरी टीका के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनायें निम्नलिखित हैं—

(१) *अमृत खण्ड*
(२) शतपचासिका
(३) रसमालिका
(४) रामपदावली
(५) सियाराम रस मंजरी
(६) सेवाविधि
(७) छप्पयरामायण

---

१. वही।
२. करुणाभरण माला, प्र० सं०, पृ० १८।
३. रसिकप्रकाशभक्तमाल, प्र० सं०, पृ०।
४. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२०।

(८) जपमालसंग्रह
(९) चरणचिन्ह
(१०) कवितावली
(११) दृष्टान्त बोधिक
(१२) तीर्थयात्रा
(१३) विरहशतक
(१४) वैराग्यशतक
(१५) नाम शतक
(१६) उपासना शतक
(१७) विवेक शतक
(१८) पिंगल
(१९) अष्टयाम सेवाविधि
(२०) कवितावली
(२१) काव्य शृंगार
(२२) झूलन
(२३) कौशलेन्द्ररहस्य
(२४) रामनवरत्नसारसंग्रह[1]

करुणासिन्धुजी की रचनाओं—उपर्युक्त तालिका—मे दो ग्रन्थ पिंगल एवं काव्य-शृंगार, काव्य शास्त्रीय हैं। इससे पता चलता है कि करुणासिन्धु जी काव्य शास्त्र के भी अच्छे मर्मज्ञ थे।

आनन्दलहरी टीका

'आनन्दलहरी' 'मानस' के टीका सागर का रत्न है। यह वार्तिक शैली मे लिखा गया एक टीकात्मक ग्रन्थ है। यह सर्वविध सम्पन्न टीका है। प्रज्ञाशील लेखक ने 'मानस' के इस वार्तिक ग्रन्थ को यथापेक्षित अर्थ उपादानो से अलकृत किया है। क्या साम्प्रदायिक, क्या असाम्प्रदायिक, क्या सत, क्या साहित्यिक, सभी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। रामभक्ति के रसिको का तो यह पूज्य-ग्रन्थ ही है। इसमे मधुरभक्ति के समस्त सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। 'करुणासिन्धु' जी के एक प्रमुख शिष्य जीवाराम को, जिन्होंने कालान्तर मे रसिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत तत्सुखी भक्ति-धारा का प्रवर्तन किया, रसिकोपासना की प्रेरणा उसकी आनन्दलहरी टीका के अनुशीलन से प्राप्त हुई थी।[2]

आनन्दलहरी की रचना मे लगभग १९ वर्षों का सुदीर्घ समय लगा था। इसकी रचना का प्रारम्भ विजयादशमी संवत् १८६५ विक्रमी को हुआ और परिणति संवत्

१. वही, पृ० ४२१।
२ रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० १६०।

१८८४ म हुई थी।[१] इसके विभिन्न काडा की टीका का रचना की समाप्ति ऐतिहासिक क्रम स निम्नलिखित समय पर हुई है—

बालकाड	सं० १८७०
अरण्यकाड	स० १८८०
किष्किंधाकाड	स० १८८१ ज्येष्ठ शुक्ल ६
अयोध्याकाड	स० १८८१ श्रावण मास
सुन्दरकाड[२]	
लकाकाड	म० १८८३[३]
उत्तरकाड	म० १८८४।[४]

आनन्दलहरी टीका का प्रथम सस्करण पत्राकार रूप म स० १८८४ वि० म नवल किशोर प्रस से प्रकाशित हुआ था।[५] इस टीका के पाच सस्करण नवल किशोर प्रेस म निकल। हम इसका सबसे प्राचीन सस्करण सन् १८८४ ई० का मिला, जो नवल किशोर प्रेस स दो भागा म प्रकाशित है। प्रथम भाग म बालकाड एव अयोध्या काड की टीका प्रकाशित है और दूसरे भाग मे शष ५ काडा को। प्रत्येक काड की व्याख्या विभिन्न प्रकरणा मे विभाजित है, जिनका नाम टीकाकार ने तरग दिया है। प्रत्येक कांड की पुष्पिका म काड विशेष की तरगा की सख्या भी दी गयी है। टीकाकार न स्वयमेव अपनी टीका को 'वार्तिक' के नाम स अभिहित किया है।[६] हमने इस टीका की वार्तिक की दृष्टि स समीक्षा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध क प्रथम खण्ड के पाचवें अध्याय के अन्तर्गत वार्तिक शैली की टीकाओ पर विचार करत समय की है।

आनन्दलहरी टीका का महत्व भक्ति एव काव्य दोना दृष्टियो स है। यह दूसरी बात है कि युग की प्रवृत्ति के अनुसार इसम भक्ति तत्व का प्राधान्य है। हम इस टीका के इन दोनों तथ्यो पर पृथक् रूप से तृतीय खण्ड के अन्तर्गत यथा स्थान विचार करेंगे।

आनन्दलहरी की भाषा ब्रज गद्य है, परन्तु इसमें अवधी शब्दा का प्राधान्य है। टीकाकार संस्कृत साहित्य का महान अध्येता एवं टीकाकार भी रहा है, अतएव उसके

१. करुणामणिमाला, प्र० स०, पृ० १६-१७।
२ श्री करुणामणिमालाकार न भी सुन्दरकाड का रचना-कालक्रम अयोध्याकाण्ड के पश्चात तथा लका काड क पूर्व माना है। (द्रष्टव्य श्री करुणामणि माला प्र० सं० पृ० १७)
३ आनन्दलहरी टीका प्र० स०, बालकाड स लकर लकाकांड तक के विभिन्न काडा की पुष्पिकायें।
४ करुणामणिमाला, प्र० स०, पृ० १६।
५ मानस पीयूष तृ० स०, पृ० २० पर श्री अञ्जनीनन्दन शरण द्वारा दी गयी मानस का प्राचीन टीकाओ के प्रकाशन काल की सूची।
६ राम भक्ति साहित्य म मधुरोपासना।

'मानस' के टीकात्मक ग्रन्थ मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का भी प्राचुर्य मिलता है। उसने अपने अर्थों एव शब्दो की संपुष्टि सस्कृत के उद्धरणो से की है। वार्तिक की अर्थ शैली व्यास अथवा पडिताऊ पद्धति से पूर्ण रूपेण प्रभावित है। इन सभी तथ्यो का परिचायक एक उद्धरण आनन्द लहरी से यहाँ अवतरित किया जा रहा है—

मूल—'गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
वदौ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥'

बोहार्थ—गिरा अर्थ अरु जल तरग कहियत भिन्न परि अभिन्न है तैसे सीताराम को भिन्न कहियत हैं पर अभिन्न हे एक ही हैं तिनके पर बदो जिन सीताराम को खिन्न जो हैं दीन जिनकों समार दुख रुप लाग्यो है हे श्री सीताराम जी मैं तुम्हारो शरण हौ ऐसे दीन श्री सीताराम जी को परम प्रिय हैं जो गिरा अर्थ जल बीचि इव सीताराम हैं ये हा अर्थ सिद्धि करिये तौ गिरा जो है वाणो तामे अर्थ उपाधि करि कै सिद्धि होत है काई वार्य पाइके वाणो म अथ निकसत है अरु पवन के योग से तरग उठती हे अनिरुपाधि म केवल वाणा हे अरु जल हे अरु जा कही श्री रामचन्द्र जो वाणी जल-स्थाने है अर श्री जानकी जी अर्थ तरग स्थान कही तौ नहीं बने काहे ते कि जानकी जी उपाधि करिकै सिद्धि होता है तो यह नहो बने अरु जा थो जानकी जो को वाणी जल कही श्री रामचन्द्र की अर्थ तरग कहिये तो दुइ मे एक हूँ नहीं बने ऐसे कहे ते मत विरोध उपासना विरोध ग्रथ कर्ता को आशय म विरोध होता है। अरु श्री सीताराम दोऊ मूर्ति सच्चिदानन्द स्वरूप एक हो है अरु दोऊ विग्रह अनादिभिन्न हे अखण्ड के एक रस नित्य है (प्रमाण) रामम्गीता जानकी रामचन्द्रोनित्याखडो येचपश्यनि धीरानुति'। अरु जो कहिये कि गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न सदा भिन्नै कहो कि अभिन्न कहो न कही यह काकु अर्थ कहावै है तहाँ गिरा अर्थ जल बीचि कैसे भिन्न कराहिगे भिन्न होतई नहीं तहाँ यह अथ सिद्ध होत है सीता नाम राम नाम ये जो द्वै पद हैं सो वंदते हैं गुसाई जी, सीताराम अरु राम नाम ये दोऊ नाम सदा भिन्न हैं अरु दोनो नाम को तत्व अभिन्न है गिरा अर्थ जल तरग के दृष्टान्त करि कै तहाँ यह अर्थ करते हैं पाछे की चौपाई मे श्री जानकी जो वे श्री रघुनाथ जी के पद वदना करि आये हैं अब आगे राम नाम कहिये की भूमिका बाँधते हैं ताते सीता शब्द अरु राम शब्द ये जो दोनो पद हैं तिनको वदि कै भिन्न कहते हैं अरु दोनो नाम के तत्व सा अभिन्न कहते हैं गिरा नाम जो है अर्थ नाम जो है जल नाम जो है बीचि नाम जो है ये ते नाम अनादि वेदशास्त्र पुराण सब कहतइ आवते हैं ताते सारा अर्थ जल बीचि येते नाम भिन्न हैं अरु गिरा अर्थ तत्व अभिन्न है एक हो है तैसही जल तरग है तैसही सीताराम अरु राम नाम अनादि भिन्न है अरु दोउ नाम पद जो है सो तत्व रूप अभिन्न है कैसे जानिये सामवेद की महा वाक्य तत्त्वमसो है वेद का सिद्धान्त है सो राम शब्द सो सिद्धि होत है अरु सीता शब्द सो सिद्ध होत है रकार तत पद है अकार त्वं पद है हल मकार असि पद है सीता शब्द मे तकार तत पद है तकार म जो दीर्घ अकार है सो त्व पद है पुनि तकार की दीर्घ आकार लै कै अरु सी पद जो है ताते असी पन है ताते तत्व-

ममी तत पद एवं पद असि पद सिद्धि होत है कैसे होत है तीनि बार सीता नाम लिखे कंकणाकार करि कै तब चित्रकाव्य हो जाती है जैही मात्रा ते चाहे तेही मात्रा ते तत्व सिद्धि होत है, जे पंडित कवि होहिंगे ते यह जानहिंगे पर द्वौ नाम तत्वरूप ही हैं। (१) पुनि प्रमाण है श्री मन्महारामायण मी शिववाक्यं पार्वती प्रति (श्लोक ६) रकारस्तत्पदोशेयस्त्वंपदोकारउच्यते मकारो सिपदस्तजं तत्र असि मुत्रोचने १ बह्यं तित्तत्वदविद्धित्वपदोजीवनिर्मल ।। ईश्वरोसिपद प्रोक्त ततोमाया प्रवर्तते २ (ब्रह्मयामने शिवशार्य) रकारस्मवभूताना व्याप्यं व्यापकमोश्वर ।। रकारोनिर्विकल्पश्च शुद्धब्रह्ममदा द्वयम् ३ (गुरुगीताया) अखडमण्डलाकारं व्याप्त येन चराचर ।। तत्पदं दर्शितयेन तस्मै श्री गुरवेन ४ (महासुन्दरीतत्रे) लिखितं त्रिविध सीताककणाकृतशोभितम् । चित्रकाव्यमेवतम जानातिकाविपडित ४ तकार तत्पदं विद्धित्वपदोकारउच्यते ।। दीर्घता असीप्रोक्ता तत्वंअसि महानुमे ६ । इति श्री चरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वसनेबालकाडे मानकचनरमं अभिनिवेश वंदनाकृते पंचमस्तरग ।।५।।[1]

आनन्दलहरी टीका के रचयिता ने उपर्युक्त व्याख्यान मे सोता एवं राम मे नामत भिन्नता सिद्ध की है और तत्वत उनमे परस्पर एकता दिखाई है। उसके अनुसार इस रीति से ही दोहे का व्याख्यान करने से सम्प्रदायमत, उपासना मूलक वृत्ति एवं ग्रन्थकार के आशय की रक्षा होती है।' करुणासिन्धु जी' ने राम एवं सीता के तात्विक ऐक्य की सिद्धि दिखाने के लिए वेदान्त के महावाक्य 'तत्वमसि' को प्रामाणिक कसौटी माना है। इसके आधार पर उन्होने सीता एवं राम दोनो शब्दो को रचनागत एकता सिद्ध की है। युगल (सोताराम) नामो की पृथक्-पृथक् अनुरूपता सिद्ध की गयी है। सीताराम के परस्पर ऐक्य को प्रदर्शित करने के निमित्त उन्होने महारामायण, सुन्दरीतंत्र एवं ब्रह्मयामल आदि संस्कृत के ग्रन्थो से उद्धरण भी दिये हैं।

भाषा मे व्याकरणिक अशुद्धियाँ वर्तमान हैं, जैसे उपर्युक्त व्याख्या मे 'चित्रकाव्य हो जाती हैं' सामवेद की महावाक्य है' आदि वाक्य खंडो में आये हुए लिंग सम्बन्धी दोष ध्यान देने योग्य हैं। टीकाकार एक प्रसिद्ध वक्ता रहा है, अतएव उसकी शैली व्यास एवं पंडितो की कथा-पद्धति की 'कथंभूतं' वाली प्रणाली पर आधारित है। उसने अपनी टीकात्मक रचना म नामो की विस्तृत विवेचना परक अर्थ-शैली को भी अपनाया है।

प्रकरण २

'रामचरितमानस' की दास्यानुगाभक्तिभाव परक टीकाएँ

गोस्वामी जी की दस्यभावानुगा राम भक्ति

इस परम्परा के 'मानस' के टीका-साहित्य में प्रारम्भिक काल की टीकाओ पर गोस्वामी जी की दास्यभक्ति का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा है। अतएव यहाँ 'मानस'

---

१. आनन्दलहरी, पृ० ५६-६० (नवलकिशोर प्रेस)।

की टीकाओ के स्वरूप का विश्लेषण करने के पूर्व उनकी दास्य भाव की राम भक्ति का एक सामान्य परिचय दे देना आवश्यक है।

महात्मा तुलसीदास की राम भक्ति सेवक सेव्य भाव की है। इसी भक्ति भाव को वे जीव के लिए परम ग्रहणीय मानते हैं।[1] स्वामी (राम) के प्रति सेवक की निष्कपट सेवा भावना ही उनकी दास्यभावानुगा भक्ति का मूल मंत्र है। उनकी इस भक्ति-भावना के दो पक्ष हैं—सेव्य (पक्ष) और सेवक (पक्ष)। तुलसीदास ने इन दोनो पक्षो के स्वरूप का उत्तमोत्तम चित्रण अपने साहित्य मे किया है। यहाँ तुलसीदास की ही उक्तियो से रापुष्ट उनके स्वामी एव सेवक सम्बन्धी मत का एक सक्षिप्त निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सेव्य (राम)—लोक मे सामान्यत यह देखा जाता है कि वही एक आदर्श स्वामी माना जाता है, जिसमे महत् शील, महद् शक्ति के साथ ही साथ महदेश्वर्य हो। इन तीनो विभूतियों से युक्त पुरुष ही अपने शरणागत सेवक का परम कारुणिक, कृपालु हो सकेगा, सेवक को सर्वविध सरक्षा कर सकेगा और उसे सुख प्रदान करता हुआ सर्वविध अभय कर सकेगा।

गोस्वामी जी के राम आदर्श स्वामी है। वे त्रैलोक्य मे अनुपम गुणवाले स्वामी हैं।[2] उनमे अपार करुणा, महती कृपा है। वे बडे ही शीलवान एवं संकोची हैं।[3] भगवान राम पूर्ण एव परतम ब्रह्म हैं। उनमे त्रैलोक्य का ऐश्वर्य समाविष्ट है। वे तो जगत् के प्रकाशक स्वामी हैं।[4] वे विभूतियो के आकर हैं। वे कोटिश ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समान हैं, करोडो दुर्गा के समान रिपुजयी हैं तथा कोटि 'कुबेर-सम' समृद्ध है।[5] इतने ऐश्वर्य के होने पर भी वे जीव मात्र के परम हितैषी हैं। वे अपने सेवक के अवगुणो को न देखकर उसके गुणो का ही मूल्याकन करते हैं। बहुत क्या कहा जाय, वे तो सेवक के

---

१. 'सेवक सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि'
—दोहा ११९ क —मानस उत्तरकाड, गीताप्रेस।

२ निरुपम न उपमा आन रामु समान रामु निगमागम कहै।
दोहा—९२, उत्तर काड।

३. सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि संकोची।
—दोहा ३१३-१४, अयोध्या काड, गीता प्रेस।

४. जगत् प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू।
—दोहा ११७, बालकाड।

५. 'धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपच निधाना।'
—दोहा ९२-७, उत्तर काड, गीता प्रेस।

परम कृतज्ञ बन जाते हैं।[१] अपने सेवक पर उनकी करुणा, उनकी कृपा एवं उनके प्रेम की कोई सीमा ही नहीं है। उन्हें अपने दास पर सर्वाधिक प्रीति है।[२]

सेवक—उक्त श्रेणी के आदर्श स्वामी का सेवक भी आदर्श कोटि का होना चाहिए। तभी तो गोस्वामी जी ने अपने आदर्श स्वामी के स्वरूप का ध्यान रखते हुए आदर्श सेवक के गुणों का निरूपण अपने ग्रंथों में बड़ी सावधानी से किया है। उनके द्वारा निरूपित सेवक धर्म की निम्नांकित विशेषतायें हैं —

१—स्वामी के प्रति दैन्य— राम जैसे अप्रतिम शील, शक्ति एवं विभूति सम्पन्न स्वामी के प्रति, सेवक को अपनी दीनता हीनता का प्रदर्शन करना ही चाहिए, तभी तो वे उसके प्रति अत्यधिक द्रवित होंगे और उसे सदा के लिए अपना लेंगे। गोस्वामी जी के साहित्य में तो दैन्य भाव की अटूट शृङ्खला मिलती है। उन्होंने तो अपनी 'आरति विनय' दीनता एवं लघुता को अपने काव्य का एक अपेक्षित एवं उपयोगी तत्त्व उद्घोषित किया है।[३] 'मानस'[४] और विनयपत्रिका[५] उनके दैन्य भाव—निदर्शन के उत्कृष्टतम ग्रन्थ हैं।

२—अनुशासन की प्रबल भावना—गोस्वामी जी के अनुसार स्वामी का निदेश-पालन ही उसकी सबसे बड़ी सेवा है।[६] सेवक को स्वामी के प्रति सदैव विनम्र रह कर निष्कपट भाव से उसकी सेवा करनी चाहिए।[७] जो सेवक स्वामी की अवज्ञा करता है,

---

१. 'कपि सेवा बस भये कनौड़े, कह्यौ पवन सुत आऊ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तू पत्र लिखाऊ॥
—विनय पत्रिका पद १००, गीता प्रेस।

२ 'पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
—दोहा ८६-८, उत्तर कांड।

३. 'आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न थोरी।'
—दोहा ४३-१ बालकांड।

४ होहूँ कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ से सेवक तुलसीदास॥'
—दोहा २८ ख, बालकांड।

५ 'तू दयालु दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो॥ —विनयपत्रिका पद ७६, गी० प्रे०।

६ 'अग्या सम न सु साहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥'
—दो० ३०१-४ (अयोध्या कांड)—गीता प्रेस।

७ 'मातु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी।'
—दो० २३-८, किष्किंधा कांड, गीता प्रेस।

वह परम नीच मति का जड़ प्राणी है। वह सुसेवक कहलाने का कदापि अधिकारी नहीं हो सकता है।

अनुशासनशील सेवक को स्वामी की मर्यादा के संरक्षण का सदैव ध्यान रखना चाहिए। उसे स्वामी के स्वरूप की सदैव उदात्त वृत्तियों का ध्येता होना चाहिए और स्वामी के इन्हीं गुणों का सदैव गायक। वह स्वामी के ऐसे किसी स्वरूप का कथन नहीं कर सकता, जो स्वामी की मर्यादा के विरुद्ध हो। इसीलिए तो तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का घर-वन एवं राज-दरबार में सर्वत्र उदात्त रूप चित्रित किया है।

३—निष्काम सेवा—यद्यपि लोग महान स्वामी की सेवा अत्यधिक रुचि से इसलिए करते हैं कि वह अधिकाधिक प्रसन्न हो, उन्हें परम सुख परम-शान्ति एवं सुख दे। परन्तु गोस्वामी जी की सेवा-भावना कुछ ऐसी ही नहीं है, अपितु वे तो स्वामी की निष्काम सेवा जन्म-जन्म करना चाहते हैं और यदि चाहते भी हैं कुछ, तो वह स्वामी के चरणों में जन्म-जन्मान्तर रति हो।[1]

४—अनन्य, एवं उत्कट प्रेम—तुलसी के स्वामी राम केवल अनन्य प्रेम से ही परम प्रसन्न होते हैं। तुलसीदास को अपने स्वामी के इस गुण को खूब परख है। तभी तो वे चातक की नाईं भगवान के अनन्य प्रेमी हैं[2] और उन्हें अभीप्सित है अपने तथा अपने स्वामी के बीच प्रेम-गाम्भीर्य का सम्बन्ध 'मानस-नीर' सा ही है।[3]

५—अनन्य शरणागति—राम सदृश महदैश्वर्यशाली परम करुणाशील स्वामी को छोड़ कर अन्य किसी की शरण की अभिलाषा करना, तुलसी के मत में तो परम अज्ञानता ही है। स्वयं उनके सेव्य (राम) को भी यह बात पसंद नहीं है।[4] तुलसी तो सभी राम-सेवकों को उद्बोधित करते हुए कहते हैं कि एक राम के ही शरणागत बन जाओ। स्वयं उन्हें भी तो एक राम की ही आशा है, उन्हीं का भरोसा है और उन्हीं का बल है।

---

१ 'अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥२०४॥
—दो० २०४ अयोध्या काड, गीता प्रेस।

२. एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥
—दो० २७७ (दोहावली), गीता प्रेस।

३ 'राम कबहुँ प्रिय लागि हो जैसे नीर मीन को ?'
—विनय पत्रिका पद २६६, गीता प्रेस।

४. मोर दास कहाय नर आशा। करइ तो कहहु कहा विस्वासा।
—दोहा, उत्तर काड।

६—स्वामी-नाम-गुण का आराधन—तुलसीदास अपने परमात्म स्वामी की सतत गुणानुवादिता एवं उसके नामाराधन के बड़े ही कायल हैं। वे तो अपनी रसना से सदा राम के गुणों का गान ही चाहते हैं। इसके अतिरिक्त वे चाहते हैं आजीवन राम के नाम का भजन करना। उनके मत में तो बिना राम भजन के भवनिस्तार का कोई अन्य उपाय ही नहीं है।[1] उनकी दृष्टि में कलियुग का तो एकमात्र धर्म राम नाम भजन है।[2]

दास्यभक्ति परक 'मानस' की हिन्दी टीकाएँ

इस परम्परा की टीकाएँ गोस्वामी तुलसीदास की दास्य भक्ति का अनुगमन करने वाली हैं। गोस्वामी जी की दास्य भक्ति से अनुप्राणित 'मानस' की हिन्दी टीकाओं के अंतर्गत गोस्वामी जी के ही 'मानस' शिष्य श्री बूढ़े रामदास जी की 'मानस' टीका परम्परा की टीकाएँ आती हैं। इस परम्परा के पूर्ववर्ती चार मानस शिष्यों—क्रमश: बूढ़े रामदास जी, रामदीन जी, धनीराम जी एवं मानदास जी—के द्वारा रचित 'मानस' की कोई टीका अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। मानदास जी के 'मानस'—शिष्य श्री राम गुलाम द्विवेदी (विक्रम की १९वीं शती का उत्तरार्द्ध) एवं द्विवेदी जी के 'मानस'—शिष्य-प्रशिष्यों की टीकाएँ मिलती हैं। अतएव हम इस परम्परा की टीकाओं का ऐतिहासिक परिचय पं० रामगुलाम द्विवेदी की ही टीकाओं से प्रारम्भ करेंगे।

टीकाएँ मानसप्रदीप, 'मानस' सटीक
टीकाकार श्री रामगुलाम द्विवेदी

द्विवेदी जी का जन्म मिर्जापुर जिले के अन्तर्गत अमनी नामक ग्राम में हुआ था। बाल्यावस्था में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। अतएव इनकी शिक्षा दीक्षा अच्छी तरह न हो सकी। पिता की मृत्यु के पश्चात् गृहस्थी का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं के कंधों पर आ पड़ा। प्रारम्भ में द्विवेदी जी को अपनी जीविका के उपार्जन के हेतु पल्लेदारी जैसा अप्रतिष्ठित कर्म भी करना पड़ा था।[3]

---

१ 'बारि मथें बरु होइ घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥
—दोहा १२२ क, मानस उ० का०, गी० प्रे०।

२ 'कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
—दोहा १०२ ख, उ० का०।

३ मानि हरि पालो अपनी करि कै।
दोष अनेक एक नहिं लख्यो अपनी ओर चितै कै॥
बालहि पिता त्यागि सुरपुर गे गमै गरीबी गहि कै।
आगे नाथ न पाछे पगहा जियो सहृ भय सै कै॥
सीधो मागत फिरौं धाम पर औनी कैर रहि कै।
देखि दाराय गदन कैगया भोजन बसन अटै कै॥
रामगुलाम गह समरथ कियो सिय सिय मन का दै कै॥ (कवित्त प्रबंध)
—भगवती प्रसाद सिंह कृत रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२८।

बाल्यावस्था से ही हनुमान जी के प्रति द्विवेदी जी की एकान्त निष्ठा थी। ये अपने ग्राम के निकटस्थ लोहनी-हनुमान के मंदिर में प्रतिदिन हनुमान जी को सविधि 'मानस' का पारायण सुनाया करते थे। उनका यह अनुष्ठान अबाध गति से चला करता था। वे इस कार्य में बाधक-मानवीय या प्राकृतिक किसी भी प्रकार की आपत्ति की किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करते थे। कहते हैं कि एक बार जब बरसात के दिनों में लोहनी हनुमान के मंदिर के रास्ते में पड़नेवाले नाले में तेज बाढ़ आ गयी थी, तब भी द्विवेदी जी उसकी तनिक भी परवाह न करते हुए, नाले में उतर गए और उसे पार करने लगे। नाले के जल में वेग अत्यन्त तीव्र था, उनके पैर उसमें थम न सके और वे बह चले। इतने में ही किसी अज्ञात व्यक्ति ने आकर उन्हें नाले से बाहर निकाल दिया। कहा जाता है कि वह व्यक्ति और कोई नहीं, हनुमान जी थे। इस प्रकार द्विवेदी जी नाले को पारकर मंदिर में आये और नित्य की भाँति उस दिन भी परम अनुराग पूर्वक उन्होंने मानस का पाठ हनुमान जी को सुनाया। हनुमान जी उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना साक्षात् दर्शन दिया। उन्होंने द्विवेदी जी को स्वयं मानस का बोध कराया और उन्हें आज्ञा दी कि 'अब पल्लेदारी का कार्य छोड़ कर मानस की कथा कहो परन्तु टीका न लिखना।'[1] द्विवेदी जी ने हनुमान जी के आदेश का बड़ी ही सन्नद्धता से पालन किया। अपना प्रारंभिक व्यवसाय (पल्लेदारी) छोड़ कर उन्होंने जन-सामान्य के बीच 'मानस' की कथा कहनी प्रारम्भ कर दी। इस कार्य से उनकी जीवन-वृत्ति भी चलती थी।

द्विवेदी जी मानस की कथा बड़े ही उत्तम ढंग से कहा करते थे। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ रामायणियों में से थे। उनकी 'मानस' कथा वेद पुराण शास्त्र सम्मत भक्ति भाव समन्वित होती थी। उनके उत्कृष्टता के भक्तिपरक 'मानस' व्याख्यान की प्रशंसा मानसदीपिकाकार श्री रघुनाथ दास जी ने अपनी टीका में की है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी बड़े अध्ययन शील थे और इन्होंने परिश्रमपूर्वक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया था। कहते हैं कि द्विवेदी जी की 'मानस' कथा की ख्याति से अत्यन्त प्रभावित होकर एक बार रीवा नरेश स्वयं महाराज विश्वनाथ सिंह जी मिरजापुर आये। उन्हें द्विवेदी जी से 'मानस' नाम वंदना प्रकरण (बालकाण्ड) की प्रथम अर्द्धाली-बंदौं राम नाम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को—की नित नये-नये भावों से संयुक्त व्याख्या लगातार २२ दिन तक सुनते रहे।[3]

पं० रामगुलाम द्विवेदी राम एवं हनुमान की भक्ति दास्य भाव से करते थे। उन्होंने अपने प्रकृष्ट कोटि के भक्ति ग्रंथ 'कवित प्रबन्ध' में दास्य भाव की भक्ति का ही

---

१. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४२९।

२. 'अरु वर्तमान काल भी रामगुलाम जू पंडित रहे सर्वशास्त्र अरु पुरान महा रामायण के दृष्टांत हेतु श्रम कियो रह्यो सो सब अर्थविस्तार ते न लिखी जाय।'

—मानसदीपिका प्र० सं० पृ० १

३. 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, (कल्याण)।

प्रतिपादन किया है। कवित प्रबन्ध का एक कवित्त, जिसमे उन्होंने अपने दैन्य का एवं अपने स्वामी राम की कृपा का उल्लेख किया है, पिछले पृष्ठ पर उद्धृत किया जा चुका है। द्विवेदी जी ने हनुमान जी के प्रति भी उसी प्रकार का दैन्य' भाव प्रदर्शित किया है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए 'कवित्त प्रबन्ध' से उसका आत्म निवेदन परक एक कवित्त उद्धृत किया जा रहा है—

> 'बुद्धि बल हीन दूबरो विपत्ति बस,
> लोक वेद विमुख भयो न काहू काम को।
> कपटी कुचाली कूर कलहा कलकी क्रोध,
> कलुप कर्दब भीर करत हराम को॥
> करि ते विदेस बस्यो देखि दसा देस हस्यो,
> पेट भरिबे को काज बड़ो जस राम को।
> तऊ न गुलाम राम सबत विलोक कलि,
> हाय हनुमान सोसो दूसरो निकाम को॥'[१]

द्विवेदी जी कृत उपर्युक्त कवित्त मे दैन्य भाव गर्भित जो आत्म-निवेदन किया गया है, वह बहुत कुछ गोस्वामी जी के द्वारा कवितावली के उत्तरकाड के अन्तर्गत किये गए आत्म निवेदन के सदृश ही है।[२]

इस प्रकार पं० रामगुलाम द्विवेदी गोस्वामी जी दास्यानुगा भक्ति के सच्चे अनुगामी सिद्ध होते हैं तथा गोस्वामी जी की 'मानस-शिष्य' श्री बूढ़े रामदास जी का दास्यानुगाभक्ति परक टीका-पद्धति के पाँचवें 'मानस' शिष्य भी थे।

द्विवेदी जी तुलसीदास के जीवन चरित एवं उनके साहित्य के खोजी थे। आपने गोस्वामी जी के जीवन एव साहित्य से सम्बन्धित प्रभूत प्रामाणिक सामग्री का पता लगाया। आज साहित्यिक जगत म आपके उक्त अनुसंधान को बड़ा महत्व प्राप्त है। प्रथमत आपने गोस्वामी जी के बारहो प्रामाणिक ग्रन्थों रामललानहछू, बरवैरामायण, रामचरितमानस, रामगीतावली, कृष्ण-गीतावली, रामाज्ञाप्रश्न, जानकीमंगल, कवितावली, वैराग्यसंदीपनी एव विनयपत्रिका—की सूचना दी थी। आपने गोस्वामी जी के समस्त ग्रन्थो का सशोधन-संपादन किया था। आपके द्वारा सशोधित गोस्वामी जी के समस्त ग्रन्थो का एक गुटका छपवाया गया था। स्वतंत्र रूप से एक 'मानस' गुटका सं० १६४१ वि० में काशी से छपा था। वह अब प्राप्य नहीं है।[३] इसमे 'मानस' के अनेक सुधी टीकाकारों एवं सपादको ने सहायता ली है।

---

१ राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४२८-२९।
२ दृष्टव्य, कवितावली, उत्तरकांड, कवित्त ६६, ६८, ७०, ७५ इत्यादि।
३. मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानसांक, कल्याण।

द्विवेदी जी का साहित्य—द्विवेदी जी 'मानस' के व्याख्याता मात्र ही न थे, अपितु वे एक कुशल कवि एवं ग्रन्थकार भी थे। उन्होंने बहुत से भक्तिपरक ग्रन्थ लिखे जिनमे निम्नलिखित[1] प्रमुख हैं—

(१) कवित प्रबन्ध
(२) रामगीतावली
(३) ललितनामावली
(४) विनयपत्रिका
(५) दोहावली रामायण
(६) हनुमानाष्टक
(७) रामकृष्ण सप्तक
(८) श्री कृष्ण पंच रत्न पंचक
(९) श्री रामाष्टक
(१०) रामविनय
(११) रामस्तवराज
(१२) बरवा।

इनके अतिरिक्त पंडित रामगुलाम द्विवेदी के नाम से प्रचारित दो टीकाओं—मानसप्रदीप एवं मानसटीक (काशिराज संग्रहालय मे हस्तलिखित रूप से सुरक्षित) का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त संग्रह प्रधान टीका 'मानसभाष्य' मे भी रामगुलाम द्विवेदी के नाम से 'मानस' के कतिपय प्रसगो की व्याख्यायें संग्रहीत हैं।

मानसप्रदीप

द्विवेदी जी के नाम से प्रचलित मानसप्रदीप टीका 'मानस' एक पद्यात्मक टीका है।[2] सम्प्रति यह टीका अनुपलब्ध है। इसलिए यहाँ इसके सम्बन्ध में विशेष परिचय देना सभव नही है। जहाँ तक इस टीका के लेखक का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे हमारा यही अभिमत है कि द्विवेदी जी के किसी स्मर्ता 'मानस'—शिष्य ने 'मानस' सम्बन्धी उनके पद्यात्मक व्याख्यानो को संकलित करके, उन्हें 'मानसप्रदीप' के टीका नाम से प्रस्तुत कर दिया है। ऐसा प्रयत्न द्विवेदी जी के एक प्रमुख 'मानस' शिष्य श्री छक्कन लालजी ने 'मानस' सटीक की रचना मे किया है, जिसका विवरण आगे दिया जायगा। यह कार्य द्विवदी जी की मृत्यु के पश्चात् ही किया गया होगा, क्योंकि द्विवेदी जी के जीवन काल

---

१ राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४३०।
२. तुलसीपत्र, वर्ष ३ अंक १, २, पृ० १५—'मानस पर टीकात्मक ग्रन्थ' शीर्षक लेख।

में किसी व्यक्ति का यह मालूम न था कि वह उनके 'मानस' व्याख्यानो को लिपिबद्ध करे।[1]

'मानसप्रदीप' टीका के प्रणयन से सम्बन्धित जो विशेष तथ्य ध्यान देने योग्य है, वह यह कि द्विवेदी जी जन-सामान्य के बीच तो 'मानस' की गद्यात्मक व्याख्या करते रहे होंगे, क्योंकि उनकी पद्यात्मक 'मानस' व्याख्यायें सामान्य श्रोताओं के लिए सरल एवं उपयोगी नहीं हो सकती थीं और वे 'मानस' का पद्यात्मक व्याख्याओं को प्राय अपनी 'मानस' शिष्य—मण्डली के अन्तर्गत ही करते रहे होंगे। अतएव उनकी पद्यात्मक व्याख्याओं का स्मरण एवं संकलन-सरक्षण का कार्य उनकी 'मानस' शिष्य मंडली के किसी स्मर्ता सदस्य द्वारा हुआ होगा। कालान्तर में उसी ने उनकी पद्यात्मक व्याख्याओं को सुसंगठित करके लिपिबद्ध कर दिया होगा।

रामचरितमानस सटीक

रामनगर राज पुस्तकालय के अंतर्गत प० रामगुलाम द्विवेदी के नाम से एक हस्तलिखित खण्डित टीका उपलब्ध है। इसके लेखक कोई गणेश शुक्ल हैं, जो रामनगर राज्य का कई प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के लेखक रहे हैं। इस टीका का लेखन-काल अज्ञात है। सम्पूर्ण टीका २८४ पन्नों में है। इस पुस्तक में केवल मानस के 'बाल, अयोध्या, आरण्य एवं लंका काडों' की ही टीका सग्रहीत है। उनमें भी बालकाण्ड के आदि के ४६ दोहे के बाद २०० दोहे तक की टीका लुप्त है। इस काड की पत्र-संख्या, दो बार नये सिरे से दी गयी है। पहली गणना के अनुसार १ से २६ तक की सख्या के पन्ने हैं और दूसरी के अनुसार १ से ८१ तक की सख्या के पन्ने प्राप्त हैं। अयोध्याकाड भी अपूर्ण है। इसमें मात्र ११७ दोहा की टीका सत्य है, शेष का नहीं। लेखक या ग्रन्थकार का कहीं भी टीका के अन्तर्गत नाम निर्देश नहीं है।[2]

रामनगर राज पुस्तकालय की नव निर्मित विस्तृत पुस्तक-सूची से इस टीका के उपक्रम एव उपसंहार की पुष्पिका अविकल रूप से उद्धृत की जा रही है—

उपक्रम—'श्री रामायनमा जैसरी माया के बसि होइ कै बसत है शिव अखिल नाम समस्त वो ब्रह्मा आदि देह के समस्त सुरज जैसरी सत्ता करि के। झूठ सो अमृग नाम सत्य भासत है।'

---

१. 'ऐसा कहा जाता है कि कोई शिष्य आपकी कथा टैपी माया से लिख लिया करते थे, मालूम हो जाने पर आपने शाप दे दिया कि जो इसे पढ़ेगा वह अंधा हो जायगा अथवा इसी प्रकार का कुछ शाप था। वह शापित ग्रन्थ पूर्व धोवापाट पर था, अब और कहीं काशी जी में है।'

—मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—मानसांक, कल्याण, पृ० ९२०।

२ रामनगर राज पुस्तकालय की नवीन विस्तृत सूची के आधार पर।

उपसहार पुष्पिका—'भगवान षडेश्वर्यमान हैं वा न देहि जे के विनय के इच्छा से वे विजय जे के ज्ञान के इच्छा ते कै ज्ञान जे के द्रव्य जे के द्रव्य के इच्छा ते के विभूति दें, हाथ उठाइ के कहत है ग्रन्थ कर्ता सिद्धान्तनिवत हैं यह जा कलिकाल मल पार लेकर तन है, मन विचार कर के देखु श्री रघुकुलनायक के नाम तजि आन अधार नाहि है। सेवाइ नाम देखिये अजामिल के विप कहा सगति ज्ञान करत रहा पुत्र के नाम लिहा गा गति भई। जमन हराम कहेसि गति भई निषाद नामै के प्रताप कि के गति पाइस इति श्री लंका कांड।

उपर्युक्त उद्धरण का देखने से पता चलता है कि टीका भक्तिभाव प्रदान है। इसकी शैली पर पंडिताऊपन की गहरी छाप है। टीका म प्रयुक्त भाषा को हम तत्कालीन टीका साहित्य की प्रचलित भाषा-ब्रज गद्य ही कह सकते हैं, परन्तु वस्तुत उसम अवधी की छाप प्रधान रूप स है। इसम बहुत कुछ गोस्वामी जी के 'मानस' की भाषा का भी अनुकरण हुआ है।

'मानस' सटीक का भी लेखन उनके शिष्यो एव श्रद्धालुओ के माध्यम से ही सम्पन्न हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री रामगुलाम द्विवेदी के नाम स प्रचलित 'मानस' की इस गद्यात्मक टीका का प्रणयन द्विवेदी जी की कथा के सवप्रमुख श्रोता श्री छक्कनलाल जी की सहायता स राजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह ने कराया था। अपने जीवन क अन्तिम दिनो मे छक्कन लालजी काशिराज ईश्वरीप्रसादनारायन सिंह के राजाश्रय मे काशी में ही रहने लगे थ।[1] छक्कन लालजी क पास निश्चय बहुत स मानस प्रेमी, पडित रामगुलाम जी के व्याख्यानो को उनके मुख स ही सुनने को एकत्र करते थे। प० रामकुमार जी जैसे सुप्रसिद्ध रामायणी एव टीकाकार ने भी छक्कन लाल से द्विवेदी जी के 'मानस' व्याख्यानो को सुना और उन्हे नोट भी किया।[2] बहुत सभव है कि गुणग्राही काशीनरेश श्री ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह जी ने भी छक्कन लालजी स रामगुलाम द्विवेदी के व्याख्याना को सुना हो और वे बहुत प्रभावित हुए हो। उनके मन म द्विवेदी जी के अमूल्य 'मानस' व्याख्याना का सुरक्षित करने की स्पृहा जगी हो। अतएव उन्होंने द्विवेदी जी की 'मानस व्याख्यानो को लिखित रूप देने के लिए मुशी छक्कनलाल की सेवा म एक लेखक नियुक्त कर दिया हो, जो छक्कन लालजी से द्विवेदी जी के 'मानस'—व्याख्यानो को सुनकर उन्हें लिखता गया हो। अन्तत इस प्रकार 'मानस' की एक टीका तैयार हो गयी और उसे रामगुलाम द्विवेदी के नाम से प्रचारित कर दिया गया। इस टीका के अन्तर्गत द्विवेदी जी का नाम टीका के लेखक के रूप म

१ ऐसा कहा जाता है कि छक्कनलालजी को प० रामगुलाम द्विवेदी की समस्त मानस-व्याख्यायें अक्षरश स्मरण थीं। वे अद्भुत स्मर्ता थ। मानस के प्रधान टीकाकार शीर्षक लेख—मानसांक, कल्याण।

२ प० रामकुमार जी का जीवन परिचय, अध्याय ६,।

नहीं अंकित किया गया। अपितु पुस्तकालय की सूची इत्यादि में ही उनका नाम रखा गया। ऐसा सम्भवतः इसलिए किया गया कि द्विवेदी जी ने 'मानस' की टीका न लिखने का, जो अपना निश्चित सिद्धान्त बना लियया था, उसकी रक्षा हो। अभी तक इस टीका को अप्रकाशित रखने के पीछे भी सम्भवतः यही रहस्य रहा है।

इन टीकाओं के अतिरिक्त द्विवेदी जी कृत 'मानस' की व्याख्याओं का एक संग्रह 'मानस भाष्य' नामक संग्रह प्रधान टीका में भी प्रकाशित रूप में मिलता है। 'मानस-भाष्य' (तुलसी पत्र) के अन्तर्गत द्विवेदी जी के नाम से 'मानस' की जो व्याख्यायें दी गयी हैं, उनसे पता चलता है कि द्विवेदी जी 'मानस' की भक्ति परक व्याख्यायें करते थे। उनकी व्याख्या की आधार भूमि आध्यात्मिक थी। इस तथ्य की पुष्टि के लिए यहाँ पर 'मानस भाष्य' से रामगुलाम द्विवेदी कृत 'मानस' की व्याख्या का एक अंश अवतरित किया जा रहा है—

मूल 'नील सरोरुह स्याम तरुन बारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥'

टीका—'गुसाईं जी ने परात्पर प्रभु के प्रगट होने के समय जो श्याम छवि की उपमायें दी हैं 'उनमें' 'नील सरोरुह' 'नील मणि' और 'नील नीर घट' का उल्लेख है परन्तु श्रीमन्नारायण के स्वरूप के वर्णन में केवल एक ही उपमा 'नील सरोरुह' स्पष्ट है इसका हेतु यह है कि कैवल्य के अंतर्गत महा कारण और कारण शरीरों की जहाँ उपनिषदों में व्याख्या है, वहाँ कारण की उपमा नील कमल से दी गयी है। कमल ही से ब्रह्म की उत्पत्ति है और उनसे जगत की। महाकारण शरीर के लिए 'नील मणि' की उपमा सार्थक है एवं कैवल्य के लिए 'नील नीर घट' की। सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन में इन तीनों 'सूक्ष्मातिसूक्ष्म' शरीरों की प्रधानता है। श्री रामचन्द्र के पर स्वरूप में तीनों का समावेश है और श्रीमन्नारायण में दो का परोक्ष भाव से ग्रहण होता है। और कारण का प्रत्यक्ष भाव से क्योंकि वे विग्रह के प्रत्यक्ष स्वरूप हैं।'[1]

उपर्युक्त व्याख्या में क्षीरसागरशायी भगवान नारायण की श्यामता की उपमा को कमल से देने का जो रहस्य बताया गया है, वह उपनिषद् की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। साथ ही इस व्याख्या में सगुण वपु धारी श्री राम को परात्पर ब्रह्म माना गया है और उन्हीं में महाकारण-कारण ब्रह्म एवं श्री मन्नारायण को समाविष्ट बताया गया है। टीकाकार ने स्पष्टतः यहाँ पर भगवान राम के महत् ऐश्वर्य को दिग्दर्शित किया है। यहाँ पर हम पं० रामगुलाम द्विवेदी की व्याख्या को अध्यात्म शास्त्र-सम्मत पाते हैं।

---

१. तुलसी पत्र, वर्ष ४, अंक ११, पृ० २५१।

प्रकरण ३

भावप्रकाश टीका
टीकाकार श्री संतसिंह 'ज्ञानी' पंजाबी जी

पंजाबी जी की टीका पर प्रारम्भिक काल की किसी भी टीकाकार परम्परा का कोई विशेष प्रभाव नहीं है। ये एक स्वतंत्र टीकाकार हैं। श्री संतसिंह 'पंजाबी जी' राजा रणजीतसिंह (ईस्वी सन् १७८०-१८३९) के समकालीन थे। इनका जन्म एक सत्री परिवार में हुआ था। इनके पिता अमृतसर गुरुद्वारे के पुजारी थे। बचपन से संतसिंह जी की विद्या-अध्ययन में बड़ी रुचि थी। खेल-कूद एवं शस्त्राभ्यास में भी ये बड़े निपुण थे।

वयस्क होते पर पंजाबी जी महाराणा रणजीत सिंह की सेना में भर्ती हो गये। सैन्य क्षेत्र में उन्होंने बड़े ही शौर्य पूर्ण कार्य किये, जिनके उपलक्ष्य में इन्हें अनेक बार सैन्य विभाग के उच्च सम्मानों से विभूषित किया गया था। एक बार तो युद्ध में इन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा कर स्वयं राजा रणजीतसिंह के प्राणों की रक्षा की थी, तब से राजा साहब का सहज स्नेह इन पर और अधिक बढ़ गया।

परन्तु इस क्षेत्र में पंजाबी जी अधिक दिनों तक न रह सके। इनके बड़े भाई को, जो अपने पिता की जगह पर अमृतसर के एक गुरुद्वारे में पुजारी के पद पर कार्य करते थे, अचानक मृत्यु हो गयी। अब इन्हें अपनी पैत्रिक परम्परा से प्राप्त हर हर मंदिर (अमृतसर) के पुजारीपद का कार्य संभालने के निमित्त सेना की नौकरी त्याग देनी पड़ी। ये अमृतसर आ गये और गुरु साहब की पूजा-अर्चना में रत हो गये। इन्होंने मन्दिर में प्रचलित पूजा-अर्चना की पूर्व विधि में पर्याप्त परिष्कार किया। सत्संग आदि की व्यवस्था की। स्वयं गुरु ग्रन्थ साहिब की कथा बड़े ही रोचक ढंग से करते थे और श्रोताओं को आत्म विभोर कर देते थे। ये अपने सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य धर्म ग्रन्थों में भी अभिरुचि रखते थे। रामचरितमानस में इनकी अपार श्रद्धा थी। अब भक्ति उपासना के क्षेत्र में भी इनकी कीर्ति का स्तवन होने लगा। शीघ्र ही इनकी ख्याति सम्पूर्ण पंजाब एवं उसके आस-पास के प्रदेशों में व्याप्त हो गयी।

इनकी बढ़ती हुई यश-कीर्ति को देखकर इनके कुछ विरोधियों को बड़ी ईर्ष्या हुई। वे इनकी हत्या के षड्यन्त्र में लग गये, परन्तु रणजीत सिंह के प्रबल संरक्षण के कारण उन्हें मुँह की ही खानी पड़ी। राजा रणजीतसिंह के अतिरिक्त नाभा पटियाला जींद आदि रियासतों के नरेश भी आपके परम श्रद्धालुओं में से थे।

ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार जब पंजाबी जी तीर्थाटन के हेतु हरिद्वार गये थे, तो वहाँ पर हनुमान जी ने इन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि 'तुम रामचरितमानस की टीका करो, क्योंकि उसमें तुम्हारी परम प्रीति है, इस कार्य से तुम्हारा परम कल्याण होगा।' हनुमान जी का उक्त आदेश पाते ही इन्हें रामचरित 'मानस' की टीका लिखने की पक्की लगन लग गयी, परन्तु ये हिन्दी भाषा सम्यक् रूपेण नहीं जानते थे, अतएव इन्होंने प्रथमतः काशी (रामनगर) के तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् पंडित रघुनाथ दास

पट्शास्त्री से हिन्दी पढ़ी। हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् इन्होंने 'मानस' की टीका लिखनी प्रारम्भ की। टीका के प्रणयन काल के समय इन्होंने लोगों से मिलना जुलना भी बन्द कर दिया। एकांत कोठरी में 'मानस' के टीका-लेखन का कार्य चलता था। संस्कृत श्लोकों के प्रमाण और उद्धरण देने के लिए एक संस्कृत शिक्षक पंडित और दो लिपिक भी इनकी सेवा में नियुक्त थे। लगभग १३ वर्षों में 'मानस' पर इनकी भाव-प्रकाश नामक टीका तैयार हुई।

टीका के पूर्ण होने ही इसकी एक प्रति काशिनरेश ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के दरबार में समालोचना एवं शुभ सम्मति के प्राप्त्यर्थ भेजी गयी। वहाँ के रामायणी समाज ने इसे 'मानस' की एक उत्कृष्ट टीका ग्रंथ घोषित किया। इस टीका की प्रशंसा तत्कालीन साहित्यकारों ने भी की। ग्वाल कवि ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'भाव प्रकाश' 'मानस' के तात्त्विक भावों को प्रकाशित करनेवाली एक अनुपम टीका है।'[1] इसी प्रकार भारतेन्दु बाबू के सुहृद एवं रसिक कवि बाबा सुमेर सिंह ने इसे प्रकृष्ट कोटि की भक्तिपरक टीका कहा है।[2] बाबा सुमेर सिंह ने उन्हें 'मानस' के चार घाटों के रखवाले सुप्रसिद्ध चार टीकाकारों—बाबा रामचरण दास महंत, बाबा मानदास, पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा स्वयं मर्सिंह ज्ञानी 'पंजाबी जी' में से एक बताया है।[3] 'मानस' की टीका के लेखन कार्य के सवा वर्ष पश्चात् ही

---

१. 'तुलसी जन कीन्ह रमायन ही सुखदाइन जद्यपि होका।
तदपि बाल औ वृद्ध जुआन के लाइक हो न दुखाइक टीका।
हा मिसरी के कुज सम 'ग्वाल' सत सिंह न कह्यो रस नीका।
भक्त विलासिनी प्रेम प्रकासनी भासनी भाव विकासनी टीका॥'

—भावप्रकाश टीका के अन्तर्गत प्रकाशित पंजाबी जी की जीवनी, पृ० २६।

२ मानस मंजुमराल के हित मुक्त की खान प्रमान प्रमानगी।
त्यों सुमेरेस सियावर के गुन ग्रन्थन की भक्ति भाव विकासनी॥
मत सिरोमनि संत मृगेस की टीका अनूप अज्ञान प्रनासनी।
नीत निवासिनी, प्रीत विकासनी, भक्ति हुलासिनी, भाव प्रकासिनी॥
भाव प्रकासनी सियावर के गुन तारन को सबै साँची रसायन।
या भव भोगन ते हैं निरोग जो अर्तर देत हैं हमायन॥
भक्ति प्रमायन पीत उपायन, ज्ञान गुनायन ध्यान परायन। वही, पृ० २६।

३ "चार घाट विहल मानस तुलसीदास,
ताके चार वाके रखवारे जे गनाय हैं।
राम पद प्रेम रामचरन महंत,
भक्त पंडित गुलाम राम, मानदास पाये हैं॥
सुमेरेस त्योंही संत सिंह महाराज,
ज्ञानी गुप्रासरजू के विदित कहाय हैं।
राम गुन गाय भाव भक्त दरसाय,
भक्ति पंथ गुन गाये रामचन्द्र मन भाये हैं॥ वही, पृ० २६।

इनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के कुछ महीनो पूर्व से ही ये 'मानस' की कथा एवं 'मानस' सत्सग मे सतत लीन रहा करते थे। आषाढ़ मास संवत् १८८६ मे पंजाबी जी ने अपनी इह लीला समाप्त की। कहते हैं कि मृत्यु के समय ये अपलक नेत्रों से अपने सामने टगी हुई श्री सीताराम एव साहिब दशम के चित्रो को निरखते रहे। इनकी अन्त्येष्टि क्रिया बडी ही धूम-धाम से मनाई गयी। ऐसा कहा जाता है कि इन श्राद्ध-कर्म समापन के अवसर पर महाराजा रणजीत सिंह के अतिरिक्त पटियाला, नाभा जीद आदि रियासतो के नरेशो ने भी श्रद्धाजलिया अर्पित की।

पजाबी जी की साहित्य सेवा—पजाबी जी ने मानस की भाव प्रकाश टीका के अतिरिक्त साहिब दशम बादशाह एव 'पाहुल' आदि ग्रन्थो की रचना की थी। पंजाबी जी ग्रन्थ-सग्रह मे बडी ही रुचि रखते थे। उन्होंने एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया था जिसमे पजाबी जी के अतिरिक्त हिन्दी, सस्कृत, अरबी, फारसी की पुस्तके सग्रहीत की गयी थीं। आपने साहिब दशम के एक दुर्लभ ग्रन्थ की खोज करके उसे भी अपने पुस्तकालय मे रखा था।[1]

भावप्रकाश टीका

'मानस' प्रेमी जगत् म पजाबी जी कृत भावप्रकाश टीका बडे ही समान की दृष्टि से देखी जाती है। इस टीका की रचना का प्रारम्भ रामनवमी सवत् १८७५ विक्रमी को हुआ।[2] लगभग १३ वर्षो के घोर परिश्रम के पश्चात् चैत्र कृष्ण पाच संवत् १८८८ विक्रमी को यह टीका पूर्ण हुई पूर्ण हुई।[3] इसका प्रथम प्रकाशन संवत् १९०१ मे खड्गविलास प्रेस से हुआ था। भावप्रकाशकार ने 'मानस' के प्रत्येक छन्द की टीका नही की है। इन अव्याख्यात स्थलो की टीका के रूप मे बाबू रामदीन जी एवं महादेव प्रसाद की टिप्पणियाँ हैं तथा बाबा जानकीदास का मानसप्रचारिका टीका से भी कुछ भाव को भी उद्धृत किया गया है। 'मानस' के कतिपय स्थलो की टीका भावप्रकाश टीका के प्रतिलिपिकार के द्वारा भी की गयी है, जैसा कि लंका काड के इस प्रसिद्ध सोरठे—'मूरख हृदय न चेत जदपि सुधा बरसहिं जलद। मूरख हृदय न जेत जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम'—की टीका देखने से व्यक्त होता है।[4]

भावप्रकाश टीका म आध्यात्मिक दृष्टि कोण की ही प्रधानता है। टीकाकार की दृष्टि मे 'मानस' के प्रसंगो की सामान्य एव सीधी व्याख्या विशेष महत्व नही रखती है। अपितु 'मानस' की टीका भक्ति भाव स मण्डित चमत्कारोत्पादक व्याख्यान से युक्त

---

१ भावप्रकाश टीका मे प्रकाशित पजाबी जी की जीवनी।

२. वही, भूमिका।

३ भावप्रकाश टीका के अन्तर्गत प्रकाशित पजाबी जी की जीवनी।

४ 'टिप्पणी—इस सोरठे का अर्थ टीकाकार ने नही लिखा था, किन्तु जिस प्रति से यह ग्रन्थ छापा जाता है, उसके लेखक ने लिख दिया है।'
—भावप्रकाश टीका, प्र० स०, पृ० २३ (लंकाकाड)।

होनी चाहिये। उनका ऐसा मन्तव्य भावप्रकाश टीका के भक्ति भाव परक व्याख्यानों में स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है।

टीका की भाषा ब्रज प्रधान है। भाषा पर पंजाबी भाषा की रूपात्मक विशेषताओं का भी प्रभाव पड़ा है। टीकाकार न तो हिन्दी भाषा का विद्वान् था और न वह हिन्दी भाषा भाषी ही था। अतएव उसकी टीका में अपरिष्कार एवं अनगढ़ता वर्तमान है। वह पंजाब प्रान्त का निवासी था, अतः उसकी भाषा पर पंजाबी भाषा का कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है। टीका की शैली पर व्यासों की कथावाचकी शैली की छाप है। भावप्रकाश टीका के निम्नलिखित एक ही उद्धरण से उपर्युक्त समस्त तथ्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

मूल — कोसलेस दसरथ के जाये। हम पितु बचन मानि बन आये ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥

टीका— साधारण अर्थ म तो आठोचरण सुगम है तिहाँ वैदेहा विशेषण अरु विप्र सम्बोधन इस हेतु जो विदेह राजा का ऋषों से अति स्नेह है तिस सम्बन्ध कर उसकी कन्या के खोजन महूँ यह भी सहायता करेंगे। ननु। इस अर्थ मा तो प्रभा ने कहा हम दासरथी है तौ हनुमत ने कैसे पछाने जो यह परमेश्वर है जाने जागे पनि पहिचाना न्हिं कहिणा है। उत्तर। यद्यपि निगमागम हूँ सो सुना हुआ था दसरथ के प्रभु अवतार धरेंगे तदपि सन्देह था जो कदाचित् दसरथ नाम कोऊ और राजा होइ तातें यह केवल निसंन्देहता हाती तो अयोध्या मोहीं किउ न जाय मिलते तिस हेतु विचारया जो ईश्वरा की वाणी है ता इसमें अपने स्वरूप हूँ का द्योतक गूढ़ अर्थ अवश्य होवेगा जाने परोक्ष प्रिया देवा। तब प्रिह वचन है की और प्रवृत्ति दोनी जो इन्हों कहा हमने अपना चरित्र गाय कै कहा है सो भावना हुवे के हृदय सो सूचना है अरु इन्ह के वाक्य हूँ का स्पष्ट अर्थ शोकमय भासता है। तातें उना सो गूढ़ अर्थ समझ सो अर्थान्तर सुनो। कोसलेस कुशलानां समूह कौशलतस्य ईशो कोसलेश अर्थ यह सब कल्याणा का दाता दसरथ दस कहे पंछी विराट गरुड़ सो है जिसका रथ कहे वाहन सो विष्णु परमात्मा पंछी विहगम इति हलायुध कोषे तिसके जाये कहे पुत्र अर्थ यह तिसका अवतार पुत्र कैसे हम पितु कहे सकल विश्व का कर्ता। तौ वह कहैं तुम आती श्लाघा हेतु कहिते हो तौ अपनो सवज्ञता ससावते हुए तिसको प्रतीत दृढ़ावते हैं हमारा वचन मानु है बन आए। अर्थ यह वास्तव स्वरूप तेरा और है एहु प्रिय वस नैने वनाउया का लिया है। जो पूर्व तुम्हार नाम क्या है। तौं सुनु राम कहे जो सर्व मो रम्या होइ। अथवा सभी को रमावै। अरु सतमन यह लम पर मास्या तिससो हाइ जिनका मन मोमित जो को सेवको हेतु ति ह को जीव करे बन्म दोना मार्ग हैं। मरा नगार कर भ्राता पन इनते कहा जाने गुनि सो प्रमाण है। द्वौ सुपर्णा सयुजौ सखायौ। ईश्वर अरु जाव आत्मा पंछी आराम मां दाता मित्र है

तिनो मो माया भी रहती है। से संग हमारे माया रूपी नारि थी अति कोमल अरु सुन्दरादिक विशेषण सम जिसमो है तिमको वैदेही कह्या जिमको देहादिक कल्पना नहीं सो हरी गई हैं जो कहो सो कैसे हरी जाइ तौं सुनो हरण न हरण तिममोहो गम कुछ बनता है। किंव हरणाय ग्रहण के अर्थ मो है सो अज्ञानी जीव वह निशाचर तिमको ग्रहण कर दुखी होवैगा। अरु हम तिसको खोजते हैं। तत्र यह तिम माया को निकास कर जीव को मुक्ति देवैंगे।'[1]

उक्त चौपाइयों की टीका के अन्तर्गत टीकाकार का ध्यान उनकी सरल एवं सामान्य व्याख्या पर ही केन्द्रित नही है, अपितु उनके ऐश्वर्य परक अर्थ की ही ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति है। इस तथ्य का स्पष्टत समर्थन उपर्युक्त व्याख्या की इन प्रारम्भिक पक्तियो से ही होता है कि 'साधारण अथ मे तो आठो चरण सुगम हैं।' टीकाकार के इस वाक्य स यहा ध्वनि निकलती है कि इसका जो साधारण अर्थ है वह तो सभा जानते हैं अतएव उसके विशेष (ऐश्वर्यपरक) अर्थ जिसकी अपेक्षा है उसे ही यह यहाँ दे रहा है। टाकाकार न उक्त प्रसग का ऐश्वर्य परक अर्थ करने म प्रामाणिक सस्कृत धर्म ग्रन्था स सटीक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

व्यास पद्धति की प्रतिनिधि टीका भावप्रकाश के उपर्युक्त उद्धरण मे टीकाकार की चमत्कारिक अर्थ शैली खूब निखरी है। वहाँ पर उसने इसके अनुकूल व्याख्येय शब्दो को तोड मरोड कर उनके अनेक अर्थ किये हैं। टीकाकार ने 'दशरथ' शब्द की मन चाही व्याख्या करने के हेतु व्यास प्रणाली की इसी विशेषता का सहारा लिया है। टीका की भाषा का वाक्य विन्यास सुगठित नही है। इससे उसमे दुरूहता आ गयी है। कही-कही पर उचित शब्दो के प्रयोग के अभाव मे टीका की भाषा दुर्बोध हो गयी है। जैसे उपर्युक्त उद्धरण की प्रारम्भिक पंक्ति में 'तिन्हो' शब्दो का प्रयोग भ्रामक है। वस्तुत. यह शब्द वहाँ पर 'तिसमे' के अर्थ प्रयुक्त है। परन्तु यदि इसके प्रासगिक प्रयोग का ध्यान न रखा जाय तो वहाँ इससे 'तिनका' या 'तिन्होने' का भी अभिप्राय निकाला जा सकता है। हिन्दी के बहुत से शब्दो का तो पंजाबीकरण भी हो गया है जैसे लक्षणा का 'लख्यना', कहाना का 'कहिणा' और रखा का राख्या'।

भावप्रकाश टीका साहित्यिक दृष्टि से भी महत्व रखती है। इसमे मानस के कतिपय स्थलो की टीका करते समय, उनमे आये अलकारो, रस एव छन्दादि काव्यशास्त्रीय तत्वो पर भी विचार किया गया है।

प्रकरण ४

राम नगर राज्य की टीका-परम्परा

पूर्वत राम नगर राज्य की टीकाकार परंपरा काष्ठ जिह्वा स्वामी 'देव' से माना गया है। स्वयं स्वामी जी राम की रागानुगाभक्ति से प्रभावित होते हुए भी प्रधान

---

१ भावप्रकाश टीका, प्र० सं०, पृ० ५–६, किष्किंधा काड।

रूप से राम की भक्ति दास्यानुगामिनि से करते थे। इनकी टीका परंपरा की टीकाएँ पूर्व वर्णित मानस की टीका-परपराओ से सर्वथा निराली है। यहाँ हम परपरा की प्रथम टीका रामायण परिचर्या का परिचय दे रहे हैं।

रायायण परिचर्या टीका

टीकाकार-काष्ठ जिह्वा स्वामी 'देव'

'रामनगर' की टीका परपरा के प्रवर्तक विरक्त सन्यासी श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी 'देव' काशीनरेश राजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह (शासन काल ई० सन् १८३५ से १८८३) के समकालीन थे।[१] ये राजा साहब के गुरु थे। स्वयं इनके गुरु का नाम स्वामी विद्यारण्यतीर्थ था। इनकी गणना तत्कालीन श्रेष्ठतम विद्वानों में होती थी।

कहा जाता है कि एक बार दक्षिण का कोई महान् विद्वान् दिग्विजय करने की मनसा से काशी आया। उसने काशी के पडितो को शास्त्रार्थ करने के लिए चुनौती दी। काशी का कोई पंडित उनसे शास्त्रार्थ करने को तैयार न हुआ। अन्तत स्वामीजी ने उससे शास्त्रार्थ किया और शास्त्रार्थ मे उसे परास्त भी किया। उस पराजित पडित को तीव्र ग्लानि हुई और उसने उसी दिन रात्रि गगा मे समाधि ले ली। उसके डूब मरने का समाचार जब काष्ठजिह्वा स्वामी को मिला तो उन्हे बडा ही परिताप हुआ। उन्होंने उसी समय काष्ठ मौन व्रत ले लिया। अब ये काष्ठ जिह्वा स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। श्री रघुनाथ दास कृत मानसदीपिका टीका (रचनाकाल स० १९०६ वि०) के अन्तर्गत आपके वर्तमान रहने का उल्लेख है। इस प्रकार ऐसा पता चलता है कि वे स० १९०६ में जीवित थे।[२]

काष्ठ जिह्वा स्वामी एकनिष्ठ रामोपासक थे। आप गीता के भी बड़े भक्त थे। रसिक प्रकाश भक्तमालकार ने तो इनको उच्च कोटि का 'शृङ्गारी' रामभक्त बताया है, किन्तु इनकी रसिकोपासना सखी भाव से होकर दास्य भाव से ही थी। चाहें तो हम इनकी भक्ति भावना को मधुरदास्य भाव का नाम दे सकते हैं।[३]

स्वामी जी संस्कृत के प्रकांड पडित थे तथा हिन्दी के एक उत्तम कवि भी थे। इनके अतिरिक्त साहित्यिको एव 'मानस' प्रेमियो के बीच ये 'मानस' के टीकाकार के रूप मे भी पर्याप्त हैं। ये 'मानस' के एक सुलझे हुए ममज्ञ टीकाकार थे। टीका-रचना के विषय में इनका निम्नलिखित सिद्धान्त ध्यान देने योग्य है।

'मन की ठकुराई मई कौन सुनै कौन मानै कवि के अधेरे मे न दार परिवार है।
जाको जो भावत है, से कैसोई, भावत है स्मृति को प्रमान गयो हठ का पसार है।
प्रकरन औ देशकाल भाव देखि कहै बात ही कहूँ कहै जदपि कामधेनुसार है।
अक्षरन ते साफ निकसै सोई अर्थ कविता को सूधी बजाय कहौ बाकी बकवाद है।[४]

---

१ राम भक्ति म रसिक सम्प्रदाय, प्र० स०, पृ० ४५०।
२ मानसदीपिका, प्र० स०, पृ० १।
३ राम भक्ति म रसिक सम्प्रदाय, प्र० स०, पृ० ४५०–५१।
४ रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश (भूमिका) पृ० ३।

काष्ठजिह्वा स्वामी का साहित्य

'मानस' की रामायणपरिचर्या टीका के अतिरिक्त काष्ठ जिह्वा स्वामी जी कृत भक्ति एवं वैराग्य विषयक रचनाओं की तालिका निम्नलिखित है[1]

(१) विनयामृत
(२) पदावली
(३) रामलगन
(४) वैराग्यप्रदीप
(५) अयोध्याविन्दु
(६) अश्विनीकुमार विन्दु
(७) गयाविन्दु
(८) जानकी विन्दु
(९) पंचक्रोशमहिमा
(१०) मथुरा विन्दु
(११) रामरंग
(१२) श्यामरंग
(१३) श्यामसुधा
(१४) उदासी संतस्तोत्र ।

रामायण परिचर्या

'मानस' के टीका-साहित्य में काष्ठ जिह्वा स्वामी कृत 'मानस' की 'रामायण परिचर्या' एक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इसके प्रणयन का प्रारम्भ कार्तिक चतुर्दशी सवत् १८९४ विक्रमी को हुआ था[2] एवं इसकी समाप्ति संवत् १८९५ वि० को पुण्य तिथि रामनवमी के दिन हुई।[3] स्वामी जी ने इस टीकात्मक ग्रन्थ का रचना, काशिराज श्री ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह की प्रेरणा से की थी। इसका मूल पाठ सं० १७०० वि० की 'मानस' की प्रतिलिपि के आधार पर रखा गया है।[4]

रामायणपरिचर्या 'मानस' के विशिष्ट व्याख्येय स्थलों की संकेतात्मक रूप से की गयी टीका के रूप में है। इसका रूप बहुत कुछ टिप्पणी जैसा ही है। यह प्रधानतया गद्यात्मक है, कहीं-कहीं पर गद्य के साथ-साथ 'मानस' की पद्यात्मक व्याख्या भी कर दी

---

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४५१।
२. रामायण परिचर्या की काष्ठ जिह्वा स्वामी कृत भूमिका।
३. रामायणपरिचर्या की पुष्पिका (उत्तरकाण्ड)।
४. रामायणपरिचर्या की भूमिका।

गयी है ।[1] स्वामी जी ने 'मानस' की अथव्यंजना समास (संक्षिप्त) एवं व्यास (विश्लेषणात्मक) इन दोनों प्रणालियों से की है । टीकाकार ने इस तथ्य का उद्घाटन अपनी टीका की भूमिका में स्वयमेव किया है ।[2]

रामायणपरिचर्या 'मानस' की भक्ति मात्र परक टीका है । इस टीका में 'मानस' की श्रुतिपुराण सम्मत व्याख्या की गयी है । इसमें कतिपय स्थलों पर काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर भी व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है । टीका की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा गद्य है, परन्तु वह अवधी, बैसवारी एवं भोजपुरी से भी पर्याप्त प्रभावित है । टीका संस्कृत-तत्सम शब्दों का प्राचुर्य होते हुए भी इस पर पंडिताऊपन की छाप दृष्टिगत होती है ।

रामायणपरिचर्या की उपर्युक्त सभी विशेषताओं का दर्शन हमें इसके 'समास' एवं व्यास शैली के निम्नलिखित दो उद्धरणों में भली भाँति हो जाता है—

अ—समास पद्धति की टीका

मूल— निज कवित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होइ अथवा अति फीका ॥'

टीका— 'निज कवित्त जैसे आपन करी रसोई ।'[3]

ब—व्यास पद्धति की टीका

मूल— 'महिमा जासु जान गनराऊ ।
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥

टीका— विघन राज का नाम पहले गनेस न रहा जब अच्युत एहि नाम का प्रथम अपार अकार भगवान दिहेन तब गनेस नाम प्रसिद्ध 'मा' अकार जैसे सब अक्षरन में प्रथम है वैसे गनेस जी सब सुर नर मन में प्रथम पूज्य भये अस अर्थ कोऊ कहत है ।'[4]

रामायणपरिचर्या के उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में प्रथम उद्धरण, उसकी समास-शैली की व्याख्या का उदाहरण है । यहाँ टीकाकार ने मूल अर्द्धाली के अर्थ का अपने

१. रामायणपरिचर्याकार कृत मानस (बाल काण्ड) के चौथे दोहे की टीका । द० रा० प० प० प्र०—पृ० १२ ।
२ श्री गनेश को मनाय रामायणपरिचर्या भाषा मे,
करौं रस मेल ऊँच जानि कै ।
कतहूँ समास ते सुढ़े अर्थ सोधि देऊ,
कतहूँ विस्तार ते सुनि विचार छानि कै ।
—रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश की भूमिका, पृ० २ ।
३ वही, पृ० १६ ।
४ वही, बालकांड ।

द्वारा बनाये हुए भोजन के स्वाद के सदृश मधुर और उत्तम बताया है। सहज आत्मीयता के कारण अपने द्वारा विरचित निकृष्ट वस्तु भी कितनी प्रकृष्ट एवं सुभग लगती है, यहाँ इस तथ्य की सांकेतिक व्यंजना की गयी है। इस प्रकार सूक्ष्म रीति से टीकाकार ने इतने विस्तृत अर्थ की व्यंजना की है।

रामायणपरिचर्या का दूसरा उदाहरण उसकी व्याख्यात्मक टीका-शैली का परिचायक है। इसमें टीकाकार ने पौराणिक मान्यता के आधार पर गणेश के प्रथम पूज्य होने का रहस्य थोड़े विस्तार के साथ बताया है। उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में आये हुए 'दिहेन', 'मर्मज्ञ' शब्द अवधी बोली के हैं। इनमें आये हुए क्रियापद कथावाचक पंडितों की भाषा में प्रयुक्त होने वाले क्रियारूपों के ही सदृश हैं। रामायणपरिचर्या के उपर्युक्त दूसरे उद्धरण में आये हुये 'भा', 'रहा', 'भये' आदि शब्द इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं।

टीका की शैली संकेतात्मक एवं सूक्ष्म है। अतएव वह सामान्य पाठकों के लिए दुर्बोध हो गयी है। इसी कठिनाई को दूर करने के निमित्त 'रामायणपरिचर्या' पर 'रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट' एवं 'रामायण परिचर्यापरिशिष्टप्रकाश' नामक दो व्याख्यात्मक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

रामायणपरिचर्या के परिचय के साथ 'मानस' के टीका-साहित्य के प्रारम्भिक काल का परिचय समाप्त होता है। अब अगले अध्याय में हम संवत् १९०० वि० के पश्चात् की लिखी गयी मध्य काल की टीकाओं का परिचय प्रारम्भ करेंगे।

'मनास' के टीका-साहित्य का मध्यकाल या 'व्यास काल'

(संवत् १९०० वि० से १९५७ वि० तक)

सामान्य-परिचय

'मानस' के टीका-साहित्य के मध्यकाल का आयाम ५७ वर्षों में परिबद्ध है। यह काल सं० १९०० वि० से लेकर सं० १९५७ वि० तक प्रसरित है। इस काल का नाम हमने 'व्यास काल' भी रखा है। 'मानस' के तत्कालीन टीका-साहित्य में व्यास व्याख्या पद्धति की अर्थ-प्रणाली की प्रधानता के कारण ही मध्यकाल को 'व्यास काल' के नाम से अभिहित किया गया है। इस काल के विषय में अन्य बातों पर विचार करने के पूर्व, यहाँ हम व्यास शैली की अर्थ-पद्धति तथा साथ ही साथ 'मानस' के व्याख्या-साहित्य में उनके व्यवहार पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक मानते हैं।

'व्यास'-शैली की अर्थ-पद्धति—साहित्य के अन्तर्गत कथन की दो प्रधान शैलियाँ प्रचलित हैं, प्रथम है समास पद्धति एवं, द्वितीय है व्यास पद्धति। समास शैली के अन्तर्गत विषय वस्तु को बड़ी ही संक्षिप्त रीति से समझा दिया जाता है, परन्तु इसके विपरीत व्यास शैली के परिवेश में उसी विषय को उदाहरणों, उद्धरणों एवं कहानी-चुटकुलों आदि की सहायता से बड़े विस्तार से व्याख्या की जाती है। इसमें विषयवस्तु का प्रतिपादन

प्रभावशाली ढंग से करने के लिए चमत्कारिक कथन-प्रणाली का भी खूब सहारा लिया जाता है। किसी विषय के वक्ता या धर्म-ग्रन्थों-पुराण, रामायणादि के व्याख्याता अपने श्रोताओं को प्रतिपाद्य विषय का सम्यक् रीति से बोध कराने के लिए इसी 'व्यास' शैली का प्रयोग करते हैं। इसीलिए इन्हें धार्मिक जगत् में व्यास की पदवी दी गयी है। कथा-वाचक तो व्यास के नाम से पुकारे ही जाते हैं। 'मानस' के व्याख्याता, जिन्हें रामायणी भी कहा जाता है, इन्हीं व्यासों की कोटि में आते हैं। इन 'मानस' व्यासों ने व्यास पद्धति की व्याख्या विधि की समस्त विशेषताओं को अपनाया है। यहाँ हम व्यास शैली को 'मानस' व्यासों द्वारा, जो 'मानस' के टीकाकार भी हैं, व्यवहृत अर्थ-पद्धति की कतिपय विशिष्ट विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे—

१ व्याख्यातव्य विशेष का विस्तीर्ण विवेचन

व्यास शैली की 'मानस' टीकाओं में व्याख्येय अंश के पदों पर बड़े ही विस्तार से विचार किया जाता है। टीकाकार व्याख्येय पदों के शब्दार्थ उनके (पदगत) विशेष भावों या अभिप्रायों का कथन करते हैं। व्याख्यातव्य की व्याख्या की पुष्टि के लिए वे विशेषतः 'मानस' या तुलसी-साहित्य के अन्य ग्रन्थों से सटीक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। अन्य अपेक्षित संस्कृत ग्रंथों से भी व्याख्येय से अनुरूपता रखने वाली या उससे मिलते-जुलते भावों की व्यंजक पंक्तियों को उद्धृत करते हैं।

२ 'मानस' के व्याख्येय अंशों का अर्थ 'मानस' के छन्दों के आधार पर व्याख्यान

यह 'मानस' के व्यासों की अर्थ करने की एक प्रमुख प्रणाली है। वे 'मानस' के व्याख्येय विशेष का अर्थ उसी के समानार्थी 'मानस' की अन्य छन्द-पंक्तियों—दोहों, चौपाइयों, सोरठों, हरिगीतिकादि—के आधार पर निकालते हैं अथवा गोस्वामी जी के अन्य ग्रंथों—विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली आदि में ऐसे पदों का चुनाव कर उनके द्वारा 'मानस' के व्याख्येयों का अर्थ स्पष्ट करते हैं। इसी अर्थ-शैली को इन 'व्यास' टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में व्यवहृत किया है।

३. कौतूहलोत्पादक एवं मनरंजक अर्थ-शैली

'मानस' के व्यास-टीकाकारों का एक मुख्य ध्येय अपने श्रोताओं एवं पाठकों को रिझा कर उन पर अपनी व्याख्या का अचूक प्रभाव डालना होता है। अतएव वे अपनी व्याख्याओं में चमत्कारोत्पादक एवं कुतूहलोत्पादक अनुरंजक तत्वों का संमरण करते हैं। इस हेतु वे 'मानस' के पदों के भिन्न-भिन्न अर्थ निकालते हैं। तरह-तरह की कल्पनाओं के पुट से पंक्ति विशेष का कुतूहलोत्पादक अर्थ-विधान करते हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर लोग चमत्कृत हो जाते हैं, झूमने लगते हैं। 'व्यास' टीकाकार पौराणिक, ऐतिहासिक एवं कितनी ही किम्वदन्तियों का सहारा अपने व्याख्यान में लेते हैं। व्यासों की कथाओं एवं उनके द्वारा लिखित टीकाओं में रंजकता तब तो और बढ़ जाती है, जब वे लोग अपनी

व्याख्या के संदर्भ मे मानस के समान भाव वाले स्थलो की सगति बैठाते हुए 'मानस' के भिन्न भिन्न स्थलो से दोहे चौपाइयो एवं अन्य छन्दो को उद्धृत करते हैं।

४. व्याख्येय अंश के शब्दों एवं अक्षरो के सहारे अनेक अर्थो का विधान

व्यासटीकाकारो की एक विशिष्ट अर्थ पद्धति यह भी है कि वे व्याख्येय पक्तियो का अपने मनोनुकूल अर्थ निकालने के लिए उनके पदो को तोड-मरोडकर अथवा उनके अक्षरों मे हेर फेर कर अथवा उनके विन्यास म परिवर्तन करके विचित्र-विचित्र प्रकार के अनेक अर्थों की उद्भावना करते हैं। इस तथ्य पर हम आगे आधुनिक काल की 'मानस' की टीकाओं पर विचार करते हुए मानस की एक अर्द्धाली पर १६७५१८६ अर्थो से परिपूर्ण टीका तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य के परिचय के अन्तर्गत विशेष रूप से प्रकाश डालेंगे।

५. परम्पराविशेष का प्रभाव

प्राय 'मानस' के व्यास-टीकाकार किसी न किसी परंपरा के गुरु से ही 'मानस' पढे होते हैं। अत उनकी अर्थ पद्धति पर उस परंपरा विशेष का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है।

६. भाषा-शैली पर पण्डिताऊपन की छाप

'मानस' की व्यास शैली परक टीकाओ पर पडितो की 'कथावचाकी' भाषा का प्रभाव पडना भी प्रकृतिगत ही है, क्योंकि ये टीकाकार भी तो व्यास ही होते हैं। अत उनकी टीका की भाषा म 'जो है सो', 'यथा' आदि तकियाकलाम प्रयोगो का बाहुल्य मिलता है। इस टीकाओं की अर्थ शैली सस्कृत की 'कथ भूतं' वाली प्रणाली पर आधारित होती है।

'मानस' के व्यास काल के अन्तर्गत व्यास 'मानस' व्यास टीकाकारो को उक्त प्रकार की व्यास शैली प्रधान अर्थ-पद्धति पर विचार कर लेने के पश्चात् स्वभावत ही यह प्रश्न उठता है कि आखिर 'मानस' के टीका साहित्य के मध्यकाल के अन्तर्गत इस अर्थ-पद्धति के प्राधान्य का कारण क्या है? मध्य काल के अन्तर्गत भी 'मानस' का प्रचार-प्रसार दिनोदिन तीव्र तरगति से होता जा रहा था। यह प्रचार दो दिशाओ से सम्पन्न हो रहा। एक ओर प्रारंभिक काल की 'मानस' टीकाकार परपराओ के, जिनका उल्लेख हम पिछले अध्याय मे कर आये माध्यम से तथा दूसरी ओर अपनी स्वाभाविक गति मे। 'मानस' की प्राचीन टीका परंपराओं के अनुयायी 'मानस' शिष्य बडे उत्साह से अपने परंपरा के 'मानस'—व्याख्यानो को जनता मे सुनाते रहते थे। इनमे से कुछ ने तो मानस की प्रतिलिपियाँ भी कराई थी, जैसा कि अगले पृष्ठो मे आनेवाले प० शेषदत्त जी एवं बन्दन जी पाठक की जीवनियों से विदित होगा। इसके अतिरिक्त मानस का शाश्वत साहित्य एव धर्म-निदेशक ग्रन्थ के रूप म मूल्य एवं महत्व निरन्तर रसज्ञ एव धर्मप्राण जनता द्वारा अधिकाधिक आका जा रहा था। विल्सन, गार्सा दतासी, एफ०

एम० ग्राउज जैसे विद्वान् 'मानस' एवं मानस प्रणेता के मुक्त कंठ प्रशंसक बन गए। एफ० एस० ग्राउज ने तो इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद (वि० सं० १९२७ में) किया।[1] इन विदेशी व्यक्तियों द्वारा 'मानस' की प्रशंसा एवं उसका महत्त्वांकन होते देखकर भारतीयों में उसके प्रति और अधिक श्रद्धा-भावना बढ़ गयी। साथ ही साथ इस काल के साहित्यकार-भारतेन्दु मंडल के साहित्यिक-लोग भी नागरी और हिन्दी के प्रचार में जुट गए थे। फलतः हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य का उनके द्वारा भी खूब मनन-व्याख्यान और प्रचार हुआ। उस काल के साहित्यकार स्वयं पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र रामस्वरूप भट्ट-'मानस' उद्भट टीकाकार हुए। कहने का तात्पर्य यह कि इस मध्यकाल के अन्तर्गत 'मानस' का प्रचार प्रसार एवं उसकी लोकप्रियता अपने चरम की ओर तेजी से अग्रसर हो रही थी। मानस की इस बढ़ती लोकप्रियता ने मानस के कथन व्याख्यान में बड़ी ही तीव्रता ला दी। अतएव 'मानस' के वक्ताओं की बाढ़ आ गयी। परंपराशील रामायणियों के अतिरिक्त परंपरा निरपेक्ष रामायणियों का एक अच्छा खासा समूह तैयार हो गया। सभी रामायणियों अथवा 'मानस' के व्यासों में परस्पर अपनी कथाओं को अत्यधिक रोचक प्रभावशाली बनाने के हेतु होड़ सी लग गयी। यही तो कारण है कि उस काल के 'मानस' व्यासों ने अपनी व्याख्याओं को खूब बढ़ा चढ़ा कर, अनेक अर्थों से व्यंजित कर कल्पना के पुट से कुतूहलोत्पादक अधिक बना दिया। इस काल की जनता भी ऐसी मनोरंजन परक व्याख्याओं को अधिक पसंद करने लगी। जनता धर्मप्राण अवश्य थी, परन्तु भौतिक अंग्रेजी सभ्यता के चमत्कारों एवं बाह्य आडम्बर के प्रभाव धार्मिक प्रवृत्त भी दिनोंदिन अपेक्षाकृत निर्बल होती जा रही थी। वह चमत्कार एवं कुतूहलप्रिय अधिक हो गयी। उस काल के साहित्य में भी कहानी चुटकुलों एवं विनोद व्यंग्य परक निबंधों की कमी नहीं है। ये सारे तथ्य उस काल की जनता की चमत्कारप्रियता परक प्रवृत्ति के द्योतक हैं।

यह युग व्याख्यानों एवं वक्तृता की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इस युग में सनातन धर्मियों एवं आर्य समाजियों के खण्डन मण्डन परक व्याख्यानों की शक्तिशाली परम्परा ने भी 'मानस' की व्याख्यान प्रणाली को व्यास पद्धति में ढलने में योग दिया। इनमें से कितने ही विद्वान् 'मानस' के व्याख्यान में प्रवृत्त हुए। मानस के सुप्रसिद्ध टीकाकार जो सुप्रसिद्ध सनातन धर्मी वक्ता थे इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण के रूप में प्रसिद्ध सनातन धर्मी पं० ज्वाला प्रसाद को लिया जा सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है जनता की प्रवृत्ति 'मानस' की व्यास प्रणाली के व्याख्यान पद्धति की ओर मुड़ गयी थी, जनता मानस के चमत्कार कुतूहलोत्पादक अर्थों की ओर अधिक प्रवृत्त हो गयी थी। यही कारण है कि वह मानस के अन्तर्गत मनोरंजक रोचक कथाओं के व्याख्यान का भी बड़ी रुचि से स्वागत कर रही थी।

---

१ खण्ड २, अध्याय ४, पृ० ४४३—मानस के अंग्रेजी अनुवाद

जनता की 'मानस' के ऐसे व्याख्याता की ओर बढ़ती हुई रुचि ने 'मानस' के रामायणियों को अत्यधिक प्रेरित किया कि वे 'मानस' की मनोरंजक व्याख्या प्रस्तुत करें।

ऐसी व्याख्याओं को जनता में खूब आदर मिला। साथ ही साथ रामायणियों या व्यासों को अर्थ और यश की भी प्रचुर मात्रा में प्राप्ति हुई। रामायणियों ने अपनी व्याख्याओं को अक्षुण्ण एवं स्थायी बनाने के हेतु उन्हें लिखित रूप भी दे दिया। प्रेस व्यवस्था एवं प्रकाशकों ने इन व्याख्याओं की बढ़ती हुई लोकप्रियता देखकर इन और अधिक चटकीली मानसप्रिय-भावकों एवं धार्मिक प्रामाणिक कहानियों—से युक्त कर प्रकाशित किया। क्षेपक का तो इतना प्रचार बढ़ा कि मानस की टीकाओं के अन्तर्गत लवकुश नामक एक आठवां कांड भी जोड़ दिया गया और इस योजना के प्रेरक थे प्रकाशक। जैसा कि 'मानस' की सुबोधिनी टीका के रचयिता श्री ज्वाला प्रसाद के कथन से स्पष्ट स्पष्ट है।[1]

यहाँ अब हम इस काल के टीकाकारों एवं उनकी टीकाओं के विषय में भी थोड़ा विचार कर लेना उचित होगा। मध्यकाल के अन्तर्गत 'मानस' की टीकाओं का लेखन दो वर्ग के टीकाकारों द्वारा हुआ। प्रथम वर्ग में मानस के परम्परासीन टीकाकार आते हैं तथा द्वितीय वर्ग में परम्परा निरपेक्ष टीकाकार। 'मानस' के प्रारंभिक काल की चारों टीका परम्परायें—श्री किशोरीदत्त की परम्परा, श्री बूढ़े राम दास जी की परम्परा, अयोध्या तथा रामनगर राज्य की परम्परा—इस काल में भी चलती रहीं। इनमें से रामनगर राज्य की परम्परा इस काल में ही समाप्त हो जाती है। शेष तीनों परम्परायें किसी न किसी रूप में आगे चलती रहीं। इस काल में हम परम्परा निरपेक्ष टीकाकारों का आधिक्य दृष्टिगत होता है। इनमें महाराज गोपाल शरण सिंह, श्री शुकदेव लाल मैनपुरी, संत श्री गुरु सहाय लाल, श्री बैजनाथ जी, ज्वाला प्रसाद जी मिश्र आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी 'मानस' के उद्भट टीकाकार हैं। इनकी टीकाओं को परम्परागत टीकाकारों की अपेक्षा अधिक ख्याति मिली। परम्परा परक टीकाओं में रामनगर राज्य टीका-परम्परा की रामायण परिचर्यापरिशिष्ट प्रकाश एवं बूढ़े रामदास जी की टीका परम्परा की पं० रामकुमार जी कृत 'मानस' तत्त्व भास्कर सदृश दो चार टीकाएँ ही लोकप्रिय हुईं।

इस काल की परम्पराशील टीकाओं में तथा परम्परा निरपेक्ष दोनों प्रकार की टीकाओं में भक्ति परक व्याख्यान प्राप्त होता है, परन्तु यह व्याख्यान व्यास पद्धति की अनेकार्थ प्रधान एवं चमत्कारपूर्ण व्याख्या प्रणाली से ओत प्रोत है। इस काल की केवल एक टीका श्री शुकदेवलाल मैनपुरी कृत 'मानसहंस'—ही इस तथ्य का अपवाद है। इस टीका में अर्थ का अनर्थ प्रणाली नहीं अपनायी गयी है, अपितु इसमें 'मानस' के व्याख्येय अंशों का सीधा-सरल अर्थ किया गया है। आवश्यकतानुसार स्थलों पर व्याख्येय का अपवाद ही मिलता है कतिपय विशिष्ट स्थलों पर भक्ति भाव परक व्याख्यान किया

१. 'मानस सुबोधिनी टीका की पं० ज्वाला प्रसाद जी द्वारा लिखित भूमिका।

गया है। इसकी भाषा पर भी खड़ी बोली का प्रभाव कुछ अधिक है। इसलिए हमने इस टीका को स्वच्छन्द कोटि की टीकाओं में रखा है।

इस काल की अधिकांश टीकाओं पर चाहे वे परम्परानिरपेक्ष भी क्यों न हो, रामानन्द सम्प्रदाय की मधुराभक्ति का प्रभाव दृष्टिगत होता है। साथ ही इस काल के अन्तर्गत श्री गुरु सहाय लाल की टीका राम की मधुरा भक्ति परक होते हुए भी हठयोग शास्त्र प्रधान व्याख्याओं से युक्त है।

भाषा—इस काल की टीकाओं की भाषा भी व्रज गद्य ही है, परन्तु इन टीकाओं पर निरन्तर खड़ी बोली गद्य का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि 'मानस' की परम्परा परक टीकाओं पर खड़ी बोली का प्रभाव परम्परा निरपेक्ष टीकाओं की अपेक्षा कम ही पड़ा है, क्योंकि परम्पराशील टीकाकार अपनी परम्परा विशेष के भाषा-भाव दोनों दृष्टियों से कट्टर अनुयायी होते ही हैं। अतएव उन पर शीघ्र ही कोई बाह्य प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं होता। टीकाओं की भाषा पर पंडिताऊपन का प्रभाव अधिक है।

शैली—इस काल की सभी टीकाएँ गद्य शैली में लिखित हैं। जैसा पूर्व ही कहा दिया गया है कि इन सभी पर व्यास शैली का पूर्ण रूपेण प्रभाव है। इस काल में लिखित टीकाओं की रचना सस्कृत की 'पद भूत' प्रणाली के अन्तर्गत हुई है।

प्रकरण—१

'मानस' के टीका-साहित्य के मध्यकाल की हिन्दी-टीकाएं

ऐतिहासिक दृष्टि से 'मानस' के मध्यकालीन टीका-साहित्य के अन्तर्गत रामनगर राज्य की टीकाकार परम्परा की टीकाएं सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं। मध्यकाल के अन्तर्गत इस टीकाकार परम्परा का विकास रामायणपरिचर्याकार काष्ठजिह्वास्वामी के शिष्य राजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह जी से प्रारम्भ होता है। यहाँ हम सर्वप्रथम इनका और इनकी टीका का परिचय दे रहे हैं।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट (वार्त्तिक)

वार्त्तिककार—महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह

परम भागवत काशिनरेश श्रीईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी का शासन काल संवत् १८९२ विक्रमी से संवत् १९४० विक्रमी तक माना जाता है।[1] सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं कलाप्रेमी महाराज बरिवंड सिंह के आप पौत्र एवं श्री उदितनारायण सिंह के पुत्र थे। अपने पूर्वजों के सदृश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह भी बड़े ही कलाविद्, सुसाहित्यज्ञ एवं धर्मपरायण नरेश थे। इनके गुरु काष्ठजिह्वास्वामी 'देव' थे, जो तत्कालीन धर्मशास्त्रज्ञों, साहित्यकारों एवं सन्यासियों में अग्रणी माने जाते थे।

महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह कवि भी थे। रामायणपरिचर्या परिशिष्ट में लिखित इनकी कवितायें इस तथ्य के प्रमाण स्वरूप हैं। ललित कलाओं के अतिरिक्त उपयोगी कलाओं में भी इनकी पर्याप्त अभिरुचि थी। वे स्वयं एक निपुण शिल्पी थे।[2] उनके हाथों से निर्मित हाथी दाँत की विविध कला-कृतियाँ आज भी शिल्प कर्म-सम्बन्धी इनकी परिनिष्ठा के ज्वलन्त प्रमाण के रूप में काशिराज संग्रहालय रामनगर में विद्यमान हैं।

काशिनरेश ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी साहित्यकारों का बड़ा ही आदर करते थे। साहित्यकारों पर इनका सहज अनुग्रह रहा करता था। स्वयं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र पर उनका पुत्रवत् स्नेह था। महाराज के राजाश्रय में काष्ठजिह्वास्वामी 'देव' के अतिरिक्त, ईश्वर, हरिजन, सरदार एवं गणेश सदृश सुकवि एवं साहित्यकार रहा करते थे। राजा साहब ने अपने दरबार के इन साहित्यकारों की सहायता से हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की, वह प्रशंसनीय है।

---

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४५० ।

२. नगेन्द्रनाथ वसु कृत बंगला विश्व कोश का हिन्दी रूपान्तर, भाग ३ ।

रामचरितमानस के प्रति महाराज की अगाध निष्ठा थी। वे 'मानस' के परम सेवक थे। सदा उनके दरबार में रामायणियों का संघ लगा रहता था। वन्दन पाठक, शिवलाल पाठक, बाबा रघुनाथ दास सिंधी, छक्कनलाल सदृश तत्कालीन प्रसिद्ध रामायणियों को आपका प्रबल संरक्षण प्राप्त था।[1] दरबार में ही 'मानस' पर मनन-विवेचन चला करता था। आप समय में रामनगर राज्य 'मानस' का एक आदर्श संस्थान बन गया था। काशी के अतिरिक्त भारत के अन्य क्षेत्रों के 'मानस'-मर्मज्ञ-रामायणी एवं टीकाकार काशी में 'मानस' के सत्संग के लाभार्थ आते थे। तत्कालीन सुप्रसिद्ध 'मानस' टीकाकार अपनी टीकाएँ इस दरबार के 'मानस'-विज्ञों के समक्ष समालोचनार्थ एवं शुभ सम्मति की प्राप्ति के लिए भेजते थे। जैसा कि पंजाबी जी की जीवनी में हमने पूर्वत निर्देश कर दिया है कि उन्होंने अपनी टीका समीक्षा के हेतु इस दरबार में भेजी थी।

महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह की ही प्रेरणा से उनके दरबार के कई टीकाकारों ने 'मानस' की उत्कृष्ट टीकाएँ लिखीं, जिनका यथास्थान उल्लेख किया गया है तथा आगे किया जायेगा। आपके ही संरक्षण में सरदार कवि ने 'रामचरितमानस' पर 'मानस रहस्य' नामक अपने ढंग का एकमेव समालोचनात्मक ग्रन्थ प्रणीत किया था। राजा साहब ने तत्कालीन सुलभ दुर्लभ सभी प्रकार की 'मानस' की प्राचीन प्रतियों एवं टीकाओं का संग्रह करवाया था।

इस प्रकार उनके द्वारा की गयी 'मानस' की सेवा स अभूत पूर्व एवं असाधारण है। हिन्दी साहित्य एवं 'मानस' का सेवा सम्बन्धी उनकी कीर्ति कौमुदी अपनी प्रभा स सदैव हिन्दी-साहित्य सेवियों को आनन्दित करते हुये उनके साहित्य-सेवा-पथ को सतत आलोकित करती रहेगी।

रामायणपरिचर्या परिशिष्ट

काशीनरेश श्री ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी कृत रामायणपरिचर्या परिशिष्ट, श्री काष्ठजिह्वास्वामी की रामायणपरिचर्या टीका के भावों का प्रकाशन करने वाली एक वार्तिक-टीका है। इस टीका के अन्तर्गत रामायणपरिचर्या सदृश गूढ़ भावों से युक्त टीकात्मक ग्रन्थ की सुस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। रामायणपरिचर्या के श्लिष्टपरक भावों के विशदीकरण के निमित्त प्रथमतः रामनगर दरबार से ही सम्बद्ध एक मानसविद बाबा रघुनाथदास ने मानसदीपिका नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें रामायण परिचर्या के भावों को भी स्पष्ट करने के मन्तव्य का उल्लेख प्रगट होता है,[2] परन्तु किन्हीं कारणों से मानसदीपिकाकार द्वारा यह कार्य सम्पन्न न हो सका। अतएव कुछ दिनों के पश्चात् श्री हरिहर प्रसाद 'सीतारामीय' जी की प्रेरणा से स्वयं काशिराज श्री ईश्वरी प्रसाद

१ 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख मानसांक, कल्याण।
२ मानस दीपिका, प्र० सं०, पृ० १।

नारायण सिंह ने रामायणपरिचर्या पर रामायणपरिचर्या परिशिष्ट टीका लिख कर उसके गूढ़ भावों को प्रकाशित किया।[१]

रामायणपरिचर्या परिशिष्ट का रचनाकाल सं० १९१२ वि० है।[२] इस टीका का भी प्रकाशन रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश नामक सकलनात्मक टीका के अन्तर्गत खड्गविलास प्रेस से संवत् १९५५ वि० में हुआ था।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट में अपने व्याख्येय ग्रन्थ (रामायणपरिचर्या) की ही भाँति 'मानस' के मात्र विशिष्ट स्थलों की ही टीका की गयी है। परिशिष्टकार ने रामायणपरिचर्या के क्लिष्ट भावों का ही स्पष्टीकरण किया है, उसने रामायणपरिचर्या के सरल स्थलों की टीका नहीं की है। ऐसे स्थलों पर उसने मूल (मानस) पर अपने विचार स्वतन्त्र रूप से प्रकट किये हैं।

रामायणपरिचर्या परिशिष्ट की भाषा मी व्रजभाषा गद्य ही है परन्तु उसमें अवधी के शब्द भी प्रचुरता में प्रयुक्त किये गये हैं। इस ग्रन्थ की भाषा में देशज एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता है। वाक्य विन्यास के अस्तव्यस्त एवं अव्यवस्थित होने के कारण भाषा में दुरूहता आ गयी है। रामायणपरिचर्या परिशिष्ट की टीका-शैली पर व्यासों की व्याख्यान शैली का प्रभाव स्पष्टतः दिखायी देता है। यहाँ हम इस टीका के क्रमशः दो उद्धरण एक उसकी अभुगीकात्मक के दिग्दर्शनार्थ तथा दूसरा मानस पर उसकी स्वच्छन्द टीका-पद्धति के परिचयार्थ प्रस्तुत करेंगे।

१—मूल 'अस विचारि जिय जागहु ताता।
मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥

रामायणपरिचर्या टीका

'मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता। अर्थ कौशल्या के गर्भ में राम लछिमन दूना जने रहे जनम सबै जुदा भए शेष जी कबहूँ भगवान का छाडते नाहीं।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट—

'श्रुत्यथ परमान गर्भो में देव के अनुचर भए यही प्रकार सहोदर कहा एही से सीता के प्रति हनुमान बचन, अशोक बाटिका में, अथ लक्ष्मन तौ दुइ माता के पुत्र हैं मात्र प्रथम सुमित्रा के गर्भ में आए औरो राम सुधा ते इ पद टीका रूप—

'राम लखन दोउ नहीं सहोदर कोकिल मुनि सो तदपि कह्यो।
यह मुनि ससंकाऊ करे जनि याम परम रहस्य रह्यो॥

१ रामायण परिचर्या परिशिष्ट की राजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह द्वारा लिखित भूमिका।

२ 'देव दोहाई में लो विगरेऊ, सत जन लत बनाई, परिचर्या परिशिष्ट पर ये पाती लिखाई॥ जब प्रकाश करै की समै आई, राम नगर प्रान्त मे दश बाम पहूँचे लिखाया। एव संवत ओनइस से बाहर गिपाना।'

> कहत उपनिषद् सश शेव और हरि गर्भों मे निवह्यो।
> एहि प्रमान ते भए सहोदर अब को वादविवाद लह्यो॥
> कह कपि लछिमा दुइ माता के सुनतै मित विश्वास लह्यो॥
> बालमीकि के एहि बचनो ते वही महोदर अर्थ सह्यो॥
> एक उदर में बसे महोदर पाणिनि गुरु अस-अर्थ कह्यो।
> रात्रि युद्ध में राम देव हूँ ऐसो मन में भाव गह्यो॥'[1]

रामायणपरिचर्याकार ने 'मानस' की उपर्युक्त अर्द्धाली के मात्र उत्तरार्द्ध का अर्थ करते हुए राम-लक्ष्मण के 'सहोदरत्व' को सिद्ध किया है। रामायणपरिचर्या परिशिष्टकार ने भी अपनी उपजीव्य टीका (रामायणपरिचर्या) की व्याख्या लिखते हुए उसके ही भावों का विशुद्ध रूप व्याख्यान किया है। उसने यहाँ रामायणपरिचर्याकार श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी के ही एक अन्य ग्रन्थ रामसुधा से एक पद उद्धृत करके राम एवं लक्ष्मण के सहोदरत्व को सिद्ध किया है। इसी प्रकार से अन्य स्थलों पर भी रामायणपरिचर्या परिशिष्टकार ने रामायणपरिचर्या के अर्थों पर रामायणपरिचर्याकार के भावों के अनुसार ही व्याख्या की है।

अब हम रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट से एक दूसरा उदाहरण 'मानस' पर उसकी स्वच्छन्द टीका-पद्धति के परिचयार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। यहाँ हम रामायणपरिचर्या के भावों का अनुवर्तन नहीं मिलेगा। अपितु 'मानस' के एक ही व्याख्येय की दोनों व्याख्याकारों द्वारा की गयी व्याख्याओं मे परस्पर भिन्नता दृष्टिगोचर होगी।

२—मूल . 'फिरि पछितैहसि अन्त अभागी।
मारेसि गाय नहारू लागी॥'

रामायणपरिचर्या—

'जैसे कोऊ बाघ के तृप्ति हेतु व गोवध करै तैसे मरति के हेतु यह अनरथ।'

रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट—

'कोऊ अस अर्थ करत नहारू तांत को कहत है, करकट भारि के कोऊ नहारू पुना को कहत हैं कोऊ बित्ता भर घाम को कहत है कोऊ अनादि के अंकुर का कहत है, भार अल्प स्वारथ साधन हेतु महा अनर्थ करसि कोऊ नहारू बाज को कहत कि बाघ को कहत कि बाघ को लागी अर्थात् धोखा से जैसे गाय मारेरि तस पछिताइ है, कोऊ नहारू पाठ करै कुहेसा का अर्थ करत है।'[2]

यहाँ रामायणपरिचर्यापरिशिष्टकार ने रामायणपरिचर्या के भावों को स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता न समझकर, स्वतंत्र ढंग से स्वामी की प्रणाली की 'अनेकार्थ प्रधान व्याख्या पद्धति' के सहारे 'मानस' की मूल अर्द्धाली की टीका प्रस्तुत की है। टीका की

---

१. रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश, प्र० सं०, पृ० ४६-४७ (लंका कांड)।
२ रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश, प्र० सं०, पृ० २३।

भाषा व्रज भाषा गद्य दृष्टिगत होती है। हाँ, उसमे 'मारेसि' करेसि 'जैसी भूत कालिक अवधी क्रिया पदो का भी प्रयोग किया गया है। उपर्युक्त उद्धरण मे आये 'विता भर चाम' एवं 'कुहेसा' जैसे पद परिशिष्ट की भाषा मे स्थानिक (भोजपुरी) शब्दो के मिश्रण को स्पष्टत द्योतित करते हैं।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश

टीकाकार बाबा हरिहरप्रसाद सीतारामीय—

बाबा हरिहर प्रसाद सीतारामीय महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के समकालीन थे। सीतारामीय जी राजा साहब के फुफेरे भाई थे। आप का जन्म यजुर्वेदीय माध्यदिन शाखा के दीक्षित ब्राह्मणो के वंश मे हुआ था।[1] आपने कुछ दिनो तक गृहस्थ जीवन का निर्वाह किया। कालातर मे आप विरक्त हो गए। बाबा हरिहर प्रसाद जी सीताराम के अनन्य भक्त थे। आप अपने को किसी सम्प्रदाय विशेष मे नहीं मानते थे। सम्प्रदाय नाम से इन्हे इतनी घृणा थी कि वे अपने आपको वैष्णव कहलाना भी पसन्द नहीं करते थे।[1] ये अपने को मात्र सीताराम का शरणागत मानते हुए अपने को 'सीतारामीय' कहते थे। सर्वसाधारण मे ये 'सीतारामीय' के नाम से भी ख्यात थे।

आपकी 'मानस' में अगाध आस्था थी। आपने अपने पूर्ववर्ती 'मानस' के सभी प्रसिद्ध टीकाकारो एवं व्याख्याताओ की मानस सम्बन्धिनी व्याख्याओ का संकलन कर रखा था। आप 'मानस' के प्रसिद्ध व्यासो की कथाओ को बड़ी अभिरुचि से सुना करते थे। विरक्त हो जाने पर जब आप प्रयाग मे रहते थे तब प्रयागस्थ 'मानस' के तत्कालीन सुप्रसिद्ध व्यास एवं टीकाकार श्री रामबक्स पाडेय की कथा बडी ही श्रद्धा से सुना करते थे। ऐसा उनकी टीका के अन्तर्गत 'फूलहिं फलहिं न बेंत जदपि सुधा बरसहिं जलद। मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥' सोरठे की एक व्याख्या से व्यक्त होता है।[2] इस प्रकार सीतारामीय जी को रामचरितमानस का बोध बहुत अच्छी प्रकार से हो गया था। आपकी 'मानस' सम्बन्धी व्याख्यायें बडी ही विलक्षण हैं।

सीतारामीय जी मे एषणात्रय (सुत वित्त और लोक की एषणा) का सर्वथा अभाव था। आपको साधु संन्यासियों के आडम्बर से बड़ी घृणा थी। आपके चार प्रमुख शिष्य—श्री टीकमदास, नवाही के परम हंस रामशरण जी, प्रमोद बन बिहारी शरण जी (ऋणमोचनघाट, अयोध्या) और श्री महंत रामचरणदास (द्वितीय) (प्रमोदबन अयोध्या) थे।[1]

आपने महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह कृत रामायण परिचर्या परिशिष्ट पर रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश नामक टीका लिखी थी।

---

१ रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट की राजाईश्वरीप्रसादनारायण सिंह द्वारा लिखित भूमिका।

२ मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख —मानसांक, कल्याण।

३ रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश, प्र० सं०, पृ० १७ (लंका काड)।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश टीका—

बाबा हरिहर प्रसाद कृत रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश टीका 'मानस' की प्राचीन टीकाओं में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। यह टीका जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, रामायणपरिचर्या एवं रामायण परिचर्यापरिशिष्ट नामक 'मानस' के दो टीकात्मक ग्रन्थों की व्याख्यात्मक टीका है। इसकी रचना की समाप्ति सं० १९२९ में प्रयाग में हुई थी।[1] इसका प्रथम प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से सं० १९५५ में हुआ था। परन्तु बाबा हरिहर दास की रामायणपरिशिष्टप्रकाश टीका का महत्त्व कई टीकाओं की टीका के रूप में ही नहीं समाप्त हो जाता है, अपितु यह 'मानस' की एक सांगोपांग स्वतन्त्र टीका भी है। इसमें 'मानस' के प्रायः सभी व्याख्येयों की टीका की गयी है। 'सीतारामीय' जी ने अपना रामायण परिचर्यापरिशिष्ट टीका के अन्तर्गत हरिहर प्रसाद जी की ही व्याख्यायें विस्तार एवं विशदता की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती दोनों टीकाकारों से अधिक महत्त्व की हैं। इसी से मानस के टीका साहित्य में रामायण परिचर्यापरिशिष्टप्रकाश नामक संकलन प्रधान टीका की प्रसिद्धि बाबा हरिहर प्रसाद के नाम से ही है।

टीकाकार की व्याख्यान पद्धति व्यास शैली परक है। वह विभिन्न टीकाकारों एवं रामायणियों के अर्थों को अपनी टीका में बड़े ही सहज ढंग से उद्धृत करता है।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश की भाषा भी अपनी 'मानस' की टीका-परम्परा के पूर्ववर्ती टीकाकारों के ही समान ब्रज भाषा गद्य ही है। परन्तु उनमें अवधी शब्द भी प्रयुक्त हैं। उनकी भाषा में तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

दो सामान्य प्रवृत्तियों के दिग्दर्शन हेतु उसमें दो उद्धरण प्रस्तुत किये जायेंगे। इनमें से प्रथम उद्धरण रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश के अनुटीकात्मक (टीका की टीका के) स्वरूप का निदर्शक होगा और उसी प्रकार दूसरा उसकी स्वतंत्र टीका-पद्धति का परिचायक।

१—मूल — 'जहँ बिलोकि मृग सावक नयनी।
जनु तहँ बरस कमल सित श्रेनी॥'

रामायणपरिचर्या

'भवरन सहित सित कमल तुल्य प्रतिबिम्ब परत है।'

रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट

'मृग सावक से नैन जेहि किशोरी जी के हैं जहाँ जहाँ देखें हैं तहाँ तहाँ गिर कमल भवरन जुत सो श्रेणी पंक्ति परै है मान अति चपलता सं।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश

'नेत्र में पुतरियों रहत तातें श्याम ते भ्रमर जानि काऊ ऐसो कहत है जहिं और म रात्र किशोरी चितवति है तहाँ तब सवित की दृष्टि परति है सोई माना स्वेत कमलन की वर्षा है। स्वेत कमल कहिबे का भाव कि स्वेत कटाक्ष गुणदायक होत है औ स्याम

---

१. मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानसांक (कल्याण)।

कगार दुखदायक है। मात चाह से देखन सुखदायक अचाह से देखत दुखदायक अतएव जानकी मगल म लिखो है 'जेहि दिसि राजकुमारि सुनाय निहारइ। नील कमल सर श्रेनि मयनु जनु डारइ हैं।' इहाँ सुभाय निहारे है अर्थात् केहू के लग करि के नाही धनुष यन मे श्रिन पठवान अस अर्थ करत मानो कमल के श्रिन कहै आश्रित जिनके बरण अनक बीत जात है नेत्र परत मात्र मे दरस बिना।[1]

यहा पर रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाशकार ने रामायणपरिचर्याकार एव रामायणपरिचर्यापरिशिष्टकार की व्याख्याओं को स्पष्ट करते हुए अपनी विस्तीर्ण व्याख्या दी है। जहाँ परिचर्याकार ने मात्र 'मितकमल के प्रतिबिम्ब पडने का उल्लेख किया तथा परिशिष्टकार ने 'मितकमल युक्त' भ्रमर पक्ति को बताते हुए सीता की आँखो की चचलता व्यापार पर प्रकाश डाला। वही पर प्रकाशकार ने दोनो टीकाकारो के अस्पष्ट एव सूक्ष्म व्याख्या को विस्तार देते हुए सीता के श्वेत कमलवत् आँखो को सत्वगुण युक्त बताकर व्याख्येय अर्द्धाली की व्याख्या को और अधिक विशद एव विस्तृत किया है।

रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश की टीका-शैली का दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—

२—मूल — 'सुनि केवट के बैन प्रेम लपटे अटपटे।
बिहसे करुना एन चितय जानकी लखनतन ॥

रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश

'केवट के प्रेम मिल अटपटे बचन सुनि श्री जानकी जी लखन जू के शरीर को देखि के करुना के गृह श्री राम बिहँसे याव देखो तो ग्रामीन है पर कैसा चतुर है यह चितए ताको यह भाव कि श्री जानकी जी को जनाए कि हमारे और इनके अर्थात् लखन लाल के पग तुम्हारे बाप ने कन्या दै के धोआ या सो तो केवल सेतो मे धोआ चाहत है वा तो निषाद राजे को हुँसियार जानते रहे पर देखो तो याके नौकर चाकर भी हुँसियार है।[2]

उपर्युक्त व्याख्यान मे टीकाकार ने भाषा की अर्थ-पद्धति के अनुसार शब्दो को पकड कर व्याख्येय के भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ किये हैं। साथ ही राम के बिहँसने का रहस्योद्घाटन करते हुए टीकाकार ने जनक द्वारा वर रूप मे राम की पाद पूजा का उल्लेख किया है। इस प्रकार उसने इस अर्द्धाली के एक चमत्कारिक अर्थ का विधान कर दिया है जो कि इस काल की व्याख्यान पद्धति की एक प्रमुख विशेषता है।

टीकाकार के ब्रजभाषा प्रधान गद्य मे अवधी के शब्दो की भी भरमार है। प्रथम उद्धरण में 'मकरन', 'कमलन' आदि सज्ञा शब्दों के अतिरिक्त 'करत' (करते हैं के

---

१ रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश की पुष्पिका, उत्तर काड।

२ रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश, प्र० स०, पृ० ५८ (अयोध्या काड)।

अर्थ में) जैसे क्रिया पद के प्रयोग दूसरी भाषा पर 'अवधी' के प्रभाव को द्योतित करते हैं। साथ ही इसमें 'हुँसियार', 'नौकर-चाकर' सदृश स्थानिक (भोजपुरी की काशिका शैली की भाषा के) शब्दों का भी प्रयोग दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त दूसरे उद्धरण में प्रयुक्त 'देखो', 'धोया था', क्रिया शब्द खड़ी बोली के हैं।

यद्यपि मानसदीपिकाकार श्री रघुनाथदास जी रामनगर राजकी टीकाकार परंपरा के आदि मानस-गुरु श्री वाल्मीकिव्रह्मा स्वामी की प्रत्यक्ष टीका-परंपरा में नहीं आते, तथापि इनका भी सम्बन्ध रामनगर राज के ही 'मानस' संस्थान से है। अतः उन्हें मध्यकालीन मानस टीकाकारों की स्वतंत्र कोटि में न रखकर इसी टीका-परंपरा की टीकाओं के साथ इनका तथा इनकी टीकामानसदीपिका-का परिचय दिया जा रहा है।

मानसदीपिका

टीकाकार—बाबा रघुनाथदास

विश्रामसागरकार बाबा रघुनाथदास जी का स्थान राम-साहित्य के अन्तर्गत लोकप्रियता की दृष्टि से गोस्वामी जी के पश्चात् ही आता है। गोस्वामी जी कृत रामचरितमानस के पश्चात् राम भक्त जनता का सर्वप्रिय ग्रन्थ विश्रामसागर है। ये उच्च कोटि के राम भक्तों में गिने जाते हैं।

रघुनाथदास जी काशीनरेश ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के समकालीन थे। यद्यपि इनके जीवन-वृत्त सम्बन्धी तथ्यों का सुविस्तृत पता नहीं चलता, परन्तु इतना तो सर्वख्यात है कि ये अयोध्या में रामघाट पर रामनिवास नामक स्थान पर रहते थे। इनके गुरु काशी निवासी कोई देवीदास थे। इनकी गुरु परंपरा रसिकाचार्य अग्रदास जी से सम्बद्ध है।[1]

ये एक मर्मज्ञ 'मानस विद्' थे। रघुनाथदास जी की रामभक्ति एवं विद्वता से प्रभावित होकर, महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने इनसे आग्रह करके मानसदीपिका नामक रामचरितमानस की एक टीका लिखवायी। विश्रामसागर एवं मानसदीपिका के अतिरिक्त मानसदीपावली नामक ग्रन्थ भी आपके ही द्वारा लिखित है।[2] आपके ग्रन्थों के अवलोकन के पश्चात् ज्ञात होता है कि आप एक उच्चकोटि के भक्त होते हुए एवं उच्चकोटि के काव्य शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् एवं कुशल साहित्यकार भी थे।

मानसदीपिका

मानसदीपिका को टीका के शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर एक शुद्ध टीकात्मक रचना नहीं कहा जा सकता अपितु यह 'मानस' के भावों के ज्ञापनार्थ उसकी आध्यात्मिक एवं काव्यात्मक विशेषताओं का एक व्याख्यात्मक विवेचक ग्रन्थ है। वस्तुस्थिति तो यह है कि काशी नरेश महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के पिता महाराज उदित-

---

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४८०।

२. नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशित और सम्पादित खोज विवरणिका सं० १७२, पृ० ७६, संवत् २०१० विक्रमी।

नारायण सिंह रामचरितमानस की नानापुराणनिगमागम सम्मत् एवं काव्य शास्त्र के सिद्धान्तानुकूल एक आदर्श टीका की रचना करवाना चाहते थे, परन्तु उनके जीवन काल में यह कार्य सम्पन्न न हो सका। अतएव उनके पुत्र महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह ने अपने पितृव्य श्री प्रसिद्धनारायण सिंह की सम्मति के अनुसार इस टीका की रचना के हेतु अपने दरबार से सम्बद्ध विद्वान् रामायणी बाबा रघुनाथदास को चुना। इसके पूर्व रामायण परिचर्या का भी प्रणयन हो चुका था, परन्तु श्रुति पुराण परक इस सूत्रात्मक टीका का मर्म सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न था। अतएव 'मानसदीपिका' के रूप में रामायण परिचर्या के भावों के प्रकाशन की योजना बनायी गयी। स्वयं मानसदीपिकाकार ने अपनी टीका के प्रारम्भ में इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यहा रामायण परिचर्या नामक जो टीका श्रीकाष्ठ जिह्वास्वामी जी द्वारा लिखी गयी है, उसके आशय को व्याख्या करना हमारा मुख्य लक्ष्य है तथा इस टीका के उपोद्घात में 'मानस' के नाना पुराणनिगमागम सम्मत धर्म काव्य के स्वरूप के अभिज्ञानार्थ पुराण, षट्शास्त्र एवं वेद निगमादि का परिचय तथा मानस के काव्यशास्त्रीय विवेचन के लिए काव्य शास्त्र के समस्त अंगों का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। इसके अतिरिक्त 'मानस' के विशुद्ध मूल पाठ के विनिश्चयार्थ 'मानस' के प्रसंगों की क्रमिक संयोजना करते हुए प्रत्येक काड की छंद संख्या भी दी जायगी।[1]

'मानसदीपिका' टीका के अन्तर्गत टीकाकार ने अपने इसी दूसरे कथन की पूर्ति की है। किसी कारण विशेष वश उसके द्वारा इसमें रामायण परिचर्या की टीका नहीं की जा सकी।

टीका के प्रथम प्रकरण में टीकाकार ने वेद, पुराण, षटशास्त्र एवं आगम शास्त्र का संक्षिप्त परन्तु विशद परिचय दिया है। दूसरे प्रकरण में काव्य शास्त्र सम्बन्धी विवेचन किया गया है। इसमें काव्य की परिभाषा उसके उपकरणों, उसके विविध तत्त्वों भाव, रस, ध्वनि, रीति एवं समस्त प्रसिद्ध अलंकारों का लक्षण बताते हुए उनके उदाहरण 'मानस' से दिए गए हैं। 'मानसदीपिका' की इस विशेषता का सम्यक् विवेचन तीसरे खण्ड में काव्य शास्त्र परक टीकाओं के प्रकरण में किया जायगा।

तीसरे प्रकरण में मानस के सभी मूल प्रकरणों की क्रमिक संगति लगाते हुए उसके मूल को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। ऐसा करते हुए दीपिकाकार ने बताया है कि मानस के प्रसंग विशेष का विस्तार कहाँ से कहाँ तक है। प्रत्येक काड के अन्त में उसमें आये सभी छन्दों की संख्या भी दे दी गयी है। इस प्रकरण में कतिपय विषम स्थलों का अर्थ भी कर दिया गया है। 'मानसदीपिका' की यही विशेषता उसको एक वास्तविक टीका के रूप में प्रस्तुत करती है, अन्यथा वह तो मानस के एक विस्तृत उपोद्घात के रूप में ही मानी जाती है।

---

१ मानसदीपिका, प्र० ग०, पृ० १।

चौथे प्रकरण मे टीकाकार ने 'मानस' से सम्बन्धित शंकाओ का उल्लेख करते हुए उनके समाधान दिये हैं।

पाचवें प्रकरण मे 'मानस' मे आये हुए प्राय सभी क्लिष्ट शब्दो के अर्थ दिये गए हैं। यह एक प्रकार से 'मानस' कोश की ही रचना है।

यहाँ हम मानसदीपिका के विशेष महत्त्वपूर्ण अंग 'प्रसंग प्रकरण' से 'मानस की प्रसग व्यवस्था' एव उसकी टीका-प्रणाली के दिग्दर्शनार्थ एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

टीकाकार ने उत्तर काड के प्रारम्भ मे ही उसके मगलाचरण परक श्लोको का अर्थ देते हुए काड के प्रथम प्रकरण को प्रसग व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार से दी है—

'श्रीगणेशायनम ॥ अर्थ उत्तर काड प्रसंग लिख्यते ॥३॥ श्लोक ४ दो० ॥ केकी कठामनील अरु भरत नयन भुज लो स्तुति करै जोग जानकी के नाथ पुष्पक पर आरूढ़ राम रघुवर को मैं निरन्तर प्रनाम करतु हौं। कैसे हैं केकी कहो मोर ताके कठ सम स्याम रंग हैं अरु सुरन मो श्रेष्ठ अरु भृगुलता को चिन्ह जिहके सोहत है सोभायुक्त पीताम्बर धारन किए कमल नेत्र सदा अति प्रसन्न हाथ मो धनुष बान लिए वानर समूह सयुक्त लछमन भैया कर जो सदा सेवित हैं ॥१॥ कोशलेन्द्रेति कोशल पति के सुन्दर दोनो पद कमल को मे ध्यान करतु हो कैसे हैं वे कोमल हैं अरु ब्रह्मामहेश करि वंदित हैं जानकी जू के कर कमल करि के सेवित हैं पुन साधुन के मन-भ्रमर के आधार हैं ॥२॥ कुद इदु दर इति काम नाशक सकर को मैं प्रणाम करतु हौं कैसे हैं कुद सम कोमल चन्द्र सम अह्लादक शेष सम गौर शरीर हैं पार्वती पति सब मनोरथ अरु अणिमादि सिद्धि के दाता हैं पुन करुणानिधि अरु सुन्दर कमल नयन है ॥३॥ दोहा—एक दिन अवध रहे तें भरत जू आदि को सुन्दर सगुन होत भए ॥४॥ ६७ चौ० ३ छ० १ सो० १२ दो० रहेउ एक दिन अवधि अधार सीता सहित ॥७॥ लौं।'[1]

उपर्युक्त अवतरण मे टीकाकार ने प्रथमत मंगलाचरण सम्बन्धी तीनो श्लोको का सरलार्थ किया है। इसके पश्चात् मंगलाचरण के अनन्तर प्रारम्भ होनेवाली प्रथम अर्द्धाली 'रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयेउ अपारा' से लेकर 'लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकत मातु। परमानन्द मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥ उत्तर काड के सातवें दोहे तक उत्तर काड के प्रथम प्रसंग को मानते हुए मानसदीपिका कार ने इसमे चौपाइयो की संख्या ६७, छदो की संख्या ३, सोरठे की संख्या १ और दोहा की सख्या १२ बताई है।

टीका की भाषा ब्रज है। उस पडिताऊपन की छाप है तथा सस्कृत की 'कथंभूत' वाली टीका-प्रणाली का भी अनुसरण किया गया है।

---

१ मानसदीपिका, प्र० सं०, पृ० ११८।

प्रकरण—२

दास्यानुगाराम भक्ति परक टीकाएँ

बूढ़े रामदास जी की 'मानस'—शिष्य परंपरा की टीकाएँ

मध्यकाल के अन्तर्गत बूढ़े रामदास जी की दास्यभावानुगारामभक्ति परक टीका-परंपरा के पाचवें शिष्य श्री रामगुलाम द्विवेदी की 'मानस' शिष्य परंपरा के टीकाकारों, द्वारा लिखित टीकाएँ अपना उल्लेखनीय ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। रामगुलाम द्विवेदी जी के दो 'मानस' शिष्यों—श्री चौपयी राम एवं छक्कनलाल जी की टीकाएँ तो सम्प्रति उपलब्ध नही हैं, परन्तु इन दोनो महानुभावो के शिष्य-प्रशिष्यो की टीकाएँ मिलते हैं। चौपयी राम जी की शिष्य-परपरा के टीकाकारो की टीकाओ पर व्यास शैली की छाप अधिक है। ये टीकाएँ चमत्कारिक अधिक हैं परन्तु छक्कन लाल जी के शिष्यो की टीकाएँ अपेक्षाकृत गम्भीर एव द्विवेदी जी के वेद-शास्त्रानुकूल भावो की प्रतिपादिका हैं। इस तथ्य पर पूर्व ही हम विचार कर चुके हैं।[1] अत हम क्रमश चौपयीराम जी तथा श्री छक्कनलाल जी की 'मानस'—शिष्य परपरा की टीकाओ का ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत करेंगे।

ऐतिहासिक दृष्टि से छक्कनलाल जी की परंपरा की टीकाओ से पहले चौपयीराम जी के 'मानस' शिष्य वंदन जी पाठक की टीका का रचना काल आता है। हम यहाँ सर्वप्रथम चौपयीराम जी के ही शिष्य-प्रशिष्यो की टीकाओं का परिचय देंगे। इसके पश्चात् द्विवेदी जी के दूसरे 'मानस' शिष्य (लक्कनलालजी) के शिष्यो की टीकाओ का उल्लेख करेंगे।

श्री वंदन जी पाठक

वंदन जी पाठक का जन्म संवत् १८७२ मे मिर्जापुर के अन्तर्गत हुआ था। आपके पिता का नाम श्री लक्ष्मण पाठक था। आप पं० रामगुलाम द्विवेदी के 'मानस' शिष्य श्री चौपयीरामदास जी के शिष्य थे। आपने अपना अधिक समय काशी (श्रीरामकुंड लक्सा) मे ही व्यतीत किया था। आप महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के दरवार के मान्य रामायणियो मे से थे। काशिराज इनका बहुत सम्मान करते थे।

पाठक जी अपने समय के सर्वोत्तम 'मानस' व्यासो मे से थे। आप वाग्विलास में बड़े ही निपुण थे। आपकी कथा बडी ही चमत्कारिक होती थी। इनके चमत्कारिक वाणी-विलास का उद्‌घाटक एक संस्मरण यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

'एक बार रामनगर राज दरबार में आपने कहा कि 'मानस' के भाव मुझको छोड़ दूसरा कौन जान सकता है, प्रमाण गोस्वामीजी का मेरे पास है, उन्होंने यह गुण मेरे ही अधीन कर रखा है, मुझी को यह अधिकार सौंपा है। सब दंग रह गये। नगर

---

१. खण्ड २, पृष्ठ १८०।

म खबर हुई कि वल भरी सभा म इसका प्रमाण पाठक जो देंगे। भीड़ जमा हो गयी, तब आपने यह चौपाई पढ़ दी—

'पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना ॥' और कहा कि देखा प्रमाण— पाठक अधीना।' काशी नरेश सहित पूरा सभा इस व्याख्या से बड़ी प्रसन्न हुई। आपकी चमत्कारिक व्याख्या बड़ी प्रभावोत्पादक होती थी। एसा प्रसिद्ध है कि एक बार स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के यहाँ (चौखम्भा महल्ला म) आपने पुष्पवाटिका प्रकरण की कथा कही, उसम भारतेन्दु जी न २०० अशर्फियाँ भो चढ़ायी थीं। यह लिखने का तात्पर्य केवल आपकी कथा का आदर-सम्मान दिखाना है।

पाठक जी का साहित्य

वदन जी ने रामचरितमानस, हनुमानबाहुक तथा वैराग्यसंदीपनी (टिप्पण) का संशोधन एवं सपादन किया था। आपके द्वारा 'मानस' की तीन हस्तलिखित प्रतियों का पता चलता है। उनमे से एक प्रति सं० १८६५ वि० की लिखी हुई थी, जो कनकभवन *अयोध्या को समर्पित कर दी गयी। दूसरी जो* लीथो की छपी थी, वह रामवल्लभाशरण जी को संशोधन करके दी गयी थी। तीसरी प्रति जो छपी थी आपने अपने शिष्य श्री छोटे लाल जी को दे दी।

अपने मानस पर मानसचित्र', 'मानसकथा विभाग और मानस भाष्य नामक तीन उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे थे। इनके अतिरिक्त मानसशकावली और मानसप्रकरणावली भी *आपने लिखी थी। वैराग्यसंदीपनी पर आपके द्वारा लिखित टिप्पणी खड्गविलासप्रेस स* प्रकाशित है जो अब अप्राप्य है। आपकी अन्य रचनाओं म पंचोपासना पंचाननासह, शम्भु, पंचगव्य और पंचामृत, मानस के तिलकर्तापिच और पचमाई उल्लेखनीय है।[1]

मानसभाष्य

सम्प्रति श्री वदन जी पाठक के द्वारा लिखे मानस की कोई भी टीका उपलब्ध नहीं है। मानस के ऊपर लिखित उनका एक ग्रन्थ मानसशंकावली ही प्राप्य है। 'मानसशंकावली प्रत्यक्ष रूप से टीका ग्रन्थ के अन्तर्गत नहीं आती है। अत हमने इस पाठक जी के द्वारा लिखित मानस के टीकात्मक ग्रन्थो के रूप मे विवेचन के लिए नहीं रखा है। जहाँ तक मानसभाष्य का सम्बन्ध है, यह ग्रन्थ वदन जी की व्याख्या की चमत्कारिक एवं वाग्विलास पूर्ण व्याख्या शैली की एक विस्तृत टीका के रूप म रहा *होगा। वदन जी की टीका म दास्य भाव प्रधान व्याख्यान हुए होंगे,* परन्तु उन भावों को शब्दों की खींचातानी के द्वारा अनेक अर्थों से मंडित कर दिया गया होगा, क्योंकि *वदन जी पाठक अपने गुरु रामगुलाम जी द्विवेदी की तरह मानस का अर्थ मात्र शिव* मानसपुराण सम्मत ही नहीं निकलते थे, अपितु उन्होंने अपनी मानस कथा को अत्यन्त

---

१ 'मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख मानसांक, कल्याण, पृ० ९२२।

चमत्कारिक भी बना दिया था। युग के प्रभाव द्विवेदी जी की ही तीसरी पीढ़ी के शिष्य मे इतना अन्तर आ गया था।

छोटेलाल व्यास

श्री छोटेलाल जी श्री वदन जी पाठक के 'मानस' शिष्य थे। आपका जन्म काशी के अन्तर्गत गौड वंशीय ब्राह्मण श्री गौरीशंकर मिश्र के यहा हुआ था। आप कुशाग्र बुद्धि के छात्र थे। १० वर्ष की अवस्था मे ही संस्कृत की मध्यमा परीक्षा पास कर ली थी। आप पाठक जी की 'मानस' कथा बड़ी ही अभिरुचि से सुनते थे। कालान्तर मे आपने उन्हे गुरु बना लिया था। उन्ही की सेवा मे अपना जीवन अर्पण कर दिया। कालान्तर मे आप पाठक जी की आज्ञा से नीचीबाग (वाराणसी) मे नन्हे बाबू की धर्मशाला मे गुरु गद्दी पर बैठ कर 'मानस' का कथा कहने लगे। आप काशी के अन्तर्गत ही कथा कहते थे, कही बाहर नही। आपको कथा ही रोचक एव अनेकार्थप्रधान होती थी।

छोटेलाल जी व्यास का साहित्य

आपने दोहावली टीका की थी, जो प्रकाशित भी है। आपने 'मानस के सुन्दरकाड पर रामायण भाष्य नामक टीकात्मक ग्रन्थ के रूप मे अपने भावो को अनुमानदास वकील से लिखवाकर छपवाया था, जिसका वर्णन हम अगले अध्याय के अन्तर्गत आगे यथास्थान करेंगे।

छक्कनलाल जी की शिष्य परम्परा की टीकाएं

पं० रामगुलाम जी द्विवेदी के दूसरे 'मानसे'–शिष्य मुंशी छक्कनलाल जी के शिष्य-परम्परा मे उनके 'मानस' शिष्य प० रामकुमार द्विवेदी 'मानस' के उद्भट टीकाकारो मे से माने जाते हैं। 'मानस' सम्बन्धी उनकी मानसतत्वभास्कर टीका दास्यानुगारामभक्ति का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसका स्थान प्रथमत आता है। यहाँ हम प० रामकुमार जी की टीका तथा उनका परिचय दे रहे हैं।

मानसतत्वभास्कर :

टीकाकार पं० रामकुमार जी रामायणी—

पडित रामकुमार जी रामायणी बूढे रामदास जी की टीका परम्परा के टीकाकार थे। आपने पं० रामगुलाम द्विवेदी के 'मानस'–शिष्य श्री छक्कनलाल जी से 'मानस' तत्वार्थ प्राप्त किया था।[1] पंडित जी अपने समय के अद्वितीय रामायणी थे।

पं० रामकुमार जी राजापुर से चार-पांच मील की दूरी पर स्थित 'स्यौली' नामक ग्राम के निवासी थे। कालान्तर मे आप काशी मे रहने लगे थे। आपकी रामचरितमानस

---

१. मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—मानसाक (कल्याण)

में अगाध निष्ठा एवं रुचि थी। कहते हैं कि मुंशी छक्कनलाल जी से 'मानस' का तत्वार्थ प्राप्त करने के निमित्त आप प्रतिदिन उनके पास जाते थे एवं उनसे रात-रात भर 'मानस' के अर्थों को, जिन्हें उन्होंने प० रामगुलाम से सुना था, कहलवाते थे और स्वयं उन्हें नोट करते जाते थे। जब छक्कनलाल जी को नींद आने लगती थी तो आप उन्हें हुक्का भर कर भी देते थे।[1] इससे पता चलता है कि पं० रामकुमार जी कितने चाव से द्विवेदी जी की मानस कथा सुना करते थे। बाद में उन्होंने द्विवेदी जी से सम्पूर्ण मानस व्याख्याओं को आत्मसात कर लिया। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि पंडित जी अपने पूर्ववर्ती सभी प्रसिद्ध टीकाकारों के मुख्य-मुख्य भावों को, उनकी टीकाओं का अध्ययन करने के पश्चात् अपने कथा सम्बन्धी 'खरों' में समाहित कर लिया करते थे। वे साल में केवल एक महीना ही 'मानस' की कथा कहते थे और शेष ग्यारह महीने कथा की तैयारी में लगाते थे।[2] वे 'मानस' के विषय में सदैव चिन्तन करते रहते थे। कभी-कभी तो इसी चिन्तन-मनन में उन्हें नित्य के अपरिहार्य कर्म भी विस्मृत हो जाते थे। इतने मनन-पठन के पश्चात् जब वे अपनी 'मानस' की मर्मोद्घाटिनी कथा कहते थे तो उनकी कथा में समा बंध जाता था। उनकी कथा सुनने के लिए आस-पास के कई जिलों के श्रोता एकत्र होते थे। जितने दिन उनकी कथा चलती, उतने दिन तो कितने ही श्रद्धालु श्रोता दूर-दूर से आकर उनके कथा स्थल के निकट ही टिक जाया करते थे। आपकी 'मानस' कथा बहुत ही तात्विक एवं यथार्थ होती थी, अन्य व्यासों की तरह मात्र चमत्कारपरक ही नहीं।

पंडित जी की व्यास गद्दी पर प्रचुर मात्रा में रुपये चढ़ते थे, परन्तु वे इतने निस्पृही थे कि उक्त सारी धन-राशि को साधु-सन्तों में वितरित कर देते थे एवं भोज-भंडार कर देते थे। वे स्वयं बड़ा ही सादा जीवन व्यतीत करते थे। एक मारकीन की मिर्जई, एक साफा और दो धोतियाँ तथा कुछ रूखा-सूखा भोजन, सीमित वस्तुएँ ही उनके लिए पर्याप्त थीं।

वित्तैषणा के सदृश ही उनमें लोकैषणा भी न थी। उनके कितने श्रद्धालुओं ने उनसे उनके, मानस टिप्पणों को प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु पंडित जी ने साफ-साफ इन्कार कर दिया। अन्तत जब उनके शुभेच्छुओं, स्नेहियों एवं सेवकों ने उन्हें 'मानस' की टीका लिखने को बहुत अधिक प्रेरित किया तो उन्होंने मानस के किष्किंधा-काण्ड पर 'मानस' तत्वभास्कर नामक टीका लिखी, जो उनके मरणोपरान्त ही प्रकाशित हो सकी। श्री अंजनीनन्दनशरण जी ने आपके 'मानस' के सम्पूर्ण टिप्पणों को सम्पादित करके अपने मानसपीयूष में प्रकाशित कर दिया है। आपके 'मानस' शिष्यों में स्वयं आपके पुत्र पंडित रामभरोस जी एवं 'मानस' के सुप्रसिद्ध व्यास पंडित देवीदत्त पाठक थे।[3]

---

१. मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—मानसांक (कल्याण)

२ 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख—मानसांक, कल्याण।

३. मानसतत्वभास्कर टीका की पंडित रामभरोस जी कृत भूमिका।

लगभग सत्तर वर्ष हुए उनकी मृत्यु हो गयी। मानसपीयूषकार कथनानुसार उनके साकेत-वास का समय संवत् १९५० विक्रमी के आस-पास है।[1]

मानसतत्वभास्कर

'मानस' के टीका साहित्य मे पं० रामकुमार जी कृत 'मानसतत्वभास्कर' टीका व्यासशैली की एक प्रमुख रचना मानी जाती है। परन्तु यह टीका व्यासशैली की 'मानस' की अन्य टीकाओ के समान कौतूहलोत्पादक अर्थों से युक्त एक चमत्कारिक टीका ही नही है, अपितु इसमे व्यासशैली की तात्त्विक विशेषताओ के साथ ही साथ गूढ एवं मार्मिक व्यंजनाओ से युक्त 'मानस' की भावपूर्ण व्याख्याएँ भी प्राप्त होती हैं।

यद्यपि 'मानसतत्वभास्कर' का रचनाकाल अज्ञात है, तथापि इतना तो निश्चित ही है कि उसकी रचना सवत् १९५२ विक्रमी के पूर्व पडित जी के जीवनकाल मे ही सम्पन्न हुई होगी। इसका प्रकाशन सवत् १९६४ मे पडित के ही एक श्रद्धालु रईस राय श्री गगा प्रसाद सिंह बहादुर के सुपुत्र लक्ष्मी प्रसाद सिंह की सहायता से रामेश्वर यंत्रालय, दरभगा से हुआ था।[2]

'मानसतत्वभास्कर' टीका मे 'मानस' के व्याख्यातव्यो की टीका बड़ी सुस्पष्ट एव सुविस्तृत ढंग से की गयी है। टीकाकार ने 'मानस' की व्याख्येय पक्तियो का बड़ा ही सूक्ष्म व्याख्यान प्रस्तुत किया है। उसने अपने व्याख्यान की पुष्टि के लिए व्यासो की प्रधानतम विशेषता 'मानस' से ही मानस का अर्थ लगाने की रीति का अनुसरण किया है। उसने मूल के विविध पदो की व्याख्या करते समय उनके समान ही भाव वाले 'मानस' के अन्य स्थलो के चौपाई दोहे आदि उद्धृत किये हैं। टीकाकार की प्रवृत्ति प्रधानत भक्ति-परक ही है, परन्तु साथ ही उसने काव्यात्मक ढग से भी व्याख्याओ पर विचार किया है।

टीका की रचना-पद्धति 'व्यास' शैली परक ही है। इसमे प्रयुक्त व्याख्या शैली बडी विशद एवं सुबोध है। इस टीका की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव अपरिमित है, परन्तु साथ ही इस पर पडिताऊपन का प्रभाव भी कम नहीं है। ब्रजभाषा के प्रयोग मे शब्दो का प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है। भाषा मे व्याकरणिक दोष भी मिलते हैं मानस-तत्वभास्कर का एक ही उद्धरण उपर्युक्त विशेषताओ का प्रतिनिधित्व करने मे सक्षम होगा। इस दृष्टि से 'मानस' की निम्नलिखित अर्द्धाली की टीका दर्शनीय है।

मूल— 'सरिता भर जलनिधि महँ जाई।
सुखी होंय जिमि जिव हरि पाई॥

व्याख्या—'नदी का जल समुद्र मे जाके अचल होता है जो जल तालाब मे नहीं गया सो चल जान के नदी से मिला। तब समुद्र म नदी का मिलाप कहे। सरिता जल कहने का भाव, सरिता का प्रसग छोड के बीच मे भूमि का जल और तालाब का जल

---

१. मानस तत्व भास्कर टीका की पंडित रामभरोसे जी कृत भूमिका।

२. वही।

वर्णन किये। अब पुनि सरिता के जल का हाल कहते हैं। सरिता, कहने का भाव सरिता चल है। सरति, गच्छति, इति सरित, जिसके जल की नाई जीव चल है। जलनिधि कहने का भाव जल का अधिष्ठान समुद्र है ऐसे ही सब जीवों का अचल अधिष्ठान ईश्वर है, हरि कहने का भाव हरि क्लेश हरते हैं हरि को पाय के जीव का क्लेश दूर होता है। नदी का जल समुद्र में जाय कर अचल भया। तात्पर्य बीच में बड़े बड़े नदी नद पाय के अचल भया, क्योंकि वह सब आप ही पड़ि रहे हैं। ऐसे ही अनेक देव की उपासना करने से जीव का भव-प्रवाह नहीं मिटता क्योंकि देवता आप ही भव-प्रवाह में पड़े हैं यथा सब प्रवाह मतन हम परे जल-समुद्र से पृथक भया और नदी द्वारा पुनि समुद्र से मिल के स्थिर भया वैसे ही जीव हरि से पृथक् भया। 'हरि पाई' कहने का भाव जल समुद्र में जाके अचल भया जीव हरि को पाय के अचल भया कहीं जाना न पड़ा। ईश्वर में हृदय में विराजमान है॥ यहाँ ज्ञान है।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण में टीकाकार की मक्ति भाव-व्यंजक टीका पद्धति का साक्षात् विश्लेषण मिलता है। टीकाकार ने अनेक देवों की उपासना का खंडन करते हुए भगवान राम में ही एक निष्ठ होने के भाव को बड़े ही विशद ढंग से 'मानस' की अर्द्धालियों के सहारे ही स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त 'सरिता' सदृश शब्दों की व्युत्पत्ति करते हुए उसके समान जीव को चल बताया है। इस प्रकार उसकी टीका में तान्त्रिकता के साथ-साथ स्वभावतः परम्परागत आ गयी है। उद्धरण में आये हुए 'जो, 'सो' एवं भया' आदि शब्द टीकाकार की भाषा में पंडिताऊपन की ओर स्पष्टतः इंगित करते हैं। इसके अतिरिक्त उसमें आये हुए 'जाय, 'हैं' एवं 'पड़ि' इत्यादि शब्द खड़ी बोली के नहीं, अपितु ब्रज एवं अवधी के हैं। उपर्युक्त उद्धरण में टीकाकार ने 'अनेक' के साथ एक वचन शब्द 'देव' ही उपयुक्त किया है, जब कि होना चाहिये बहुवचन शब्द 'देवों' इस प्रकार मानस-तत्वभास्कर की भाषा में व्याकरणिक दोष भी मिलते हैं।

पंडित रामकुमार जी के अतिरिक्त मुंशी छक्कनलाल जी के 'मानस शिष्यों में अन्य किसी की टीका प्राप्त नहीं होती। पं० रामकुमार जी के मानस शिष्यों में स्वर्गीय श्री देवीपरट जी, पंडित जी की ही भाँति प्रकृष्ट कोटि के रामायणी थे, परन्तु 'मानस' सम्बन्धी उनकी ऐसी किसी भी टीका टिप्पणी का पता नहीं चलता है, जिसका उल्लेख हम आगे कर सकें।

प्रकरण—३

शृंगारानुगामक्तिपरक 'मानस'—टीकाएं

मध्यकाल के अन्तर्गत प्रारम्भिक काल की शृंगारानुगाभक्ति परक टीका परम्पराएं फूलती-फलती रहीं। इस काल की शृंगारानुगाभक्ति परक 'मानस' टीकाओं का

---

1. मानसतत्वभास्कर, प्र० सं०, पृ० १०-११।

प्रणयन प्रारम्भिक काल के दो प्रमुख टीकाकारों श्री रामचरणदास महंत और श्री किशोरीदत्त जी की मानस-टीकाकार परम्परा के चौथे शिष्य श्री शिवलाल जी पाठक के 'मानस'-शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा हुआ। यहाँ हम अयोध्या के टीकाकार रामचरणदास जी परम्परा के टीकाकारों की टीकाओं का जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथमत उल्लेखनीय हैं, परिचय देंगे। इसके अनन्तर शिवलालजी के शिष्य-प्रशिष्यों की टीकाओं का ऐतिहासिक विवेचन दिया जायगा।

अयोध्या (करुणासिन्धु से सम्बद्ध)की टीकाकार-परम्परा

मानसप्रचारिका

टीकाकार—बाबा जानकी दास जी

बाबा जानकी दास जी जाति के कायस्थ थे। ये बेदी के आचार्य राम प्रसाद जी दीनबन्धु के प्रपौत्र शिष्य श्री हरिउद्धवदास बड़ी जगह अयोध्या के शिष्य थे। कहा जाता है कि आप महंत रामचरणदास करुणासिन्धु जी के समकालीन थे। करुणासिन्धु जी की 'मानस'—कथा आप नित्य प्रति जानकी घाट पर सुनते थे। आप उनके अधिकारी 'मानस'-श्रोताओं में से थे। करुणासिन्धु जी आप पर बड़ी कृपा रखते थे। करुणासिन्धु जी के निवास-स्थान पर (जानकीघाट) आप आकर रहने लगे और उन्हीं की व्यास गद्दी पर कथा भी कहने लगे।[1]

मानसप्रचारिका के रचना काल सं० १९३२ के ४८ वर्ष पूर्व करुणासिन्धु की मृत्यु (१८८४ वि०) हो चुकी थी, इस प्रकार दोनों समयों में अधिक अन्तर दृष्टिगत होता है। परन्तु यहाँ एक तथ्य सर्वथा ध्यान देने योग्य है कि मानसप्रचारिका की रचना के ५ या ७ वर्ष बाद बाबा जानकी दास की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार मानसप्रचारिका उनके जीवन के अंतिम दिनों की रचना सिद्ध होती है। बाबा जानकीदास जी दीर्घ आयु प्राप्त महात्मा थे। यदि उनकी आयु ८० या ९० वर्ष ही मानी जाय तो ५५ वर्ष पूर्व वर्तमान रहने वाले करुणासिन्धु जी के 'मानस'—श्रोता के रूप में उन्हें मानने में हमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

बाबा जानकी दास जी 'मानस' की कथा बड़े ही रुचिकर ढंग से कहा करते थे। वे विद्यार्थियों को 'मानस' भी पढ़ाया करते थे। निरन्तर अभ्यास एवं गूढ़ मनन-पाठन से आप 'मानस' के पूर्ण मर्मज्ञ विद्वान् हो गए थे। आपके 'मानस' शिष्य भी 'मानस' के उद्भट व्यास हुए। आपके 'मानस' शिष्यों की सुदृढ़ परम्परा अयोध्या में आज तक वर्तमान है। अपने समय के प्रसिद्ध रामायणी श्री रामबालकदास एवं रामवल्लभा शरण आप ही के 'मानस' शिष्य थे। इन दोनों ने 'मानस' के टिप्पण लिखे थे, परन्तु सम्प्रति वे अनुपलब्ध हैं।

---

१. 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानसांक, कल्याण।

आपने सं० १९३२ मे 'मानस प्रचारिका' के टीका लिख कर समाप्त की। इसके अनन्तर आप मिथिला चले गये। और वहीं चार-छः वर्षों के पश्चात् आपका साकेतावास हो गया।[1]

मानसप्रचारिका टीका

बाबा जानकी दास कृत मानसप्रचारिका टीका 'मानस' की आंशिक टीका है। यह 'मानस' के बाल काड के प्रारम्भिक ४३ दोहो (मानसानुबंध) की ही टीका है। परन्तु इस टीका का संत समाज एवं रामायणियो मे बड़ा आदर है। इस टीका का रचना-काल सवद् १९३२ वि० है।[2] सम्पूर्ण टीका षोडश बैकरो मे, जिन्हें स्वयं टीकाकार ने प्रकरण नाम दिया है,[3] विभाजित है।

मानसप्रचारिकाकार ने 'मानस' की व्याख्या को अपनी मार्मिक व्यजनाओ एव 'व्यास' शैली के द्वारा अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। 'मानस-प्रचारिका टीका' मुख्यत एक भक्ति परक टीका है, परन्तु उसमे 'मानस' के काव्यशास्त्रीय तत्वो का भी विवेचन सम्यक् रीति से किया गया है।

टीकाकार की अर्थ-शैली पर 'व्यास' शैली का प्रभाव है। जिसमे सरलता एवं विशदता विद्यमान है। टीकाकार की भाषा ब्रज गद्य है। उस पर खडी बोली एव अवधी का भी किंचित् प्रभाव परिलक्षित होता है। उसकी भाषा पर पडिताऊपन की छाप प्रत्यक्षत दृष्टिगत होती है। टीका को इन सामान्य विशेषताओ के परिचयार्थ एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

मूल—'सपनेहुँ साचेहुँ मोहिपर जो हरि गौरि पसाउ।
तौ फुर होई जो कहीं सब भाषा भणित प्रभाउ॥'

टीका—'अब जो फल कहि आये हैं तिसको दृढ़ करते हैं कि सपनेहुँ नाम स्वप्न अवस्था मे व साचेहु नाम जाग्रत अवस्था में जो हर गौरि की हमारे ऊपर प्रसाउ नाम प्रसन्नता है तो भाषा भणित कहो कविताई जो मेरी है सो तिसका प्रभाव जो कहेउं है सौ फुर नाम सांच होइगो सपने मे वजाग्रत मे हर गौरि प्रसन्नता का प्रसंग महात्मन से जस सुना है कि श्री गोस्वामी जी प्रथमें अयोध्या जी मे संस्कृत करि के मानस रामायण जो अपने गुरु सो सुना सो कहने लगे तब मन मे यह करुणा भई कि संस्कृत सब जीवन के हितकारी न होइगो जो भाषा होइ तो सब जीव का हितकारी होई तब विचारे कि मानस रामायण के आचार्य श्री महादेव जी हैं तो उनको सलाह लेइ करि करो तब काशी का गए सो श्री महादेव जी परम दयालु गोस्वामी जी को सब जीवन पर करुणा समुझि करि

---

१. मानस के प्रचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानसाक, कल्याण।

२. 'सववत् दस नौ से गनो और बतीसे जान। मानस की पुरिचारिका जन्म लिया मतमान।''—मानसप्रचारिका टीका की पुष्पिका।

३. वही, मानसप्रचारिका की पुष्पिका।

सन्यासी को रूप धरि गोस्वामी जी के पास जाइ कहा कि तुम्हारा किया जो रामायण सो हम देखें तब गोस्वामी जी दीन्ह सो लेइ करि गुप्त करि दीन्ह जब दुइ तीन दिन बीते तब गोस्वामी जी विचारे कि मैं किसके पास जाऊँ तब महादेव जी के पास जाइ करि अनशन व्रत किया तब शिवजी सपने मे कहा कि तुम्हारी पोथी हम ले आये काहे कि तुम इस ग्रन्थ को भाषा करो जाते सब जीवन को सुगम होइ तब श्री गोस्वामी जी जागि करि प्रार्थना कीन कि हे शम्भो। भाषा भणित कौन पूछेगो तब शिवजी प्रत्यक्ष होइ करि कहा कि तुम भाषा करो इसको सब कोई ग्रहण करेगो व सबको सुखदायी व कल्याण कारी होइगो तब श्री गोस्वामी जी प्रसन्न होइ करि फिरि श्री अयोध्या जी को आयि भाषा प्रबन्ध कीन श्री रामनवमी के दिन कुछ कथा करि फेरि कछु काल बाते काशी जी गए यह सपने साचे का प्रसग जस कछु महात्मन से सुनो सो लिखा लयश गोस्वामी के ऊपर तो शिवजी सहजे मे सपने साँचे प्रसन्न है काहे ते कि उनकी कथा का भाषा प्रचार करते हैं ताते हो कहो कि शिवजी के प्रचार की अपेक्षा कैसे जानी तो सुनो ॥ शिव उवाच ॥ (पूछेहु रघुपति कथा प्रसगा। सकल लोक जग पावनि गगा ॥) तो शिव जी कहा कि गगा की नाई सब को पावन है सो गोप्य जानि शिव जी की अपेक्षा भई सो संस्कृत मे तो गगा की नाई पावनि रहवे भई परन्तु अब श्री शिवजी की वाणी साचहुँ साच भई, कब जब भाषा रूप प्रवाह चलो तब इत्यर्थ ॥१६॥

इति श्री रामचरितमानस परिचारिकाया समष्टि वदन नामाष्टकम् कैंकर्यम् ।"[1]

मानसप्रचारिकाकार ने अपने समय की प्रवृत्ति के अनुसार उपर्युक्त दोहे का चमत्कार परक अर्थ किया है। प्रथमत टीकाकार ने गोस्वामी जी के द्वारा 'भाषा' (हिन्दी) मे रामचरित लिखे जाने के कारण से सम्बद्ध एक रुचिकर कथानक प्रस्तुत किया। इसके उपरान्त उसने शकर की प्रसन्नता का रहस्य बताते हुए कहा है कि तुलसी दास जी शकर की बनायी हुई रामचरितमानस को भाषानुबद्ध कर रहे हैं। इसी कारण शकर जी उन पर सहज ही प्रसन्न हैं। यहाँ टीकाकार ने दोहे का सीधा-सादा अर्थ न देकर अन्य व्यास-टीकाकारो की भाँति ही एक मनोरजन व्याख्यान प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त व्याख्या मे आये हुए 'जो', 'सो' एव 'नाम' (अर्थ के अभिप्राय म) आदि प्रयोग टीकाकार की भाषा के पडिताऊपन के परिचायक हैं। टीका की भाषा ब्रज गद्य है। उसमे 'किया', करते हैं आदि पद खडी बोली के प्रयुक्त हुए हैं और 'कीन', (किया के अर्थ म) सदृश क्रियापद अवधी भाषा के हैं। भाषा मे व्याकरणिक दोष भी आ गये हैं। उपर्युक्त उद्धरण के अंतिम वाक्य के 'प्रवाह' (पुल्लिग सज्ञा पद) के साथ 'चली है' क्रियापद (स्त्री लिंग) का प्रयोग हुआ है। वस्तुत यहाँ पर उक्त क्रिया का प्रयोग पुल्लिगवत् होना चाहिए था।

---

१. मानसप्रचारिका, प्र० स०, पृ० ७२ ७३।

रामायणपरचरजा :

टीकाकार—श्री दूधाधारी जी महाराज

रामायणपरचरजाकार श्री मिथिलाधिप नदिनीवल्लभशरण दूधाधारी जी करुणासिन्धु जी के शिष्य श्री जनकराजकिशोरी शरण 'रसिक अली' के पौत्र शिष्य थे।[1] आपके गुरु श्री सेवकशरण जी थे। दूधाधारी जी बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत भद्रावती नामक स्थान के निवासी थे। ये भद्रावती स्थित जानकी जी के मदिर के महंत थे। आपके शिष्य अयोध्या के प्रसिद्ध सत श्री वामन जी थे। आपका समय विक्रम की १९वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध प्रतीत होता है, क्योंकि आपकी टीका का रचना-काल स० १९,८ है।[2]

दूधाधारी जी सत करुणासिन्धु जी द्वारा प्रवर्तित एवं उनके शिष्य श्री रसिक अली द्वारा प्रचारित राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय की स्वसुखी शाखा के अनुयायी थे। आपकी युगल सरकार श्री राम-सीता मे माधुर्य मात्र की निष्ठा थी। आप बडी ही कठोर साधना करने वाले थे। आप केवल दूध के सहारे अपना जीवन निर्वाह करते थे। इसी कारण आप जन-समान्य मे दूधाधारी के नाम से विख्यात थे।

आपकी 'मानस' मे अगाध निष्ठा थी। आप पर करुणासिन्धु जी की राम की मधुरा भक्ति परक टीका का बडा प्रभाव प्रतीत होता है। आपने भी 'मानस' की 'रामायणपरचरजा' नामक टीका लिखी है, जिस पर करुणासिन्धु जी की टीका की गहरी छाप है।

रामायणपरचरजा टीका

श्री मिथिलाधिप नंदिनी शरण जी कृत 'रामायण परचरजा' टीका 'मानस' के सप्त काडो की एक हस्तलिखित टीका है, जो वामन जी के मदिर स्वर्ग द्वार (अयोध्या) में सुरक्षित है। यह टीका मोटे कागज के पत्राकार पन्नो पर हाथ की बनी हुई चटकीनी स्याही से सुन्दर अक्षरो मे लिखित है। इसके सम्पूर्ण पन्नों की संख्या ६४६ है। प्रत्येक पन्ने पर दोनो ओर लेख है। टीका का कुछ भाग मोटे अक्षरा मे लिखित है और कुछ भाग महीन अक्षरो मे। जिन पन्नो पर मोटे अक्षर लिखित हैं, उनके एक तरफ (पृष्ठ) सम्पूर्ण लेख प्राय १२-१३ पंक्तियो मे है और प्रत्येक पक्ति मे ४४-४५ अक्षर हैं, तथा जिन पन्नों पर महीन अक्षरो मे लेख हैं, उनके प्रत्येक पृष्ठ मे प्राय ६३-६४ अक्षर प्रयुक्त किये गए हैं। एवं पंक्तियो की सख्या भी बढ़कर १३ हो गयी है।

प्रत्येक काड की टीका पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध सज्ञक दो विभागों में विभक्त है और प्रत्येक भाग विभिन्न तरंगो या प्रकरणो मे विभक्त है। टीका की रचना की समाप्ति फाल्गुन शुक्ल १५ संवत् १९३८ मे हुई थी।

---

१. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ३४२।
२. मानसपरचरजा (उत्तर कांड की पुष्पिका)।

रामायणपरचरजा टीका अयोध्या के टीकाकार करुणासिन्धु जी की टीका आनन्द-लहरी से बहुत अधिक प्रभावित है। दूसरे शब्दों में यह उसी की छाया लेकर लिखी गई है, कहीं कहीं तो यह अक्षरशः आनन्दलहरी के 'मानस' सम्बन्धी अर्थों से मिलती है। टीकाकार, जैसा कि पूर्वतः निर्देशित कर दिया गया है करुणासिन्धु जी की साम्प्रदायिक शिष्य परम्परा का चौथा शिष्य था, अतएव उसकी टीका दार्शनिक दृष्टि से विशिष्टाद्वैत दर्शन की अनुगामिनी है। परन्तु इस टीका में करुणासिन्धु जी कृत आनन्द लहरी टीका जैसा शास्त्रीय एवं सर्वांगपूर्ण विवेचन नहीं है। यह टीका तो एक प्रकार से करुणासिन्धु जी की टीका की संक्षिप्त अनुकृति है। इसमें कतिपय भक्तिपूर्ण स्थलों की टीकाएँ विस्तार से लिखी गयी हैं, अन्यथा शेष स्थलों की व्याख्यायें अक्षरार्थ के रूप में ही है।

टीका की अर्थ शैली 'व्यास' शैली परक है। इसमें भी तत्कालीन 'व्यास' टीकाकारों की भाँति संस्कृत टीकाकारों की कथभूत वाली प्रणाली का प्रसार है। टीकाकार की भाषा व्रज है। इस तथ्य के प्रकाशनार्थ निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य हैं।

मूल— दोहा—'यथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥'

दोहार्थ—'दृष्टान्त यथा कही जैसे यह लोक विषें कोई सुअंजन कही श्रेष्ठ अंजन नेत्रन विषें लगाय क जन कही साधक जन जिनें शुद्ध होइवें की इच्छा है। तब सिद्धांजन लगाये पर सिद्धी को प्राप्त भई सुजान भये कही दिव्य दृष्टि भई तब जो जो वसु पदार्थ जहाँ जहाँ गुप्त रहे ते ते सुजान जन को सकल कौतुक चरित्र प्रत्यक्ष दिखाय परत हैं। जो रत्न आकर पर्वतेन म है जो अनेक बनन मे कोष हैं मुक्ताविद्रुम इत्यादि जो भूतल विषे भूरि कही बड़े अद्भुत अचिरजमय निधान नान स्थान प्रति सम्पूर्ण चरित्र के महि रमे होत है तैसे ही ये गोस्वामी तुलसीदास जो सिद्धांजन के रूप ते जनावत हैं कि जो विमल विलोचन उन्मीलन भये नित विषें श्री गुरु चरण रज अंजन का साधक जन कही जिज्ञासु जन लगावे तो तत्काल सीद्ध होय कही सकल वस्तु को जानने लगे को जा हृदय के नेत्रन म देई तो परम सुजान परम दिव्य दृष्टि होई तब श्री राम जू के चरित्र अनेक प्रकार के ते यथार्थ अनुभव ते देख परें तहाँ पवत स्थाने श्रुति स्मृति पुरानादिक अनेक ग्रंथ जा बननहो निशाराटवी तिहि विषें जा अन्तरजामी स्वरूप हाई अनेक चरित्र करत हैं नाना-विलास जथार्थ जान परें भूतल कहा जो सन्तन के अन्तस्तल करण मे भक्ति महरानी परा प्रभा करे जो अनुभव भजनानन्दसुख अर्थात् भक्ति चिन्तामणि को जथार्थ स्वरूप इत्यादिक भूरि भाण्डार श्री रामतत्व के सम्यक् प्रकार दिखाय परें।'[1]

यहीं पर हम इसी दोहे की करुणासिन्धु की कृत टीका को भी उद्धृत कर रहे हैं जिससे यह तथ्य प्रकाश म आ जाएगा कि 'मानसपरचरजा' की टीका-पद्धति 'करुणासिन्धु' कृत आनन्द लहरी से बहुत अधिक प्रभावित है —

---

१ रामायणपरचरजा (बालकाण्ड), छन्द पंक्ति स० २१।

आनन्दलहरी टीका

'दृष्टान्त दोहार्थ यथा नाम जैसे सुअजन सृष्ट अजन आजिक ही दै के दृग नाम नेत्र तिपे कोन जन साधक जन सिद्ध होइबे के निमित्त सिद्ध अंजन देते हैं सिद्ध की प्राप्त भये दृष्टि भई जब वे अनेक चरित देखते हैं जो अनेक पवत मे चरित होते हैं जो अनेक वन म चरित होते हैं जो भूमि तल मण्डल म चरित होते हैं सो निधान नाम स्थान स्थान सम्पूर्ण चरित देखते हैं अ र दृष्टात मुनि श्री गुसाईं श्री मद्गुरुचरणारविन्द रज को अजन करिके वणने हैं इस अजन को जो कोई हृदय के नेत्र मे देयतो परम सुजान होइ परम दिव्य दृष्टि होई श्री मद्रामचन्द्र के चरित अनेक प्रकार के वे देखते हैं तहाँ पवत स्थाने श्रुति स्मृत शास्त्र पुराणादिक अनेक ग्रन्थ निगम जो श्री रामचरित अनेक हैं सो देखते हैं बन वही ससार ताम जो अतर्यामी स्वरुप अनेक चरित करते हैं सो देखते हैं भूतन वही सत सभा ताम श्रीमद्रामचद्र व चरित अनत होते हैं सो देखते हैं जानते हैं श्रीमद्गुरुचरणरज अजन दिये सेते।[1]

उपर्युक्त दोना स्थलो की टीका देखते हुए प्रतीत होता है कि रामायणपरचरजा की टीका आनन्दलहरी की ही पद्धति पर हुई है। परन्तु आनन्दलहरी टीका की पद्धति मे परिष्कार है। उन्होने दृष्टान्तलङ्कार युक्त इस दोहे क दृष्टान्त एवं दाष्टान्त दोनो पक्षो को विषद रूप से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। मूल के साहित्यिक पक्ष को ध्यान म रखते हुए उसकी भक्ति परक व्याख्या की है परन्तु रामायणपरचरजाकार की टीका वृत्ति इतनी शास्त्रीय एव परिष्कृत नहीं है। उसन अपनी साम्प्रदायिक परम्परा के टीकाकार (करुणासिन्धु जी) की व्याख्या पद्धति का अपनाते हुए रामायण परचरजा को साम्प्रदायिक भक्ति के तत्त्वा स ही रजित कर दिया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त दोहे का अर्थ करते हुए टीका क अंतिम वाक्य म टीकाकार ने यही ध्वनित किया है कि संतो को भक्ति महारानी के प्रभापरा रूप का गुप्त भानानन्द का गुप्त श्री राम के अनन्त चरित मे दृष्टिगत होता है। परन्तु जब अनेक प्रकार के चरितो को अनेक प्रकार के देखने वाले द्रष्टा हैं तो किस प्रकार प्रभापरा भक्ति जो मधुरा भक्ति का उच्चतम रूप है, दिखायी पड सकती है ? इस प्रकार हमारे मत म टीकाकार ने अपने रसमुखी सम्प्रदाय या मधुरा भक्ति के तत्वा क दिग्दर्शनार्थ ही यहाँ इस प्रकार का व्याख्यान किया है, परन्तु भाव यह निकालने म खींचातानी की गयी है, जब कि आनन्दलहरीकार इस प्रकार के साम्प्रदायिक भावा को अप्रामाणिक रूप से कहा भी अपनी व्याख्या म स्थान नहीं दिया है। टीका की शैली पर पडिताऊपन का प्रभाव परिलक्षित होता है। भाषा तो व्रज गद्य है ही।

श्री किशोरीदत्त जी की 'मानस' शिष्य परम्परा की टीकाएँ

मानसतत्त्वप्रबोधिनी

टीकाकार—प० शेषदत्त जी

पडित शेषदत्त जी किशोरीदत्त जी की टीका परम्परा म पंचम टीकाकार हैं। इनके मानस —गुरु मानसमयङ्ककार श्री शिवलाल जी पाठक थे। आप पाठक जी के

---

१ आनन्द लहरी (बालकाण्ड) पृ० १० ११।

माजे थे।[1] आपका समय विक्रम की १९ वीं शती का उत्तरार्द्ध एवं २० वीं शती का पूर्वार्द्ध है।

आप भी पं० शिवलाल जी पाठक की ही तरह मानस के सुप्रसिद्ध रामायणी थे। उन्हीं की तरह आप भी घूम-घूम कर 'मानस' का प्रचार-प्रसार करते थे। आपने गोस्वामी जी के रामचरितमानस की बहुत-सी प्रतियां लिखवाकर वितरित करायीं। स्वयं आपके द्वारा संशोधित 'मानस' की एक प्रतिलिपि जो किशोरीदत्त जी की 'मानस' प्रतिलिपि की तीसरी प्रति है, सवत् १८९३ मे तैयार की गयी थी। यह सम्प्रति अप्राप्य है। आपने अन्य लेखकों से भी 'मानस' की जो प्रतियाँ लिखवायी, उनमे जीवालाल जी द्वारा सं० १९०१ मे लिखी गयी एक प्रतिलिपि बड़ैया ग्राम के निकटस्थ पुनारक ग्राम मे स्नेहलता जी को देखने को मिली थी।[2] स्नेहलता जी के अनुसार उपर्युक्त लेखक से ही शेषदत्त जी द्वारा लिखवायी गयी 'मानस' की एक चौथी प्रतिलिपि बड़ैया में वर्तमान है।

पं० शेषदत्त जी बड़ैया में बहुत दिनों तक निवास किया। उन्होंने पटना को भी कुछ दिनों अपना निवास क्षेत्र बनाया। वस्तुत पं० शिवलाल जी पाठक के पश्चात् श्री किशोरीदत्त जी की टीका परम्परा के बिहार प्रदेशान्तर्गत प्रसार के एकमात्र कारण पं० शेषदत्त जी ही थे। इनकी कथायें बिहार प्रदेश मे बडी ही धूम-धाम से होती थीं। बिहार के बड़ैया एवं पटना क्षेत्र तो आपके खास कथा स्थल थे। इसके अतिरिक्त तत्कालीन विरक्त सन्त पैकोली के पयहारी जी की जमात मे भी आप प्राय कथा कहा करते थे।

आपके दो शिष्यों मे स्वयं एक आपके पुत्र श्री जानकी प्रसाद जी थे, जिनसे पटना की 'मानस' टीका परम्परा चली और दूसरे शिष्य बड़ैया निवासी श्री महादेवदत्त जी थे, जो बड़ैया की 'मानस' शिष्य परम्परा के अग्रनायक थे।

आपने 'मानस' के किष्किंधाकाड पर एक वार्तिक तिलक किया था, जो मानस-तत्वप्रबोधिनी नाम से ख्यात है। इसके अतिरिक्त इन्होंने मानस कल्लोलिनी की भी टिप्पणी लिखी थी।[3]

किष्किंधाकाड (मानस) पर पं० शेषदत्त कृत वार्तिक तिलक अथवा 'मानस-तत्वप्रबोधिनी'

शोध विषयक अपनी बड़ैया की यात्रा मे हम मानसमयंककार पं० शिवलाल जी के 'मानस' शिष्य श्री शेषदत्त जी के द्वारा रचित 'मानस' के किष्किंधाकाड की वार्तिक टीका की एक प्रतिलिपि मिली, जिसका प्रतिलिपिकाल संवत् १९५३ है। यह टीका

---

१ शेषदत्त जी कृत मानस के किष्किंधाकाड का वार्तिक तिलक
—मानसतत्वप्रबोधिनी-बड़ैया की हस्तलिखित प्रतिलिपि, पत्र सं० १।

२ स्नेहलता जी कृत मानसमार्तण्ड टीका की भूमिका।

३. बालक रामविनायक द्वारा लिखित 'खाकी बाबा की जीवनी', मानसांक (कल्याण)।

'मानस का एक वाणवर्ती तिलक है। वाणवर्ती तिलक का अर्थ है—५ अर्थों से युक्त टीका। इस टीका का विशेष विवरण आगे किया जायगा।

शेषदत्त जी उक्त टीका की प्रतिलिपि के मिलने के पूर्व ही हमें कतिपय रामायणियों एवं मानस के टीकाकारों से यह पता चला था कि मानसतत्त्वप्रबोधिनी नाम से जिस टीका का प्रकाशन चण्डीप्रसाद जी ने अपनी सुविस्तृत टिप्पणी के साथ किया है, वह पं० शेषदत्त जी की ही है। प० शेषदत्त जी कृत किष्किंधा काण्ड की बड़ैयावाली टीका को देखकर हमसे शेषदत्त जी के नाम की उपर्युक्त दोनों टीकाओं की एकता परक तथ्य के प्रामाणिक पुष्टिकरण के लिए जिज्ञासा बढ़ी। फलतः हमने शेषदत्त जी कृत बड़ैया वाली टीका की प्रतिलिपि इसके सरदार बाबू श्री नीलकण्ठ जी (बड़ैया निवासी) से प्राप्त कर, आदि से अन्त तक इस टीका को अक्षरशः मिलान बाबू चण्डीप्रसाद सिंह जी द्वारा प्रकाशित 'मानसतत्त्वप्रबोधिनी' (सटिप्पण) से की। हमें इन दोनों टीकाओं में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं हुआ। इस तथ्य की पुष्टि के लिए इन दोनों टीकाओं कोई स्थल देखा जा सकता है। दोनों टीकाएँ प्रायः एक-सी हो हैं। एक तथ्य यहाँ उल्लेखनीय है कि बड़ैया-वाली प्रतिलिपि में हम शेषदत्त जी की टीका का सांगोपांग रूप मिला। उसमें पंडित जी की टीका की एक लघु भूमिका की एक लघु भूमिका भी उन्हीं के द्वारा लिखी हुई मिली। यह भूमिका टीका के प्रारम्भ में ही है। परन्तु चण्डीप्रसाद जी 'सकलनात्मक टीका' 'मानसतत्वप्रबोधिनी' (सटिप्पण) में शेषदत्त जी कृत 'मानस' की मात्र मूल टीका ही मिली। शेषदत्त जी के कुछ शब्दों को ही टिप्पणकार ने या तो नहीं रखा है, या उसके स्थान पर उसमें दूसरे शब्द रख दिये हैं। कहीं-कहीं पर उसने पंडित जी की टीका के मूल रूप में भी कुछ हेर-फेर कर दिया है। परन्तु ये सब परिवर्तन नाम मात्र के ही हैं। इस प्रकार शेषदत्त जी कृत टीका की बड़ैया वाली हस्तलिखित प्रतिलिपि और 'मानस-तत्त्वप्रबोधिनी' (सटिप्पण) में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं आया है। हम दोनों टीकात्मक ग्रंथों की अद्भुत एकता देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि शेषदत्त जी कृत 'मानस' किष्किंधाकाण्ड का वाणवर्ती तिलक और मानसतत्त्वप्रबोधिनी दोनों एक ही हैं। मानसतत्त्वप्रबोधिनी टीका और मानसतत्त्वप्रबोधिनी (सटिप्पण) में जो किंचित् अन्तर प्रतीत होता है, वह इसी कारण से कि टिप्पणकार एक संग्रहात्मक टीका लिख रहा था, अतएव उसने विस्तार से बचने के लिए कहीं-कहीं मानसतत्त्वप्रबोधिनी के मूल रूप में काट-छाँट कर दी है।

इन दोनों टीकात्मक ग्रन्थों के विषय में एक तथ्य यह भी विचारणीय है कि शेष-दत्त जी की टीका की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, उसमें कहीं भी शेषदत्त जी के द्वारा या लेखक के द्वारा टीका का नाम मानसतत्त्वप्रबोधिनी नहीं रखा गया है। हो सकता है कि इस टीका के टिप्पण कार बाबू चण्डीप्रसाद सिंह ने इसे मानसतत्त्वप्रबोधिनी नाम दे दिया हो अथवा उन्हें इस टीका का यह नाम किसी अन्य सूत्र से प्राप्त हुआ हो। जो भी हो, हमने इन दोनों टीकाओं की अद्भुत एकरूपता देखते हुए इन दोनों को

अभिन्न माना है। अतएव शेषदत्त जी की टीका का नाम किसी उचित नाम के अभाव मे (यदि मानसतत्वप्रबोधिनी ही मान लिया जाय तो कोई अनौचित्य नही होगा। यहाँ हम शेषदत्त जी की (हस्तलिखित) टीका का परिचय इसी मानसतत्वप्रबोधिनी) नाम से दे रहे हैं।

मानसतत्वप्रबोधिनी (हस्तलिखित) का परिचय

पं० शेषदत्त जी की मानसतत्वप्रबोधिनी (किष्किधाकाड) की रचना का काल अज्ञात है, परन्तु चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा इस टीका की संवत् १९४१ मे ही टिप्पणी लिखी जा चुकी थी और उसका प्रकाशन भी सवत् १९४३ वि० म मानसतत्वप्रबोधिनी (सटिप्पण) नाम से हो गया था। इससे पता चलता है कि मानसतत्वप्रबोधिनी की रचना स० १९४१ वि० के पूर्व हो हो चुकी। यह 'मानस' के किष्किधा काण्ड की ही टीका है। पं० शेषदत्त जी कृत मानसतत्वप्रबोधिनी की एक हस्तलिखित प्रति बड़ैयानिवासी श्री गयाप्रसाद के द्वारा तैयार करवायी गयी थी। यह प्रति किन कारणो से शेषदत्त जी कृत मानसतत्व-प्रबोधिनी का पूर्ण एवं अक्षुण्ण रूप सिद्ध होती है, इसका जिक्र हमने पूर्वत कर दिया है। पं० शेषदत्त जी की टीकात्मक पद्धति की विशेषताओं के परिचयार्थ यहाँ उनकी टीका की बड़ैयावाली प्रतिलिपि को ही आधार बनाया है।

मानसतत्वप्रबोधिनी की यह प्रतिलिपि हाथ के बने पुराने सफेद कागज पर लिखित है। प्रति मे कुल ६२ पन्ने हैं। प्रत्येक पन्ने की लम्बाई १६॥ इंच एवं चौड़ाई ८॥ इंच है।

इस टीका के प्रणयन के विषय मे स्वयं शेषदत्त जी ने लिखा है कि जब श्री शिवलाल जी पाठक का साकेतवास का समय आया, तो उन्होने इनके सर पर हाथ रख कर 'मानस' पर 'वाणवर्ती तिलक' लिखने को आज्ञा दी थी।[1] अतएव अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार शेषदत्त जी ने 'मानस' के किष्किधाकाड पर एक वाणवर्ती तिलक लिखा, जिसका नाम मानसतत्वप्रबोधिनी है।

मानसतत्वप्रबोधिनी दो भागो मे विभक्त है। इसका पूर्वार्द्ध किष्किधाकाड के दोहे 'कबहुँ प्रबल बह मारुत जह तह मेघ बिलाहिं, जिमि कपूत के उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं' की टीका पर समाप्त होता है। यह टीका 'मानस' के किष्किधाकाड की अनेकार्थ प्रधान शृंगारीनुगाभक्ति भाव की एक टीका है। शेषदत्त जी ने वाणवर्ती तिलक का अभिप्राय अनेकार्थ प्रधान टीका के रूप मे ही लिया है। उनकी इस टीका मे 'मानस' के प्रत्येक व्याख्येय छन्द का व्याख्यान पाँच प्रकार के अर्थों मे नही दिया गया है, अपितु वे अर्थ पाँच से कम या अधिक भी हो गए हैं। मानसतत्वप्रबोधिनी के दार्शनिक भक्तिपरक रूप का विवेचन हम तीसरे खण्ड के अन्तर्गत यथास्थान करेंगे। यह एक व्यासशैली प्रधान टीका है।

---

१. मानसतत्वप्रबोधिनी (हस्तलिखित) पन्ना संख्या १।

टीकाकार ने साहित्यिक दृष्टि से मूल (मानस) का अधिक विवेचन नही प्रस्तुत किया है, परन्तु उसने व्याख्यातव्य के अलकारो पर किंचित विचार अवश्य किया है। टीकाकार की भाषा व्रज गद्य है। उसमे पंडिताऊपन भी मिलता है। कहीं-कहीं पर शब्दों का रूप खडी बोली के शब्दो के अनुरूप भी हो गया है। भाषा पर अवधी बोली का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। टीका मे कहीं-कहीं पर अरबी फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

मानसतत्वप्रबोधिनी की उपर्युक्त विशेषताओ को उसके निम्नलिखित उद्धरण मे देखा जा सकता है .

मूल—'एहि विधि सकल कथा समुभाई। लिए दोउ जन पीठि चढ़ाई ॥'

टीका—'एहि विधि नाम इस प्रकार के सकल कथा कहिए कैसे सुग्रीव समस्त कपिन्ह के पति सो सब कथा सुनाए ॥ अभीप्राय एह की जब हनुमान ने सुग्रीव के तरफ से प्रतिज्ञा करि तब रघुबर जू ने बूझे की सुग्रीव कैसे कपिन्ह पति भए तब हनुमान ने समुझाइ कै कहे ॥२॥ अथवा हनुमान ते रघुनन्दन जू ने कहे की तुम्हारी प्रतिज्ञा सुनि कै हम चले अरु वह नाही मिताइ करै तो का करैंगे तब हनुमान जू ने सकल कथा कह की दाशरथी जू सुग्रीव ने हमरा इसी वास्ते भेजे हैं जो बालि के भेजे न होंही तो जाइ कै लइ आवा ए मीताइ करवे योग्य हैं देपि परत है। जब राघव जू ने चलिबो मनजूर करी तब पीठि जो है कोघइं के चले ॥ अभिप्राय यह की वानर चारिउ चरण ते चलते हैं पाछे लछिमन की अरु आगे रघुनन्दन को चढ़ाइ कै ले गए ॥२॥ (श्लोक) पृष्ठमारोप्य तौवीरा जगाम कपि कुंजरम् ॥ इत्यर्थ ॥'[1]

यहाँ टीकाकार ने उपर्युक्त अर्द्धाली का सुस्पष्ट अर्थ किया है। उसने हनुमान के द्वारा श्री रामचन्द्र को सुग्रीव के प्रवास की घटना सुनाने के हेतु पर दो प्रकार से विचार प्रस्तुत किये हैं। व्यास-टीकाकारो की कथा की शैली की यह विशेषता है कि वे व्याख्या का अभिप्राय कई प्रकार से निकालते हैं। टीकाकार ने 'लिए दोउ जन पीठ चढ़ाई' मानसकार के इस कथन को बालमीकि रामायण के एक समानार्थी श्लोकांश—'आरोप्यतौवीरो जगाम कपि कुंजरम' (बाल्मीकि रामायण किष्किधा कांड, ४, श्लोक ३४) से प्रमाणित भी किया है। टीकाकार की भाषा स्पष्टत अवधी से पुष्ट ब्रज गद्य दृष्टिगत होती है। इस पर मानस की भाषा का बहुत अधिक प्रभाव है। इसके बहुत से शब्द 'मानस' के ही पदो के ही अनुरूप हैं। उदाहरणार्थ—'कपिन्हपति', 'सकल कथा', 'समुभाई' इत्यादि शब्द इस दृष्टि से दर्शनीय हैं। टीका की भाषा म प्रयुक्त 'करो' एवं 'आवो' सदृश शब्द हिन्दी खडी बोली के हैं। इसके अतिरिक्त 'मनजूर' (मन्जूर) जैसा अरबी भाषा का शब्द भी टीका म प्रयुक्त किया गया है।

---

१ मानसतत्वप्रबोधिनी पूर्वार्द्ध (हस्तलिखित) पन्ना सं० १८।

मानसतत्वप्रबोधिनी (सटिप्पण) : टिप्पणकार-श्री चण्डीप्रसाद सिंह

टीकाकार के जीवन-परिचय के विषय मे हमे बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ ज्ञात न हो सका। अनुमानतः ऐसा प्रतीत होता है कि ये भी शिवलाल जी के शिष्य श्री शेषदत्त जी की 'मानप'—शिष्य परम्परा संबद्ध एक 'मानस' प्रेमी सज्जन थे। ये एक सुशिक्षित टीकाकार प्रतीत होते हैं। इनकी टीका को देखने से प्रतीत होता है कि इन्होंने 'मानस' के अतिरिक्त पुराण, स्मृति आदि संस्कृत ग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन किया था। इन्होंने सवत् १९४१ वि० मे मानसतत्व प्रबोधिनी की एक वृहत् टिप्पणी लिखी थी। इस प्रकार इनका समय विक्रम की १९ वी शती का पूर्वार्द्ध ही माना जाना चाहिए।

मानसतत्वप्रबोधिन (सटिप्पण)

श्री चण्डीप्रसाद सिंह कृत मानसतत्वप्रबोधिनी (सटिप्पण) रामचरित मानस की मानसतत्वप्रबोधिनी टीका की सुविस्तृस टिप्पणी से युक्त एक टीकात्मक रचना है। ग्रन्थकार ने अपनी टिप्पणी मे मानसतत्वप्रबोधिनी के भावो का व्याख्यान तो किया ही है, साथ ही उसकी टिप्पणी के अंतर्गत रामायणपरिचर्या, रामायण-परिचर्यापरिशिष्ट, प्रकाश, आनन्दलहरी एव रामवक्स पाण्डेय की टीका के भावो को भी उल्लिखित किया है। इस प्रकार यह एक संग्रह प्रधान टीकात्मक ग्रन्थ हो गया है।

टिप्पणकार ने केवल मानसतत्वप्रबोधिनी के ही भावो की व्याख्या नही की है, अपितु उसने मूल (मानस) पर भी अपने भाव दिये हैं। उसने अपने विवेचनो को पुष्ट करने के लिए संस्कृत के विविध धर्म ग्रन्थो से भी सहायता ली है। इन उद्धरणो से ग्रंथ का कलेवर बहुत बढ गया।' इसमे कहीं कहीं पर मूल के समानार्थी श्लोक भी संस्कृत ग्रन्थो से उद्धत किये गए हैं। इस टीकात्मक ग्रन्थ पर रामचरितमानस की भाषा का प्रभाव अधिक पडा है।

वैसे इसकी भाषा भी मध्य-काल के अन्य टीकात्मक ग्रन्थो की भांति व्रज-गद्य ही है, परन्तु अवधी के शब्द पर्याप्त मात्रा मे प्रयुक्त हुए हैं। भाषा पर कहीं-कहीं खडी बोली गद्य का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। इन विशेषताओं के परिचयार्थ निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है—

मूल—'दादुर धुनि चहुँ दिशा सुहाई। वेद पढहिं जनु बटु समुदाई ॥'

समानार्थी श्लोक-'श्रुत्वा पर्जन्य निनादं मण्डुका. व्यसृजन्गिर.।
तूष्णीं शयाना प्राग्यद् ब्राह्मणानियमात्यये ॥'

टीका—'चारिहुँ दिसन्ह मो अति सुहावन दादुरन्ह की धुनि कैसे होती है जनु माम मानहुँ ब्रह्मचारिन्ह के समुदाय वेद पढते हैं अभिप्राय यह कि बडे मेघ को बोलि सुनि के सब दादुर सुहावनी बोली कैसे बोलि उठते हैं जैसे पाठशाले पढानेवाले आचार्य की बोली सुनी कै विद्यार्थी वेद ध्वनि करते हैं इहाँ बडे मेघ अरु आचार्य को रूपक है अरु तट दादुर को रूपक है जल अरु पाठशाले को रूपक है यह ज्ञान है।'

टिप्पण—'दादुरो की धुनि चारो ओर है। लक्ष्मण कैसी सुन्दर सुहाई हो रही है मानो वेदाध्ययन शाला मे बटु समुदाय वेदो ही का पाठकर रहे हैं। इसका अर्थ यो रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश मे लिखा है । रा० प० । मेघ सदा साम धुनि गरजत हैं साम धुनि पर दूसर धुनि वर्जित है एही ते प्रात संध्या गर्जन से अनाध्याय माना है मंडूक शाखा सामवेद में है। रा० प० प० मावस्वाध्याय नित्य अनाध्यायमें मे न किए प्रत्यवाई न होई सो दुइरीति नैमित्तिक मे मेघ गर्जत चण्ड मारुत शिष्ट आगमन आदि दादुर शब्द अनुकरन से नाम दरदुर ऐसा शब्द बोलत परन्तु विचारे टरदुर ऐसा शब्द निश्चित होते जैसे परजन्य सूक्त मे मेघ स्तुति के साथै वाशिष्ठ जी मंडूकन की स्तुति करत वैसहि रघुनाथो जी वरखा में वेद सारै ग्रानो मे कहत। रामायणपरिचर्यापरिशिष्ट प्रकाश कार जिह्वा दंत जोग से मो मडूक वे जोमै नाही को जीह सो दादुर जोह वेद बटु नीति भक्ति विवेक वेदोक्त लोक साधक पढ़हिं।'

मानससतत्वप्रबोधिनी सटिप्पण के रचयिता ने मूल के पश्चात् प्रथमत. एक सम-श्लोकीय उद्धरण दिया है। इसके अनन्तर उससे मानससतत्वप्रबोधिनी टीका को उद्धृत करते हुए उस पर अपनी टिप्पणी भी दी है, जिसम उन समस्त श्लेष का अभ्यर्थ दिया है। तदोपरान्त इसी टिप्पणी के अन्तर्गत रामायणपरिचर्या, रामायणपरिचर्यापरि-शिष्ट एवं रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश के भावों को भी दे दिया है। चण्डीप्रसाद जी की टिप्पणी की भाषा मे ब्रज के अतिरिक्त अवधी के शब्दो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। सज्ञा शब्दो के अतिरिक्त कुछ क्रियापद—'कहत', 'पढ़हिं' सदृश अवधी क्रियापद-इस दृष्टि से देखने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त खडी बोली का क्रियापद 'कर रहे' भी उपर्युक्त उद्धरण मे प्रयुक्त हुआ है। यह टीका की भाषा पर खडी बोली के प्रभाव को व्यक्त करता है।

श्री महादेव दत्त कृत 'मानस' की टीका

टीकाकार महादेव दत्त जी

महादेव दत्त जी किशोरी दत्त जी की शिष्य-परपरा के छठे शिष्य हैं। इनके 'मानस' गुरु श्री शिवलाल जी पाठक के 'मानस' शिष्य पं० शेषदत्त जी थे। महादेवदत्त जी का जन्म पटना जिला के अन्तर्गत पाली-मरतपुर नामक ग्राम मे हुआ था। ये जाति के भूमिहार थे। बड़ैया के बाबी अच्युतानन्द जी के कथनानुसार ये १५-१६ वर्ष की अवस्था मे बड़ैया (मगर) मे अपने बहिन के घर आये और वहीं रहने लगे। बड़ैया के तत्कालीन प्रसिद्ध रईस राय बहादुर सुरानाथ जी आप के भांजे थे। टेकारी के महाराज मित्रजीत सिंह आपके मौसा लगते थे। कहते हैं कि बड़ैयान्तर्गत उन दिनो सुप्रसिद्ध 'मानस' मर्मज्ञ एवं रामायणी पं० शेषदत्तजी की कथा बाबू महेशसिंह के यहाँ प्राय प्रति वर्ष कई महीने हुआ करती थी। इस कथा मे श्री महादेवदत्त जी नित्य-प्रति आते और बड़ी ही लगन से शेषदत्त जी की कथा के व्याख्यानो को नोट करते जाते थे। इनके 'मानस' सम्बन्धी दृढ़ अनुराग को देखकर पण्डित शेषदत्त जी ने इन्हें अपने सान्निध्य में रखकर

सम्पूर्ण 'मानस' पढाया।[1] महादेवदत्त जी ने तदोपरान्त 'मानस' का खूब मनन-अध्ययन किया और थोडे ही दिन के पश्चात् वे 'मानस' की कथा स्वयं कहने लगे। उनकी 'मानस' की कथा बडी ही प्रभावोत्पादक होती थी।

वे 'मानस' के अतिरिक्त तुलसीदास के अन्य ग्रन्थो के अध्ययन मे भी निरन्तर लीन रहते थे। कहते हैं कि लगभग १८ वर्षों तक उन्होने सम्पूर्ण तुलसीसाहित्य का आलोडन किया। धीरे-धीरे वे तुलसी साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ हो गये और 'मानस' के प्रगाढ पडित भी। उनकी कथा मे और भी अधिक सुष्ठता आ गयी। अब उनकी ख्याति गृहस्थो एवं सतो म भी फैल गयी। वे संतों के बीच-बीच उनके आग्रह से मानस का कथन-व्याख्यान करने लगे। व स्वय भी संतो से अधिक प्रभावित हो गये। कालान्तर मे तो वे पैकोली स्थित पपहारी जी के निवास-स्थान पर चले आये और वही रहने भी लगे। पुन लगभग ४०-४५ वर्ष की उम्र मे इनके भाजे रायबहादुर साहब ने बहुत अनुनय-विनय किया तो वे बडैया लौट आये। बडैया जाने से पूर्व उन्होंने भी 'मानस' के दो काडो-बाल एव अयोध्या-की सुविस्तृत टीका लिखी थी। उनमे से अयोध्या काड की टीका तो पैकौली मे ही छूट गयी थी, जिसका पता आज तक नहीं चल सका है। वे बालकाड की टीका ही बडैया ले आ सके थे। रायबहादुर साहब ने उस टीका को बहुत सुरक्षित ढग से रखा था, परन्तु उनके उत्तराधिकारियों की असावधानीवश उस अमूल्य टीका का संरक्षण न हो सका और आज उस टीका की मूल प्रति नही प्राप्त है। उनके प्रशिष्य श्री रामसरोवर शरण सिंह ने उसके मात्र पूर्वार्द्ध की प्रतिलिपि की थी जो आज भी उनकी शिष्य परम्परा के एक शिष्य बाबू रामनाथ जी (वर्तमान) के यहाँ सुरक्षित है।

टीका

श्री महादेवदत्त जी कृत 'मानस' के बालकाड की टीका किशोरीदत्त जी की 'मानस' टीका परम्परा की टीका है। टीका के अन्तर्गत किशोरीदत्त जी की श्रृंगारानुगा-भक्तिभाव परक मानस-टीका-परम्परा के चतुर्थ शिष्य श्री शिवलाल जी पाठक का स्तवन बडे ही भक्तिभाव से किया गया है।[2]

यह टीका हस्तलिखित रूप मे है। इसका लेखन-काल अज्ञात है। टीका हाथ के बने हुए मोटे सफेद कागज के पत्राकार पनो पर हाथ की बनायी हुई स्याही से लिखित है। अक्षर सुन्दर एवं स्वच्छ है। टीका का आकार बडा वृहद है। टीका भक्तिभावपरक एक सुन्दर रचना है। इसमे 'मानस' के काव्यात्मक स्थलो की भी बडी मर्मोद्घाटिनी व्याख्या सुविस्तार से की गयी है। टीका मे शिवदत्त जी की ही अनेकार्थ पर्याति परक व्याख्यान शैली का अनुसरण किया गया है। टीका मे व्यास-शैली व्यवहृत हैं। इसकी भाषा ब्रज है। टीका पर पडिताऊपन की छाप है। कहीं-कहीं पर भाषा पर व्याकरणिक दोष भी दृष्टिगत होते हैं। इस पर अवधी भाषा का पर्याप्त प्रभाव पडा है।

---

१ जानकी शरण स्नेहलता कृत मानसमार्तण्ड की भूमिका।
२. महादेवदत्त कृत हस्तलिखित टीका की प्रतिलिपि, पृ० १।

यहाँ हम महादेवदत्त जी कृत टीका से एक उद्धरण उसकी विशेषताओं के प्रकाशनार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

मूल—'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥'

टीका—'सुमति०—श्री रामजस परायण अरु अनको अर्थन्ह के धारण करने वाले जो सुमति है सो तड़ाग की निज भूमि है और साधु कहिये गंभीर हृदय जल को आधार गहिर थल कहिए अस्थान है ॥१॥ वा० उस मानस मे थल भूमि है मूल-सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू ॥३॥ अरु हृदय सोई अगाधता कहिए कुंड है अरु मानस सर तो सदा भरी रहतु है परि समुद्र ते जल लै के मेघ अवर भरि देत हैं ऐस ही कवि के हृदय मानस भरिवे को वेद पुराण समुद्र है २ वा अव श्री गोसाईं जू यह कहते हैं की मेरी जो सुष्मनी है सोइ भूमि है अरु मेरी हृदय अगाध कहिये अथाह सोई थल कहिए मानसरोवर को थल है ३ यहाँ सुमति को जो हृदय है सोई अगाध कहिए सुन्दर भूमि है तेहि भूमि के अभ्यंतर सुन्द्र मानसरोवर के थल कहिए गर्भ है। सो थल वरण वारि करि के अगाधू कहिए अति अथाह है। जैसे ही मेरी सम्प कैलाशवत है अरु सुमत ज्ञान वैराग्य भक्ति उपासना रूपी रत्न ही करि के मिश्रित उत्तम भूमि है अरु तेहि को हृदय सर्व विकार रहित थल कहिए जल को स्थान तड़ाग रूपी है अरु पर्व जन्म के संचित रामजस अरु पुन जो बालपन सो गुरुनते श्री रामजस सुने है सोई रामजस जल अगाधता कहिए अथाह पाताल गामिनी स्वत जल रूप सिद्ध है। इहाँ ग्रन्थकार को स्वरूप अरु कैलाश को एक रूपक है अरु बुद्धि को औ कैलाशवर्ती भूमि को एक रूपक है अरु ज्ञान वैराग्य भक्ति उपासना को एक रूपक अरु कैलाश शिखर भूमवर्ती मणीय ज्ञान को एक रूपक है अरु सुमति के हृदय को अरु मानस सर को एक रूपक है अरु वरुण को जो परमानन्द को एक रूपक है अरु श्री रामयश औ जल को एक रूपक है अरु अगाधता और हृदय को एक रूपक है। इति सुमति भूमिथल हृदय अगाधू समाप्त।

वेदेनि० वे चत्वारो औ पुराण अष्टादशादि सोई उदधि कहिये समुद्र है अरु साधु जो पर उपकारी सोइ घन कहिए। इहा पौराण्य के अरु शुद्ध जल उदधि को एक रूपक है अरु धरम उपासना पूर्वक और परम पौरमी मेघ के एक अरु वेद वेदांत के पठन को अरु जल आकर्षण को एक रूपक है।'[1]

उक्त उद्धरण मे अर्द्धाली के पूर्वार्द्ध के अनेक अर्थ किये गये हैं तथा उपमान एवं उपमेय में परस्पर सम्बन्ध दिखाने के हेतु टीकाकार का यह कथन कि 'अमुक का रूपक अमुक है' आदितथ्य शेषदत्त की किष्किंधाकांडवर्ती टीका मे अपनाई गई शैली की विशेषताओं के ही अनुरूप है। इससे यह बात पुष्ट हो रही है कि यह टीका शेषदत्त जी के प्रत्यक्ष 'मानस-' शिष्य-महादेवदत्त जी की ही है। टीका की भाषा व्रज है। उस पर अवधि का प्रभाव प्रभूत मात्रा में दृष्टिगत होता है। उस पर 'मानस' की भाषा का प्रभाव अत्या-

१. महादेवदत्त जी कि हस्तलिखित टीका की प्रतिलिपि, पन्ना सं० १०७।

विक पडा है। उपर्युक्त उद्धरण मे आये हुए 'अगाधता', 'मत' आदि शब्द इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। टीका के अन्तर्गत आये हुए 'जो, सो,' एवं 'कहे' आदि शब्द पंडिताऊ-पन की प्रवृत्ति के द्योतक हैं। उसमे आये हुए पुल्लिंग सम्बन्ध दोष टीका की व्याकरणिक अशुद्धियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। ऐसे स्खलनयुक्त शब्द ये हैं—'मेरी हृदय,' 'मर तो सदा मरी रहतु है' आदि। इन सभी स्थलो पर स्त्री लिंग की जगह पर पुल्लिंग का प्रयोग होना चाहिए था।

प्रकरण ४

परम्परानिरपेक्ष टीकाएँ

मानस के टीका-साहित्य के मध्यकाल के अन्तर्गत ऐसे बहुत से टीकाकार हैं, जो 'मानस' की उपर्युक्त किसी भी टीका-परम्परा के अन्तर्गत नहीं आते। अतएव इन टीकाकारों का तथा उनकी टीकाओ का पृथक् परिचय देना हमने उचित समझा।

यहाँ हम इन टीकाकारों का एवं उनकी टीकाओ का परिचय ऐतिहासिक काल-क्रम के अनुसार प्रस्तुत कर रहे हैं।

'मानसमुक्तावली'

टीकाकार—महाराज गोपालशरणसिंह जी

महाराज गोपालशरण सिंह बहादुर बक्सर (बिहार) रियासत के नरेश थे। इनका समय विक्रम की १९वी शती का उत्तरार्द्ध एवं २०वीं शती का प्रारम्भिक चरण माना जाना चाहिए। इनका रचना काल संवत् १९९० से १९१५ वि० तक है। इन्होंने 'मानस' की एक टीका लिखी थी, जो आज भी रामनगर राज पुस्तकालय मे सुरक्षित है।

टीका—रामचरितमानस की मुक्तावली टीका के विभिन्न काडो की टीका का लेखन काल भिन्न भिन्न देखते हुए यह सिद्ध होता है कि उसकी रचना लगभग २५ वर्षों के सुदीर्घ आयाम मे सम्पन्न हुई थी। टीका के विभिन्न काडो की पुष्पिकाओ के अनुसार उनका रचनाकाल इस प्रकार है—बालकाड की टीका, जिसके लेखक गेदासिंह खत्री हैं, लेखनकाल संवत् १८९० वि० है,[1] अयोध्याकाड खण्डित है, अतएव उसके लिखक और लेखन काल का कोई पता नही चलता। अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर काडो के लिखक क्रमश रामटहलदास, सुदर्शनदास, रामटहलदास हैं एवं लंका और उत्तरकाड के लिखक का नाम उल्लिखित नही है। इन सभी काण्डो की टीकाओ का लेखन संवत् १९१५ वि० मे भिन्न भिन्न तिथियो पर पूर्ण हुआ। टीका रचना की परिसमाप्ति पौष कृष्ण २ संवत् १९१५ को हुई।[2]

---

१. रामचरितमानस मुक्तावली (हस्तलिखित) बालकाड की पुष्पिका।
२. वही, उत्तरकाड की पुष्पिका।

'मानस' के सप्त काडो की इस पूर्ण टोका मे केवल अयोध्या काड की ही टीका खंडित है। इस काड मे केवल ४२ पन्ने अवशिष्ट हैं। समस्त टीका के पन्नो की संख्या ४६६ है। इस टीका के अन्तर्गत बालकाड के मगलाचरणात्मक सात संस्कृत श्लोकों को टीकाकार ने प्रामाणिक नहीं माना है और इन सातो श्लोकों को उसने अपनी टीका में नहीं दिया है।[1]

'मानसमुक्तावली' टीका को प्राचीन टीकाओ मे बहुत महत्व प्राप्त है।[2] परन्तु इस टीका मे तत्कालीन अन्य प्रसिद्ध प्राचीन टीकाओं आनन्दलहरी, मानसमयंक, भाव-प्रकाश, रामायणपरिचर्यापरिशिष्टप्रकाश आदि की भाँति 'मानस' की विस्तृत एवं उत्कृष्ट व्याख्या नहीं मिलती है। टीका की भाषा ब्रज गद्य है। उस पर अवधी का प्रभाव प्रभूत मात्रा मे है। अन्य भाषाओ का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा मे है। इसमे व्याख्येयो का प्राय गद्यानुवाद ही कर दिया गया है। टीकाकार ने विशद एव विस्तृत व्याख्या सापेक्ष महत्व-पूर्ण साहित्यिक स्थलो की भी टीका सामान्य रूप से कर दी है, जैसा कि इस उद्धरण से स्पष्ट ही है—

मूल— 'मनि मानिक मुक्ता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहइ सकल सोभा अधिकाई॥
तैसइ सुकवि कबित बुध कहहीं। उपजइ अनत अनत छबि लहई॥

टीका—'यह कोई कहै जो अवरि के आदर से तुमको क्या फल है, सो देखावत है मनि औ मानिक और मुक्ता की जैसी छबि है तैसी क्रम सो सर्प औ कृत हाथी के सिर पर नहीं सोभति।' नृप के किरीट औ तरुनी स्त्री का तन पाय कै सकल शोभा की अधि-लहत। तैसहि सुकवि की कवित्त विबुध जन कहै हैं सो उपजत है अनत अन्यत्र और अनत सुख शोभा को पावत है।[3]

यहाँ 'मानस' की उपर्युक्त अर्द्धालियो का मात्र गद्यानुवाद किया गया है। कितने ही शब्द (लहत, अनत आदि) मूल से जैसे के तैसे ही अवतरित कर लिये गये हैं। यह तथ्य टीका की भाषा पर 'मानस' की भाषा के प्रभाव को स्पष्टत द्योतित करता है। भाषा मे व्याकरणिक दोष सुस्पष्ट ही दृष्टिगत होता है। उदाहरणार्थ उक्त उद्धरण के अन्तिम वाक्य के अन्तर्गत सुकवि की कवित्त 'मे सयोजक'—का पुल्लिंग होना चाहिए। अत यहाँ लिंग सम्बन्धी व्याकरणिक दोष वर्तमान है। टीकाकार ने कहीं-कहीं पर भक्ति-परक स्थलो की टीका विस्तार से भी की है।

---

१ वही, बालकांड, पन्ना सख्या १।
२ मानसदीपिका, प्र० सं०, पृ० १।
३. रामचरितमानसमुक्तावली (हस्तलिखित) बालकांड, पन्ना संख्या ३६।

मानसभूषण :

टीकाकार—बाबा राधेराम महंत

बाबा राधेराम महंत के जीवन-परिचय के विषय में हमें कोई विस्तृत सूचना नहीं मिल सकी। इनकी टीका के आधार पर हमे इनके जीवन-विषयक जो कुछ तथ्य प्राप्त हो सके हैं, उन्हें यहाँ दिया जा रहा है।

बाबा राधेराम जी की 'मानस' टीका का रचना-काल संवत् १६१६ है, अतः इसमे विक्रम की १६ वी शती के प्रथम चरण मे इनकी विद्यमानता की पुष्टि होती है। काशी स्थित लोलार्क मन्दिर के महंत थे। इनकी टीका की भूमिका से ऐसा ज्ञात होता है कि इनका समागम पाच संतों से, जिनके नाम रघुनाथ दास, रघुबरदास, रघुनन्दनदास, राधोदास एव रामदास थे, हुआ था। इन पाचो सन्तो ने इन्हे 'मानस' के प्रत्येक व्याख्यातव्य के पाँच अर्थ बताये थे। महंत जी ने उन्ही अर्थों के आधार पर अपनी 'मानसभूषण' टीका लिखी है। इन्हें इस टीका के लिखने का आदेश भी उपर्युक्त पाचो संतो से ही मिला था।

टीका—महंत राधेराम महंत कृत मानस भूषण टीका 'मानस' के टीका साहित्य के मध्यकाल के पूर्वार्द्ध एक व्यास शैली परक टीका है। इसका रचना काल संवत् १६१६ वि० है।[1] लाला गोपीनाथ जी ने इस टीका का प्रकाशन सन् १८६७ ई० मे गोरखा यन्त्रालय बम्बई से करवाया था। मानस-भूषण 'मानस' की अनेकार्थ प्रकाशिका टीका है। टीकाकार ने अपनी टीका के अन्तर्गत 'मानस' के व्याख्येय स्थलो के पाच-पाच अर्थ किये हैं। उसने अपनी इस बहु अर्थ परक व्याख्या-पद्धति के समर्थ में मानसकार के कथन 'बरनिहिं अरथ आखर बन साचा। अनुहरिताल गतिहि नट नाचा' को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'इस अर्द्धाली के द्वारा ग्रन्थकार (तुलसीदास) ने स्वयं व्यक्त कर दिया है कि उनका यह काव्य बहुअर्थ सापेक्ष है। अतएव मैंने मानसकार के उक्त कथन अनुसार 'मानस' के व्याख्यानो की अनेकार्थ परक व्याख्या की है'[2] टीका मे जहाँ-तहाँ तो अर्थ अत्यन्त विस्तीर्ण भी किया गया।

टीकाकार ने मानसभूषण टीका मे व्याख्येयो के जो पाच-पाच अर्थ दिये हैं, उनको उसने अपने पाच 'मानस'—गुरुओ—बाबा रघुनाथदास बाबा रघुनाथदास बाबा, रघुनन्दन दास, बाबा राधोदास एवं बाबा रामदास के ही नामो से प्रचारित किया है। इस प्रकार टीका मे स्वयं टीकाकार का व्यक्तित्व तो बहुत कुछ एक लिपिकार जैसा ही प्रतीत होता है। टीकाकार के कथनानुसार उसकी टीका के सभी अर्थ लौकिक वैदिक रीतियों के अनुकूल हैं। टीका की

१ संमत ओनइस से ओनइस मानस भूषन भाखि।
लौकिक बैदिक बहु जानहि ते तजि माखि।
—मानस भूषण टीका-टीका की पुष्पिका।

२. मानस भूषण की बाबा राधेश्याम महंत जी कृत भूमिका।

अर्थ-शैली व्यास पद्धति प्रधान है। उस पर संस्कृत की 'वर्य भूत' वाली टीका प्रणाली का प्रधान रूप से दृष्टिगत होता है। टीका की भाषा ब्रज गद्य है, उसमें अवधी के शब्द भी प्रयुक्त हैं। भाषा पर पंडिताऊपन की भी छाप है।

मानस भूषण टीका की उपर्युक्त सारी विशेषताओं के दिग्दर्शनार्थ निम्नलिखित उद्धरण पर्याप्त होगा—

मूल—अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

अर्थ—अतिथि नाम साधु तके पूज्य येह रामायन है हेतु इष्ट देव है अरु पुरारी के तो अति प्रिय यह रामायन है अरु कामद नाम कामना अर्थात् जो फल के कामना तारै विष्टि करै के जैसे घन नाम के मेघ नियराय के व्रिष्टि करत है प्र० चौ० वरषहि जलद भूम नियराई। अर्थात् रामायण जू मैं अति उदारता जनाये अरु पुनी रामायन कैसो हैं की दालिद्र दवारी है दवारी नाम आगी के है प्र० का नहि पावक जारि सक तद्वत जैसो कवन दालिद्र है की जाकै यह रामायन न जारि सकै यह अर्थ रघुनाथ दास से सुना १ कामद येह रामायन के आगे कामद है अर्थात् धन मद, बलमऊ विद्या आदि जो,मद सो का है,जैसे सूर्य के आगे तम का है हेतु प्रबल के समीप अबला का है हेतु कुछ नही है अरु घन नाम समूह को दालिद्र ताके दवारि है अर्थात् दवा अरी मृत्यु जब आवे ले तब दावा नाही लागत तद्वत रामायण के समीप दलिद्र के बल नाहि लगत यह अर्थ रघुनाथ दास से सुना २ क नाम ब्रह्मा ताके अमद करनिहार यह रामायन है अरु घन नाम मेघ ताहु के अमद करनिहार यह रामायन है अरु दालिद्र दवारि वे यह रामायन है। पक्षा ब्रह्मा के अमद कैसे किये उत्तर ब्रह्मा के मद हो नहीं होत रामरूपाते अरु याल के प्रवाहाने जब यह मद होत है मय बिना सृष्टि करनेहार कोई नहीं है ताहो वे मद रामलीला हो भो भग होत है प्र० चौ० विधिहि भये आश्चर्य विषेसी। निज करनी कछु कतहुन देखी। तैसो मेघ भये रामायन कवित्त कोरि दसकंध तब प्रबल पयोधि मोरि, रावन रजाय पाय आये जुथ जोरि कै। कह्यो लंकपति लक्बरत आगी वानर बहाय मारो महा वारि बोरि कै॥१॥ मलेनाथ नाइ माथ चले साथ पयद नाथ वर्षत मूसलधार वार-बार घोरि कै जीवन तन लागि आगि चपरि चौगुनी लाग, तुलसी भमरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥२॥ यह रामलीला है जहाँ मेघन के मद भंग भये यह अर्थ रामप्रसाद से सुना ३ कामदनाथ कामना घन नाम मेघ अ समूह अर्थात् आके समूह कामना है सो महादरिद्र है ताके दवारि के यह रामायन दवा नाम दावा अरि नाम सत्रु जैसे रोग के अरी दावा है तद्वत समूह जो कासना प्रा० चौ० विषय मनोरथ दुरगम नाना। तेहि सम शूल नाय को जाना॥१॥ यह सकल कामना के समन करत यह रामायन प्र० काम क्रोध मद मोह नशावनि, विमल विवेक विराग बढ़ावनि। सादर मज्जन पान किये ते, मिटहिं पाप परिताप हिये ते। यह अर्थ रघुनन्दन दास से सुना॥४॥ कामद गिरि नाम कामदा-नाथ गिरि॥प्र०॥ कामद गिरि भ राम प्रसादा अर्थात् जैसे कामदानाथ गिरि के अव-लोकत अपसरत विषादा तिमि रामायन गिरि के स्वरूप देखत मात्र अपहरत विषादा अरु

धन नाम दालिद्र ताके दवारि के जैसे तिनादि के आगी जारे है तिमि धन नाम समुद्र समूह जो दालिद्र ताके रामायन भस्म करे हैं प्र० चौ० मोह दरिद्र निकट नहि आवा यह अर्थ रामदास से सुना ॥५॥ इति पंच अर्थ समाप्त ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से यह तथ्य भली भाँति उद्घाटित हो रहा है कि टीकाकार ने अपनी टीका के अन्तर्गत व्यासों की अर्थ-पद्धति का पूर्ण रीति के अनुसरण किया है। उसने मूल के विभिन्न पदो के अनेक अर्थ,उन्हें तोड़-मरोड़ कर या क्लिष्ट कल्पना के सहारे किया है। इस तथ्य के प्रमाणार्थ उपर्युक्त उद्धरण से 'दवारि' शब्द की तोड मोड कर की गयी दुर्दशा एवं 'कामद' शब्द स मनमानी रीति से निकाले गए 'कामना' बल-मद, धन-मद, विद्या-मद आदि अर्थों को देखा जा सकता है। यह रीति सर्वथा अवैज्ञानिक एवं असाधु है। इस प्रकार के अर्थों की संगति मूल से भी नहीं बैठ पाती है। टीकाकार ने अपने अर्थों की परिपुष्टि के लिए 'मानस' के अन्य स्थलों से अर्द्धालियाँ उद्धृत की हैं।

टीकाकार ने संस्कृत टीकाओं की 'कथभूत' वाली अर्थ पद्धति का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त उद्धरण में प्रयुक्त ऐसे शब्द प्रयोग जो मद सो का है' इसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

यद्यपि टीका की भाषा व्रज गद्य है तथापि उसमें अवधी के शब्द, शब्द ही नहीं अपितु क्रिया पद भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे 'करता है' के लिए करत' होता है 'के लिए' होत 'शब्दों का पुट भाषा मे अवधीपन को ही पुष्ट करता है।

सन्तउन्मनी टीका :

टीकाकार—सन्त श्री गुरुसहायलाल

सन्त उन्मनी टीका के रचयिता श्री गुरु सहायलालजी 'मानस' के टीका-साहित्य के मध्यकालीन टीकाकारों मे अपना पृथक् ही महत्त्व रखते हैं। बिहार प्रदेश के तत्कालीन टीकाकारों में आप ही एक ऐसे महत् प्रज्ञाशील टीकाकार थे, जिसने योग, हठयोग, वेद, उपनिषद्, व्याकरण कोष एवं शास्त्रीय आधार-भूमियों पर 'मानस' की टीका की। 'मानस' के परम प्रबुद्ध टीकाकारों मे आपकी गणना होती है।

श्री गुरुसहायलाल जी का जन्म गया जिले के अन्तर्गत नदिरा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम मुन्शी मुरलीनारायण था।[2] आपका समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध प्रतीत होता है। आप संस्कृत साहित्य के वेद-वेदांग पुराण, योग व्याकरण एवं कोष-साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। इन शास्त्रों मे आपकी गहन गति थी। स्वयं आपकी सन्त उन्मनी टीका इस तथ्य की परिचायक है। यद्यपि ये सीताराम के अनन्य उपासक थे, तथापि आपकी भगवान शंकर मे भी बड़ी निष्ठा थी। आपने शैवागम का खूब अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने तत्कालीन प्रसिद्ध हठयोगी साधक

---

१. मानसभूषण टीका, प्र० सं०, पृ० ७६-८१।

२. सन्त उन्मनी टीका के अन्तर्गत दी गयी गुरु सहायलाल जी की जीवनी।

श्री बोधकृष्ण भारती (नदिरा ग्राम निवासी) एवं मोनाम (पटना) निवासी श्री बाबा मोहन दास से हठयोग के गुह्याऽगुह्य रहस्यों में गति पाई थी।[१]

इनके पिता जी भगवान् श्री कृष्ण के अनन्य उपासक थे। अतएव इनकी श्रद्धा वासुदेव भगवान श्री कृष्ण की ओर थी। कालान्तर में गुरु सहाय लाल जी अपने समय की प्रबल रूप से विकसित रामचरित के रसिक सम्प्रदाय की मधुरा भक्ति से बहुत अधिक प्रभावित हो गये। युगल सरकार (सीताराम) के प्रति उनकी अगाधनिष्ठा हो गयी। फलतः सीताराम तत्त्व निरूपक सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'मानस' के भी एक निष्ठ प्रेमी बन गए। कालान्तर में उन्होंने अपने बहुत से प्रेमियों एवं प्रशंसकों की, जिनमें मघरा गुफा (पटना), निवासी बाबू दुर्गादत्त जी प्रमुख थे, प्रेरणा से रामचरितमानस का योग, भक्ति एवं काव्य तत्त्वों से संवलित सन्तउन्मनी टीका लिखी। इसमें मात्र बालकांड की ही टीका की गयी है। इस टीका के अन्तर्गत प्रकाशित एक विज्ञप्ति में कहा गया है कि शीघ्र ही अन्य कांडों पर भी गुरु सहाय लाल जी की टीका प्रकाशित होगी, परन्तु हमें उनसे द्वारा की गयी 'मानस' के अन्य कांडों की टीका नहीं प्राप्त हुई।

सन्तउन्मनी टीका—

सन्त गुरुसहायलाल जी कृत सन्त उन्मनी टीका 'मानस' के आध्यात्मिक अर्थों की प्रतिपादिका एक विशिष्ट टीका है। इसमें मुख्यतः योग या हठयोग को गुह्योपासना-परक अर्थ-पद्धति का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त वेद, पुराण, दर्शन शास्त्र सम्मत 'मानस' की आध्यात्मिक व्याख्या करना भी इस टीका की एक मुख्य विशेषता है। यह टीका अध्यात्म-पथानुयायी साधकों के लिए अधिक उपयोगी है। इसके नाम से ही यह तथ्य व्यंजित है। सन्त उन्मनी टीका का अर्थ है, सन्तों के मन को ऊर्ध्वगामी बनाने वाली टीका।

सन्त उन्मनी टीका का रचना-काल सवत् १६३८ वि० है।[२] इसका प्रथम प्रकाशन वि० सं० १६४६ (सन् १८८६) में हुआ था। यह टीका 'मानस' के केवल बालकांड की ही टीका है। इसका कलेवर विशाल है। स्वयं टीकाकार के अनुसार इसके दो भाग हैं, इनमें प्रथम 'मानस' तत्त्वार्थ बोध दर्शन एवं द्वितीय मानस तत्त्व विवरण।' टीका का 'मानस' तत्त्वार्थ बोध दर्शन' शीर्षक खण्ड उसकी एक प्रकार से वृहद् भूमिका के रूप में है। इसके अन्तर्गत प्रथमतः टीकाकार ने गोस्वामी तुलसीदास जी की संक्षिप्त जीवनी, 'मानस' का माहात्म्य, मानस के विविध पाठ-भेदों का उल्लेख करते हुए, अपनी इस गूढ़ तत्त्वार्थ युक्त के टीका के लेखन के कारणों एवं प्रेरणा सूत्रों का उल्लेख किया है। तदनन्तर उसने 'मानस' के स्वरूप के परिचयार्थ अनुबन्ध चतुष्टय विषय, प्रयोजन, अधिकारी और सम्बन्ध की कसौटी पर खरा उतारते हुए उसे खरा अध्यात्मिक ग्रन्थ सिद्ध किया है। इसके पश्चात् उसने 'तत्त्वार्थ बोध' शीर्षक प्रकरण में वैयाकरणों एवं

---

१. वही।
२. सन्तउन्मनी टीका (बालकांड) की पुष्पिका।

भाष्यकारों के मतानुसार व्याख्या के षड तत्वों-पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह वाक्य योजना, आक्षेप एवं समाधान—की विस्तृत विवेचना की है। व्याख्या के प्रत्येक तत्त्व के विश्लेषणार्थ उसने 'मानस' की अर्धालियों को ही उद्धृत किया है। इस प्रकार उसने जता दिया है कि इस टीका के 'मानस' तत्त्वविवरण वाले खण्ड में मूल 'मानस' की जो टीका की जायगी, वह शास्त्रीय लक्षणों पर आधारित होगी।' अब हम सन्तउन्मनी टीका के मुख्य भाग—'मानस तत्त्व विवरण पर विचार करेंगे।

'मानस' तत्वविवरण में 'मानस के मात्र विषम पदों की ही टीका की गयी है। जो स्थल या काव्य पंक्तियाँ टीकाकार को गूढ रहस्य से सम्पन्न प्रतीत हुई हैं, उन्ही की व्याख्या उसने की है। अपने अर्थ की सम्पुष्टि के लिए उसने संस्कृत साहित्य के विविध वैदिक पौराणिक ग्रंथों के आधार पर व्याख्यायों के अनेक चमत्कारपूर्ण अर्थ निकाले हैं। कहीं-कहीं तो इन अर्थों की संख्या अस्सो तक पहुंच गयी है। टीकाकार की अर्थ करने की प्रवृत्ति अनेकार्थ परक है। इसके लिए उसे 'मानस के विविध पदों को तोड़-मरोड़ कर खींचातानी पूर्वक मनोप्सित अर्थ करना पड़ा है। उसने इस कार्य के सम्पादनार्थ क्लिष्ट कल्पना द्वारा अर्थ करने की प्रक्रिया का भी खूब सहारा लिया है। इस प्रकार उसकी व्याख्या की प्रवृत्ति तत्कालीन मानस के व्यासों की टीका-पद्धति के अनुरूप ही है।

टीका की भाषा व्रज अवधी शब्दों के प्रयोगों से युक्त खड़ी बोली गद्य है। उस पर पंडिताऊपन की छाप है। सन्तउन्मनी टीका का एक उद्धरण उसकी उपर्युक्त समस्त विशेषताओं के उद्घाटनार्थ पर्याप्त होगा —

मूल— उदासीन अरि मीत हित सुनत जरइं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जनु बिनती करइ सप्रीति॥

'शत्रु मित्र भाव रहित सो (उदासीन) हैं। एव शब्द सुनते मात्र जरि मरते हैं। अब वे अरि हो वामीति कहे प्रेमी का हित कहे माता पिता पुत्रादि सम्बन्धी हो। कोई हो इसका कुछ ख्याल नही है तिन्हें तो मैं जानि पाणि युग्म करि प्रीति पूर्वक विनय करता हूँ॥१॥

अथवा अरि और मित्र दोनों हित है। एवं विशिष्ट (उदासीन) विष्णु इस भाषा व्युत्पत्ति करि के उद जो जल है तहा जो आशीन हैं सो उदासीन कहिए। यह शब्द सुनते मात्र जरि मरें॥२॥

अथवा अरि का मादि से उदासीन। और मित्र कहे मानते हारे से। हित पुत्रादि से भी उदासीन। हेतु भगवत उवन है (गुरु पितु मातु बधुमति देवा। सब मोकह जाने दृढ सेवा॥ यह रीति सुनकर जरि मरते॥३॥

अथवा उदासीन अरि आसुरी सम्पत्ति। सोइ जिन के मित है॥४॥ यदा उदासीन लोग जिनके अरि हैं भाव (प्रमाण, विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति) जो ज्ञान हो सो प्रत्यक्ष के अनन्तर जिसके द्वारा ज्ञान हो सो अनुमान भलो प्रकार समझा जाय जिसके द्वारा सो आगमन इति प्रमान वृत्ति। जिससे परमार्थिक स्वरूप न मान हो जिस करि

के पदार्थ अपने परमार्थिक भिन्नरूप मान हो। वह (विपर्यय) है कहने मर कल्पित हो पर है कुछ नही जैसे आकाश का फूल इति विकल्प वृत्ति। शब्द के चतुरता मात्र ज्ञानाभार के जो आश्रय करै सो निद्रा है जिन विषयो का चित द्वारा अनुभव किया गया हो उनका जो ध्यान है सो स्मृति वृत्ति है तहा स्वप्नावस्था मे जो जाग्रत अवस्था के अनुभूत पदार्थों का स्मृति है सो भावितस्मर्तव्या स्मृति है १) जाग्रत मे जा स्वप्न के पदार्थों का स्मरन है सो अभावित स्मर्तव्या स्मृति है २) काहे के योग सूत्र मे कहा है (अभ्यास वैराग्याभ्या तन्निरोध) ईश्वर का निरतर चिन्तन करने से और विषय वासना को त्यागने से पाचों वृत्तियो का निरोध रखा)। यदा नवो विक्षेपचित्त के (व्याधि स्त्यान संशय प्रमादालस्या विरति भ्रान्ति दर्शनालब्ध भूमिकत्वानवस्थित्वानि चित विक्षेपास्ते न्तराया) एव विक्षेप सहकारी जो है (दुःख दौमनस्याग जयत्वश्वास प्रश्वासाविक्षेपसमुत्थ) इति योग सूत्रे ते सभी जिनके मोत है भाव इनही मे सदा प्रसन्न रहते हार और यदि हिंगो पदेश करिये तो सुनत मात्र जरि मरते हैं यथा (सुनत जरा दोन्हेसि बहु गारी।) एवं चरन प्रकाहर कोह सठ ते ही इति ॥४।'[1]

मानस के उपर्युक्त व्याख्येय दोहे के चार अर्थ किये गए हैं। उनमे से प्रथम अर्थ तो सरल एव साधारण रीति से किया गया है। दूसरा अर्थ 'उदासीन' शब्द को विखण्डित करके उद से विष्णु का अर्थ लेते हुए अधिदैवपरक किया गया है। तीसरा अर्थ वैराग्यपरक है एव चतुर्थ अर्थ भगवद्गीता एव न्याय, योग आदि शास्त्रो के मतो द्वारा सपुष्ट योगपरक है। उक्त उद्धरण को भाषा ब्रज गद्य है, परन्तु अधिकांश शब्द या तो शुद्ध तत्सम है या खडी बोली के हैं। 'करन हार (करने वाले के अर्थ मे) एव 'जर (जलने के अर्थ म) आदि शब्द अवधी के हैं। उद्धरण मे प्रयुक्त 'जो हैं सो' सदृश पद भाषा की पडिताऊपन की प्रवृत्ति को परिलक्षित करते हैं।

मानसभाव प्रदीप टीका

टीकाकार—श्री रामबक्श जी

श्री रामबक्श पाण्डे विक्रम की १६ वी शती के पूर्वार्द्ध के सुप्रसिद्ध 'मानस' व्यासो मे से हैं। नित्य प्रति उनकी कथा त्रिवेणी सगम (प्रयाग) के बालुका तट पर हुआ करती थी। पाण्डेय जी १४ वर्ष की अवस्था से लेकर ७४ वर्ष की अवस्था तक लगातार 'मानस की कथा कहते रहे। इससे पता चलता है कि उन्हें दीर्घ आयु प्राप्त थी। इन साठ वर्षों के 'मानस' के कथन-व्याख्यान म उनकी कथन प्रणाली पूर्ण रूप से निखर गयी थी। उनकी कथा के श्रोताओ म बड़े बड़े सत रामायणी भी सम्मिलित होते थे। जैसा कि पूरत उल्लेख किया गया है कि श्री हरिहर प्रसाद सीतारामीय जैसे सुप्रसिद्ध मानसविद् भी आपकी कथा सुनते थे।[2] सीतारामीय जी आपके समकालीन थे।

---

१ सन्तउन्मनी टीका, प्र० स०, पृ० ७६ ८०।

२ खण्ड २, अ० ३, पृ० २१८।

उन्होंने प्रयाग में भी कुछ दिन तक काम किया था। उनकी टीका रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश की रचना वहीं सम्पन्न हुई थी।

पाण्डेय जी के एक प्रधान श्रोता 'मानस'—शिष्य श्री रोशनलाल जी ने इनकी व्याख्याओं को एकत्र कर उन्हें टीका के रूप में निबद्ध कर दिया था।[1] रोशनलाल जी इस टीका के केवल लिपिक हैं। उनका इस टीका के प्रणयन में कोई मौलिक योगदान नहीं है।

मानसभावप्रदीप

सुप्रसिद्ध व्यास श्री रामवक्स पाण्डेय की टीका मानस भाव प्रदीप, व्यास शैली की प्रतिनिधि 'मानस' टीका है। इसका रचनाकाल संवत् १९४४ विक्रमी है। टीका का प्रथम प्रकाशन पाण्डेय जी के शिष्य मुंशी रोशन लाल के द्वारा इलाहाबाद के नुरुल आलम प्रेस से हुआ था। यह मानस के सातों काण्डों की एक विस्तृत टीका है।

पाण्डेय जी की टीका का लखन उनके शिष्य श्री मुंशी रोशन लाल जी ने ही किया है। वे पाण्डेय जी के सर्वप्रमुख श्रोता एवं शिष्य थे। उन्होंने पाण्डेय जी की मानस की व्याख्याओं को सुनकर उन्हें लेखबद्ध कर एक टीका का रूप दे दिया। पाण्डेय जी की टीका की सर्व प्रमुख विशेषता है चमत्कार पूर्ण रीति से मानस की व्याख्या करना। टीकाकार (पाण्डेय जी) के अनुसार तो मानस का वही निपुण व्याख्याता हो सकता है, जो मानस की सर्वथा नवीन एवं चमत्कारिक व्याख्या प्रस्तुत करे। सो उनकी टीका में कौतूहल परक मनरंजक चमत्कारिक अर्थों का ही वैभव दृष्टिगत होता है।

टीका के भाव या अर्थ तो पाण्डेय जी के हैं परन्तु भाषा मुंशी रोशनलाल जी की है जो एक सुशिक्षित व्यक्ति प्रतीत होते हैं। वे खड़ी बोली गद्य के अच्छे ज्ञाता थे। अतएव उनके द्वारा लिखी गयी मानस भाव प्रदीप टीका की भाषा भी खड़ी बोली गद्य ही है उसमें ब्रज या अवधी का अधिक प्रभाव नहीं दिखाई देता है। तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है कहीं-कहीं तद्भव शब्द भी प्रयुक्त मिलेंगे। भाषा में कहीं-कहीं अपरिष्कार हैं। शैली विशद है। पाण्डेय जी की टीका के एक उद्धरण से ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

मूल— चातक कोकिल कीर चकोरा।
कूजत बिहग नचत कल मोरा॥

'यद्यपि उस बाग में अनेक भांति के पक्षी थे परन्तु यहाँ पाँच पक्षी शृङ्गार उद्दीपक हैं। इसलिए इनका नाम लिखा दूसरे यह कि पाँचों तीन ऋतु के भोगी हैं वसन्त वर्षा ऋतु के भ्रम से सदा उसमें बसे रहते हैं अर्थात् उस बाग में तीनों ऋतु सदैव रहती है वसंत ऋतु जो उसमें लुभा रही है इसमें उसके भोगी कीर कोकिल उसमें सदा रहते हैं और वर्षा ऋतु का उसमें सदैव रहना इस भांति से है कि पुराने काले-काले

1 मानस के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानसांक, कल्याण।

पल्लव काली घटा के समान है और उसमें श्वेत फूलों की पंक्ति बक पंक्ति के समान है और फूलों की पत्तों का लहराना बिजुली है और लाल, पीले, हरे फूलों की पत्ती का मेल इन्द्रधनुष के समान है और फूलों के रस का सदैव टपकते रहना वर्षा है जिसके कारन मोर सदैव सुन्दर नृत्य करते रहते हैं। शरद भोगी उन बाग में चातक और चकोर शरद ऋतु को इस रीति से मोगते हैं कि श्याम बादलों की सघनता को अमल आकाश और अनेक रंग के फूलों को नखत और श्री जानकी जी के गौर बदन को शरद पुनों का चन्द्रमा मानते हैं।'[1]

उपर्युक्त अर्द्धाली की चमत्कार गर्भित टीका करते हुए चातक, कोकिल, कीर, चकोर और मोर की विद्यमानता से जनकपुरी की वाटिका में वसन्त ऋतु, शरद ऋतु और वर्षा ऋतुओं का सदा वास बताया गया है। शालीन पाण्डेय जी ने अपनी कल्पना शक्ति के बल पर बड़ी युक्ति से अपने उक्त भाव को सपुष्ट किया है। उदाहरणार्थ उन्होंने बाग के काले-काले पल्लवों को बादल फूलों की पंक्तियों के लहराने को बिजली, विविध रंगों के पुष्पों को इन्द्रधनुष से उपमित करके वर्षा ऋतु का बड़ा ही मनोरंजक चित्र खींचा है।

उद्धरण में आये हुए प्राय सभी क्रियापद खड़ी बोली के हैं। यद्यपि उसमें तत्सम विशुद्ध शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है तथापि भोगी, बिजुली जैसे अपरिष्कृत शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। टीका में 'पत्तियों' शब्द के स्थान पर 'पत्तों' सदृश असाधु प्रयोग किया गया है।

मानसभूषण टीका

टीकाकार—श्री बैजनाथ जी

दास्य भाव के रसिकोपासक सन्त श्री फकीरे रामजी के मंत्र शिष्य श्री बैजनाथ जी बाराबंकी जिले के देहवामानपुर ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म काल संवत् १८९० वि० है।[2] ये जाति के कुरमी थे। इनके पिता श्री हीरानन्द जी एक सम्पन्न गृहस्थ थे। वे देहवामानपुर के ग्रामाधिप थे। फलत बैजनाथ जी को घर पर पर्याप्त सुखोपभोग सुलभ था और इस वातावरण में इनकी शिक्षा-दीक्षा भी सम्यक् रीति से हुई थी। परन्तु बाल्यावस्था ही में बैजनाथ जी इन सासरिक सुखोपभोगों के प्रति उदासीन ही रहे। इनकी प्रवृत्ति बाल्यावस्था में ही भगवन्मुखी हो गयी थी। संवत् १९०८ के लगभग अपने चचा सुप्रसिद्ध विरक्त सत श्री फकीरे राम जी की सेवा में ये अयोध्या आ गये। यहीं इन्होंने फकीरे राम जी से अल्पवय में ही साम्प्रदायिक दीक्षा ले ली। अयोध्या में ही रहने लगे। परन्तु जब संवत् १९१४ वि० में इनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया

१ मानसभाव प्रदीप, प्र० सं०, पृ० २२३-२४।

२. 'अष्टदश शत नब्बे संवत् शुचि पूनम को जन्म हमार।'
—मानस भूषण की श्री बैजनाथ जी कृत भूमिका, पृ० १।

तो, ये गुरु की, आज्ञा से पुन. अपने ग्राम-डेहवामानपुर आ गये और वही पर भक्ति-साधना करने लगे। आपके एक पुत्र भी थे, जिनका नाम श्री रामलाल जी शरण था।

प्रथमत बैजनाथजी की भक्ति राम भक्ति की पच रसात्मिका मधुरा भक्ति के अन्तर्गत दास्य भाव की थी, परन्तु कालान्तर मे इनकी प्रवृत्ति राम की मधुरा भक्ति की ओर पूर्ण रूप से हो गयी। राम की शृङ्गारानुगा भक्ति की ओर वे तत्कालीन रसिक संत श्री सियावल्लभ जी के कारण झुके और उन्ही से इन्होने मधुरा भक्ति का 'सम्बन्ध' भाव ग्रहण किया था। यह बात स्वयं बैजनाथ जी के कथन से ही पुष्ट होती है।[1]

आप हिन्दी साहित्य के एक परम रसज्ञ विद्वान थे, साथ ही एक अच्छे कवि भी। सुना जाता है आपको महामहोपाध्याय की पदवी भी मिली थी।[2] आपने काव्यकल्पद्रुम नामक एक काव्य शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ की रचना की थी। संस्कृत भाषा के महत्वपूर्ण ग्रथ अध्यात्म रामायण की पूरी टीका आपने लिखी थी। वाल्मीकि रामायण की टीका केवल सुन्दर काड तक ही कर पाये थे, कि इसी बीच आपका साकेतवास हो गया, परन्तु इस अधूरे कार्य को आपके सुयोग्य पुत्र श्री रामलाल शरण जी ने पूर्ण किया।[3]

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति आपकी अगाध निष्ठा थी। कहते हैं कि इन्होंने तुलसीदास के नाम से प्रचारित जितने भी ग्रन्थ पाये, उन सभी की टीका लिख डाली। आपके द्वारा रचित 'मानस' एवं विनय पत्रिका की टीकाओ का आदर सन्तो एवं साहित्यिको मे समान रूप से है। इनके अतिरिक्त श्री बैजनाथ जी कृत कुछ प्रमुख रचनायें निम्नांकित हैं।

१—गीतावली की टीका (रचना काल संवत् १८३२ वि०)।
२—कवितावली की टीका (रचना काल सवत् १९३९ वि०)।
३—राम सतसैया भाव प्रकाशिका (रचना काल संवत् १९४२ वि०)
४—रामसिया सयोग पदावली (रचना काल संवत् १९४७ वि०)।[4]

मानसभूषण टीका

भक्ति एवं काव्य दोनो तत्त्वो से समन्वित रामचरितमानस की मानसभूषण टीका का महत्व 'मानस' के टीका साहित्य मे विशेष है। यह ब्यास काल या मध्य युग का प्रतिनिधि टीकात्मक ग्रन्थ माना जाता है। मानस के बालकाड की टीका की रचना बैजनाथ जी ने संवत् १९४४ वि० मे की[5] और सवत् १९४६ वि की पौष शुक्ल

---

१. वही।
२. वही।
३. 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख, मानसांक, कल्याण।
४. वही।
५. राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, ४७७।
६. मानसभूषण टीका के बालकाड की पुष्पिका।

पंचमी की मानस भूषण नामी अपनी टीका की रचना सम्पन्न कर ली।[१] संवत् १९४७ वि० (सन् १९९० ई०) मे इसका प्रथम प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से हुआ। यह टीका १६०८ पृष्ठो मे आबद्ध एक विशाल ग्रन्थ है। इसमे 'मानस' के प्रत्येक काण्ड की टीका कई प्रकाशो (प्रकरणो) मे विभाजित है।

यद्यपि मानस भूषण टीका मे प्रधानता भक्तिपरक दृष्टिकोण की है, तथापि इसमे काव्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी 'मानस' के व्याख्येय स्थलो का सम्यक् रीति से विश्लेषण किया गया है। इस टीका के अन्तर्गत रामानंदीय सम्प्रदाय की मधुराभक्ति का प्रतिपादन अच्छी प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। रामानंदीय सम्प्रदाय के दर्शन-विशिष्टाद्वैत परक व्याख्यान के लिए यह टीका महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से हम इस टीका पर इस शोध प्रबन्ध के तृतीय खण्ड मे यथास्थान विचार करेंगे। मानसभूषण टीका की एक प्रमुख विशेषता उसकी व्यासो की कथावाचकी शैली की व्याख्या पद्धति है। टीकाकार ने अपनी व्याख्या की पुष्टि के लिए विविध संस्कृत हिन्दी ग्रन्थो से औचित्य पूर्ण रुचिकर उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

कही-कहीं उसने अपनी व्याख्याओ को रजक बनाने के लिए कहानी एवं चुटकुलो का भी आश्रय लिया है। टीकाकार की अर्थ-शैली की विशदता सरसता एवं चमत्कारिता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। टीका की भाषा ब्रज गद्य है। उसमे अवधी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। कही-कही पर खडी बोली का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। टीका को भाषा मे पडिताऊपन भी मिलता है। मानस-भूषण की इन समस्त विशेषताओ के परिचयार्थ हम एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूल—'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥१९॥
मानहु मदन दुंदुभि दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कह कीन्ही ॥२०॥
अस कहि पुनि चितये तेहि ओरा। सियमुख ससि भये नयन चकोरा ॥२१॥

अर्थ—'हाथ हाले पर पहुँचो मैं लागे ते कंकण मे मधुर शब्द होत किंकिणी कटि मे हाले पर ताहू मैं मधुर शब्द होत तोकि हूँ मिलि जो धुनि होति ताको गुनि श्री रघुनाथ जी हृदय मे गुनि रसको उद्दीपन विभाव विचारि ताको उत्प्रेक्षा लक्ष्मण जी ते कहत ॥१९॥ दुन्दुभी कहे डंका तामे तीनि शब्द होत प्रथम बार धुधुर-धुधुर धीरा शब्द होत सो कंकण अरु किंकिणी के मधुर शब्द हैं अरु तीसरा धुम गम्भीर शब्द सो नूपुर को गभीर शब्द है तीनिहूँ मिलि कैसो धुनि होति सो मानो मदन कामदेव न दुन्दुभी दीन्हें किम हेतु विश्व जो संसार ताके विजय कहे जीतने की मनसा कीन ता हेतु धनुरंगिणी सेना साजे यथा त्रिविध पवन गज हैं, बड़े पुष्प फूले बाजी है गुल्म लता पैदर है सपल्लव रमानादि रथ है, बसंत सेना पति हैं ताते या समय मदन वीर अजित है भाव मेरा भी धीर्य गया सो युद्ध करि यशो पराजय सही ताते मैं ता सधि करत हो ॥२०॥ ऐसा पूर्व वचन कहि सिद्धरिकै स्वहि जानकी जी की ओर चितये भाव मान तजि

१. वही, उत्तर कांड की पुष्पिका।

हाजिर भए ताते सिममुख पूण श श सम अवलोकत मे प्रभु के नयन चकोर भए अर्थात् पलक रहित यकटक अवलोकन मे लगे यह परस्पर अवलोकन सो आलबन विभाव है सियमुख पूणचन्द्र कहने को भाव किशोरी जी के नेत्र अरु मुख की ज्योति पूर्ववत् जैसी की तैसी बनी रही अरु राजकुमार को सात्विक आयो ताते पूव ही परास्त भये सो चद्र चकोर लभण ते प्रसिद्ध कि चकोर ही आसवत चन्द्रमा नही ।।२१।।' उपर्युक्त उद्धरण की टीका देखने से यह बडे हो स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है कि वैजनाथ जी ने शृ गार रस से आप्लावित इन अद्धालियो की बडी ही विस्तृत एव विशद व्याख्या की है। टीका कार ने अपनी इस व्याख्या मे शृ गार रस के अग उपागो का भी निदर्शन कराया है। टीका मे उसने भगवान राम को अखिल भुवन मोहिनी सीता की सुन्दरता से अभिभूत दिखाया है। सर्वशक्तिमान परमेश्वर (राम) शक्ति की अधिष्ठात्री देवी आदिशक्ति सीता से ही पराभूत हो सकता है, मधुरा भक्ति की इस गूढ भावना को टीकाकार ने बडी ही विशदता से समझाया है।

टीका की भाषा ब्रज गद्य है, परन्तु उसमे अवधी शब्दो का प्रचुर प्रयोग भली भाति दृष्टिगत होता है। उदाहरणाथ उद्धरण मे आये 'कहत, 'चितये' एव कीन' सदृश क्रियापद इस दृष्टि से दशनीय हैं। भाषा म पडिताऊपन की झलक भी मिल जाती है। इस दृष्टि से उद्धरण में आये इस वाक्याश को देखा जा सकता है—विजय कहे (कहते हैं के अर्थ में) जीतन की मनसा कीन।

टीकाकार की शैली की सर्व प्रमुख विशेषता है विशदता और विस्तार। टीका कार ने सीता के ककण किंकिणी और नूपुरो के रव की मदन दुदुभी से की गयी उत्प्रेक्षा का, जो विस्तृत चमत्कारिक विश्लेषण किया है वह ध्यान देने योग्य है।

सजीवनी टीका
टीकाकार विद्या वारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र

प० ज्वाला प्रसाद जी मिश्र विक्रम की १९ वीं शताब्दी के मध्य के सर्वश्रेष्ठ वाग्मियो एव विद्वानो मे गण्यमान हैं। उनका नाम आज भी हिन्दी एव संस्कृत के साहित्य प्रेमियो के मध्य श्रद्धा एव सम्मानपूवक स्मरण किया जाता है।

पडित जी दीनदार पुरा मुरादाबाद के निवासी थे। आपके पिता का नाम प० सुखानद मिश्र था।[1] आप सस्कृत एव हिन्दी दोनो भाषाओ के अधिकारी विद्वान थे। आपको अग्र जी भाषा का भी साधारण ज्ञान था। पडित जी अपनी अद्वितीय वाग्मिता एव पाण्डित्य के लिए सवत्र स्यात थे। बडी-बडी समाओ मे आप कुशलतापूवक व्याख्यान करके अपने समस्त श्रोताओ को अभिभूत कर लिया करते थे। आप पक्के सनातन धर्मी

---

१ मिश्र सुखानद को सुवन म ज्वाला परसाद। दीनदयालपुर सुभग मुरादाबाद।६। सजीवनी टीका का मगलाचरण।

ब्राह्मण थे। आप उत्तर प्रदेश ही नहीं अपितु अन्य प्रदेशों में भी बड़े सम्मानपूर्वक धर्म समाओं एवं यज्ञों में प्रवचन के निमित्त बुलाये जाते थे।

पंडित जी ने हिन्दी एवं संस्कृत दोनों साहित्यों की अपूर्व सेवा की है। उनका आर्य समाजियों के विरुद्ध लिखा गया 'दयानंद तिमिर भास्कर' ग्रन्थ, आयुर्वेद का हिन्दी भाष्य, एवं कई पुराणों के भाष्य अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ हैं।[1] उन्होंने वाल्मीकि रामायण की टीका लिखी। हिन्दी के रामचरितमानस एवं बिहारी सतसई दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थों की टीका का भी प्रणयन किया। इनमें इनकी रामचरितमानस की संजीवनी टीका बड़ी ही लोकप्रिय हुई। इन्होंने रामचरितमानस का एक संस्करण भी तैयार किया था जो वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुआ था।[2] पंडित जी एक सफल नाटककार भी थे, आपने सीता बनवास नामक एक नाटक का प्रणयन किया था। इसके अतिरिक्त संस्कृत के वेणीसंहार एवं अभिज्ञान शाकुंतल सदृश श्रेष्ठ नाटकों के हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किये। आपने अनेक पुराणग्रन्थों का भी हिन्दी अनुवाद किया था।

संजीवनी टीका

विद्वद्वर पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत 'मानस की संजीवनी टीका 'मानस' के टीका-साहित्य के व्यास काल की एक प्रतिनिधि रचना है। संजीवनी टीका का रचना काल संवत् १९४८ विक्रमी है।[3] यह टीका बड़ी ही लोकप्रिय हुई। इस टीका के दमाधिक संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुए। इसका प्रथम प्रकाशन संवत् १९५० वि० में हुआ था। टीकाकार ने मानस के स्थलों का व्याख्यान भक्तिपरक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्वों का समन्वय करते हुए किया। टीका की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें एक ही व्याख्येय के भाँति भाँति के अर्थ चमत्कारिक एवं रुचिकर ढंग से किये गए हैं। इस कार्य को उसने अनेक व्यासों एवं टीकाकारों की छाया लेकर पूर्ण किया है कहीं कहीं तो उसने यह स्वयं व्यक्त भी किया है कि इस अर्द्धाली का किसी ने यह भी अर्थ किया है। पंडित जी ने अपनी 'मानस' की व्याख्यायें संस्कृत हिन्दी के ग्रन्थों के उद्धरणों से पुष्ट करके प्रस्तुत की हैं।

इस टीका की एक सर्वाधिक ध्यान देने योग्य विशेषता यह है कि टीकाकार ने बड़े उत्साह के साथ इसमें क्षेपकों को स्थान दिया है। इसमें लवकुश नामक एक आठवाँ कांड भी जोड़ दिया गया है। टीकाकार ने क्षेपकों का प्रबल रूप से समर्थन किया है। उसने

---

१ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास द्वारा अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, किताब महल, प्रयाग, प्र० सं०, पृ० ५१३।

२ पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास।

३ श्री संवत् वसु वेद ग्रह चन्द्र फाल्गुन मास।
शिवनेरस भृगुवासरे भाषि रत्न सुखरास ॥
संजीवनी टीका की पुष्पिका—११ वाँ संस्क० पृ० ११११।

अपनी टीका के द्वितीय संस्करण में क्षेपकों की संख्या में और अधिक वृद्धि कर दी। टीका में क्षेपक के मिश्रण के औचित्य पर स्वयं टीकाकार की निम्नांकित उक्ति ध्यान देने योग्य है— 'एक वर्ष पूरा भी न होते-होते सब पुस्तकें बिक गयीं और दूसरी बार इसके छापने की शीघ्रता से आवश्यकता हुई। अब की बार अच्छी प्रकार से संशोधन कर और कई रोचक कथा और मिला कर अर्थात् रावण-बाणासुर संवाद, रामकलेवा, महासंकल्प, वसिष्ठ जी का तेरह राजाओं का इतिहास कहना, जानकी जी का महावीर से पश्चाताप, रावण का सभाविचार, धूम्राक्षादि का मरण, मेघनाद की शक्ति और सुलोचना मिलने की कथा तथा लवकुश काड और माहात्म्य की भी टीका व कोष तथा राम शलाका प्रश्न संसार वृक्ष, महावीर को समंत्र मूर्ति मिलाकर इसकी शोभा दुगुनी बढ़ा दी है।"[1]

मिश्र जी का उक्त कथन संजीवनी टीका के स्वरूप के अतिरिक्त तत्कालीन क्षेपक एवं रुचिकर अर्थ-उपादानों से पूर्ण टीका के पाठकों तथा स्वयं टीकाकार की कौतूहलोत्पादक टीका-रचना पद्धति का परिचय देता है। संजीवनी टीका को पाठकों के मध्य अत्यधिक लोकप्रिय बनाने के हेतु उसमें गोस्वामी जी की जीवनी को सन्निविष्ट कर दिया गया है। इस रुचिकर टीका का खूब विक्रय एवं प्रचार-प्रसार जनता में हुआ। इसका पता इस तथ्य से चलता है कि ३०-३१ वर्षों के अल्पकाल में इस टीका के ११ संस्करण निकल चुके थे। वेंकटेश्वर प्रेस ने इस टीका से खूब धनोपार्जन किया, परन्तु आधुनिक काल में इसे पसंद नहीं किया जा रहा है, क्योंकि अब 'मानस' के पाठक अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत एवं सुशिक्षित कोटि के हो गये हैं। उन्हें व्यासों की अर्थ-शैली की रूढ़िपरक टीकाओं से उतना प्रेम नहीं रह गया है।

संजीवनी टीका की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव अधिक है, तथापि उसकी प्रवृत्ति पंडिताऊपन की ओर अधिक है। व्रज भाषा के शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं पर भाषा में व्याकरणिक दोष पाये जाते हैं। संजीवनी टीका का उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो उसके टीकात्मक स्वरूप को बोध कराने में पर्याप्त है।

मूल— 'मन वच कर्म सो यत्न विचारेहु।
रामचन्द्र कर काज सवारेहु॥'
भानु पीठि सेइय उर आगी।
स्वामी सेइय सब छल त्यागी॥

मन वचन कर्म से सोई यत्न विचारो कि रघुनाथ जी कार्य जिस्से सम्पूर्ण हो जाय। सूर्य पीठ से सेइये और अग्नि उर से सेइये और स्वामी को आगे पीछे छल छोड़कर सेइये क्योंकि सूर्य के साथ आगे का कपट अग्नि के साथ पीछे का कपट लगा है, दूसरा अर्थ यह कि बाहर का छल कपट रघुनाथ जी सूर्य होकर देखते और अन्त करण का छल कपट अग्नि होकर देखते हैं। इस कारण छल कपट छोड़ कर रघुनाथ का काम

१. संजीवनी टीका के द्वितीय संस्करण की पं० ज्वाला प्रसाद जी कृत भूमिका।

करना, (यथा स्तवराजे सूर्यं मंडल मध्यस्थं राम सीता समन्वितम् और अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिना देहमाश्रित गीतायां प्रमिदम्। अथवा जैसे सूर्य छल कपट को छोड़ पीठ अर्थात् मार्ग सेवते हैं और अग्नि जैसे छल कपट को छोड़ अनस सेवते हैं क्योंकि जो सूर्य सावधानी न रखें तो रातदिन मे अन्तर पड़ जाय और अग्नि छलकपट रखे तो अन्न न पचे देह जर जाय ऐसे ही सावधान होकर तुम रघुनाथजी को सेवना अथवा सुग्रीव रघुनाथ जी की गौरवता दिखाते हैं कि यह भानु पीठ है—भानु है पंठ जिनकी सो यह रवि वशी हमारे उर आगी कह्यो सन्मुख स्थित है इन्हें छल छोड़ सेइये, अथवा इनको तपस्वी मत जानो यह भानुके पीठ हैं सूर्य भी इनमे उपजा है जो हमारे उर आग अर्थात् प्रत्यक्ष है अथवा पीठ आतशी शीशा होता है, सूर्य के सन्मुख करते ही उसम अग्नि प्रगट हो जाती है परन्तु जा उसम सूर्य की किरणें गोलबिन्दु सम सीधी पड़ें तो अग्नि निकले नहीं तो टेढ़ा रखने नहीं निकलती सूघी से अग्नि निकाला चाहे जितना कार्य कर लो, उसमे सन्मुख हुए स सूर्य अग्नि देकर कार्य करते हैं, अग्नि तो सूय देते हैं नाम चश्मे का होता है। इसी प्रकार जो तुम छल कपट छोड़ कार्य करोगे तो रघुनाथ जी कार्य तो आप बना लेंगे तुम केवल निमित्त मात्र हो बड़ाई के योग्य होगे।[१]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि जिस प्रकार टीकाकार ने 'मूल' के पदों को हेर-फेर करके उनसे विविध प्रकार के मनोभीप्सित अर्थ निकाले हैं। उनका प्रथम अर्थ कुछ युक्ति परक है, परन्तु अन्य अर्थ तो मात्र चमत्कारिक एव कौतूहलोत्पादक ही हैं। टीकाकार ने जहाँ अपने एक अर्थ को सिद्ध करने के लिए गीता के श्लोक का सहारा लिया है वहीं दूसरे अर्थ के सिद्धयर्थ उसने आतशी शीशे के वैज्ञानिक एवं चमत्कारिक रूप का भी आश्रय लेकर उससे मनोनुकूल अर्थ निकाला है।

टीका की भाषा यद्यपि खड़ी बोली से अत्यधिक रूप से प्रभावित है, परन्तु वह विशुद्ध रूप से खड़ी बोली नहीं कही जा सकती है। उदाहरणार्थ 'कह्यो' शब्द ब्रज बोली का है। इसके अतिरिक्त उद्धरण मे प्रयुक्त सेइये, इन्हें तो शब्द भाषा मे पंडिताऊपन की विद्यमानता का परिलक्षित करते हैं। उद्धरण मे टीकाकार ने 'अग्नि' शब्द का प्रयोग पुल्लिंगवत् किया है, परन्तु हिन्दी म यह शब्द स्त्री लिंग के रूप म प्रयुक्त हाता है। साथ ही उसम प्रयुक्त शब्द 'गौरव' की भाववाचक संज्ञा 'गौरवता' नही है, अपितु मात्र 'गौरव' हा यहाँ 'गौरवता' का अर्थ दे रहा है।

'मानस' के 'फुलवाई' प्रसंग की टीका
टीकाकार—श्री कामदअली जी

आज से लगभग ६०-७० वर्ष पूर्व श्री कामद अली जी वर्तमान थे। आप का आश्रम बड़ैया (मुंगेर) के समीप ही था। आप मधुर भाव से भगवान् राम की उपासना करते थे। भगवती सीता आपकी परम अराध्या थीं। कामदअलीजो बड़ैया के वर्तमान

१. संजीवनी टीका, एकादश संस्करण, पृ० ६४७-४८।

रामायणी बाबू नीलकंठ जी के गुरु बाबू गया सिंह जी के 'मानस'-गुरु थे। आपने 'मानस के फुलवाई' प्रसंग की एक भावपूर्ण टीका लिखी थी, जिसकी प्रतिलिपि कालान्तर में बाबू गया प्रसाद जी ने करवाई थी। जैसा कि आगे बताया जायगा कि टीका का प्रतिलिपिकाल संवत् १६५३ वि० है। इसका तात्पर्य यह निकला कि कामदअली जी विक्रम की १६वीं शती के पूर्वार्द्ध टीकाकार हैं।

टीका—कामद अली जी कृत 'मानस फुलवाई' प्रसंग की अनुलिपि की समाप्ति वि० संवत् १६५३ की फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को हुई।[1] इससे प्रतीत होता है कि जब इस टीका की रचना संवत् १६५० वि० है, तो उसके पूर्व ही समाप्त हो गयी रही होगी। यह टीका हाथ के बने मोटे कागज पर काली चटकीली स्याही से लिखी गयी है। कागज की लम्बाई-चौड़ाई १६ × ८॥ इंच है। टीकाकलेवर कुल ४६ पन्नों में विस्तृत है। टीका के प्रत्येक पृष्ठ पर प्राय १२ पंक्तियाँ लिखित हैं प्रत्येक पंक्ति में ५०-५५ अक्षर तक मिलते हैं।

कामदअली जी ने टीका में प्रथमत अक्षरार्थ किया है, इसके पश्चात् यथापेक्षित भावार्थ भी दे दिया है। प्रसंग विशेष में आये हुए अलंकारों का भी निर्देश कर दिया गया है। टीकाकार के अर्थ करने की रीति व्यासों की कथावाचकी शैली के अनुरूप है। यद्यपि इस टीका की भाषा ब्रज है, तथापि उसमें खड़ी बोली के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। अवधी का भी पुट मिलता है। इसमें अरबी-फारसी शब्द भी प्रयुक्त हैं। इन समस्त विशेषताओं का परिचायक एक उद्धरण, यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करत मधुप इव पान॥

टीका—बतकही अनुज सो करत है मन सिय रूप में लोमान है, सिख मुष छविमकरंद को मधुप इव पान करत है॥ इति अक्षरार्थ०॥ भाव तब कहि अनेक बातन कहनी॥ तात जनक तन्या सह सोई॥ यह बात की आदि ते नर वर थोरे जगमाही॥ यह अंत है यही के मध्य में अनेक बतकहि कहत है॥ मन सिय रूप लोमान है ता हेतु ते मुष सरोज मकरद को छवि को मधुप बत पान कर त्रप्तित हैं॥ मात यह को जब मध्य, मकरंद पात हेत सरोज पर बैठत तब चुप ह्वै कै रहत है। जब पान करत छोड़ि देत तब मंद मंद गुंजत सरोज सनिधि मंडल करत फिरत हैं। ऐसे श्री रघुनाथ जी को मन छवि पान करै हैत बैठि जाता है॥ सिय मुष सरोज पै मकरद पान करती वषत चुप ह्वै जात है॥ जब छवि पान करिकै मन उपराम पातत हैं॥ तब अनुज सो बतकही करत है। मन बदन से निधि मंडल करत फिरत है॥ संका॥ मधुप सरोजन पर श्री रघुनाथ पर फेरि बैठत फिरि उड़त है एक बारगी पान नाही करता॥ यह कैसे

---

[1]. कामदअली जी का टीका की (हस्तलिखित) प्रतिलिपि पत्रा सं० ४६।

बनै ॥ उत्तर ॥ अति सै प्रीति कीने सरोज सो मधुप हैं। सो कोमलता देखि कै भेद होते भय से फिरि फिरि छोडि छोडि देत हैं। मकरंद स्वाद पान के लोभ से फिरि बैठत है ऐसे श्री रघुनाथ के मन का श्री जानकी बदन कमल के साथ व्यवहार है। फिर रूपकहूँ कर भाव श्री राजपुत्री दर सहेत संतप्त राजपुत्र को मन ताको सीतल करि दीन है जो रूप ने एहि प्रसंग म श्री राजपुत्री मुख चन्द्र कहा मन को मधुर कहा है भाव शरीर निज मुख मंडल सहित है। मधुपान कर केवल मुख है। और भाव राम रसिक जन जानहिं। १२७।[1]

उपर्युक्त अर्थ व्यास शैली, की अर्थ पद्धति के अनुरूप है। टीकाकार ने उक्त दोहे की टीका करते हुए भ्रमर रूप श्री राम के बार बार मातामुख अवलोकन के भाव को लेकर उस पर शंका उपस्थित करते हुए समाधान के रूप में बड़ा ही कुतूहलोत्पादक समाधान दिया है। सीता की कोमलता के प्रदर्शन को कितनी सुन्दर रीति इस बहाने से निकाली गयी है। टीका की भाषा प्रधान व्रज गद्य है परन्तु उसमें आये हुए 'बातन', सोमान, फिरि फिरि शब्दों के अतिरिक्त 'कीन' एवं 'जानहिं' सदृश क्रिया पद भी अवधी के ही हैं। टीकाकार की शैली व्यासों की कथावाचक पद्धति की है। टीकाकार ने व्याख्या के शंका-समाधान तत्व का भी आश्रय लिया है।

पीयूषधारा टीका
टीकाकार : रामेश्वर भट्ट

श्री रामेश्वर जी भट्ट भारतेन्दु कालीन सुप्रसिद्ध साहित्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त के समकालीन थे। गुप्त जी सरजार्ज ग्रियर्सन एवं श्री श्रीधर पाठक सदृश साहित्यकार आपके प्रशंसक एवं मित्र थे। आप आगरा के निवासी थे। आपके पिता का नाम श्री बाल मुकुन्द भट्ट था। श्री सर ए० टाम्सन नामक एक अंग्रेज अधिकारी की अनुकम्पा से आप राजकीय संस्कृत विद्यालय के अध्यापक हो गए थे।[2] आप अपने समय के रामचरित मानस के परम रसज्ञ विद्वानों में से थे। आपने 'मानस' का विविध प्रामाणिक प्रतियों से शोध कर स्वयं 'मानस' का एक एक संस्करण संवत १९५३ वि० को निकाला था, जो निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् निर्णय सागर प्रेस के ही तत्कालीन अधिष्ठाता श्री तुलाराम जावजी की प्रेरणा से आपने 'मानस' का एक सटीक संस्करण निकाला था। इन सभी संस्करणों की तत्कालीन प्रसिद्ध साहित्यज्ञ एवं भाषाविद जार्ज ग्रियर्सन ने बड़ी सराहना की थी।[3] इन्होंने पीयूषधारा के पश्चात् अपने बनकर अपने साहित्यिक मित्रों के आग्रहवश 'मानस' की एक क्षेपक रहित, विशुद्ध साहित्यिक

---

१. वामदेवजी जी कृत 'पुत्रावाई प्रसंग की टीका' की हस्तलिखित प्रतिलिपि—पत्र संख्या—२६।

२ अमृत लहरी की टीका की भूमिका।

३. पियूषधारा टीका की अन्तिम पुष्पिका।

दृष्टि से टीका लिखी, जिसका प्रकाशन बहुत बाद मे हुआ। इसका नाम अमृतलहरी था। इसके विषय में हम अगले अध्याय मे आधुनिक काल की टीकाओ का परिचय देते समय यथा स्थान विचार करेंगे। इनकी दूसरी टीका अमृत लहरी की भूमिका के लेखक इनके पुत्र श्री ऋणीश्वरनाथ भट्ट के उल्लेख से पता चलता है कि श्री रामेश्वर भट्ट जी का देहान्त सवत् १९८३ वि० के कुछ पूर्व हो गया था। श्री ऋणीश्वरनाथ भट्ट ने अमृत लहरी टीका की भूमिका मे ऐसा लिखा है कि पिता जी की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही १९२६ ई० में हमने टीका की कापी प्रेस को दे दी।' अतएव यह सिद्ध हो जाता है कि भट्टजी की मृत्यु सन् १९२६ ई० के कुछ दिनो पूर्व ही हुई थी।

पीयूषधारा टीका—

श्री रामेश्वर जी भट्ट कृत पीयूषधारा टीका 'मानस' के टीका-साहित्य के मध्य-काल की एक विशिष्ट टीका है। यह टीका इस काल के अंतिम वर्षों मे लिखी गयी थी। इस प्रकार यह मध्यकाल की अन्तिम टीकाओ मे गिनी जानी चाहिए। अतएव पीयूषधारा टीका के अन्तर्गत बदलते हुए युग की परिस्थितियो का प्रभाव पडा है। उसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन घटित हुए हैं। टीका मे व्यास युग के पाठकों की माँग के अनुसार क्षेपको एवं कथा कहानियो का सन्निवेश तो किया गया है परन्तु टीकाकार ने अपनी टीका को चमत्कारिक कुतूहल परक व्याख्याओं से बचाया है। इसके स्थान पर उसने सुशिक्षितो एवं साहित्यकारो के परिष्कृत रुचि को भी ध्यान मे रखते हुए 'मानस' के व्याख्येयों का साहित्यिक अर्थ-पद्धति का सहारा लिया है। उन्होंने तो टीका को सर्वथा क्षेपक विहीन बनाया होता, परन्तु वे स्वयं अपने सुहृद-प्रकाशक श्री तुलाराम जावजी के आग्रह से टीका को क्षेपको से युक्त करने के लिए विवश हो गये थे।[१]

पीयूषधारा टीका का प्रणयन सवत् १९५५ वि० के फाल्गुनमास मे सम्पन्न हुआ था।[२] इसका प्रथम संस्करण सं० १९५६ वि० मे निर्णय सागर प्रेस (बम्बई) मे निकला था। इसी प्रेस से संवत् १९९५ तक इस टीका के कुल सात संस्करण निकल चुके थे। ज्वाला प्रसाद जी मिश्र की सजीवनी टीका की भाँति इसमे भी क्षेपक भरे पडे हैं। यहाँ तक कि 'मानस' मे लवकुश नामक आठवा काड भी जोड दिया गया है। इसके अतिरिक्त टीका को अधिक उपयोगी बनाने तथा इसका विक्रय बढाने के लिए इसमे तुलसीदास की विस्तृत जीवनी, रामायण महात्म्य, रामवनवासतिथि पत्र, हनुमान चालीसा तथा वैराग्य संदीपनी आदि रचनायें भी जोड दी गयी है। लवकुश काड सहित इस टीका

---

१. वही।

२ पीयूषधारा टीका के स्वयं भट्ट जी कृत भूमिका।

३ पंच-पंच नव शुक्र के नयन समासम जानि।
फाल्गुन मास सुपक्ष मह टीका करी बखानि॥
—पीयूषधारा टीका के उत्तरकाड की पुष्पिका।

का कलेवर १००८ पृष्ठों का है। जैसा ऊपर बता दिया गया है कि टीकाकार 'मानस' की सरल एवं सुस्पष्ट टीका रचने का पक्षपाती है। उसे व्यासो की चमत्कारिक अर्थ पद्धति तनिक भी पसंद नहीं है। इस सम्बन्ध में उसका यह कथन सर्वथा ध्यान देने योग्य है—'जो अर्थ विशेष दर सादा है परन्तु अक्षरों की खींचातानी करके बहुत से लोग झूठे कपोल कल्पित अर्थ करते हैं वे इस टीका में नहीं मिलेंगे। कारण गोसाईं जी का अभिमत तो एक ही अर्थ से है और कूट अर्थ रामायण में पाया नहीं जाता।'[1]

टीकाकार का उपर्युक्त कथन उसकी टीका की तात्विक विशेषताओं का सच्चा निदर्शक है। इस उद्धरण द्वारा तत्कालीन अन्य टीकाकारों की चमत्कारिक अर्थ पद्धति का भी सांकेतिक परिचय मिल जाता है। टीकाकारा ने मूल का प्राय सरलार्थ हो दिया है। यदि उसमे कोई व्याख्या-सापेक्ष वस्तु रही तो पाद टिप्पणी मे उस पर प्रकाश डाल दिया गया है। व्याख्येय में आये अलंकारों का भी टीका में निर्देश यथास्थान कर दिया गया है।

मूल— 'बंदौ गुरु पद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर॥'

अर्थ—'गुरु के चरण कमलो की वंदना करता हूँ कि जो कृपा के समुद्र और मनुष्य देह धारण किये विष्णु रूप हैं और महा अज्ञान मानो अंधकार है, उसके समूह को दूर करने के लिए जिनके बचन सूर्य की किरणो के समान है, अर्थात् जैसे सूर्य की किरणो से अंधेरा मिट जाता है तैसे ही गुरु के उपदेश से हृदय का अज्ञान भी मिट जाता है। अलंकार-दृष्टान्त।'[2]

टीकाकार ने उपर्युक्त सोरठे की प्रसंगानुकूल सीधी सी व्याख्या कर दी है। उसने रूपक का सुस्पष्ट विश्लेषण भी टीका की अंतिम पंक्तियों में 'अर्थात्' शब्द लगा कर कर दिया है। यहाँ पर रूपक अलंकार स्पष्ट है, परन्तु टीकाकार ने 'दृष्टान्त' माना है।

टीकाकार की भाषा में शैथिल्य है। उसका वाक्य विन्यास दोषपूर्ण और भद्दा है। उदाहरणार्थ पहले उद्धरण में प्रयुक्त 'मूल पर से' में पर व्यर्थ है, साथ ही उसके अगले वाक्यांश म 'कुछ विशेष' के साथ 'भी' का प्रयोग भी अनावश्यक है। इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में 'कि जो' संयोजक का प्रयोग भी दोषपूर्ण है।

प्रकरण ५

'मानस' की स्वच्छन्द (धारा की) टीकाएं

इस कोटि में हमने उन 'मानस' टीकाओं को रखा है, जो व्याख्या शैली एव भाषा की दृष्टि से या अन्य विशेष दृष्टियो से 'मानस' के टीका-साहित्य के व्यापक धार

---

१ पीयूषधारा टीका की टीकाकार कृत भूमिका।
२ पीयूषधारा टीका, सप्तम संस्करण, पृ० ३।

के अन्य टीकात्मक ग्रन्थों से भिन्न प्रतीत होती हैं। इस दृष्टि से 'मानस' की दो टीकात्मक रचनायें हमें प्राप्त हुईं, प्रथम है श्री शुकदेव लाल मैनपुरी कृत मानस हंस टीका और दूसरी है स्वामी हरिदास जी कृत 'शीला' नामक वृत्ति। यहाँ हम ऐतिहासिक क्रम से इन दोनों टीकाओं का विवेचनात्मक परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

मानसहंस टीका :
टीकाकार : श्री शुकदेवलाल 'मैनपुरी'

श्री शुकदेव लाल मैनपुरी विक्रम की १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सुप्रसिद्ध 'मानस-टीकाकार हैं। ये मैनपुरी एटा के निवासी थे। ये जाति के कायस्थ थे। ये रामानुजीय वैष्णव सम्प्रदाय के वैष्णव थे। इन्होंने अपनी टीका के आरम्भ में स्वामी रामानुज का स्तवन भी अपने साम्प्रदायिक आचार्य के रूप में किया है। साथ ही इनकी टीका भी रामानुजीय विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय से प्रभावित है।

उनकी टीका को देखने से पता चलता है कि वे एक सुशिक्षित एवं प्रबुद्ध 'मानस'-मर्मज्ञ थे। वे 'मानस' में आये हुए क्षेपकों के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने 'मानस' से सम्पूर्ण क्षेपकों को निकालने का यथासंभव प्रयास किया है।

मानस टीका :

'मानस' के मध्यकालीन टीका-साहित्य के अन्तर्गत श्री शुकदेवलाल मैनपुरी कृत 'मानसहंस' टीका अपना निराला ही स्थान रखती है। इस टीका में तत्कालीन टीका-रचना की प्रधानतम प्रवृत्ति व्यासों की कथावाचकों शैली की चमत्कारिक अनुरंजक अर्थ-पद्धति का सर्वथा अभाव है। टीकाकार ने क्षेपक तथा कहानी-चुटकुलों को अपनी टीका में स्थान नहीं दिया है। उसने अपनी टीका की उत्तरकांड की पुष्पिका में स्पष्टतः कहा है कि *'मैंने हंस नाम्नी इस टीका का प्रणयन नीर-क्षीर विवेक न्याय से 'मानस' का व्याख्यान करने के लिए किया है।'*

मानसहंस टीका रामचरित मानस के सप्तकांडों की टीका है। इसका रचनाकाल संवत् १६२५ विक्रमी है।[1] *इसका प्रथम संस्करण, जो सम्प्रति अनुपलब्ध है,* सम्भवत सन् १६२५ के लगभग प्रकाशित हुआ था, क्योंकि चतुर्थ संस्करण (सं० १६४५ वि०) के मुख पृष्ठ पर ऐसा उल्लिखित है कि इस टीका के प्रकाशित करने का स्वाधिकार प्रकाशक ने सन् १८६७ ई० में ले लिया था। इससे व्यक्त होता है कि इस टीका का प्रकाशन संवत् १६२५ वि० के लगभग हो गया था। ऊपर के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि संवत् १०२५ वि० से लेकर सं० १६४५ वि० को २० वर्षों की अल्प अवधि में 'मानसहंस' टीका के चार संस्करण नवलकिशोर प्रेस से निकल चुके थे। इससे इस टीका के प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रियता का पता चलता है।

मानसहंस टीका की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि टीकाकार ने समस्त 'मानस'

---

१. मानसहंस टीका का मुख पृष्ठ।

के छन्दों की पुनर्व्यवस्था अपने ढंग से कर दी है। उसने 'मानस' के समस्त कांडो में आठ-आठ अर्धालियो के पश्चात् दोहा रखने का क्रम चलाया है। एवं ऐसे ही २५ दोहो के पश्चात् एक छन्द एवं एक सोरठे को रखा है। उसने अपनी टीका की भूमिका मे बड़े विस्तार से 'मानस' के छन्दों के पुनर्व्यवस्था पर विवेचन प्रस्तुत किया है। उसने वहां स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं यह व्यवस्था 'मानस' कार द्वारा बालकांड के सीता स्वयंवर से लेकर अयोध्या कांड के अन्त तक की सुव्यवस्थित एवं क्रमिक छन्द स्थापना के ही अनुकूल कर रहा हूं। टीकाकार के अनुसार 'मानस' के उक्त स्थलों में छन्दों का क्रम जैसा उसने ऊपर कहा है वैसा ही है।

टीकाकार ने अपने पूर्ववर्ती सभी टीकाओ एवं 'मानस' संस्करणो को क्षेपक युक्त बताते हुए उन्हे अशुद्ध घोषित किया और यह दावा किया है कि मैं अपनी टीका मे 'मानस' की उन्ही प्रामाणिक पंक्तियो को रख रहा हूँ, जो कवि की रचना-शैली के सर्वथा अनुकूल हैं एवं जिनसे काव्य का सौन्दर्य वर्द्धित हो रहा है। परन्तु क्षेपक निष्कासन की अपनी इस धुन मे उसने 'मानस' की बहुत सी तात्विक और मूल्यवान पंक्तियों को क्षेपक घोषित कर दिया है और उन्हें अपनी टीका से निष्कासित कर दिया है। उदाहरणार्थ राम विवाह प्रकरण के सिन्दूर दान की सुन्दर तम झांकी प्रस्तुत करनेवाली परम अपेक्षित एवं सौन्दर्य शालिनी पंक्तियो को उन्होंने क्षेपक मानकर अपनी टीका म स्थान नहीं दिया है। इसी प्रकार बालिवध प्रकरण (किष्किंधा कांड) की बहुत सी काव्य पंक्तियों को अपनी टीका से निकाल दिया है।

टीकाकार ने अपनी ओर से कुछ ऐसी भी अर्धालियो को 'मानस' मे जोड़ दिया है, जो प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती और वे 'मानस' के प्रसंग विशेष के साथ सटीक बैठती भी नहीं। उदाहरणार्थ किष्किंधा कांड के अन्तर्गत मानसहंसकार द्वारा जोड़ी हुई इन पंक्तियों को देखा जा सकता है—

किष्किंधा कांड की दोहा-संख्या के अन्तर्गत आने वाली अर्द्धालिया 'तब मैं मन महुँ कीन्ह बिचारा। छलि बल प्रबल बालि कहँ मारा।' और 'पंपासर आयउँ ततारा। तन व्याकुल मन बहुत बिहाला।'[1] ये पंक्तियां 'मानस' के किसी भी प्रामाणिक संस्करण में नहीं मिलती हैं और मानसकार के रचना-कौशल की झलक भी नहीं मिलती।

मानसहंसकार ने 'मानस' के व्याख्येय अंशो का विस्तृत व्याख्यान नहीं किया है। उसने उनका प्रायः अक्षरार्थ ही किया है, कहीं-कहीं विशेषत भक्तिपरक स्थलो का विस्तृत व्याख्यान प्रस्तुत किया है। इस तथ्य पर हम तृतीय खंड के प्रथम अध्याय में यथा स्थान विचार करेंगे।

टीकाकार की व्याख्या शैली सरल सुस्पष्ट है। भाषा खड़ी बोली गद्य है। उसमे तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर भाषा मे व्यासों की कथा-वाचकी शैली का प्रभाव दिखाई देता है। मानसहंस टीका मे एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत

१ मानसहंस, ष० सं० पृ० ११ (किष्किंधा कांड)।

किया जा रहा है —

मूल— श्री गुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।५।
दलन मोह तम सोसु प्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ।६।
उघरहिं विमल विलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।७।
सूझहिं रामचरित मनि मनि मनिका गुपुत प्रगट जो जेहि खानिक ।८।
जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं हौरा अन, भूतल भूरि निधान ।१।

अर्थ—'उनके नखो की मणिगणो के समान ज्योति के स्मरण करते ही हृदय मे दिव्य दृष्टि होती है ।५। उनका सुन्दर प्रकाश मोहतम को नाश करता है और बड़े भाग जिनके हृदय मे आवे ।६। उसके आते ही हृदय के नेत्र खुलि जाते हैं और अज्ञान रात्रि रूपी अंधेरा दूर होता है । । तब तो समस्त रामचरित्र मणि माणिक सूझने लगते हैं गुप्त और प्रकट जहा जेहि खानि के हैं ।'[1]

यहाँ उपर्युक्त व्याख्येय का सरल सुस्पष्ट अर्थ किया गया है । भाषा खड़ी बोली है इसमे ज्योति, हृदय, दिव्य, दृष्टि, अज्ञान, गुप्त इत्यादि तत्सम शब्दो का प्रयोग हुआ है । अर्थ शैली मे तो चमत्कारिकता नहीं है । व्यासो की कथावाचकी शैली का भाषा पर प्रभाव अवश्य देखा जा सकता है । उक्त उद्धरण मे आये हुए 'और बड़े भाग जिसके हृदय मे आवे' तथा 'नेत्र खुलि जाते हैं' वाक्यांश इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं ।

शीला वृत्ति वृत्तिकार-स्वामी हरिदास जी

स्वामी हरिदास जी का जन्म राय बरेली जिले के अन्तर्गत सुरपुर उर्फ बलना ग्राम के अन्तर्गत हुआ था । आप जाति के क्षत्रिय थे । आपके पितामह का नाम श्री सुख साहि और पिता का नाम श्री लाल साहि था । कुछ दिनों तक आपने गृहस्थी संभाली परन्तु कालान्तर मे विरक्त हो गये । आपने अपना आश्रम अपनी जन्मभूमि के निकट ही बनाया था । आप भगवान् का गुप्त भजन किया करते थे, बड़े नामानुरागी थे । आपको रात्रि भर जाग कर भजन करने का अभ्यास था । आप श्री सीताराम (युगल सरकार) के मधुरोपासना भक्त थे । श्री चारु शीला जी के ऊपर विग्रह श्री अघुमान जी मे भी आपकी प्रबल निष्ठा थी । भगवान् राम की विहार-स्थली अयोध्या के प्रति आपकी बड़ी ही पूज्य भावना थी । आप प्रति वर्ष श्री अवध का दर्शन करने आते थे । आपकी १०० वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त थी । स्वामी जी का साकेतवास विक्रम सवत् १६७४ की चैत्र कृष्ण तृतीया को हुआ था ।[2]

सत हरिदास जी ने 'मानस' पर शीला वृत्ति नामक बड़ी ही विलक्षण टीका-

---

१. 'मानस' के प्राचीन टीकाकार शीर्षक लेख–मानसांक, कल्याण ।

२. श्री औसानदास कृत स्वामी हरिदास जी की जीवनी-शीलावृत्ति, द्वि० सं० ।

त्मक ग्रन्थ लिखा था। आप एक अच्छे भक्त कवि थे। 'मसल विवेक' नामक एक छोटा सा मुक्तक काव्य आपने लिखा था, जो आपकी टीका शीला वृत्ति के ही साथ (परिशिष्ट रूप में) छपा है।

शीलावृत्ति टीका—

स्वामी हरिदास जी कृत शीला नामक वृत्ति का रचनाकार अज्ञात है परन्तु मेरा अनुमान है कि इसका प्रणयन संवत् १९६० के लगभग ही पूर्ण हो गया होगा क्योंकि इसका एक संस्करण स्वामी जी के जीवन काल (मृत्यु संवत् १९७४) में ही पूर्ण हो गया था। टीका का स्वरूप भी व्यास कालीन टीकाओं के अनुरूप है। इसका द्वितीय संस्करण श्री गौरीशंकर लाल शाह के द्वारा शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुआ था।

शीला वृत्ति मानस में सप्त काडों की व्याख्या है परन्तु इस में 'मानस' के प्रत्येक पद का अर्थ नहीं किया गया है। वरन् 'मानस' के कुछ मनपसंद व्याख्येय स्थलों की ही टीका की है। प्राय टीकाकार ने भक्ति तत्वोन्मेषक स्थलों की ही व्याख्या की है। वह प्राय मानस के साहित्यिक व्याख्या तत्वों की टीका करने में प्रवृत्त ही नहीं नहीं हुआ।

वह राम चरित मानस के सप्त काडों को स्वर्ग की निसेनी मानता था।[1] फलत उसने इस आध्यात्मिक निसेनी की टीका भी अध्यात्म या भक्ति परक ही की है। उसके व्याख्यान निराले ढंग के हैं। इसीसे हमने इसे स्वच्छन्द कोटि की मानस टीकाओं के प्रकरण में स्थान दिया है।

शीला वृत्ति में 'व्यास' शैली का प्राधान्य है क्योंकि शीलावृत्तिकार ने अपने मनोनुकूल आध्यात्मिक भावों के व्यंजनार्थ व्यास शैली का ही आश्रय लिया है। शीला-वृत्ति की भाषा ब्रज गद्य है। इस पर पंडिताऊपन की छाप है। इस टीकात्मक रचना का एक उद्धरण दर्शनीय है—

मूल—'सुनि सप्रेम समुभाव निषादू। नाथ करिय कत बादि बिषादू।'

अर्थ—'श्री भरत जी शृंगबेर आय सीताराम जी को कुश साथरी देखि निज दोष समुझि बिरह वश अति दु खी भये, तब निषादराज प्रेम युक्त समुझवने लगे कि हे नाथ कत विषाद करत हौं, विषाद करनो वृथा है, यह अर्थ है पराग रूप, पुन भाव मकरन्द रूप सुनो विषाद नाम को भाव यह है निश्चय की नाम है अरु 'षा' आकाश को नाम है दू दूइ नाम है स आकाश में दुइ की निश्चय वृथा है, गन अरु सन्त की अन्तर है सो वृथा है तैसे ही आप आकाशवत विष्णु रूप भक्त इति भद्रिमा अन्त जाको ताको निज दोष समुझि शोच करना ठीक नहीं है 'राम तुम्हहि प्रिय तुम प्रिय रामहि।[2]

---

१ बालकांड की पुष्पिका।

१. शीला वृत्ति द्वि० सं० स० पृ० ३३ (अयोध्या कांड)।

उपर्युक्त उद्धरण में वृत्तिकार ने 'विपाद्' का अर्थ अनंत निर्मल आकाश करते हुए भरत को विष्णु का अवतार मानते हुए आकाशवत् मल रहित अनन्त महिमा शाली सिद्ध किया है। इस प्रकार उसने निषाद राज के उक्त कथन का आध्यात्मिक तात्पर्य दिखाना है। यहा उसने भरत (भरण पोषण करनेवाले) का ऐश्वर्यमय (विष्णु) रूप चित्रित किया है। वृत्तिकार ने उक्त व्याख्या मे पद विशेष के विभिन्न अक्षरो का भिन्न भिन्न अर्थ करने की 'व्यास' पद्धति की चमत्कारिक अर्थ शैली को अपनाया है। उपर्युक्त उद्धरण के अन्तर्गत मूल के 'विषाद' शब्द की चमत्कारिक व्याख्या दर्शनीय है।

इस प्रकार यहा 'मानस' के टीका साहित्य के मध्यकाल का ऐतिहासिक विवेचन समाप्त हो जाता है।

'मानस' टीका साहित्य का आधुनिक काल
(संवत् १९५७ वि० से आज तक)

सामान्य-परिचय

हमने 'मानस' के टीका साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम ईसा की बीसवी शती के प्रथम वर्ष से माना है। ईस्वी सन् १९०० तक भारत का स्वरूप परिवर्तित हो चला था। यूरोपीय सभ्यता एव संस्कृति अंग्रेजी राज के प्रबल स्कधो पर सवार हो कर भारत मे आयी और उसने समस्त भारत भूमि को आकर्षित एवं अभिभूत कर दिया। जहाँ एक ओर अंग्रेजी शासन ने अपने काल म भारत मे रेल, तार, प्रेस आदि वैज्ञानिक उपकरणो को भारत मे फैला दिया था, वही दूसरी उन्होने अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा सिद्धान्त एव मान्यताओ के प्रचार हेतु अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार पर भी खूब जोर दिया। ई० सन् १८७० तक कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, लाहौर और इलाहाबाद—इन पाँच स्थानो पर विश्वविद्यालय भी स्थापित हो गये थे।[1] इन शिक्षा सस्थाओ की उच्च शिक्षा के साँचे मे ढले भारतीय नव्य आधुनिक विचार धाराओ की ओर तीव्रता से आकर्षित हुए। दिनोदिन पाश्चात्य मान्यतायें एव जीवन के सिद्धान्त अधिकाधिक भारतीयो के हृदय पर अपना आधिपत्य जमाते जा रहे थे। मानव के चरम सिद्ध अधिकार—स्वतत्रता एव समानता की प्राप्ति हेतु भारतीय तत्पर हो गए। कांग्रेस की स्थापना हुई और दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व मे सन् १९०६ ई०, मे तो कांग्रेस ने *स्वशासन की माँग भी की* थी। इस प्रकार सन् १९०० ई० तक भारत जाग्रत हो चुका था। उसके रूढिवादी विचार टूट रह थे, लोग देश विदेश की यात्रायें कर रह, थे देश विदेश के साहित्य और संस्कृति का अध्ययन कर रह थे। पश्चिम की भौतिक सभ्यता की बुद्धिवादी विचारणायें भावुक भारतीय जनता की प्राचीन धार्मिक मयताओ, विश्वासो रूढिगत विचारो को छिन्न-भिन्न कर बडी ही त्वरा से उस पर हावी हो रही थी। इस सम्बन्ध मे डॉ० भोला नाथ

---

१ भारतेंदुकालीन नाटक साहित्य, सन् १९५९ ई०, पृ० ११३।

का यह कथन सर्वथा सत्य है कि 'भारत वर्ष की पुरानी संस्कृति की यूरोप की आधुनिक संस्कृति से मुठभेड़ हुई, प्राचीनता पर आधारित विश्वासों, मान्यताओं एवं आदर्शों का नवीन विश्वासों, मान्यताओं एवं आदर्शों से मुकाबला पड़ा। श्रद्धा और बुद्धि से संघर्ष हुआ। सारा जीवन बदल गया। जीवन का सब कुछ परिवर्तित हो गया।'[1]

सन् १९१८ ई० के पश्चात् गांधी जी पूर्ण रूप से कांग्रेस के संचालक बन गए। कांग्रेस का स्वरूप उनकी विचारधारायें, सभी कुछ गांधी के अनुरूप हो गए। गांधी का मानवतावादी सत्य, अहिंसा एवं प्रेम का सिद्धान्त प्रथमतः कांग्रेस और धीरे-धीरे समस्त भारत पर छा गया था। गांधी विचार धारा के विश्वबन्धुत्व, सब मे एक ईश्वरीय सत्ता का दर्शन, उदार और सर्व कल्याणकारी धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण भारत के जन-जीवन म समा रहे थे। फलतः तत्कालीन साहित्य में भी धार्मिक और सामाजिक उदारता, विश्वबन्धुत्व के आदर्श मानवतावादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन होने लगा था। सारी रूढ़िपरक कट्टर धार्मिक मान्यताओं का खण्डन करके उनके स्थान पर बुद्धि सम्मत धार्मिक दृष्टिकोण को, वेदान्त दर्शन की सर्वजीवों की समानतावादी दृष्टि का प्रतिपादन करनेवाले ब्रह्म समता के सिद्धान्त ईशावास्यमिदं सर्वम् को अपना गया। फलतः ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-का भेद-भाव न रखकर सबको समान माना गया। हरिजनों को भी मंदिर मे प्रवेश का अधिकार दिलाने का प्रयत्न हुआ।

दूसरी ओर प्रबुद्ध वर्ग के द्वारा पाश्चात्य दर्शन-साहित्य का अध्ययन तेजी से हो रहा था। कांग्रेस और गांधीवाद के कट्टर समर्थक पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव सदृश विद्वान समाजवाद के सिद्धान्तों क ओर आकर्षित हुए। बाद में ये लोग उसके एक निष्ठ आस्थावान हो गये। सन् १९४० तक कांग्रेस में ही समाजवादी एवं साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुयायी वर्ग की भलीभाँति स्थापना हो गयी थी। सन् १९४६ तक तो पूर्ण रूप से कांग्रेस म वामपन्थीय विचारधारा-आधुनिक समतावादी समाजवाद—की स्थापना हो गयी थी। स्वतन्त्रता के प्राप्ति क पश्चात् कांग्रेस से निकलकर समाजवादी एवं साम्यवादी दल पृथक् रूप से जनता के बीच आये और जनता को अपनी विचारधारा से प्रभावित करने लगे। आम चुनावों में इन दलों को थोड़ी बहुत सफलता भी मिली। आधुनिक साहित्य में भी प्रगतिशील विचारधारा के रूप में समाजवाद का प्रतिपादन खूब किया गया। इस प्रकार भारतीय समाज संस्कृति में प्रगतिशीलता और समानता का सिद्धान्त व्याप्त हो गया।

आज भारत पूर्ण रूप से एक जाग्रत देश है। गांधीवाद की राह पर चलनेवाले पं० जवाहरलाल नेहरू जो पूर्व और पश्चिम की संस्कृति के समन्वय के प्रतीक हैं के अधिनायकत्व में भारत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न उन्नत देशों की संस्कृति-सभ्यता का मेल-मिलाप कर रहा है। पंचशील के सिद्धान्त को भारत अपनी विदेश नीति की आधार-

---

१. डा० भोलानाथ कृत हिन्दी साहित्य (सन् १९२६-१९४७ ई०), प्र० सं०, भूमिका, पृ० ३।

शिला बनाये हुए हैं। भारत आज सत्य अहिंसा के आधार पर चलता हुआ विश्व बंधुत्व तथा सह अस्तित्व की विश्वजनीन विचारणा का प्रसारक एवं प्रचारक बन गया है। देश-विदेश मे उसकी इस नीति का आदर हो रहा है। ऐसी अनुकूल स्थिति मे जीव मात्र के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेवाले विश्व को शान्ति और प्रेम के मार्ग का सिद्धान्त बतानेवाले तथा दीन-हीन दैहिक भौतिक तापो से संतप्त जन-जीवन को परम सुख तथा आध्यात्मिक शांति देनेवाले ग्रन्थ रामचरितमानस का महत्व इस काल मे सर्वाधिक बढ गया है। यह ग्रन्थ मात्र भारतीयो के लिए ही नही, अपितु विश्व के किसी भी कोने मे बसे मानवता के पुजारी के लिए पूज्य हो गया है। यही तो कारण है कि एक ओर जहाँ इसका अनुवाद ए० जी० एटकिन्स जैसे अंग्रेज पुजारी (पादरी) अपने जीवन को धन्य मानता है, वही पर कम्युनिस्ट विचाधारा के समर्थक और अति भौतिकवादी विचार पद्धति में आस्था रखनेवाले देश रूस का प्रतिनिधि साहित्यकार ए० पी० बारान्निकोव 'मानस' का अनुवाद करके अपने आपको कृतकृत्य मानता है और उसके बदले मे साम्य-वादी विचारधारा को माननेवाली जनता और सरकार अभ्यर्थना-अभिनंदन करती है तथा सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार (लेनिन पदक) से उसे अभिभूषित करती है। यह है सांकेतिक दिग्दर्शन, 'मानस' की अन्तर्राष्ट्रीय लोकप्रियता का। फलत आज 'मानस' का अध्ययन-विवेचन एवं उसकी समालोचना दिनोदिन अधिकाधिक विस्तार पा रही हैं। आधुनिक काल में 'मानस' की टीकाएं भी खूब लिखी गयी। इस काल मे 'मानस' का टीका-साहित्य सर्वाधिक समृद्ध हुआ।

इस काल मे 'मानस' का मनन-अध्ययन आधुनिक व्याख्या-पद्धति के आधार पर हो रहा है। फलत. आधुनिक सुशिक्षित विद्वान इसका मूल्यांकन सार्वजनीनता की कसौटी पर कर रहे हैं। आज 'मानस' का महत्व 'मानस' मात्र के हेतु उसमे प्राप्य उपयोगी तत्वों के आधार पर किया जा रहा है। यही तो कारण है कि 'मानस' के आधुनिक व्याख्याता उसका विश्लेषण करते हुए उसे साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, लोक-कल्याणमयी एव मानवतावादी विचारधाराओ का आकर ग्रन्थ सिद्ध करते हैं। इस काल मे 'मानस' की टीकाओ की रचना उपर्युक्त आधुनिक शास्त्रीय विचारधारा के आधार पर हो रही है।

परन्तु नवीनता के प्रचार एवं प्रसार के साथ प्राचीनता का सर्वथा लोप नही हो जाता। आज भी हमारी रूढ़िगत विचारधारायें और मान्यतायें जैसे-तैसे चल ही रही हैं। 'मानस' के टीका-साहित्य की प्राचीन व्याख्या-प्रणाली 'मानस' के परपरावादी टीका-कारो के द्वारा आज भी चल रही हैं। 'मानस' की श्री किशोरीदत्त जी की, श्री बूढे रामदास जी की तथा अयोध्या की टीका परंपराओं के 'मानस' शिष्य इस काल मे भी 'मानस' का टीकन-व्याख्यान करते रहे हैं। यह बात दूसरी है कि यह धारा आज अन्य कालों की अपेक्षा शिथिल पड़ गयी है।

'मानस' की पूर्व कथित आधुनिक और परपरावादी टीकापद्धति के अतिरिक्त

इन दोनों व्याख्या पद्धतियों का समन्वय करके चलनेवाली एक टीका धारा और है। इस पद्धति में आधुनिक व्याख्यान-पद्धति और व्यासों की प्रवीन टीका-पद्धति का समन्वय अगले पृष्ठों पर इनके विषय में हम तीनों टीका-पद्धतियों के टीकाकारों तथा उनकी टीकाओं का पृथक्-पृथक् प्रकरणों में ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत करेंगे।

भाषा-शैली—

आधुनिक काल की सभी टीकाएँ खड़ी बोली हिन्दी गद्य में ही लिखी गयी हैं। आधुनिक काल के प्रारंभ में लिखी गयी टीकाओं की भाषा में कुछ अपरिष्कार मिलता है। एक ओर, परंपराशील टीकाकारों तथा व्यासों की कथावाचकी शैली से प्रभावित टीकाकारों की भाषा में ब्रज और अवधी के शब्द भी कहीं कहीं प्राप्त हो जाते हैं। इन टीकाकारों की भाषा में, व्याकरणिक दोष तथा वाक्यों के विन्यास में शैथिल्य का दृष्टिगत होना भी दुष्कर नहीं है। दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा प्राप्त मानस के टीकाकारों की जिनमें श्यामसुन्दर दास, लाला भगवान दीन, प० रामनरेश त्रिपाठी सदृश सुप्रसिद्ध साहित्यकार भी सम्मिलित हैं भाषा प्रौढ़ परिष्कृत एवं विशुद्ध है।

इस काल के अधिकांश टीकाकारों की शैली आधुनिक साहित्यिक व्याख्यान-पद्धति से प्रभावित है। उसमें स्पष्टता तथा सरलता है। केवल प्राचीन टीका परंपरा के टीकाकारों तथा उनसे प्रभावित व्याख्याताओं की टीका-पद्धति पर थोड़ा व्यास शैली का प्रभाव दृष्टिगत होता है, परन्तु 'मानस' के आधुनिक टीका साहित्य में प्राधान्य है आधुनिक व्याख्या प्रणाली का ही।

आधुनिक काल की टीकाओं की अर्थ शैली के अंतर्गत कुतूहलोत्पादकता या चमत्कारिकता का सर्वथा अभाव मिलता है। मध्य काल की जनता की रुचि की अपेक्षा आधुनिक काल की जनता की रुचि में परिष्कार एवं गंभीरता निश्चय ही अधिक आ गयी है। इसीलिए जनता की रुचि का ध्यान रखते हुए आधुनिक काल के 'मानस' टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में कथा-कहानियों का पुट नहीं रखा है और न तो उनमें क्षेपकों को ही स्थान दिया है। आज का शिक्षित और परिष्कृत रुचि सम्पन्न 'मानस' का पाठक 'मानस' की विशुद्ध साहित्यिक ऐसी टीका चाहता है, जिसमें विशद एवं सरल रीति से मानसकार के भावों की यथार्थ व्याख्या की गयी हो। उन क्षेपकों के चमत्कार प्रधान अनुरंजन कथानकों से कोई विशेष सरोकार नहीं है। यही तो कारण है कि श्री रामेश्वर जी भट्ट ने जो मध्य काल के भी टीकाकार हैं अपने साहित्यकार मित्रों—श्री बाल मुकुन्द गुप्त और पं० श्रीधर पाठक के परामर्श के अनुसार[1] 'मानस' की विशुद्ध पाठ सहित अमृत लहरी नामक एक दूसरी टीका सम्वत् १९६६ वि० में लिखी। क्षेपक रहित टीका में उन्होंने 'मानस' की व्याख्या विशुद्ध साहित्यिक रीति से की और इस टीका में क्षेपकों को स्थान नहीं दिया। यह है युग की प्रवृत्ति के अनुसार टीकाओं के स्वरूप एवं अर्थ शैली में परिवर्तन। एक ही टीकाकार को युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार अपनी टीका रचना-पद्धति में अपेक्षित परिवर्तन करना पड़ा।

१ अमृतलहरी टीका, प्र० सं०, की भूमिका।

अध्याय ३

प्रकरण १

'मानस' की शृंगारानुगाभक्तिपरक टीका-परंपरा की टीकाएँ

जैसा कि हम पूर्वत 'मानस' के टीका-साहित्य के आधुनिक काल की भूमिका के अन्तर्गत यह संकेत कर चुके हैं कि 'मानस' के टीका-साहित्य के आधुनिक काल में भी मानस की शृंगारानुगा एवं दास्यानुगा भक्तिभाव परक टीका-परपरायें, येन-केन प्रकार से चल रही थी। इस काल में किशोरी दत्त जी की टीका परपरा के दो 'मानस'-शिष्यो—बाबू इन्द्रदेव नारायण तथा जानकी शरण स्नेहलता द्वारा विशुद्ध रूप से शृंगारानुगाभक्ति मात्र परक मानस के व्याख्यान किये गए तथा अयोध्या की शृंगारानुगा टीका परंपरा के टीकाकार श्री रामबालक दास ने भी मानस पर एक टिप्पणी लिखी।

मानस की बूढ़ेरामदास की दास्याभावानुगा टीका परंपरा के सुप्रसिद्ध 'मानस'—वक्ता एवं टीकाकार श्री वंदन जी पाठक के शिष्य श्रीछोटेलाल जी के 'मानस' सम्बन्धी भावो को उनके मानस'-शिष्य श्री हनुमानदास वकील ने टीका के रूप मे आबद्ध किया। इस काल मे यही एक मात्र टीका है जो दास्यनुगा भक्तिपरक टीका-परपरा का प्रतिनिधित्व करती है। उक्त दोनो भक्ति भावपरक टीका-परंपराओ का पृथक् पृथक् परिचय दिया जा रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से मानस की शृंगारानुगाभक्ति परक टीकाओं के लेखन का प्रारंभ पहले हुआ। अत पहले हम उन्ही का परिचय दे रहे हैं।

किशोरी दत्त जी की टीका-परंपरा—

श्री किशोरी दत्त जी की टीका परंपरा के दो टीकाकार सर्व श्री बाबू इन्द्र देव नारायण सिंह और महात्मा जानकी शरण स्नेहलता जी ने 'मानस' पर टीकात्मक ग्रन्थ लिखे। इन दोनो टीकाकारो तथा इनकी टीकाओ का परिचय यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है।

मानसमयंक चन्द्रिका-कार्त्तिक—
वार्त्तिककार-बाबू इन्द्रदेव नारायण सिंह—

स्वर्गीय बाबू इन्द्रदेव नारायण सिंह किशोरहा (चम्पारन, बिहार) के निवासी थे। आप बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे के इंजीनियरिंग विभाग मे एकाउण्टेण्ट थे। आप किशोरीदत्त जी की टीका परंपरा के छठे शिष्य पटना निवासी श्री गणेशदत्त जी के 'मानस'-शिष्य थे। इस प्रकार आप किशोरी दत्त जी की टीका परम्परा के सातवें

'मानस'—शिष्य थे। आपने कुछ दिनों तक गीता प्रेस के सम्पादकीय विभाग में भी कार्य किया था। बनरामपुर रियासत के नरेश महाराज भागवती प्रसाद सिंह आपके सुहृद थे। उक्त राज्य के कोतवाल एवं सुप्रसिद्ध रामायणी रामलालजी के प्रति आपकी बड़ी पूज्य भावना थी।

आपने पं० शिवलाल पाठक कृत मानसमयंक नामक टीकात्मक ग्रन्थ की मानस-मयंकचन्द्रिका टीका के अतिरिक्त पाठक जी के एक अन्य ग्रन्थ मानसअभिप्रायदीपक के बाल एवं अयोध्या कांडों की टीका लिखी थी। उन्होंने तुलसी-साहित्य के एक अन्य ग्रन्थ कवितावली की भी टीका लिखी थी, जो गीता प्रेस से प्रकाशित हुई है।

वार्तिक-मानसमयंकचन्द्रिका

किशोरीदत्त की शिष्य परंपरा के टीकाकार बाबू इन्द्रदेवनारायण कृत मानसमयंक चन्द्रिका एक वार्तिक है। यह उनकी टीका-परंपरा की ही सुप्रसिद्ध टीका-मानसमयंक के ही उक्त अनुक्त भावों की व्याख्या करने वाली एक टीकात्मक रचना है। मानसमयंक चन्द्रिका के प्रणयन की समाप्ति संवत् १९६१ विक्रमी है।[1] इसका प्रथम प्रकाशन खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर पटना से संवत् १९७७ (सन् १९२०) में हुआ था।

इस टीका के माध्यम से मानसमयंककार के गूढ़ भावों से सर्व सामान्य को संबोधित कराने का सर्वप्रथम प्रयास बाबू इन्द्रदेव नारायण ने ही किया था। प्रथमतः आपने मानस मयंककार द्वारा व्याख्यात 'मानस' के स्थलों का अक्षरार्थ किया है इसके उपरान्त उस पर किये गए मानस मयंक के दोहों का आशय अपने सुविस्तृत, विशद टीकात्मक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार आपने एक वार्तिककार की भाँति अपने उपजीव्य ग्रन्थ (मानसमयंक) के द्वारा 'मानस' के अकथित एवं कथित दोनों भावों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। हम इस टीका के वार्तिक के स्वरूप का विस्तृत विवेचन चौथे अध्याय में करेंगे। बाबू इन्द्रदेवनारायण सिंह शिवलाल जी की शिष्य परंपरा के मानस-मर्मज्ञ हैं, उन्होंने 'मानस' एवं मानसमयंक दोनों का विधिवत् अध्ययन अपने गुरु श्री गणेश[2] जी से किया था जो स्वयं इस परंपरा के एक कुशल रामायणी थे। इसीलिए वे मानसमयंक के यथार्थ भावों को सुस्पष्ट करने में पर्याप्त सीमा तक सफल हुए हैं।

टीका की शैली सुस्पष्ट एवं सरल है। आपकी टीका में व्यास शैली का प्रभाव मिलता है। भाषा खड़ी बोली गद्य है। उनकी टीका शैली का लघु उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— 'रामकाज सब करिहउ तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष दे सुरसा चली हरषि चले हनुमान॥'

---

१. बाबू इन्द्रदेव नारायण कृत मानस मयंक (सटीक) उत्तर कांड की पुष्पिका।
२. अध्याय १, किशोरीदत्त की टीका परंपरा, पृष्ठभूमि पृ० सं०, क।

मानसमयंक दोहा—'ग्रसिवे बढ़िवे मान मो, लखिये बुद्धि उत्तंग।
बल मधु मो अरु माधुरी मक्षत हूँ ना भंग।।'

'सुरसा ने कहा कि हे हनुमान! तुम बल बुद्धि के निधान हो। श्री रामचन्द्र के सब कार्य करोगे ऐसा कह कर और आशीर्वाद देकर यह चली गयी और हनुमान जी भी हर्षित होकर चले। सुरसा किस प्रकार श्री हनुमान जी के बल बुद्धि को जान गई इस का भाव मयंककार कहते हैं कि हनुमान जी ने ग्रसने को कहा यथा 'ग्रसेसि न मोहिं कहेउ हनुमाना' पुन ज्यो ज्यों सुरसा मुख बढ़ाती गयी त्यो त्यो श्री हनुमान जी भी शरीर बढ़ाते गए यथा 'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।' पुन खाने मे अर्थात् 'बदन पैठि पुनि बाहर आवा।' इन तीनों से बुद्धि की परीक्षा मिली अर्थात् श्री हनुमान जी ने सुरसा को निगलने को कहा, खाने को नही कहा, पुन. ज्यो सुरसा ने बदन बढ़ाया त्यो त्यो श्री हनुमान जी भी शरीर बढ़ाते गए। अब सुरसा ने सौ योजन विस्तृत मुख बढ़ाया तो श्री हनुमान जी ने छोटा रूप बना लिया इससे श्री हनुमान जी की बुद्धिमत्ता ज्ञात हुई, पुन बल मधु तथा माधुरी से जाना गया क्योंकि श्री हनुमान जी के आकाश मे गमन करने से सुरसा पर क्रोधित नही हुए वरन् मधुरता से बातचीत की। यथा 'रामकाज कर फिरि मैं आवौं। सीता के सुधि प्रभुहि सुनावौं।। तब बदन पैठिहो आई। सत्य वहौं मोहि जान दे माई। पुन सुरसा खा गई तो भी हनुमान जी का अग भंग नही हुआ। इससे भी बल लक्षित होता है।।१३।।'[1]

उपर्युक्त व्याख्यान मे 'मानस' के सुबुद्ध ज्ञाता बाबू साहब ने मानसमयककार के सूत्र बद्ध भावो को विस्तार से समझाया है। उन्होने पाठक जी के भावो को प्रकाशित करने के लिए 'मानस' की विविध अपेक्षित अर्द्धालियो का सहारा लिया है। उनकी यह व्याख्या परपरागत व्यास-टीकाकरो जैसी ही है।

टीका-मानसमार्तण्ड :
टीकाकार-श्रीजानकीशरण स्नेहलता

'मानस मार्तण्ड' टीका के रचयिता श्री जानकीशरण स्नेहलता किशोरीदत्त जी की टीका-परपरा के टीकाकार थे। स्नेहलता जी के पिता श्री श्यामदास जी तथोक्त टीका-परंपरा के छठे शिष्य श्री जानकी प्रसाद के 'मानस' शिष्य थे।[2] आपने पिता जी से 'मानस' पढ़ी थी। इस प्रकार आप किशोरी दत्त जी की शिष्य परंपरा के आठवें शिष्य सिद्ध होते हैं। आप जाति के कायस्थ थे। आप का जन्म गया जिला के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ था। कालातर मे आप अयोध्या आकर यहाँ के राम भक्ति के रसिक सन्त गोमतीदास के शिष्य हो गये। आप 'मानस' के बड़े अच्छे वक्ता थे। लगभग १२-१३ वर्ष हुए आपका साकेतवास हो गया।

---

१. मानसमयंक, प्र० सं०, पृ० ४३५-३६।
२. मानसअभिप्रायदीपक, चक्षु की भूमिका।

आपने 'मानस' के प्रारंभिक ४३ दोहो (मानसानुबंध) पर 'मानस मार्तण्ड' नामक एक टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त अपना टीका परंपरा के चौथे 'मानस' गुरु पं० शिवलाल पाठक के 'मानस अभिप्राय दीपक 'पर' मानस अभिप्राय दीपक चक्षु 'नामक व्याख्यात्मक ग्रन्थ की रचना की थी।

मानसमार्तण्ड टीका

किशोरीदत्त जी की मानस टीका परंपरा के आठवें टीकाकार श्री *जानकीशरण* स्नेहलता जी कृत 'मानसमार्तण्ड टीका' मानस के बालकाड के प्रारंभिक ४३ दोहो की एक विस्तृत टीका है। इसका रचनाकाल संवत् १९९४ विक्रमी है। मानसमार्तण्ड का प्रकाशन संवत् १९९८ मे हुआ था।

'मानस मार्तण्ड' आध्यात्मिक और साहित्यिक दोनो दृष्टियो से पूर्ण एक आदर्श 'मानस' टीका है। इसमे मानस के व्याख्यातव्यो की गंभीर एवं विस्तृत टीका की गयी है। टीकाकार ने भक्ति भाव से ओत प्रोत 'मानस' के व्याख्येय स्थलो की टीका करते हुए उनकी बडी ही सूक्ष्म एव मार्मिक रीति से व्याख्या प्रस्तुत की है। इसी प्रकार उसकी *टीका मे साहित्यिक उपादानो की विशद एव विस्तृत विवेचना का गयी है। यदि किसी* को मानस मार्तण्ड की विशुद्ध साहित्यिक व्याख्या देखनी हो तो वह उसमे मानस-बालकाड *के मानस सर एवं सरयू रूपक प्रकरण को टीका का अवलोकन करे।*

टीकाकार ने प्रथमत 'मानस' के व्याख्येयो का विशद अक्षरार्थ दिया है। इसके अनन्तर उनके गूढ भाव उन पर आवश्यक टिप्पणी एव नोट भी दिए हैं। टीका मे कतिपय स्थलों पर उठायी जानेवाली शंकाओं के समाधान भी दिये गये हैं। अन्तर्गत या प्रासंगिक कथाओ का भी यथासम्भव उल्लेख कर दिया गया है।

'मानसमार्तण्डकार' *की टीका शैली गम्भीर विवेचन परक एवं विश्लेषणात्मक* है। यदि कहीं आवश्यक हुआ है तो उसकी वृत्ति खण्डन-मण्डन परक भी हो[1] गयी है।

नोट—कई तिलककारो ने 'असुर सेन' का अर्थ गयासुर को मानकर यह भाव लिखा है कि गयासुर दैत्य ने तप करके विष्णु को प्रसन्न करके यह वर माँगा कि *'जो कोई मेरा शरीर स्पर्श करे वह और उसके पुरखा तर जावें'* पुन यह कथा है कि विष्णु भगवान ने इसके सिर पर चरण रखा और आज्ञा दी कि तुम इसी तरह पड़े रहो जब तुमको पिंडदान न मिले तब उठना। इसी कारण गयासुर सोया हुआ है। उसी के शरीर पर गयाधाम बसा हुआ है और जहाँ तक उसका शरीर है वहाँ तक पिंड प्रदान का फल मुक्ति वर्णन गया महात्म्य तथा वायुपुराण में इसकी कथा है। अभिप्राय यह है कि जैसे गयासुर नरक को नाश करने वाला है उसी प्रकार राम कथा नरक की नाश करने वाली है परन्तु इस अर्थ में एक असंगति पड़ती है वह यह कि राम कथा के और सब विशेषण स्त्रीलिंग हैं और गयासुर पुलिंग है। दूसरे दोहों मे जो रामचरित वर्णन वहाँ पुंलिंग विशेषण उपयुक्त है।

टीका की भाषा खड़ी बोली गद्य है। भाषा सरल है। वाक्य प्रायः लम्बे-लम्बे प्रयुक्त हैं जिनके कारण भाषा के वाक्य-विन्यास मे शैथिल्य आ गया है। कहीं भाषा के अन्तर्गत व्याकरणिक दोष भी दृष्टिगत हो जाते हैं।

हम मानसमार्तण्ड को साहित्यिक एवं भक्ति-दर्शन पर विशिष्ट टीका है। यहाँ हम उसकी सामान्य विशेषताओ के दिग्दर्शनार्थ एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

मूल— असुर सेन सम नरक निकंदिनि।
साधु विबुध कुल हित गिरि नंदिनि॥'

टीका—अर्थ (असुर सेन) दैत्यो के सेना रूपी नरक को (निकंदिनी) नाश करने वाली और साधु और पंडितो के समूह के लिए गिरिनंदिनी पार्वती जी के समान हितकारिणि है।

भाव—जैसे पार्वती जी दुर्गा शक्ति आदि रूप होकर दैत्य सेना शुम्भि निशुम्भि कुम्भेश आदि असुरो को मारकर देवताओं को सुख दिया था—

वि० प० १४। खड भुजदंड खंडनि विहंडनि महिष मद भग करि अग तोरे।
सुमि नि सुमि कुभेसरनवेस रवि क्रोध वारिधि वैर वुन्द वारे॥

इसी प्रकार श्री राम कथा सस काड हो कर नरक का नाश भक्तो के लिए करती है।

टिप्पणी—अनेक पापो (जीव हिंसा, परदारगमन, चोरी, परपीडा, परनिंदा, वेदपुराणादिनिंदा, संत निंदा, गुरु निन्दा, हरिनिंदादि करने के कारण आत्मा को भिन्न भिन्न नरको मे सहस्रो वर्ष तक रहना पड़ता है, जहाँ उन्हें बहुत पीड़ा दी जाती है।

२१ नरको का नाम श्रीमद्भागवत मे वर्णन है यथा—तामिस्र, अन्ध, तामिस्र, रौरव, महारौरव, कालसूत्र, असिपत्रवन शूकरमुख, अधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तशूर्म्मि, वज्रकण्ठक, शल्मिली, वैतरणी, पूयाद, प्राणरोध, विशसन, लालभक्ष, सारमेयादन अवीचि और अय पान[1]।'

उपर्युक्त अर्द्धाली की टीका करते हुए प्रथमत टीकाकार ने उसका अक्षरार्थ दिया है। इसके पश्चात् उसका विशेष भाव देते हुए 'रामचरितमानस' को भी दुर्गा की भाँति पापो को नाश करनेवाली बताया है। उद्धरण के 'नोट' मे उसने क्रमश 'नरको' की संख्या बतायी हैं एव टिप्पणी के अन्तर्गत अर्द्धाली का असुरसेन (गयासुर) परक अर्थ का सयुक्तिक खंडन किया है।

टीका की भाषा मे व्याकरणिक दोष वर्तमान हैं। उदाहरणार्थ उक्त उद्धरण के 'भाव' शीर्षक व्याख्यान के प्रथम वाक्य में जो भूत कालिक क्रिया है, उसके कर्ता (दुर्गा) के साथ लगायी जाने वाली विभक्ति 'ने' नही लगायी है। इसी प्रकार अन्यत्र भी कई स्थलो पर 'वर्णन' शब्द का प्रयोग किया है और वहां उसका कृदन्त प्रत्ययान्त रूप

१ मानसमार्तण्ड, प्र० सं०, पृ० ३१४-१५।

'वर्णित' प्रयुक्त होना चाहिए था। उक्त उद्धरण में प्रयुक्त वाक्य लम्बे-लम्बे हैं, जिनसे भाषा के प्रवाह एवं शक्ति मे शैथिल्य आ गया है।

वार्तिक-मानसअभिप्रायदीपकचक्षु

श्री जानकीशरण स्नेहलता कृत दूसरा टीकात्मक ग्रन्थ मानस-अभिप्रायदीपक की टीका अभिप्रायदीपकचक्षु है। यह ग्रन्थ पं० शिवलाल जी पाठक द्वारा विरचित मानस-अभिप्रायदीपचक्षु मे निबद्ध 'मानस' के गूढ़ भावो का विस्तृत व्याख्यान है। इस टीकात्मक ग्रन्थ का रचनाकाल सवत् २००२ वि० है। इसका प्रथम प्रकाशन गया जिले के 'देव' राज्य की महारानी श्रीमती व्रजराजकुमारी ने सुलेमानी प्रेस काशी से संवत् २००३ वि० मे कराया था।

स्नेहलता जी ने अपनी टीका-परपरा के चौथे टीकाकार पं० शिवलाल पाठक के सूत्रात्मक शैली मे लिखे गये टीकात्मक ग्रन्थ के भावो का विस्तृत एवं सुस्पष्ट रूप से व्याख्यान अपने ग्रन्थ 'मानस' अभिप्राय दीपक चक्षु मे किया है। उन्होंने प्रथमत. व्याख्येय प्रसग से सम्बन्धित 'मानस' की पंक्तियो को उद्धृत किया है। इसके पश्चात् मानस अभिप्राय दीपक के दोहो को अवतरित किया है और अन्त में 'मानस' की उद्धृत सम्पूर्ण व्याख्येय पंक्तिओ का अक्षरार्थ देते हुए अभिप्रायदीपक के गुप्त भावो का मार्मिक व्याख्यान प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने अभिप्रायदीपक के अन्तर्गत कहे हुए (उक्त) भावो को प्रकाशित तो किया ही है, साथ ही साथ अभिप्रायदीपककार द्वारा अकथित (अनुक्त) भावो का भी व्याख्यान दे दिया है। इस प्रकार मानसअभिप्राय दीपक चक्षु की व्याख्या-शैली वार्तिक शैली के टीका-पद्धति के अनुरूप है। स्नेहलता जी ने अभिप्राय दीपक के भावो का व्याख्यान करने के लिए पाठक जी के एक दूसरे ग्रन्थ मानस-मयक मे भी पर्याप्त सहायता ली है।

वार्तिककार की भाषा खड़ी बोली हिन्दी गद्य है। भाषा मे अपरिष्कार है। उसमें व्याकरणिक दोष भी प्राप्य है तथा गँवारू शब्दो का प्रयोग मिलता है। उनकी व्याख्या शैली पर व्यासों की कथावाचकी शैली का प्रभाव है। टीकाकार स्वय 'मानस' का सफल वक्ता था। अत उसकी टीका-पद्धति पर कथावाचकी शैली की छाप होना स्वाभाविक ही है। परन्तु उसकी टीका मे अन्य व्यासों की भाँति चमत्कारिता एवं कौतूहलोत्पादकता का प्राचुर्य नही है, अपितु उसमें व्यासो की विस्तृत व्याख्यान-पद्धति मात्र का ही सहारा लिया गया है। व्याख्यानो को 'मानस' एवं अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों से पूर्ण रूप से पुष्ट किया गया है। यहाँ मानसअभिप्रायदीपकचक्षु मे एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है

मूल— 'मुनि व्रत नेम साधु संकुचाहीं।
देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥'

मानसअभिप्रायदीपक दोहा—नेम इहाँ द्वय द्वे गहब, कहब न दूसर बात।
बिनु प्रभु उतर अन गवन, कौशल के चित जात ॥१००॥

टीका मूल का भावार्थ—भरतजी के नेम और व्रत को सुनकर साधु सकुचाते हैं और उनकी दशा देख कर मुनिराज लजाते हैं। इसका भाव दीपककार कहते हैं—कि इहा नेम के विषय दूसरी बात नहीं कहियेगा दृढ़ प्रकार से इस बात को गहियेगा कि (बिनु प्रभु उत्तर अन भवन कोशल केचित जाल) जब तक श्रीरामचन्द्र जी वन से नहीं लौटेंगे तब तक भरतजी 'महल' अर्थात् महल नहीं जायेंगे। अभिप्राय यह कि जिस महल से श्री रामचन्द्र जी ने वन के लिए प्रस्थान किया था उसको उनके बिना नहीं देखेंगे। इससे अयोध्या जाने का नियम दृढ़ कर लिया कि अयोध्या नहीं जायेंगे।१००।

अभिप्रायदीपक दोहा—मनन शील तम पारहुँ, प्रभु पर दशा न जान।
भरत दशा लखि सिंधु ते, सीकरास उर आन ॥१०१॥

'टीका मूल मे जो लिखा कि भरत जी की दशा देखि मुनिराज लजाते हैं इसका भाव दीपककार कहते हैं (मननशील तम पार हूँ) जो मुनि लोग तमपार रहे वे भी (प्रभु विषय पर दशा नहीं जानते अर्थात् पर दशा जो परा भक्ति की दशा यथा मयके उत्तर काण्डे—

नीर दोहाई फिरि गई, स्याई जहँ प्रेम। तन मन सुधि भूली मले, अब ताको सुनु नेम ॥ बाहर दृष्टी अन्त मो रहे सदा रस एक। प्रेम विवश प्रीतम गरे, भुज मेली करि टेक ॥ कनान सूझे दिवस निसि जीक जीवन पाव। रहे निरन्तर तेहि लपटि भूलि भावता भाव ॥ जो ढिग सोई ठौर सब एक रंग दरसात। रामरूप चखि राम मय, दृग दोऊ ह्वै जात ॥ प्रेम गसामो परि गये, मुख मीने दृग नीर। कहि बेई को रहि गई, रह्यो समान शरीर ॥

अर्थात् दशधा भक्ति प्राप्त होने पर केवल परा की दोहाई फिर जाती है, जहा प्रेम स्थाई है, और तनमन की सुधि भूल जाती है उस अवस्थे का नियम सुनो। अन्तर और बाहर सवत्र एक रस दृष्टि रहती है और प्रेम वश प्रीतम के गले मे टेक पूर्वक भुजा रखकर मिलता है। और कना मात्र भी दिन रात नही सूझती। अपने जीवन को पाकर उसी मे रत रहता है और निरन्तर प्रीतम के गले मे लपटा हुआ रहता है और भूल कर भी दूसरी भावना अच्छी नही लगती। जो प्रियतम समीप है वही सब ठौर एक रंग से दर्शित होता है और दोनो नेत्र श्रीरामरूप के स्वाद को चखकर राममय हो जाते हैं। प्रेम के बन्धन में बंधा हुआ मौन होकर सुख अनुभव करता है, और दोनो नेत्रो मे नीर बहने लगता है शरीर कहने मात्र को रह जाता है उक्त दशा को नही जानते वाले मुनि लोग 'भरत दशा लखिसिंधुते शीकराश उर आन' भरत जी पर दशा को अवलोकन कर कनामात्र प्राप्त हुए ॥१०१॥'[१]

मानसअभिप्रायदीपक चक्षुकार ने उपर्युक्त व्याख्यान के अतर्गत भरत की दशधा (प्रेमा) भक्ति के गाम्भीर्य पर प्रकाश डाला है। स्नेहलता जी ने मानसमयंक से दोहे उद्धृत करके अपने भावो को पुष्ट किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त 'लजाते है' तथा 'सूझती है'

१ मानसअभिप्रायदीपक चक्षु (अयोध्या काड) दो० १००–१०१।

सदृश शब्दों का प्रयोग गँवारू है, 'और' शब्द ब्रजभाषा का है। वर्तनी सम्बंधी भूलें भी टीका में मिलती हैं। जैसे 'स्थायी' शब्द के अन्तर्गत व्यजन अक्षर 'य' के साथ दीर्घ 'ई' की मात्रा न लगा कर स्वर अक्षर दीर्घ 'ई' का ही प्रयोग किया गया है। उदरण के प्राय सभी वाक्यों का विन्यास शिथिल एव भद्दा है।

इसी टीकात्मक ग्रन्थ के साथ श्री किशोरीदत्त जी की टीका परपरा की टीकाओं का ऐतिहासिक विवेचना समाप्त हो जाती है।

अयोध्या की टीका-परम्परा की टीका

रामचरितमानस टिप्पणी टिप्पणकार बाबा रामबालक दास

अपने समय के सर्वप्रसिद्ध रामायणी स्वर्गीय बाबा रामबालक दास जी अयोध्या की टीका परम्परा के सुप्रसिद्ध टीकाकार बाबा जानकी दास जी के पौत्र 'मानस' शिष्य थे। आपके मानस गुरु जानकीदास के 'मानस' शिष्य श्री माधोदास जी रामायणी थे जो मानस के उद्भट वक्ता थे।[1] आप अयोध्या की बड़ी छावनी के सुप्रसिद्ध महन्त बाबा रघुनाथ दास के शिष्य श्री जगन्नाथ दास के कृपा पात्र शिष्य थे। आपने आजीवन बड़ी छावनी की व्यास गद्दी पर मानस की कथा कही। आपके वर्तमान 'मानस'—शिष्यों में श्री प्रेमदास रामायणी एवं श्री रामस्वरूप दास रामायणी मुख्य हैं। ये दोनों ही 'मानस' के प्रसिद्ध वक्ता हैं।

श्री रामचरितमानस टिप्पणी—

अयोध्या के सुप्रसिद्ध व्यास बाबा रामबालक दास ने मानस-व्यासों के कथा-वाचन के हितार्थ मानस की एक टिप्पणी लिखी थी। इसका प्रथम संस्करण अयोध्या के मानस प्रेस से संवत् १६६२ वि० में हुआ था। कालान्तर में अयोध्या म ही सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द (बुकसेलर एवं प्रकाशक, अयोध्या) ने भी इसका प्रकाशन कराया था।

टिप्पणीकार ने मानस के व्याख्या-सापेक्ष पदों पर टिप्पणी की है। यह टीका 'मानस' के कथावाचकों के विशेष उपयोग की है। इसमें विविध स्थलों पर उत्पन्न होने वाली शंकाओं का समाधान किया गया है। साथ ही साथ 'मानस' के कुछ समान भाव-वाले स्थलों एवं पात्रों की तुलना भी की गयी है। यह तुलना 'मानस' के दोहे चौपाइयों के द्वारा सम्पन्न हुई है। इसकी तुलना ठीक वैसा ही है जैसी कि मानस-द्वारा अपनी कथाओं में पात्र विशेष या स्थल विशेष की समानता प्रकट करनेवाले किन्हीं दो स्थलों के चौपाइयों एव दोहों को उद्धृत कर दिया करते हैं।

इस टिप्पण के अन्तर्गत मानस के भक्तिपरक एवं दार्शनिक स्थलों पर विस्तृत टिप्पणी दी गयी है।

---

१ मानस के प्राचीन टीकाकार श्रीधर सेन, मालसोर, कल्याण।

टीकाकार की भाषा खड़ी बोली हिन्दी गद्य है परन्तु उस पर पंडिताऊपन का प्रभाव है और कहीं-कहीं तो परम्परा से प्राप्त व्रज एवं अवधी भाषाओं की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है।

टिप्पणी में व्यास शैली का ही विशुद्ध रूपेण निर्वाह किया गया है। टिप्पणी की सामान्य विशेषताओं के परिचयार्थ एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

सोरठा— 'भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद-प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति॥'

टिप्पणी—इहा सीय राम पद का निर्वाह आगे अब न करिहैं माधुर्य नाम से माधुर्य कहनेवाले लोग अयोध्या काड तक रहे ऐसे लखन नाम अयोध्या काड तक आगे नहीं क्योंकि ये भी माधुर्य नाम है।"[1]

यहाँ टीकाकार ने 'मानस' के उपर्युक्त दोहे के केवल 'सीय' पद के प्रयोग के अभिप्राय का ही रहस्य बताया है। उसका कथन है कि यहाँ तक ही 'सीय' शब्द का जो उनके माधुर्य रूप का द्योतक है प्रयोग हुआ। आगे 'सीय' का प्रयोग उनके लिए होगा, क्योंकि अब तो सीता के ऐश्वर्यपरक रूप का ही प्रसार अगले काडो मे है। शब्दो के प्रयोग के औचित्य पर इसी प्रकार की रुचिपरक विवेचना इस टीका में प्राय की गयी है। उपर्युक्त उद्धरण की भाषा मे आये 'करि है' और 'रहे' क्रियापद अवधी भाषा के हैं।

इस टिप्पणी ग्रन्थ के परिचय के साथ ही अयोध्या की टीकाकार परम्परा के प्रत्यक्ष 'मानस' शिष्यो की टीकाओ का परिचय समाप्त होता है। रामबालक जी के दो 'मानस'-शिष्य सर्वश्री रामस्वरूपदास एवं प्रेमदास जी 'मानस'-वक्ता हैं। इन्होंने अब तक 'मानस' की कोई टीका नही लिखी है।

प्रकरण २

दास्यानुगाभक्तिपरक टीकाएँ · श्री बूढेरामदास जी की टीका-परम्परा

'मानस भाष्य' टीका
टीकाकार : श्री हनुमान दास वकील—

श्री हनुमानदास वकील बनारस के निवासी थे। आप बनारस मे ही वकालत करते थे। वकील साहब वंदन जी पाठक के 'मानस'–शिष्य सुप्रसिद्ध रामायणी श्री छोटे-लाल व्यास के शिष्य थे। आपका समय वि० की २० वी शती का उत्तरार्द्ध है। आपके पिता

१. सेठ छोटे लाल, लक्ष्मीचन्द जी द्वारा प्रकाशित 'मानस'–टिप्पणी,

का नाम हरिदास था।[1] इन्होंने अपने गुरु के आदेश से उन्हीं की 'मानस'-कथा के भावों के आधार पर 'मानस' के सुन्दर काड की एक टीका लिखा थी। मानसभाष्य की भूमिका से पता चलता है कि इन्होंने 'मानस' के लंका काड एव उत्तर काड की टीकाओं के लेखन का प्रारम्भ किया था, एव य उन्हें शीघ्र ही पूर्ण कर प्रकाशित करवाने भी थे।[2] परन्तु इन काण्डों की टीकाओं का सम्प्रति कहीं पता नहीं चलता।

'मानसभाष्य' (सुन्दरकाड)—

श्री हनुमानदास वकील द्वारा प्रणीत मानसभाष्य 'मानस' के सुन्दर काड की एक व्यास शैली प्रधान टीका है। इसका रचना काल माघ शुक्ल ३ वि० सं० १९७३ है[3] एवं प्रकाशन काल भी १९७३ ही है। उसमें हनुमानदास जी वकील ने अपने 'मानस' गुरु सुप्रसिद्ध 'मानस' व्यास श्री छक्कनलाल जी की 'मानस' कथा के भावों को सुनियोजित करके उन्हें टीका के रूप में निबद्ध कर दिया है। टीका के अन्तर्गत व्यास शैलीपरक एक ही व्याख्येयपद के अनेक चमत्कारपरक भाव निकाले गये हैं। उसमें शब्दों की तोड़-मरोड़ कर या उनका मनमाना पाठ मान कर रुचिपरक अर्थों का विधान किया गया है। अपने अर्थ गत भावों की पुष्टि के निमित्त टीकाकार ने 'मानस' की विभिन्न अर्द्धालियों एवं दोहों को उद्धृत किया है। टीका की भाषा खड़ी बोली गद्य है। इसमें अपरिष्कार है, शब्दों के विशुद्ध एव तत्सम प्रयोगों का अभाव है। भाषा में शब्दाल्पता की स्पष्ट झलक मिलता है। एक उदरण से मानस भाष्य के टीकात्मक स्वरूप का परिचय मिल जायेगा —

मूल— 'प्रभु कर पंकज कपि के सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥'

अर्थ—'प्रभु का हस्तकमल हनुमान जी के सिर पर है, इस दशा को स्मरण करके महादेव जी मगन हो गए अथवा शिव और पार्वती दोनों मग्न हो गए अथवा माया और ब्रह्म दोनों मग्न हो गए। कहीं पाठ है—'प्रभु पद पंकज कपि के सीसा' अर्थात् हनुमान जी का माथा प्रभु के चरण कमल पर है सो प्रभु हनुमान जी माथे के नीचे अपना हाथ देकर उठाना चाहते हैं अर्थात् प्रभु का हाथ नीचे है कारण कि प्रभु ऋणिया है—महादेव जी यह दशा सुमिर कर मगन हुए प्रवृति मार्ग अथवा गिरस्थाश्रम में तो हूँ और निवृत्ति मार्ग में हनुमान जी हैं अथवा मूल से ब्याज प्यारा है (मूल मैं और मेरा अवतार हनुमान) अथवा मेरे से यह बढ़कर मेरे को भी यह दशा दुर्लभ है इन सब दशाओं को सुमिरकर शिवजी मग्न हो गए नीच प्रभु का चरण ऊपर प्रभु का हाथ बीच में हनुमान जी का माथ यह सपुट मिलाया। 'प्रभु कर पंकज कपि के सीसा' इससे अति दुलार प्रगट होता है। जब कोई किसी पर प्रसन्न होता है तो मारे दुलार के उसके ऊपर हाथ

---

१ मानसभाष्य, प्र० सं०, भूमिका।
२. वही।
३ मानसभाष्य, प्र० सं०, की पुष्पिका।

फेरने लगता है 'सुनकपि तोहिं उरिण मे नाहीं।···सन्मुख होइ न सकत मन मोरा।'[1] मन क्रम वचन से प्रभु का प्रेम हनुमान जी पर है।

उपर्युक्त अर्द्धाली के व्याख्यान में टीकाकार ने उक्त एक ही अर्द्धाली के विविध प्रकार के रुचिकर भाव निकाले हैं, रुचि परक भावों के अभिवर्द्धनार्थ उन्होंने इस अर्द्धाली का एक दूसरा पाठभेद भी ले लिया है। अन्त में चमत्कार के वर्द्धनार्थ भगवान राम के हाथ एवं पद के मध्य स्थित हनुमान जी के शीश की स्थिति को संपुटवत बताया गया है। उक्त उद्धरण की भाषा में शब्दों के विशुद्ध साहित्यिक रूपों का प्रयोग नहीं किया गया है, अपितु यह इसकी भाषा कथा व्यासों की-सी है। व्याकरणिक दृष्टि से भी अशुद्धियां वर्तमान है। टीकाकार ने मुझको (कर्मकारक) के लिए 'मेरे को' (सम्बन्ध कारक) सर्वनाम शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु टीका की शैली मे सरलता है, जिससे भाव समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती है।

इस टीका पर 'मानस' के मध्यकालीन टीका परंपरा की टीका-पद्धति का पूर्ण रूप से प्रभाव है। आधुनिक काल में रचित होने पर भी इस टीका मे अपनी 'मानस' टीका-परंपरा का ही पूर्ण रीति से निर्वाह किया गया है। टीका में खडी बोली हिन्दी गद्य के प्रयोग को छोड़कर आधुनिकता की लेशमात्र भी झलक नहीं मिलती है। इस प्रकार यह टीका आधुनिककाल के अन्तर्गत एक कट्टर सम्प्रदायवादी टीका की कोटि में आती है।

इस टीका के विवेचन के साथ ही श्री बुढ़ेरामदास जी की टीका-परंपरा की टीकाओं का ऐतिहासिक परिचय समाप्त हो जाता है। अब अन्य कोई टीकाकार इस परंपरा के अन्तर्गत नहीं है। वैसे श्री शिव नारायण व्यास इस टीका-परंपरा के वर्तमान शिष्य है। इन्होंने अभी तक कोई मानस की स्वतंत्र टीका नहीं लिखी है। वे केवल मानस की कथा सुनाया करते हैं।

प्रकरण ३

'मानस' की आधुनिक व्याख्या प्रवृत्ति-प्रधान टीकाएं

टीका-मानस सटीक (बालकाड दोहा तक) मानस पत्रिका
टीकाकार एवं सम्पादक : महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी का जन्म बनारस जिले के अन्तर्गत 'खजुरी' नामक ग्राम के अन्तर्गत चैत्र शुक्ल चार संवत् १९१७ विक्रमी में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री कृपालुदत्त मिश्र था। सम्पूर्ण खजुरी ग्राम उन्ही की जमीदारी मे था। वे संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं के अनुरागी थे।

---

१. मानसभाष्य, प्र० सं० पृ० ९९-१००।

वे एक अच्छे कवि भी थे। द्विवेदी जी का समस्त परिवार ही हिन्दी भाषा का प्रेमी था। द्विवेदी जी के चाचा ने तो तत्कालीन 'सुधाकर' नामक हिन्दी पत्र के नाम पर ही इनका नाम 'सुधाकर' रख दिया था। द्विवेदी जी की माता उन्हें ६ मास की शैशवावस्था में ही छोड़ कर स्वर्गवासी हुई। इनका पालन-पोषण इनकी दादी ने किया था। समस्त परिवार का भरपूर स्नेह इन्हें प्राप्त था। इसी लाड़ प्यार में आठ वर्ष तक इन्हें कुछ पढ़ाया-लिखाया गया हो नहीं। ६ वें वर्ष में इनके चाचा ने इन्हें पढ़ाना प्रारम्भ किया। ये बड़ी ही कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। इनकी धारणा शक्ति बड़ी विलक्षण थी। ये एक बार जो स्मरण कर लेते इन्हें कभी भूलता ही नहीं था। इनके अभिभावकों ने पहले सोचा कि इन्हें संस्कृत पढ़ा कर पुराणवाचक कथा-व्यास बनाया जाय, परन्तु स्वयं इनका झुकाव ज्योतिष शास्त्र की ओर विशेष रूप से था। कहते हैं कि केवल 'लीलावती' नामक पुस्तक को पढ़ कर ये गणित के गूढ़तम प्रश्नों को शीघ्र ही हल कर देते। इनकी साधारण मेधा का परिचय पाकर इनके गुरु पं० बापूदेव शास्त्री इनसे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने क्वीन्स कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल ग्रिफिथ साहब से इनकी बड़ी प्रशंसा की। इससे इनका उत्साह इस क्षेत्र में बहुत बढ़ा। छात्र जीवन में ही स्वयं अपने बापूदेव शास्त्री के ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान में आगे बढ़ गए। कालान्तर में यही कारण था कि शास्त्री जी आपके विरोधी हो गये थे। शीघ्र ही ये भारतप्रसिद्ध ज्योतिषी हुए। पाश्चात्य ज्योतिष शास्त्रियों पर भी आपने धाक जमा ली थी।[१]

द्विवेदी जी हिन्दी भाषा के परम पुजारी एवं मर्मज्ञ थे। तुलसी, सूर, जायसी आदि मध्यकालीन भक्त कवियों के साहित्य में आपकी उत्तम गति थी।

आप सरल एवं सीधी हिन्दी के पक्षपाती थे। आपके चरित्र में भी आर्जव एवं शील का सुन्दर समन्वय था। 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' ही आपके जीवन का लक्ष्य था। द्विवेदी जी मनुष्य मात्र के प्रेमी एवं प्रशंसक थे।

पं० सुधाकर द्विवेदी क्वीन्स कालेज में गणित के प्रोफेसर पद पर नियुक्त किये गये थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के आप प्रधान मंत्री भी थे। अंग्रेज सरकार के पदाधिकारी भी आपकी विद्वता पर विमुग्ध थे। उनकी विद्वता के उपलक्ष्य में तत्कालीन सरकार ने इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी प्रदान की थी। जार्ज ग्रियर्सन सदृश अंग्रेज गवर्नर एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार आपके परम स्नेही थे।

साहित्य सेवा—द्विवेदी जी की रामचरितमानस में अपार श्रद्धा थी। उन्होंने रामचरितमानस का संस्कृत श्लोकों में अनुवाद किया था एवं 'मानस' पत्रिका नाम की एक संग्रह प्रधान टीका भी बालकाण्ड के दोहे तक प्रकाशित करायी थी। ना० प्र० सभा के तत्वावधान में इण्डियन प्रेस से 'मानस' का एक शुद्ध पाठ सहित जो एक वैज्ञानिक

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १५ सं० १ में प्रकाशित द्विवेदी जी की जीवनी के आधार पर।

सस्करण निकला था उसके पाँच[1] सपादकों में एक आप भी थे। इसके अतिरिक्त आपने 'मानस' एव तुलसीसतसई पर कुछ कुडलिया भी बनायी थी। विनय पत्रिका को भी आपने सस्कृत मे अनूदित किया था।[2]

रायल एशियाटिक सोसाइटी के तत्वावधान मे जायसी के पद्मावत की जो टीका छप रही थी उसके सम्पादन एव टीका टिप्पणी का भार आपके ही ऊपर था। आपके ही सम्पादकत्व म दादू दयाल की बानी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हुई थी। आपने छोटे बडे कुल ७७ ग्रथ रचे थे।

आपका स्वर्गवास २८ नवम्बर सन् १९१० को हुआ।[3]

'मानस' सटीक ('मानस' पत्रिका)

मानस पत्रिका रामचरित मानस का एक सग्रह टीका है जिसके प्रधान सम्पादक पं० सुधाकर द्विवेदी एव सह सम्पादक श्री सूय प्रसाद मिश्र थे। इस पत्र को निकालने का श्रेय द्विवेदी जी को ही था। उन्होंने सवत् १९६१ (सन् १९०४ ई० मे 'मानस' पत्रिका को निकालना प्रारम्भ किया परन्तु कतिपय कठिनाइयाँ (विशेषत प्रकाशन सबधी) के कारण इसका प्रकाशन कुछ ही अको के पश्चात् रुक गया। इसके पश्चात् द्विवेदी जी के प्रयास से यह पत्र पुन स १९६४ विक्रमी स निकलने लगा और सवत् १९६७ तक बराबर भार्गव बुक डिपाट सस्था से प्रकाशित होना रहा। इसका २५ वा अकल चुका था दुर्देववश इसी बीच द्विवेदी जी की मृत्यु २८ नवम्बर, सन् १९१० (सवत् १९६७) को हो गयी। सभवत तभी स इस पत्र का प्रकाशन सदा के लिए स्थगित हो गया।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से आधुनिक काल का सर्व प्रथम टीकात्मक ग्रथ मानस पत्रिका ही है। इस पत्र म द्विवेदी जी ने अपने पूर्ववर्ती मानस के कुछ मुख्य टीकाकारो या व्याख्याताओ के मानस सम्बन्धी व्याख्यानो को उद्धृत किया करते थ। प्रथमत उन्होंने मानस के व्याख्यातव्य दिये हैं इनके पश्चात् आश्चर्य रामायण से उनके समानार्थी श्लोक दिये गये हैं, तदोपरान्त मूल (व्याख्यातव्य) का स्वविरचित सस्कृत अनुवाद, जो मानस के छन्दो के अनुरूप छन्दो मे है, दिया गया है। पुन उन्होंने मूल व्याख्येयो के प्राय सभी पदो का शब्दार्थ हिन्दी एव सस्कृत मे देते हुए उसका (मूल का) अन्वय दिया है। इसके पश्चात् मूल पर द्विवेदी जी ने अपनी एव सूय प्रसाद मिश्र की टिप्पणिया सहित राम कुमार जी करुणा सिन्धु जी, वदन पाठक काष्ठजिह्वास्वामी आदि की टीका टिप्पणियाँ उद्धृत की है। यह सग्रहात्मक टीका साक्षेप विरहित है।

मानस पत्रिकान्तगत प्रकाशित द्विवेदी जी की मानस सम्बन्धी जो व्याख्यायें हैं वे

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १५, स० १ मे प्रकाशित द्विवेदी जी की जीवनी के आधार पर।

२ वही।

३ वही।

मानस के व्याख्यानों को सागोपाग टीकायें नहीं हैं, अपितु एक प्रकार से उन पर लिखे गये स्फुट टिप्पण हैं, जिनमें अर्द्धाली विशेष या छन्द विशेष के पदों के मर्म को प्रकाशित किया गया है। टीकाकार ने पदो की गूढ़ व्यंजना की है, कहीं-कहीं पर उसने शब्दो को पकड़ कर उनके सहारे भाव निकाले हैं और कहीं-कहीं मानस के अन्य स्थलों से उद्धरण लेते हुए अपने अर्थ विशेष की सपुष्टि की है। टीकाकार ने विशेषतया मानसकार के द्वारा प्रयुक्त पद विशेष के औचित्य को दिग्दर्शित किया है। उनकी भाषा खड़ी बोली हिन्दी है उसमे उर्दू आदि के शब्दो का प्रयोग भी मिलता है। साथ ही कहीं-कहीं पंडिताऊपन की छाप भी मिलती है। भाषा मे संस्कृत तत्सम शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। उनकी टीका का प्रस्तुत उद्धरण इन समस्त विशेषताओं को प्रत्यक्ष करने मे समर्थ है —

मूल— 'लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित भये भ्रम हृदय विशेषा ॥१॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाव जानत मति धीरा ॥२॥
सती कपटु जानेउ सुर स्वामी। सब दरसी सब अन्तर जामी ॥३॥
सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना। सोइ सरबज्ञ राम भगवाना ॥४॥
सती कीन्ह चहत हहु दुराऊ। देखहु नारि सुभाऊ प्रभाऊ ॥५॥

सुधाकर द्विवेदी—१-२ —उमा याने महादेव की लक्ष्मी का किया हुआ वेष लक्ष्मण ने देखा। उमा से सिद्ध हो गया कि लक्ष्मण ही ने समझ लिया कि सीता नहीं किन्तु सती है। 'मा' का निषेध अर्थ करने से यह भी जनाया कि उसे याने महादेव जी से मना की गई है कि अविवेक के साधन परीक्षा लेना। लक्ष्मण के पहचान जाने से सिद्ध हुआ कि अवतार ता लक्ष्मण हो है राम तो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म है। पहले बालकांड के १० वें दोहे मे कह भी आये हैं—'शेष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन ॥' सती के हृदय मे विशेष भ्रम देखकर चकित हुए। चकित होने का भाव यह है कि सर्वज्ञ महादेव की अर्धागिनी होने पर भी इनकी भ्रम-दुर्वासना न गई, पति के वाक्य को कुछ नहीं माना अति गंभीर बहुत ही गहरे और मति धीर हैं अरण्य कांड मे 'मर्म वचन जब सीता बोला' इस पर भी इनका मन चलाय मान हुआ 'हरिप्रेरित लछिमन मन डोला।' इसलिए प्रभु के प्रभाव को समझ कर और शिव की स्त्री जानकर कुछ न बोल सके।

३-५ —ग्रन्थकार ने सुर स्वामी से महादेव का इष्टदेव 'सबदरसी' से सब बाहर के दूर और नगीच रहनेवाले पदार्थों को बराबर एक चाल से देखनेवाला 'माया धनी' और अन्तरयामी से सर्वव्यापक ठहराया याने महादेव जो ने जो पीछे सोइ मम इष्ट देव—सोई राम व्यापक ब्रह्म 'माया धनी' कहा था उसको सचाई दिखाई। आगे और पक्का करते हैं कि वही सर्वज्ञ भगवान है जिनके स्मरण करने से अज्ञान मिटते हैं जिन्हें महादेव जी पीछे कह चुके हैं—'गावत जाहि सदा मुनि धीरा' ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि ऐसे परम पुरुष से भी सती अपने वेष को छिपाना चाहती है सो नारी चरित्र को

देखो, हम लोग तो साधारण जीव हैं जो ब्रह्म को ठगना चाहती है। उससे हम लोग भगवान के स्मरण बिना कैसे बच सकते हैं। ग्रन्थकार ने भी लिखा है—नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।'[1]

उपर्युक्त दोनों टिप्पणियों में प्रथम टिप्पणी, जिसमें व्याख्यानव्य अर्धाली संख्या १२ की व्याख्या की गयी है, टीकाकार ने उमा शब्द को लेकर उ एवं मा इन दो अक्षरों के सहारे विभिन्न प्रकार के भाव निकाले हैं। दूसरी में जिसमें व्याख्येय की अर्द्धाली संख्या ३-५ पर टिप्पणी की गयी है, द्विवेदी जी ने ग्रन्थकार द्वारा अपने पद्यों में प्रयुक्त 'समदरसी' अन्तर्यामी आदि भगवान राम के विशेषणों को सटीक ठहराते हुए माया के स्वामी भगवान राम के परम ब्रह्मत्व को दिखाया है और नारि स्वभावगत दुर्गुणों से युक्त सती का सत्ता पति स ह वक्रता दिखाने के कारण, दोषी ठहराया है।

टीकाकार के उक्त टिप्पणियों में खड़ी बोली हिन्दी का विशुद्ध रीति से प्रयोग है। उसमें 'याने' (अर्थात् के लिए) सदृश उर्दू शब्द एवं नगीच (नजदीक) जैसे देशज (भोजपुरी में बहुधा प्रयुक्त) शब्द का प्रयोग भी दर्शनीय है। 'जनायमान' एवं 'जनाया' शब्द पंडितों की कथावाचकी बोली के ही हैं।

मानस पत्रिकान्तर्गत द्विवेदी जी की टीका पद्धति में हमें मध्यकाल की व्याख्या पद्धति का प्रचुर प्रभाव दीख पड़ता है, परन्तु उसमें आधुनिक काल की टीका शैली के लक्षण भी अंकुर रूप में प्रस्फुटित हैं। क्षेपक के सर्वथा बहिष्कार से मानस के साहित्यिक व्याख्या विधान की ओर विद्वान टीकाकार की विशेष रुचि दिखाई देती है। उसने काव्य शास्त्र के 'औचित्य' तत्व को, जिसे क्षेमेन्द्र ने काव्य की आत्मा माना है, अपनी टिप्पणी का मूल आधार बनाया है। उसने मानसकार के शब्द-स्थापन के 'औचित्य' पर अपनी टिप्पणियों में प्रधान रूप से विचार किया है। हमें 'मानस' के टीका-साहित्य के आधुनिक काल की टीका पद्धति का सूत्रारंभ सुधाकर द्विवेदी की ही 'मानस' टीका में मिलता है। इस प्रकार द्विवेदी जी का ही आधुनिक काल की टीका परंपरा के प्रवर्त्तन का श्रेय है।

तुलसी सूक्ति सुधाकर भाष्य
टीकाकार : श्री बाबूराम शुक्ल

'मानस' की एक ही अर्द्धाली—सब कर मत खग नायक येहा। करिय राम पद पंकज नेहा।' के पौने सतरह लाख से भी अधिक अर्थों की टीका—'तुलसीसूक्ति सुधाकर' भाष्य के रचयिता श्री बाबू राम शुक्ल 'मानस' के एक विलक्षण टीकाकार हैं। इनका समय (रचनाकाल संवत् १९९५ विक्रमी) विक्रम की बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। शुक्ल जी का जन्म उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के अन्तर्गत बालाऊगरपुर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम वृन्दावन शुक्ल था।[2] इनका नाम रामचरण

१. मानसपत्रिका, सं० २१-२२, संवत् १९६६, पृ० ३२६।
२. तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य, मुखपृष्ठ।

रखा गया था, परन्तु घर के लोग इन्हें लाड-प्यार वश बाबूराम कह कर पुकारा करते थे। इसी नाम से आगे ये प्रसिद्ध हुए।

शुक्ल जी की शिक्षा अच्छे ढंग से हुई थी। आपने हिन्दी अंग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा की भी उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। आपके शिक्षा-गुरु पंडित माधवाचार्य थे।[1] शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आप डी० जे० हाई स्कूल फर्रूखाबाद में अध्यापक हो गए। संस्कृत ग्रन्थों के स्वाध्याय में आपकी बड़ी रुचि थी। शुक्ल जी पाणिनी व्याकरण के भी अच्छे ज्ञाता थे। आपने वेद, वेदांग, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विविध साहित्यों का अध्ययन किया था। इनकी टीका तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य इस तथ्य का साक्षात् प्रमाण है।

प्रथमतः शुक्ल जी की अभिरुचि संस्कृत ग्रन्थों में ही थी। परन्तु एक बार जब आपने एक 'मानस'—व्यास के मुख से 'मानस' की एक ही अर्द्धाली की कई प्रकार की कई रुचिकर *व्याख्यायें सुनीं, तब से आप मानस के पठन-मनन की ओर अग्रसर हुए।* आप भी मानस की अर्द्धालियों के भिन्न भिन्न प्रकार के अर्थ करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने उपर्युक्त अर्द्धाली के कई लाख अर्थों को निकालने के लिए लगभग ढाई साल तक परिश्रम किया।[2]

शुक्ल जी ने पाणिनी भाष्य पर पाणिनी सूक्ति सुधाकर भाष्य नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत भाषा में दो तीन छोटे-छोटे ग्रन्थों की रचना की थी।[3]

टीका-तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य

'मानस' के टीका साहित्य में श्री बाबूराम शुक्ल कृत तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य बहु शास्त्र-तत्व-गर्भित अनेक अर्थ प्रधान एक अद्वितीय एवं अद्भुत टीका है।

'तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य' का रचनाकाल संवत् १६६५ विक्रमी[4] है और *प्रकाशन काल संवत् १६७४ विक्रमी है। यह उत्तरकांड की एक ही अर्द्धाली—सब कर मत* खग नायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा—की सुविस्तृत टीका है। इसमें इसी एक अर्द्धाली के कुल १६७५१४ अर्थ किये गए हैं। समस्त टीका १६ कलाओं (प्रकरणों) में विभक्त है एवं प्रत्येक कला कई मरीचिया (उप प्रकरणों) में है। टीका के पूर्वार्द्ध की *समाप्ति प्रथम आठ कलाओं में हुई और इसी प्रकार शेष आठ कलाओं में ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध* में की परिसमाप्ति की गयी है। ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में विशेष रूप से व्याख्यातव्य अर्द्धाली के प्रथम चरण में ही अर्थ किये गये हैं और उत्तरार्द्ध में उसके द्वितीय चरण के व्याख्यान

---

१. तुलसी सूक्ति सुधाकर भाष्य का मुख पृष्ठ।
२. तुलसी सूक्ति सुधाकर भाष्य की भूमिका।
३. वही।
४. तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य, प्र० सं०, पृ० २०६।

का प्राधान्य है। साथ ही उत्तरार्द्ध मे सम्पूर्ण अर्द्धाली के आधार पर भी बहुत से अर्थों की उद्भावना की गयी है। टीका के पूर्वार्द्ध मे अर्थों की कुल संख्या २००० है। शेष अर्थों का संयोजन इसके उत्तरार्द्ध मे किया गया हैं। उत्तरार्द्ध की केवल ९ वी कला के अन्तर्गत ही टीकाकार ने अर्द्धाली के भिन्न भिन्न शब्दो के विविध अर्थों के द्वारा अर्थों की राशि लगा दी है। इस एक हो कला के अन्तर्गत उसने १६५००३ अर्थ किये हैं। सम्पूर्ण टीका मे ५२५ अर्थ हो विस्तार से किए हैं शेष अर्थ साकेततिक पद्धति से ही दिखा दिये गए हैं। आगे हम उनकी इस अर्थ निष्पत्ति प्रक्रिया पर विशद रूप से विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

तुलसीसूक्ति सुधाकर अध्यात्म तत्त्व की विवेचिका एक कल्पनाप्रधान टीकात्मक रचना है। टीकाकार ने वैदिक, औपनिषदिक, दार्शनिक, पौराणिक एवं धर्मशास्त्रीय तत्वो का प्रतिपादन इस अर्द्धाली के विभिन्न अर्थों मे किया है। इनके अतिरिक्त उसने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन अथवा चमत्कारवादी वृत्ति के तोषार्थ ग्रंथकार के नाम उनके निवास मानस के रचनाकाल एवं अपना नाम, अपने सहायको के नाम एवं ग्रंथ रचना के संवत् इत्यादि को भी अर्द्धाली के अर्थों द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। टीका के उत्तरार्द्ध की अन्तिम कला को द्वितीय एवं तृतीय मरीचि इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

टीका के पूर्वार्द्ध की आठ कलाओ (प्रकरणो) के अन्तर्गत किये गये अर्थों के प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं।

प्रथम कला—इसमें अर्द्धाली के प्रथम पाँच अक्षरो 'सब करम' के अर्थों की सहायता से आकार की सिद्धि, इन्ही वर्णों के विविध अर्थों से दो मंगला चरणो, वर्णाश्रम, कायस्थधर्म, नीतिवर्णन सामान्य धर्म वर्णन एवं राम नाम महिमा का स्तवन किया गया है।

द्वितीय कला—दूसरी कला के अन्तर्गत अर्द्धाली के प्रथम छ वर्णों 'सब कर मत' के विभिन्न अर्थों मे वेद तत्व, आत्म-तत्व-ज्ञान, औपनिषदिक तत्वो, आत्म साक्षात्कारत्व का निदर्शन तथा इन्हीं वर्णों के विभिन्न अर्थों मे नीति परक, वैद्यकीय एव जैनीयधर्म के तत्वो का प्रतिपादन किया गया है।

तृतीय कला—इसके अन्तर्गत उक्त अर्द्धाली के प्रथम चरण के १३ वर्णों—स, ब, क, र, म, त, ख, ग, ना, य, क, ये, हा के ही अर्थों द्वारा वर्णनामर्य सघातो के अनुसार एक मंगलाचरण का विधान दश धर्म निरूपण, गंगातीर्थ महिमा, ऋण त्रय का उद्धार, षड् दर्शन तत्व, जीव-बलि निर्णय, अद्वैत मे अपूर्व युक्ति का निरूपण एवं भिन्न शास्त्रों, ईश्वर के भिन्न नाम, कुछ मंत्रो का उद्धार, वाहगुरु एवं विस्मिल्लाह अकबर आदि का उद्धार किया गया है।

चतुर्थ कला—चौथी कला मे व्याख्येय अर्द्धाली के प्रथम चरण के १३ ही वर्णों—स, ब, क, र, म, त, ख, ग, ना, म, क, ये हा-का तो अर्थ किया गया है साथ ही दूसरे चरण के १२ अक्षरो के भी एक सामान्य अर्थ को भी इन्ही अर्थों के साथ संयुक्त कर दिया गया है। इस चतुर्थ कला के अर्थों मे निम्नांकित विषयो पर प्रकाश डाला गया है—

'भवानी शंकरौ'— के अनुसार मंगलाचरण 'सब कर मत के ४० अर्थ, रामनाम चमत्कार, खगनायक एहा के २५ अर्थ काम क्रोधादि पर विजय तथा 'नर देह की नौकावत सिद्धि।

पंचम कला—इसके अन्तर्गत किये गए अर्थों के प्रतिपाद्य विषय निम्नलिखित हैं, 'वन्दे बोधमयं—'के अनुसार मंगलाचरण, वैराग्य भक्ति, सन्ध्यादिक धर्म, कर्म एवं ज्ञान से श्रेष्ठतर भक्ति की सिद्धि।

षष्ठ कला—इस कला के अर्थों के प्रतिपाद्य विषय हैं—विद्या से भक्ति की श्रेष्ठता, वैराग्यनिरूपण, भक्तिहीन विद्या की व्यर्थता, 'राम' इन दो वर्णों की श्रेष्ठता, यज्ञादि से श्रेष्ठतर भक्ति एवं उसका फल, भक्तों का वर्णन, वक्तृति का वर्णन और शीघ्र ही भक्ति करने के हेतु आह्वान।

सप्तमी कला—सातवीं कला में किये गए उक्त अर्द्धाली के प्रथम चरण के अर्थों के प्रतिपाद्य विषय हैं—सूर्य का मंगलाचरण, पुरुषार्थ प्रशंसा, प्रारब्ध प्रशंसा, ज्योतिष से प्रारब्ध ज्ञान, ईश्वर कृपा से प्रारब्ध कर्मों का नाश, प्रारब्ध एवं पुरुषार्थ उभय पक्षों के शक्ति का वर्णन, प्रारब्ध के नाशार्थ व्यास मुनिकृत सूत्रों का प्रमाण एवं नास्तिक मत-खंडन।

अष्टमी कला—टीका के पूर्वार्द्ध की अन्तिम (८ वीं) कला में अर्द्धाली के प्रथम चरण के अर्थ समुदाय के प्रतिपाद्य विषयों का आकलन निम्नांकित रूप से है—मंगला चरण (षडानन प्रार्थना), गुणमय का वर्णन, अवस्था के कर्म, चतु आश्रम धर्म, र, म की सूर्य चन्द्रवत स्थिति, भक्त के पितरों को सुख, राम में अनन्यता, सर्व दर्शनों की एकमेव गति राम, सर्व देव राम, अनन्य भक्ति, सूर्य बिम्ब के सदृश घट घट में राम की व्याप्ति। प्रश्नोत्तर से सतसंग, एक प्रश्न के आठ उत्तर, भिन्न भिन्न वर्णों में प्रश्नोत्तर, अनेक अनेक प्रश्नों का एक उत्तर। स्त्री धर्म निरूपण, विधवा धर्म निरूपण, विधवा धर्म निरूपण एवं सेवक धर्म निरूपण।

टीका के उत्तरार्द्ध की शेष आठ कलाओं के अन्तर्गत मुख्यतया व्याख्यातव्य अर्द्धाली के १२ वर्णों की विशेष व्याख्या की गयी है।

उत्तरार्द्ध की मात्र एक ही कला के अन्तर्गत व्याख्येय अर्द्धाली के 'करिय राम पद पंकज नेहा' के इन १२ वर्णों की ही सहायता से टीकाकार ने १६५००० अर्थों की सिद्धि की गई है। इसके पश्चात् १० वीं कला से सम्पूर्ण अर्द्धाली के २५ सौ वर्णों की सहायता से शेष अर्थों की निष्पत्ति की गयी है।

नवम् कला—व्याख्येय अर्धाली के मात्र उत्तर चरण से १६५००० अर्थों की सिद्धि, अर्द्धाली के उत्तर चरण के करिय पद के ५ अर्थ, 'करिय' एवं 'राम' के भिन्न-भिन्न अर्थ, पद, शब्द के पाँच अर्थ, पंकज नेहा के ८ अर्थ, इन्हीं वर्णों के उत्तम एवं सुगम ११ अर्थ किये गये हैं।

दशम् कला—के अन्तर्गत व्याख्यातव्य अर्द्धाली के विभिन्न अर्थों के अन्तर्गत भक्ति एवं ईश्वर रूप का प्रतिपादन किया गया है। इसके प्रतिपाद्य विषयों की क्रम-

स्थिति इस प्रकार हैं—'अन्वय से भक्ति वर्णन, हनुमत शब्द का उद्धार, भक्ति स्वरूप, भक्ति के प्रकार, नवधाभक्ति के लक्षण, व्यतिरेक से भक्ति, भक्ति के अधिकारी, भक्तो की दशा, भक्ति का फल, अभक्तो की दुर्दशा, ब्रह्मभेद निरूपण, निराकार निरूपण, साकार निरूपण, साकार निराकार ब्रह्म के दो विरोधी रूपों को स्थिति का रहस्य, आनन्दरूपाधिकारी, सत् चित् के लक्षण, वेदान्तानुसार ब्रह्म भेद, प्रथम विराट् का निरूपण, द्वितीय विराट्, तृतीय विराट्, चतुर्थ विराट् एवं हिरण्य गर्भ निरूपण, ईश्वर-निरूपण, परमात्म विभूति निरूपण, अवतार के प्रकार, संक्षेप से दश अवतारो का वर्णन, दश अवतारो के नाम, बुद्ध को अवतारी स्थिति का रहस्य।

एकादश कला—११ वी कला के अन्तर्गत उक्त अर्द्धाली के २५ मौ अर्थों की सिद्धि की गयी है एव सीताराम का मगलाचरण भी किया गया है।

द्वादश कला—१२ वी कला म अर्द्धाली के वर्णों को सहायता से विविध नीतियो का निरूपण किया गया। ये प्रतिपाद्य नीतियां हैं—भक्ति युक्त नीति एवं साधारण नीति।

त्रयोदश कला—१३ वी कला के अन्तर्गत कलि महिमा का वर्णन तथा धन की उत्तम गति (दान) को श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है इसी को कलि का मुख्य धर्म बताया गया है।

चतुर्दश कला—इस कला के अन्तर्गत वेद के सातो अंगो—छन्द, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, कला एवं ज्योतिष—का निरूपण व्याख्यातव्य अर्द्धाली के विभिन्न अर्थों के द्वारा किया गया है। इसके अतिरिक्त उपनिषद् तत्व का भी निरूपण किया गया है।

पंचदश कला—१५ वी कला के अन्तर्गत उप वेदो का वर्णन मुख्य है। इसमे अर्द्धाली के विविध अर्थों द्वारा तीन मंगला चरण देव एवं नवग्रहो के लिए गये हैं तथा वैद्यक धनुर्विद्या, वास्तुकला एव संगीतकला के तत्वो का निरूपण किया गया है।

षोडश कला—इस कला के अन्तर्गत टीकाकार ने लक्ष्मण जी का मगलाचरण किया है। उसने कुतूहलवश तुलसीदास के नाम, राजापुर, व्याख्यातव्य चौपाई का जन्म संवत् भाष्यकार का नाम एव कुल, भाष्यकार के गुरु का नाम, भाष्य रचना का सवत्, अपने दो सहायको, अतिम मगल एवं ग्रन्थ के आशीर्वाद आदि विषय का उल्लेख इसी अर्द्धाली के वर्णो के विविध अर्थों की सहायता से किया।

तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्यकार का लक्षाधिक अर्थों के निर्माण की रचना-प्रक्रिया

तुलसी सूक्तिसुधाकर भाष्य के रचयिता ने उक्त एक ही व्याख्येय अर्द्धाली के वियुक्त अर्थों के निरूपणार्थ उक्त अर्द्धाली के २५ अक्षरो के पृथक्-पृथक् या उन अक्षरो की मनमानी संयोजना करके भांति-भांति के पदो का सृजन किया है और उनके अनेक अर्थ करके अर्द्धाली को अर्थ सख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि की है। क्लिष्ट कल्पना, शब्दो एवं अक्षरो को उलट-पुलट एवं तोड-मरोड करके अर्थ करने की अपनी शैली की यह एक

ही टीका है। अब हम टीकाकार की टीका-पद्धति का एक परिचय प्रस्तुत करने के पश्चात् उसके ही द्वारा निर्दिष्ट अर्द्धाली का अनेकार्थ करने की प्रक्रिया का भी परिचय प्रस्तुत करेंगे।

टीकाकार ने प्रथमत अर्द्धाली के पच्चीसो वर्णों के पृथक्-पृथक् एवं उनके द्वारा मनमाने पद संयोजन करके अभीष्ट अर्थ निकालने के लिए एक तुलसीसूक्ति सुधाकर कोश की रचना की है। इसमे उसने प्रथमत अर्द्धाली के प्रत्येक अक्षर का अर्थ एकाक्षर कोष की सहायता से किया है, पुन क्रम मे उसने अर्द्धाली के दो-दो, तीन-तीन, चार-चार छ-छ एव सात-सात अक्षरों के सयोग से विभिन्न पदो की रचना की है और अनेक अभीष्ट अर्थ निकाले हैं। प्रस्तावना के अन्तर्गत उसके द्वारा विरचित तुलसीसूक्तिसुधाकर कोश इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

टीकाकार ने उपर्युक्त पदो के एवं अर्द्धाली के विभिन्न अर्थों के निर्माण की इस प्रक्रिया को 'भाषा' कवियों के सर्वथा अनुकूल माना है, उसका कहना है कि मैंने अर्द्धाली के पदो के विभिन्न अर्थों की प्रक्रिया को अपनाते समय उन साधनो को अपनाया है जो भाषा कवियो के काव्यो के अनुकूल ही ठहरते हैं। टीकाकार द्वारा अनेकार्थ के निर्माण के लिए ग्रहीत साधन निम्नलिखित हैं—

(१) व्याख्येय में संस्कृत शब्दों की विद्यमानता—टीकाकार का कहना है कि तुलसीदास न संस्कृत भाषा के शब्दो का प्रचुर मात्रा म प्रयोग किया है अतएव मैंने भी इस अर्द्धाली के पदो में संस्कृत शब्दो की ही अत्यधिक विद्यमानता मानकर उसके अनेक अर्थ किये हैं।

(२) उसने अनेक अर्थ करने के निमित्त ज्योतिष के अनुसार वस्तुओं के संख्या-वाची अर्थों एव अक्षरों से संख्या बोध की पद्धति का सहारा लिया है।

(३) टीकाकार का कथन है कि भाषा के कवि श ष स, ण, न सदृश अक्षरों में परस्पर कोई अन्तर नहीं मानते हैं। अतएव मैंने भी उक्त अर्द्धाली की व्याख्या करते समय यथावश्यक इन समान अक्षरों का प्रयोग अर्द्धाली के शब्द विशेष में करके उनसे अभीष्ट अर्थ निकाले हैं।

(४) कहीं-कहीं पर टीकाकार ने उक्त व्याख्येय अर्द्धाली के पदों के अर्थ उन्हें अरबी फारसी शब्द मानकर किये हैं। इस प्रकार के अर्थ के उदाहरण सबक, करम एवं जन शब्दों के अर्थ के रूप मे देखे जा सकते हैं। टीकाकार का कहना है कि चूंकि ग्रन्थ-कार ने अपने 'मानस' मे अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग किया है इसलिए मैंने भी उक्त पद्धति से अर्द्धाली के अर्थ किये हैं।

(५) भाषा मे विभक्तियों एवं विराम चिन्हों का प्रयोग नहीं होता है अतएव टीकाकार ने उन्हें मनमाने ढग से तोड़-मरोड़ कर उनसे अभीष्ट अर्थ निकाले हैं।

(६) टीकाकार ने कहीं-कहीं पर वैदिक कोश निघंटु आदि के सहारे भी उक्त अर्द्धाली के पदो के अर्थ किये हैं। यद्यपि भाषा काव्य में वैदिक कोशों का व्यवहार लोगों

को बहुत औचित्यपूर्ण नही लगेगा, तब भी उसने अनेकार्थ पद्धति के प्रेमी 'मानस' पाठको के चित्तानुरंजनार्थ इनका सहारा लेकर 'मानस' के अनेक अर्थ किये हैं।

तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य में व्यवहृत अर्थ व्यंजना की प्रणालियाँ

तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्यकार ने अपने लक्षाधिक अर्थों के निष्पदनार्थ मुख्यतया इन तीन पद्धतियो को अपनाया है।

(१) अर्द्धाली के विशिष्ट पदों का अर्थ—टीकाकार ने व्याख्येय अर्द्धाली के दो या तीन पदों के संयुक्त अर्थ से ही कितने ही आध्यात्मिक अथवा धार्मिक अभिप्राय परक अर्थों की नियोजना की है। इस तथ्य के परिचयार्थ यहाँ एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

टीकाकार ने अर्द्धाली के पूर्वचरण के 'सब कर मत' इन तीन पदो के अर्थ द्वारा उसने उपनिषदो के प्रामाणिक महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

मूल—सब कर मत

अर्थ—'मत (देहाभिमान को छोड कर) सब (उस परमात्मा के सम) (अपने को) कर॥

भाव—'मैं' हूं 'ऐसा देह मे अहंकार छाड 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्वमसि' इत्यादि महावाक्यों को समझ—

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा
दीप शिखा सोइ परम प्रचण्डा॥

(व० प०) मक्त (मुझ मे) शुद्ध संस्कृत शब्द। स वह या ईश्वर। व समान।
कोष्टकों मे लिखे सब अर्थ सप्रमाण सुधाकर सोपान कोश मे मिलेंगे।
मत्वात् मत्वं विहाये त्यर्थ. ल्यल्लोपे पचमी॥ भाव प्रधानो निर्देश॥
प्रश्न—किस प्रकार से? उत्तर—दृष्टान्त उन्ही अक्षरो मे है।

उपर्युक्त अर्थ मे टीकाकार ने केवल अर्द्धाली प्रथम तीन पदो 'सब' कर एवं मत के द्वारा अपना अभीष्ट अर्थ निकालने के लिए उनका स्थान विपर्यय करके उनके अर्थ अपनी पूर्व मान्यताओं के जिनका जिक्र हमने पिछले पृष्ठ में किया है, आधार पर ही किया है।[1] यह 'मत' शब्द उसने पंचमी विभक्ति संस्कृत पद के रूप मे लेकर उसका अर्थ मुझ से किया है। और वर्ण 'स' को संस्कृत की प्रथमा विभक्ति के अनुरूप सः मानकर उसका (वह) परमात्मा अर्थ किया है। 'ब' का अर्थ समान किया है। (देखिये सुधाकर सोपान कोश, पृ० ४८) यहाँ भली भाँति स्पष्ट ही है कि टीकाकार ने अपने अभीष्ट अर्थ की व्यंजना के लिए खींचातानी की है एवं क्लिष्ट कल्पना तथा व्यर्थ की ऊहापोह की है।

---

१ तुलसीसूक्ति सुधाकर भाष्य, प्र० स० पृ० ९१।

अर्द्धाली के सम्पूर्ण पदों की व्याख्या पद्धति

टीकाकार ने बहुत से अर्थ ऐसे भी किये हैं कि जिनमे उसने अर्द्धाली के सम्पूर्ण पदों का पूरा सहारा लिया है। इस प्रकार के अर्थों का विधान ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध की दसवीं कला से सोलहवी कला तक प्रचुर रूप मे मिलेगा। एक उद्धरण से यह तथ्य प्रत्यक्ष हो जायगा—

मूल—सब कर मत खगनायक येहा।
करिय राम पद पकज नेहा॥

अर्थ—'(४२) सब (समस्त) क, वाया मे) रमत (रमते हुए) खग (देवो का) नायक एहा (स्वामी यह राम है) माव—

विषय करण सुर जीव समेता। सकत एक ते एक सचेता।
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई।'

(कोष्टकों मे लिखे सब अर्थ सप्रमाण कोश म—शकाओ के उत्तर प्रस्तावना मे हैं)।[1]

उपर्युक्त अर्थ म टीकाकार ने व्याख्यान अर्द्धाली के सभी पदो की सहायता से राम के सर्व व्यापकत्व का उपपादन करने के लिए अर्द्धाली के विविध पदो एवं उनके अक्षरों के पृथक्-पृथक् अर्थ करके (जिन अर्थों को टीकाकार ने शब्द कोशो से प्रमाणित भी किया है) बडी ही चमत्कारिक अर्थ रीति का सहारा लिया है। इसके अतिरिक्त उसने अपने अर्थ प्रतिपाद्य विषय की पुष्टि 'मानस' की उन अर्द्धालियों द्वारा किया है जिनमे राम के सर्व—श्वररत्व का प्रतिपादन किया गया है।

साकेतिक अर्थ प्रणाली—

तु० सू० सु० भाष्यकार की तीसरी अर्थ प्रणाली सकेत से वियुक्त अर्थों की उद्भावना कर देने की है। टीकाकार ने इस प्रणाली के अतर्गत 'मानस' के विभिन्न पदो के कई शाब्दिक अर्थ बनाकर आपस मे उन शाब्दिक अर्थों के सहारे व्याख्येय अर्द्धाली के पूर्ववर्ती सभी अर्थों के साथ सयुक्त करते हुए बहुत से नवीन अर्थों की उद्भावना की है। तु० सू० सुधाकर भाष्य की ६ वी कला के अन्तर्गत १६५००० अर्थों का सृजन उक्त पद्धति के अनुसार ही हुआ है। उसी कला का प्रथम मरीचि के अन्तर्गत व्याख्येय अर्द्धाली के मात्र 'करिय' पद से दस हजार अर्थों की उद्भावना इस प्रकार की गयी है—

सूचना—ग्रथ के पूर्वार्द्ध तक सूचित किय गए २ सहस्र अर्थों म 'करिय' पद का एक ही साधारण अर्थ करिये (कीजिये) माना गया है। उन सब अर्थों मे उस 'करिय' पद के पीछे सुधाकर सोपान कोश म वर्णित १—करनेवाला, २—पतवार ३—करि (हाथी) के पास (ग्राह से रक्षा करने के लिए जाना, तथा 'र' और 'ल' की सवर्णता से करि करि। य यह। तो ४ कलिकाल मे यह। ये अर्थ भी करन से २ सहस्र के १० सहस्र अर्थ बनेंगे।[2]

---

१ तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य—प्र० सं०, पृ० १७७।
२ तुलसीसूक्ति सुधाकर भाष्य, प्र० सं०, पृ० १२६

यहाँ पर टीकाकार ने 'करिय' शब्द के चार अर्थ किये हैं और इन चारों अर्थों को तु० सूक्ति सु० भाष्य की आठ कलाओं में इस अर्द्धाली के किये गए कुल २००० अर्थों के साथ करिय शब्द इन चार अर्थों के संयोग से ८००० नवीन अर्थों की समावना व्यक्त की है। इस प्रकार ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध के २००० हजार एवं ८००० ये नवीन अर्थ मिलकर १० हजार हो गए। इस कला की द्वितीय मरीचि मे 'करिय' एवं 'राम' पदों के विभिन्न अर्थ किये गये हैं और उन सभी का संयोग इन १०० अर्थों के साथ करके ४०० अर्थों का निर्माण किया है। पुनः आगे भी अर्द्धाली के शेष पदों के विविध अर्थ करते हुए इसी प्रकार सहस्रों मे लाखों अर्थों की समावना व्यक्त की है। इसी प्रकार के संभावित अर्थों के द्वारा ही उसने उक्त एक अर्द्धाली के १६७५४६ अर्थों का सृजन किया है। इस अर्द्धाली के ये सभी अर्थ केवल २०८ पृष्ठों की लघु आकारवाली पुस्तक मे, जिसमें ७६ पृष्ठ प्रस्तावना के ही हैं, समा भी कैसे सकते हैं। इसीलिए तो जैसा कि पूर्व ही बता दिया गया है कि टीकाकार ने इस अर्द्धाली के केवल ५२५ अर्थ ही विस्तार से दिये हैं शेष अर्थ तो सांकेतिक प्रणाली से ही व्यक्त किये हैं।

टीका की भाषा शैली

टीका की चमत्कारिक क्लिष्टकल्पना युक्त अनेकार्थ पद्धति परक व्यास जैसी शैली का विवेचन तो पिछले पृष्ठों मे कई बार हो चुका है। इसलिए उस पर विचार करने की यहाँ आवश्यकता नही है। जहाँ तक टीका की भाषा का प्रश्न है, तुलसीसूक्तिसुधाकर भाष्य मे खडी बोली हिन्दी गद्य का प्रयोग किया गया है। भाषा मे अपरिष्कार एवं अस्पष्टता वर्तमान है। कहीं कहीं पर तो इसी कारण टीकाकार अपने मन्तव्य को ठीक से व्यक्त नही कर पाया है। इस दृष्टि से सांकेतिक अर्थ प्रणाली के उपर्युक्त उद्धरण को ही देखा जा सकता है। टीकाकार ने संस्कृत तत्सम शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया है। इसका सहज कारण यह है कि वह विशेष रूप से संस्कृत का ही अध्येता था।

यद्यपि टीका की अनेकार्थ अर्थशैली मे अनेक प्रकार की स्वच्छंद एवं विचित्र पद्धतियों का सहारा लिया गया है,[1] चमत्कार वर्द्धनार्थ अर्द्धाली पदों को तोड़ा मरोड़ा गया है, विलक्षण क्लिष्ट कल्पनाओं का सहारा लेकर अर्थों का सृजन किया गया है। इन सारी अर्थ-पद्धतियों को सुविज्ञ साहित्यज्ञ एवं मानस—मर्मज्ञ सम्भवत निर्दुष्ट एवं सर्वथा समीचीन मानने को तैयार न हों, तथापि हम गर्व पूर्वक इस टीका के विषय में यह कह ही सकते कि रचना प्रक्रिया सम्बन्धी असमार्जन अर्थ प्रणाली को अपनाते हुए भी टीकाकार ने 'मानस' की इस एक अर्द्धाली को टीका के अन्तर्गत वेद, उपनिषद्, पुराण, दर्शन वैद्यक, ज्योतिषादि रूप का गौरवशाली महिमा एक विचित्र तु० सू० सु० भाष्य के रूप में आकलन हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमे 'मानस' के अधिक टीकाकार की मानसिक प्रक्रिया एवं बहुज्ञता प्रदर्शन उद्घोष है। यद्यपि इस टीका मे अनेक अर्थपरक व्याख्या प्रणाली को अपनाया गया है, तथापि इसकी विद्वत्तापूर्ण अर्थप्रकाशन

---

१. देखिये, अध्याय २ पृ० ३३९-४० । टीकाकार की स्वच्छन्द मान्यतायें ।

की पद्धति के आधार पर विविध कोश एवं उपनिषद्, पुराण, दर्शन-व्याकरण तथा साहित्यिक ग्रन्थ हैं। इसलिए इसका परिचय हमने व्यास प्रणाली से प्रभावित आधुनिक कालीन टीकाओं के साथ न देकर इसे इस प्रकरण में विवेचित किया है।

अमृत लहरी टीका : टीकाकार : रामेश्वर भट्ट :

पं० रामेश्वर भट्ट कृत अमृत लहरी टीका का रचना-काल संवत् १९६६ वि० है। इसका प्रकाशन संवत् १९९२ वि० में इण्डियन प्रेस (इलाहाबाद) से हुआ था। जैसा कि आधुनिक काल के सामान्य-परिचय के अन्तर्गत बता दिया है कि टीका रामेश्वर भट्ट कृत 'मानस' की प्रथम टीका पीयूषधारा की भाँति क्षेपक युक्त एवं 'व्यास' शैली परक नहीं है, अपितु यह बाबू बालमुकुन्द एवं श्रीधर पाठक सदृश साहित्यिकों की प्रेरणा से लिखी गयी गयी क्षेपक रहित विशुद्ध साहित्यिक टीका है। रामेश्वर जी भट्ट ने आधुनिक काल की परिष्कृत रुचि सम्पन्न शिक्षित जनता को 'मानस' के यथार्थ स्वरूप का दिग्दर्शन कराने के लिए इसे लिखा था, परन्तु इस टीका के रचना काल के समय सामान्य जनता में क्षेपक युक्त व्यासों की व्याख्या-पद्धति प्रधान टीकाओं की ही माँग अधिक थी। इसीलिए तो इनकी इस दूसरी टीका का प्रकाशन इनकी प्रथम टीका पीयूष-धारा के प्रकाशक श्री तुलाराम जावजी (निर्णय सागर प्रेस के मालिक) ने इसे तत्काल छापने से इनकार कर दिया था, क्योंकि उन्हें इस टीका के बाजार में लोकप्रिय होने की आशंका थी। परन्तु इस समय भी शिक्षित साहित्यिक पाठक एवं प्रकाशक ऐसी टीकाओं के प्रति आकर्षित थे। इसका पता इस तथ्य से चलता है कि इण्डियन प्रेस के अधिष्ठाता एवं सुप्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी श्री चिन्तामणि घोष ने उसी समय अमृत लहरी टीका के छापने का भार ले लिया, परन्तु प्रकाशन संबंधी कुछ विशेष असुविधाओं के उत्पन्न हो जाने के कारण इसका प्रकाशन बहुत बाद में सं० १९९२ वि० में इण्डियन प्रेस से हो सका।[1] इस प्रकार रामेश्वर जी भट्ट एवं उनकी अमृत लहरी टीका का महत्व आधुनिक व्याख्या-पद्धति की टीका-रचना पद्धति के प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

अमृतलहरी के अन्तर्गत 'मानस' के मार्मों शब्दों की टीका की गयी है। इसके अन्तर्गत 'मानस' की व्याख्येय पंक्तियों के अर्थ का अनावश्यक विस्तार नहीं किया गया है। मूल का स्पष्ट एवं सरल अर्थ ही इस टीका में मिल सकता है। टीकाकार ने प्राय व्याख्येयों का अक्षरार्थ ही किया है। कहीं-कहीं पर पाद टिप्पणी में व्याख्येय की विशेष बातों को भी समझा दिया गया है। टीका की भाषा खड़ी बोली गद्य है। भाषा सरल एवं सुबोध है। उसमें कहीं-कहीं पर अवधी, ब्रज एवं देशज शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। अरबी-फारसी के शब्द भी कतिपय स्थलों पर प्रयुक्त हैं। टीकाकार की रचना-शैली में ऋजुता एव स्पष्टता वर्तमान है। यहाँ अमृत लहरी टीका का एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

---

१. अमृत लहरी टीका की श्री श्रीपीश्वरनाथ भट्ट कृत भूमिका।

मूल— प्रेम अमिअ भेद विरह भरत पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिन्धु रघुबीर ॥'

अर्थ—भरत जी अगाध क्षीर समुद्र हैं और विरह मंदर पर्वत हैं, उसे मथकर भक्त रूपी देवताओं के लिए कृपासिंधु रामजी ने प्रेमरूपी अमृत निकाला।

पादटिप्पणी—भरत को ननिहाल से लौट आने पर राम जी के दर्शन नहीं हुए इसी वियोग से आशय है।

जैसे देवताओं के लिए मन्दराचल से समुद्र मथ कर अमृत निकाला गया था उसी तरह साधुओं के हित के लिए भरत जी से राम जी के वियोग के कारण प्रेम प्रकट हुआ।'

अमृत लहरी के उपर्युक्त उद्धरण में व्याख्यातव्य दोहे के भाव को प्रथमत अर्थार्थ पुन रूपक को अधिक स्पष्ट करने के लिए उसकी पाद टिप्पणी मे भी प्रयास किया गया है। भाषा की सरलता ऐसी है कि सामान्य रूप से शिक्षित व्यक्ति के लिए भी टीका सर्वथा सुगम है।

अन्तत इस टीका के विषय में हम यहाँ जो एक अपेक्षित सूचना देना समीचीन समझते हैं, वह यह है कि यद्यपि टीकाकार ने क्षेपकों को टीका से एकदम बहिष्कृत कर दिया है, तथापि तत्कालीन सामान्य जन की रुचि के रक्षणार्थ क्षेपकों की कथाओं-लवकुश चरित, सीता का भू प्रवेश एव रामादि के महा प्रस्थान को गद्य मे अनुबद्ध कर ग्रन्थ के परिशिष्ट में स्थान दे दिया है।

टीका विनायकी टीका
टीकाकार · श्री विनायक राव

पंडित विनायक राव जी—(रचना काल संवत् १९७० वि०) सागर (मध्य प्रदेश) के निवासी थे। वे ट्रेनिंग इस्टीट्यूशन (जबलपुर) के असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट थे। आप तत्कालीन अंग्रेज सरकार एव जनता दोनों के द्वारा सम्मानित थे। आप हिन्दी के निष्ठावान सेवक एव प्रबल पक्षपाती थे। मध्य प्रदेश मे हिन्दी के प्रचार कार्य मे आपका योगदान सराहनीय है। आपकी लिखी हुई अधिकांश पुस्तकें तत्कालीन उच्च विद्यालयों (हाई स्कूलों) एव पाठशालाओं मे चलती थीं। सरकार ने हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य मे आपको १००० रु० का पुरस्कार भी दिया था। आप को कविनायक एव साहित्य भूषण की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। आपने हिन्दी मे कुल पन्द्रह-बीस ग्रन्थ लिखे थे,[1] जिनमे मानस की विनायकी टीका सुविख्यात है। आप हिन्दी के एक अच्छे कवि भी थे।

---

१ रामायण टीका करी बहु जन बुद्धि उदार। तिन मँह लिखी विनायकी टीकन की सरदार। टीकन की सरदार, सार सरलार्थ सुधी को। पिंगल छन्द प्रबंध अलंकृत भावहि जी को। ही को मानु प्रकाशा ज्ञान भव साधन सामा 'सरस सुखद सब सज्ज राम सिय गुण ग्रामा ॥'

विनायकी टीका

'मानस' के टीका-साहित्य के आधुनिक काल की टीकाओ में विनायकी टीका का विशिष्ट स्थान है। यह टीका साहित्यिक एव भक्ति परक दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसे मानस की सर्व विध उत्तम टीका कहा जा सकता है। स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' ने इसे टीकाओं की सरदार कहा है एव सुप्रसिद्ध साहित्यिक एव मानसमर्मज्ञ प्रोफसर राम दास गौड़ ने भी इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है।[1]

विनायकी टीका का नाम इसके रचयिता श्री विनायक राव जी के ही नाम पर ख्यात हुआ। यह मानस की सुविस्तृत टीका है। इसके भिन्न-भिन्न काडों की रचना एवं उनका प्रकाशन विभिन्न समयों पर हुआ है। टीका के विविध काडो की पुष्पिकाओ के आधार पर उनका रचनाकाल इस प्रकार है—

अरण्यकाड—शिवरात्रि, सवत् १९६४,
अयोध्याकाड—आषाढ़ कृष्ण दो सवत् १९६७,
बालकाड—पौष शुक्ल सात, संवत् १९६९,
सुन्दर काड—आषाढ़ शुक्ल चार, संवत् १९७१,
बालकाड—माघ कृष्ण चौदह, सवत् १९७१,
लंका काड—विजयादशमी, संवत् १९७३, एव
उत्तरकाड—विजयादशमी, संवत् १९७३।

विनायक टीका के बालकाड का प्रकाशन सन् १९१५ मे हुआ। शेष कांडो का प्रकाशन यथा समय होता गया।

विनायकी टीका 'मानस' की सागोपाग एवं सर्वांगपूर्ण टीका है। इसमें 'मानस' के साहित्यिक, भक्तत्यात्मक, एव व्यास-प्रणाली परक व्याख्यानो का सम्यक् रीत्या समन्वय किया गया है। अपनी इन्हीं विशेषताओ के कारण यह टीका साहित्यिकों, सन्तो और गृहस्थों मे समान रूप से समादृत हुई। इससे प्राचीन टीका-पद्धति के रुचि-सम्पन्न मानस-प्रेमियों तथा आधुनिकशिक्षा प्राप्त बुद्धिवादियो दोनो को सतोष प्राप्त हो सकता है। इसमें यत्र-तत्र अपेक्षित आधुनिक ज्ञान विज्ञान की बातो की विवेचना से भी टीका को पुष्ट किया गया है।

विनायकी टीका के अन्तर्गत प्रथमत 'मानस' के व्याख्यातव्य स्थल के क्लिष्ट पदो के शब्दार्थ दिये गये हैं। यदि आवश्यकता पड़ी है तो व्याख्येय विशेष का अन्वय भी किया गया है। मुख्य स्थलों के विविध प्रकार के भाव भी दिये गए हैं, जैसा कि व्यासों की कथावाचकी शैली प्रधान 'मानस' टीकाओं मे किया गया है। इसके उपरान्त जो व्याख्या-सापेक्ष बातें शेष रह गयी हैं, उन्हें व्याख्येय विशेष की पाद-टिप्पणी में दे दिया गया है। व्याख्येयों के समानार्थी श्लोक एवं पद भी सस्कृत तथा हिन्दी ग्रन्थों से उद्धृत करके पादटिप्पणियों में ही उल्लिखित कर दिये गए हैं।

---

१. विनायकी टीका (लंका काड) प्र० सं० पृ० ३ की भूमिका।

टीकाकार ने काड विशेष के क्षेपको, अन्तर्गत कथा-प्रसंगो एवं उसमे आये हुए छंद, रस, अलंकार, ध्वनि आदि काव्यशास्त्रीय तत्वो का विस्तृत विश्लेषण सहित उल्लेख उसकी पुरौनी (परिशिष्ट) के अन्तर्गत किया है।

टीका की व्याख्या शैली सरल तथा विशद है। यद्यपि इस पर व्यासो की चमत्कारिक कुतूहलोत्पादक अर्थ-पद्धति का भी कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है, परन्तु टीका की व्याख्या पद्धति मे प्रधानता साहित्यिक व्याख्यान प्रणाली की ही है। टीका की भाषा खडी बोली हिन्दी गद्य है। भाषा में सरलता, विशदता एवं परिष्कार है। विनायकी टीका से एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— स्याम गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

अर्थ—(सखी) कहने लगी दो राजकुमार जिनकी किशोर अवस्था है और जो सभी प्रकार से सुन्दर हैं, बाग की सैर करने आये हैं एक तो श्यामले और दूसरे गोर रंग के हैं उनका वर्णन मैं कैसे करूँ, क्योंकि वाणी को नेत्र नही और नेत्रो को वाणी नही (अर्थात् जीभ जिसे वर्णन करने की शक्ति है उसे देखने की शक्ति नही और नेत्र जिन्हें देखने की शक्ति है उन्हे वर्णन करने की शक्ति नही है। भाव यह कि देखनेवाला कोई और है और वर्णन कर्त्ता कोई दूसरा है। साराश यह है कि 'नैनन के नाहिं बैन, बैन के नयन नही हैं) है।

पाद टिप्पणी—गिरा अनयन नयन बिन बानी—लाला मुंशी लालब्रजचंद कृत राग विनोद से—

राग पीलू—निरखे अलिदोउ राजकिशोर।

हरत श्री मिथिलेश नृपति के बाग माहिं चहु ओर।
स्याम गौर सुठि रूप राशि छवि भरी पारहो पोर।
वारिद द्युति दै घन दामिनी रवि शशि रहि मदन करोरा
बानि सका केहि भांति सुनाई मधुराई चितचोरा ॥
गिरा अनयन नयन बिन करनी, रची विरचि कठोर।
मथि छवि जलधि रतन मनु काढ़े करि विधि पतन अथोर
जल व्रज चन्द दिखाऊँ तुम्हही गिनती करत निहोर।[१]

टीकाकार ने उपर्युक्त अर्धाली का अर्थ बडे ही विशद एवं विस्तृत ढग से किया है। उन्होंने उक्त अर्धाली के भावो को स्पष्ट करनेवाली ब्रजचन्द कवि कृत पद को भी उद्धृत किया है। भाषा सरल, विशद एवं परिष्कृत है।

---

१. विनायकी टीका (बालकांड) प्र० सं०, पृ० ८८।

मानसभाष्य :

भाष्यकार : पं० रामवल्लभाशरण

पं० राम वल्लभाशरण जी का जन्म आषाढ़ कृष्ण १३ संवत् १९१५ को बुन्देलखण्ड के रणेह नामक ग्राम के अन्तर्गत कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश मे हुआ था।[१] इनके पिता का नाम पं० रामलाल एवं माता का नाम रमा देवी था। इनका बचपन का नाम धनुषधारी था। पाँच ही वर्ष की अवस्था मे इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब इनकी अवस्था ७ वर्ष की हुई तो इनके पिता इन्हें लेकर पौडी नामक ग्राम मे आ गए और यहीं निवास करने लगे। गाँव मे सीताराम का एक मंदिर था। पिता-पुत्र उसी मंदिर की परिचर्या में लगे रहते थे। ये वहीं पर संस्कृत पढ़ने लगे और १७ वर्ष की ही अवस्था मे संस्कृत के अच्छे विद्वान हो गए। संवत् १९३२ मे इनके पिता जी की मृत्यु हो गयी।

आप बडे अध्यवसायी थे। आपने संस्कृत के समी साहित्यो का बोध प्राप्त कर लिया था। कालान्तर म आपने मंदिर के प्रबन्ध का सारा भार रामवचन दास नामक एक साधु को सौंप दिया और उन्हीं साधु से आपने दीक्षा भी ले ली। अब आप पूर्ण रूप से तपो साधना मे रत हो गए। इन्हीं महात्मा ने उनका नाम रामवल्लभाशरण रखा। कुछ दिनो के पश्चात् आप अयोध्या आ गए। वहाँ से चित्रकूट होते हुए आप प्रयाग गए और पुन अयोध्या लौट आये। यहाँ आपने मणि राम जी की छावनी मे अपना आसन लगाया। इन्हीं दिनो आपका परिचय सरजू तट निवासी महात्मा विद्यादास से हुआ। उनके आदेशानुसार आप विनयपत्रिका की कथा सुनाने लगे। धीरे-धीरे इनकी विद्वता एवं आकर्षक कथावाचन की ख्याति सम्पूर्ण अयोध्या में फैल गयी। अब आपकी यहाँ पर पर्याप्त प्रतिष्ठा होने लगी।

बाद में महात्मा विद्यादास से इन्होंने रसिक भाव का सम्बन्ध ले लिया। मणिराम छावनी के निकट ही रहनेवाले इनके गुरु भाई श्री कल्याणदास ने इनके लिये ८ बीघे जमीन खरीदी और उसमे एक सुन्दर भवन का निर्माण करवाया। अब (सं० १९५३ वि० से) आप यहीं निवास करने लगे। धीरे धीरे आप के शिष्य श्रद्धालु बढ़ने लगे। उन लोगो के निवास के लिए आपने समीप ही एक अन्य विशाल निवास-स्थान बनवाया। विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए आपने एक संस्कृत विद्यालय भी स्थापित किया जो बड़ी ही जोर-शोर से चला। आप स्वयं भी विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे।

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि प्रान्तो के बहुत से विद्वान् संत, राजे, महाराजे एवं सेठ-साहूकार आपके शिष्य थे। आपका साकेतवास कार्तिक शुक्ल १० संवत् १९६८ को हो गया।[२]

---

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५०१४।

२ रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५०१-४।

पंडित जी की साहित्य-सेवा का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। आपने सम्प्रदाय के संस्कृत ग्रंथों की टीका-टिप्पणी कर उन्हें सम्प्रदाय के लिए सुगम बनाया। आपकी 'मानस' के मनन-व्याख्यान में बड़ी अभिरुचि थी। आप स्वयं मणिराम छावनी पर 'मानस' की कथा कहा करते थे। आपने 'मानस भाष्य' नामक 'मानस' की एक संग्रहात्मक टीका प्रणीत की थी, जो अयोध्या से निकलनेवाले 'तुलसीपत्र' के कुछ अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित भी होता रहा।

पंडित जी के द्वारा प्रणीत ग्रंथों की तालिका निम्नलिखित है—

१—बृहत्कोशल खंड की टीका।
२—शिवसंहिता की टीका।
३—सत्यसिन्धु चन्द्रोदय खंड की टीका।
४—जानकी स्वराज्य खंड की टीका।
५—राम नवरत्न खंड की टीका।
६—सुन्दर मणि संदर्भ की टीका।
७—ध्यान मंजरी की टीका।
८—रहस्यमय खंड की टीका।
९—तत्व त्रय खंड की टीका।
१०—शिक्षा-पत्री खंड की टीका।
११—विनय कुसुमांजलि खंड की टीका।
१२—राम पटल खंड की टीका।
१३—सुदामा बारह खड़ी।
१४—रामस्तवराज के श्री हरिदास कृत भाष्य की टीका।
१५—राम तापिनी उपनिषद् के श्री हरिदास भाष्य की टीका।[1]

मानसभाष्य

अयोध्या के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं मानस मर्मज्ञ प० रामवल्लभाशरण ने राम चरित मानस का एक सुविस्तृत व्याख्यान किया, जिसमें 'मानस' के अन्य प्रसिद्ध टीकाकारों एवं व्याख्याताओं के भी भाव संयुक्त रहते थे। यह व्याख्यान अयोध्या से ही निकलने वाली तुलसीपत्र नामक मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से निकलता भी था। इस विस्तृत व्याख्यान का नाम मानस भाष्य रखा गया था। इसका प्रकाशन तुलसीपत्र वर्ष ४ (संवत् १९७४) अंक ४ से प्रारम्भ हुआ और तुलसी पत्र वर्ष ५, अंक ११, १२ तक नियमित रूप से चलता रहा। हमें तुलसीपत्र के अन्य वर्षों (६, ७) अगले अङ्कों में मानस भाष्य का धारावाहिक प्रकाशन प्राप्त नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विशेष असुविधाओं के कारण मानसभाष्य का प्रकाशन शीघ्र ही बन्द हो गया। और इसके साथ ही साथ मानस भाष्य का प्रकाशन भी बन्द हो गया। सम्प्रति तुलसीपत्र वर्ष ५, अङ्क

१. राममक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५०४, प्र० सं०।

११, १२ मे प्रकाशित मानस के बालकाड के प्रथम दोहे की प्रथम चौपाई—अमिय मूरिमय चूरन चारु' तक की ही टीका हमें मानसभाष्य के रूप में उपलब्ध है।

मानसभाष्य के अन्तर्गत पं० रामवल्लभ जी ने प्रथमत व्याख्यातव्य के सभी क्लिष्ट शब्दो के अर्थ दे दिये है। इसके अनन्तर व्याख्येय का यदि आवश्यक हुआ तो अन्वय भी दिया गया। पुन अक्षरार्थ दे कर व्याख्येय के सभी पदो पर मानस के अन्य प्रसिद्ध टीकाकारो के भावो को अपने शब्दो मे सम्पादित करके उल्लिखित किया गया है। अन्तत उन्होंने अपनी भी सम्मति कुछ प्राचीन सुप्रसिद्ध टीकाकारों—करुणासिन्धु, काष्ठ-जिह्वा स्वामी मानसमयंककार आदि के व्याख्यानो के सम्बन्ध मे जता दी है। इस प्रकार की व्याख्यान प्रणाली का क्रम 'मानस' (बालकाड) के मंगलाचरण सम्बन्धी प्रारम्भिक सात श्लोकों एव ५ सोरठो मे प्राप्त होती है। इनके पश्चात् 'मानस' के प्रथम दोहे की अर्द्धालियों की व्याख्या (मात्र प्रारम्भिक दोहा अर्द्धालियों की टीका प्राप्त है) मे अपने भाष्य म अन्य टीकाकारो के भावों को प्रस्तुत करने की उनकी प्रवृत्ति म कमी आ गयी है। प्रथम अर्द्धाली म तो कुछ टीकाकारो के भाव सक्षिप्त रूप से निर्दिष्ट भी कर दिये गये हैं, परन्तु दूसरी अर्द्धाली की व्याख्या में टीकाकार ने अन्य टीकाकारों के भाव देकर स्वत इस अर्द्धाली का विस्तृत मार्मिक एवं विद्वत्तापूर्ण भक्तिपरक व्याख्यान प्रस्तुत किया है। 'मानस' भाष्य के अन्तर्गत केवल मानस के भक्ति पक्ष का ही विश्लेषण नही प्रस्तुत किया गया है, अपितु उसम यथापेक्षित उसकी साहित्यिक विशेषताओं का भी विवेचन प्राप्त होता है।

टीका की शैली विशद एव गभीर विवेचना से पूर्ण है। उसमें 'मानस' से ही मानस का के व्याख्यानव्यों का अर्थ निकालने की श्याम परक शैली का आश्रय लिया गया है।

टीकाकार की भाषा परिष्कृत एव संस्कृत निष्ठ है। उसमे सस्कृत तत्सम शब्दो का बाहुल्य है।

यहाँ हम स्थान संकोच के कारण 'मानस' भाष्य मे प्रकाशित अन्य टीकाकारो के भावों की निर्देशिका विस्तृत व्याख्याओं का उद्धरण नहीं दे रहे हैं। यहाँ मानसभाष्य की मौलिक विशद गंभीर एवं सुविस्तृत भाष्य प्रणाली के दिग्दर्शनार्थ मानस भाष्य की द्वितीय अर्द्धाली की व्याख्या का कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— अमिय मूरि मय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥

अर्थ—अब रजकी की दूसरी उत्प्रेक्षा का उल्लेख इस दूसरी चौपाई में है। शरणागत शिष्य भव रोग से पीड़ित है यों तो सभी जीव इस दारुण ताप से सतप्त हैं पर श्री गुरु शरण में प्राप्त जन को इस बात का अनुभव हो चुका है कि उसे सम्पूर्ण मानस व्याधियों का मूल कारण महामोह विनिपात किये डालता है तज्जनित काम रूपी वात प्रकोप से उसकी सात्विक शक्तियाँ स्तब्ध हो गयी हैं, लोभ रूपी कफ ने उसके

नैमित्तिक मार्ग को रोक दिया है और क्रोध रूपी पित्त उसके हृदय को दग्ध किया करता है। ऐसा अनुभव होने ही से उसका ताप कुछ घट चला है—'जाने ते छीं जहिं कछु पापी, नाशन पावहिं जन परितापी।' और वह अपनी दशा संभाल कर श्री गुरु चरणों मे प्राप्त हुआ है, क्योंकि—सदगुरु वैद्य वचन विश्वासा। सयम यहन विषय कर आसा। रघुपति भगति सजीवन भूरी। अनू पान श्रद्धा अति भूरी। यहि विधि भले कुराग नसाही। नाहिं यतन मोटि नहिं जाहीं।'

अमिय मूरि इति—ग्रन्थकार ने इस चौपाई मे रज श्री को ही सजीवन मूरिमय चूरण कहा है और उत्तर काड के मानस रोग प्रकरण मे रघुपति भक्ति से उसकी उत्प्रेक्षा की है। इसकी सगति मानस सदर्भ दीपक के इस वचन से लग जाती है। यथा-भक्ति सुधा चिद अमिय श्रुति कह गुरु पद धूरि। सत निसोत पावन परम उभय संजीवन भूरि॥ अर्थात् भक्ति सूत्रकार भक्ति को अमृत स्वरूपा कहते हैं और श्रुति प्रमाण से आत्मा भी अमृत ही है। सत गुरु पद साक्षात आत्म स्वरूप दर्शन है क्योंकि वह परम पवित्र (सत् निमात) शुद्ध सत्व गुण स्वरूप है इसी हेतु दोनों को सजीवन मूरि कहा है।[1]

टीकाकार ने उक्त अर्द्धाली की व्याख्या करते हुए गुरु चरणों की रज की महत्ता बतायी और भव रोग से त्राण पाने के लिए वैद्य-गुरु को चरण रज को संजीवनी सुधा सदृश बताया है। उसने अमिय मूरि, पद का मार्मिक एवं भक्ति परक व्याख्या करते हुए गुरु-पदों की महत्ता का गान किया है। टीकाकार ने अर्द्धाली मे आये 'अमिय मूरि (संजीवनी जडी) का सटीक अभिप्रायार्थ ज्ञापित करने के लिए, 'मानस' उत्तर काड के रोग प्रकरण भक्ति के साथ अमिय के औपम्य का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया है और दोनों स्थलों पर किए गये औपम्य को मद् गुरु पद से सयुक्त कर उनकी सगति भी लगायी है। भाष्यकार ने यहाँ पर उत्प्रेक्षा बतायी है, परन्तु वस्तुत इस अर्द्धाली म रूपक वर्तमान है। टीकाकार ने उपर्युक्त उद्धरण मे अर्द्धाली के लिए चौपाई शब्द का प्रयोग किया है। हो सकता है प्रमादवश ऐसी भूल उसके द्वारा हो गयी हो, क्योंकि सुविज्ञ भाष्यकार चौपाई एवं अर्द्धाली का भेद भली भाति जानता ही रहा होगा।

टीका की शैली पर 'व्यास' पद्धति की अर्थ शैली का प्रभाव स्पष्टत दृष्टिगोचर हो रहा है। वैसे शैली मे प्रवाह एवं विशदता वर्तमान है। उद्धरण को भाषा भी परिष्कृत है।

'मानस' सटीक (सप्तकाड)

टीकाकार : बाबू श्याम सुन्दर दास—

हिन्दी के परमसेवक एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार बाबू श्यामसुन्दरदास का जन्म सवत् १६३२ वि० मे बनारस के बाबू देवीदास खन्ना के यहाँ हुआ था। इन्हे बाल्या-

१ तु० प०, वर्ष ४, अंक ११-१२, पृ० २१६-२०।

वस्था से ही हिन्दी से विशेष अनुराग था। एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने अपने दो प्रमुख मित्रों पंडित रामनारायण मिश्र एवं ठाकुर शिवकुमार सिंह की सहायता से सवत् १६५० में 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' की स्थापना की। आप इस संस्था की उन्नति एवं विकास में आजीवन लीन रहे। बी० ए० पास करने के पश्चात् आपने 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, काशी' में अध्यापन कार्य करना प्रारम्भ किया था। कालान्तर में कुछ विशेष कारणों से आपने वहाँ का अध्यापन कार्य छोड़ दिया और अन्यत्र विभिन्न पदों पर कार्य किया। अन्तत मालवीय जी के अनुरोध से आप हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हो गये। इसी समय आपने हिन्दी की उच्च कक्षाओं (बी० ए० और एम० ए०) के लिए उपयोगी हिन्दी ग्रन्थों—भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्यालोचन आदि का प्रणयन किया। इनकी साहित्यिक सेवा से प्रसन्न होकर तत्कालीन सरकार ने इन्हें रायबहादुर की पदवी प्रदान की और काशी विश्वविद्यालय ने डी० लिट् की उपाधि से सम्मानित किया। इनकी मृत्यु सवत् २००२ में हो गयी।

रचनायें—

बाबू जी ने लगभग १०० हिन्दी पुस्तकों का सम्पादन किया है। आपने बहुत सी अनुपलब्ध हिन्दी कृतियों की खोज कर उन्हें प्रकाशित किया। हिन्दी शब्द सागर, हिन्दी वैज्ञानिक कोष, भाषा विज्ञान, साहित्यालोचन, हिन्दी भाषा और साहित्य, भाषा रहस्य, रूपक रहस्य, गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दी कोविद रत्न माला (दो भाग) आदि आपकी प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ हैं।

बाबू श्यामसुन्दरदास कृत मानस की टीका—

बाबू श्यामसुन्दर दास कृत 'मानस' की टीका का प्रथम संस्करण सवत् १६७५ (सन् १६१८) इण्डियन प्रेस प्रयाग से निकला था। इसका परिशुद्ध एवं परिष्कृत संस्करण, जिसमें स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं लला भगवानदीन का भी योगदान रहा, सवत् १६६५ वि० में उक्त प्रेस से ही प्रकाशित हुआ।

बाबू श्याम सुन्दर दास द्वारा विरचित मानस टीका के अन्तर्गत 'मानस' के व्याख्यातव्यों का प्राय सीधा-सामान्य अर्थ किया गया है। उसमें 'मानस' के भावों को बहुत खींचातानी या क्लिष्ट कल्पना के सहारे अनावश्यक रूप से विस्तृत नहीं किया गया है। हाँ एक बात अवश्य है कि कतिपय व्याख्येय स्थलों पर अनेक प्रकार के भाव दिये गये हैं। जहाँ उन्होंने एक ही व्याख्येय के कई भाव दिये हैं, वहाँ उनकी टीका में व्यास शैली परक व्याख्यान पद्धति का दर्शन होता है। टीकाकार ने कई भावों को देकर उनकी यथावश्यक समीक्षा की है और अन्त में अपनी समीचीन एवं बुद्धिपरक सटीक व्याख्या दी है।

बाबू साहब ने 'मानस' के व्याख्येयों का प्रथमत अर्थ कर दिया है। इसके उपरांत जो व्याकरणसम्मत शब्द प्रामाणिक कथायें समानार्थी या व्याकरणात्मक से संबंधित रखने वाले संस्कृतादि ग्रन्थों के जो उद्धरण हैं उन्हें बड़ी ही सावधानी से छानबीन कर, आवश्यक टिप्पणी से युक्त टीका की पादटिप्पणी में उद्धृत कर दिया है। टीकाकार ने

यथावश्यक स्थलों पर शंका समाधान भी दिये हैं। टीका के अन्तर्गत तुलसीदास जी की जीवनी दी गयी है, जो साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। टीका का महत्व साहित्यिक एवं वैज्ञानिक (सटीक) अर्थ प्रणाली की दृष्टि से उल्लेखनीय है। दार्शनिक या भक्ति तत्व के प्रतिपादन की दृष्टि से इस टीका का कोई उल्लेखनीय योगदान 'मानस' के टीका-साहित्य को नहीं है।

टीका की व्याख्या शैली प्रधानतः साहित्यिक है। उसमें विशदता एवं सरलता वर्तमान है। भाषा सरल एवं सुबोध खड़ी बोली हिन्दी गद्य है। उसमें कतिपय स्थलों पर उर्दू-फारसी के आमफहम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। बाबू साहब की टीका की साहित्यिक विशेषताओं का विस्तृत विवेचन तीसरे खण्ड के अन्तर्गत यथास्थान किया जायगा। यहाँ हम उनकी टीका की सामान्य विशेषताओं के उद्घाटन एक उद्धरण को प्रस्तुत कर रहे हैं।

मूल— भूप सहस दस एकहि बारा।
लगे उठावन टरहि न टारा॥
डगइ न संभु सरासन कैसे। कामी बचन सतीमन जैसे।'

अर्थ—'दस हजार राजा एक ही बार (धनुष) उठाने लगे, किन्तु वह टाले टला तक नहीं। (वह) शिव धनुष किस तरह नहीं डिगता जिस तरह कामी पुरुष के वचन से सती स्त्री का मन चलायमान नहीं होता। (दस हजार राजाओं ने क्यों धनुष उठाया ? जानकी दस हजारों को ब्याह दी जातीं ? या एक को—तो किसको ? इसका समाधान कई प्रकार से लोग किया करते हैं, जैसे—सबने यह सलाह की कि एक बार सब मिलकर उठा लें, फिर युद्ध द्वारा आपस में निबट लेंगे। अथवा भूप सहस दस, एकहि बार अर्थात् इन दस हजार राजाओं ने एक-एक बार अलग-अलग धनुष को उठाना चाहा, पर वह न उठा। अथवा—सहस्र बाणासुर दस 'रावण' दोनों ने एक ही बार साथ-साथ उठाया, अलग-अलग न उठा तो दोनों ने मिल कर उठाया, अथवा एक ही 'बार' एक ही रोज दस हजार राजाओं ने जुदा-जुदा उठाया। अथवा दस हजार राजाओं ने उठाने का यत्न किया उन्हें 'एकहि' एक राजा ने जो समझदार था 'बारा' मना किया कि क्यों व्यर्थ मेहनत करते हो ? इत्यादि। पर ये सब क्लिष्ट कल्पनायें व्यर्थ जान पड़ती हैं। सीधा समाधान यही प्रतीत होता है कि जब अलग-अलग उठा कर हार गये तब कई हजार राजा मिल कर केवल परीक्षा के लिये केवल यह देखने के लिये कि इतने आदमियों से भी उठता है या नहीं, सीताजी को ब्याहने के लिये नहीं—उसे उठाने लगे।'[1]

उपर्युक्त चौपाई का विशुद्ध अक्षरार्थ देने के पश्चात् दस हजार राजाओं द्वारा धनुष के उठाये जाने की विवादास्पद शंका का समाधान बड़े ही युक्तियुक्त एवं बुद्धिपरक ढंग से किया गया है। अन्य टीकाकारों के मन माने एवं भोंडे समाधानों का खंडन भी किया है। टीका की भाषा नितांत सरल है, यथासम्भव जन-सामान्य में प्रयुक्त होने वाले

---

१. बाबू श्याम सुन्दरदास कृत रामचरितमानस सटीक पृ० २४२।

सरल शब्दो का ही प्रयोग किया गया है। सम्भवत इसीलिये टीकाकार ने संस्कृत के तत्सम शब्दो का बहुत अधिक प्रयोग न करके उनके स्थान पर जन सामान्य में बहुधा प्रचलित, जुदा, रोज, हजार सदृश फारसी जैसी हिन्दीतर भाषाओ के शब्दों का प्रयोग किया है।

दीनहितकारिणी टीका :

टीकाकार रामप्रसाद शरण 'दीन'—

श्री रामप्रसाद शरण 'दीन' अयोध्या निवासी संत थे। आप कनक भवन (अयोध्या) के सत परम हंस श्री सीताशरण जी के कृपा पात्र थे। 'दीन' जी बड़े उत्साही 'मानस' प्रचारक और परिनिष्ठ 'मानस' वक्ता एव मर्मज्ञ थे। आपके 'मानस' सम्बन्धी लेख और टिप्पणियाँ तुलसीपत्र नामक पत्रिका तथा 'मानस' पीयूष नामक संग्रहात्मक टीका में प्रकाशित हैं।

रामप्रसाद शरण जी ने दीनहितकारिणी नाम से 'मानस' के आरण्य, किष्किन्धा और सुन्दर काडो की टीका लिखी है।

टीका—

दीन जी ने सर्वप्रथम 'मानस' के सुन्दर काड की टीका लिखी जो संवत् १९७५ वि० मे भारत-भूषण प्रेस, लखनऊ से छपी थी। इसके पश्चात् इन्होंने सवत् १९७६ मे आरण्य काड की टीका लिखी, जो सद्य हो धर्म प्रेस मेरठ से प्रकाशित हुई। अन्त मे दीन जी के द्वारा स० १९७७ मे रचित किष्किन्धा काड की टीका का प्रकाशन उसी वर्ष हिन्दी प्रेस, प्रयाग से हुआ। टीका क्षेपक रहित है। दीन जी की व्याख्या-पद्धति प्रायः आधुनिक व्याख्यान की विवेचनात्मक साहित्यिक पद्धति का है परन्तु कहीं-कहीं पर इनकी टीका मे व्यासो की अर्थ-शैली की तरह अनेक अर्थपरक व्याख्या भी मिल जाती है। इनकी टीका मे जहाँ व्याख्येय के कई अर्थ किये गये हैं, वहाँ उन अर्थों मे प्रधानतया टीकाकार की तार्किक दृष्टि और भक्ति के ही दर्शन होते हैं। दार्शनिक दृष्टि से इनकी टीका विशिष्टाद्वैत मत से प्रभावित है। इन्होंने मानस की राजनीति शास्त्रपरक टीका भी की है, जो मानस-पीयूष मे छपी है। इनकी गम्भीर विवेचनात्मक व्याख्यान पद्धति का एक अच्छा उदाहरण हम तृतीय खण्ड के अन्तर्गत मानस की राजनीति शास्त्रपरक टीकाओ के प्रसंग मे यथास्थान देंगे।

दीन हितकारिणी टीका मे अनेक अर्थों का विधान मिलता है। भाषा खडी बोली हिन्दी है, उसमें अपरिष्कार एव दोष वर्तमान हैं। दीन हितकारिणी टीका के इस एक उद्धरण से उसकी सामान्य विशेषतायें प्रकट हो जाती हैं—

मूल— 'बार बार रघुबीर सभारी।
तरकेउ पवन तनय बल भारी ॥'

'भारी बल वाले श्री वायुनंदन जी बारंबार श्री राम जी को स्मरण करके कूदे। बहुमूल्य पदार्थ पास रखने वाला पुरुष, जब किसी अपरिचित स्थान में जाता है तो अपनी वस्तु को बार-बार सभारता है। श्री हनुमान जी के पास बहुमूल्य मुद्रिका है, नील मणि जड़ी रहने ही से वह बहुमूल्य नहीं, वरन् श्री राम नामांकित है, इससे बहुमूल्य है। यह मुंदरी है तो श्री रामनामांकित परन्तु रहने वाली है श्री जानकी जी के कर कमल में। केवट को उतराई देते समय सरकार को दिया तब से उन्हीं के पास रही। प्रिया प्रीतम के वियोग दशा में दोनो के प्राण संरक्षक और धैर्य देने वाले दो ही हैं। एक श्री राम नाम दूसरे मुद्रिका, श्री जानकी जी को श्री राम नाम का आधार है 'नाम पाहरू दिवस निसि' किष्किन्धा काण्ड के दूसरे श्लोक में श्री राम नाम को कहा 'श्री जानकी जीवन' और श्री रघुनाथ जी के पास श्री प्रिया जी के कर कमलवाली मुन्दरी। वही मुन्दरी श्री पवन कुमार जी महाराज उस पार लिए जाते हैं। कूदते समय कहीं गिर न परै इसी से बार बार सभारा। 'रघुबीर संभारी' नामांकित मुद्रिका और नाम नामी अभेद, अथवा अन्तःकरण में श्री रघुनाथ जी को और यह बाहर मुद्रिका को संभारा इससे दोनो के वास्ते पुनः पुनः दो बार कहा। हर्ष होने से रोमाच खड़े हो जाते हैं, रोमांचित होने से कवि की आशय है, कि बार बार अर्थात् रोम रोम से श्री राम जी का स्मरण कर रहे हैं। भारी बलवाले श्री हनुमान जी जब तरके, तो श्री रघुनाथ जी ने इनको बार-बार संभाला क्योंकि जिस पर्वत पर ये चरण रखते थे, वह इनके अधिक भार को न सहिके पाताल चला जाता था। पर्वत के साथ ये भी न पाताल को चले जायँ, इसको श्री राम जी ने बार-बार सभारा। रघुबीर इससे कहा कि वीर ही वीर को संभाल सकता है। श्री हनुमान जी ने रघुबीर को अपने हृदय में संभारा क्योंकि आगे वीरता करना है।'[1]

उपर्युक्त अर्द्धाली में टीकाकार ने कुतूहलोत्पादन के लिए दो अर्थ किये। अपने प्रथम अर्थ के द्वारा उसने यह बतलाया है कि हनुमान जी ने मुंदरी की सुरक्षा हेतु रघुबीर नामक मुद्रिका की सभाल की दूसरे अर्थ से उसने यह निर्देश किया है कि हनुमान जी ने रघुबीर का नाम इस लिए बार बार लिया कि कहीं उनका भारी भरकम देह को हनुमान जी ने संभाला। टीकाकार ने 'संभारी' और 'बार बार' शब्दों के सहारे उक्त अर्द्धाली के कई अर्थ निकालने का प्रयत्न किया है। टीकाकार ने 'सम्हालता' एवं 'पड़े' जैसे साधु शब्दों के स्थान पर क्रमशः 'सम्हारता' 'परै' सदृश ठेठ अवधी शब्दों का प्रयोग किया है। 'कवि' के आशय के स्थान पर 'कवि' की आशय रखा है। इस सम्बन्ध में उसके द्वारा सम्बन्ध कारक पुल्लिंग चिन्ह 'के' के स्थान पर स्त्री लिंग वाचक 'की' कारक चिन्ह के लगाये जाने से भाषा में व्याकरण सम्बन्धी दोष उपस्थित हो गया है।

---

१. दीनहितकारिणी टीका (सुन्दर काड), पृ० २२-२३।

रामचरित मानस सटीक

टीकाकार—पं० महावीर प्रसाद मालवीय 'वीर कवि'

पंडित महावीर प्रसाद मालवीय मानस के अच्छे मर्मज्ञ थे। आप ज्ञानपुर (वाराणसी) के निवासी थे। आप की शिक्षा दीक्षा सम्यक् रीति से हुई थी। आप हिन्दी के कवि भी थे। आपने रामचरित मानस एवं विनयपत्रिका दोनों पर टीकाएँ की थीं। विनय की टीका सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

रामचरितमानस सटीक

पंडित महावीर प्रसाद मालवीय वीर कवि कृत 'मानस' की टीका का रचना काल सवत् १९७८ विक्रमी है। इसका प्रकाशन सवत् १९७५ विक्रमी में बेल्वेडियर प्रेस प्रयाग से हुआ था। यह 'मानस' के सातों काडो की टीका है। यह टीका विशुद्ध साहित्यिक ढग से लिखी गयी है। मालवीय जी ने इस टीका का प्रणयन 'मानस' की चमत्कारिक एव अर्थातिशय युक्त टीकाओ के विरोधी प्रतिक्रिया के रूप मे किया था। उन्होंने अपनी टीका की भूमिका के अन्तर्गत 'मानस' के टीका साहित्य की मध्यकालवर्ती 'व्यास' शैली परक 'मानस' की टीकाओं की भर्त्सना करते हुए अपनी टीका के लेखन का मूलोद्देश्य इस प्रकार बताया है—

सैकडो तरह के अर्थ बकवक्कड लोग किया करते हैं, जिन अर्थों का अनुमान ग्रन्थ निर्माण के समय गोस्वामी जी को भी नहीं हुआ होगा। इस टीका को लिखने मे हमने कवि उद्देश्यानुसार ही अर्थ करने की चेष्टा की है जिससे प्रेमी पाठकों का अमूल्य समय व्यर्थ के वितण्डावाद मे नष्ट न हो।'[1]

वस्तुत मालवीय जी की प्रवृत्ति 'मानस' के व्याख्यातओं की अनावश्यक विस्तृत व्याख्या करने की ओर नही थी। उन्होंने मुख्य रूप से 'मानस' के व्याख्येयो की सामान्य एवं सीधी टीका करते हुए उसमें प्राप्य काव्यशास्त्रीय तत्वो का विवेचन किया है। वैसे तो उन्होंने अपनी टीका के अन्तर्गत प्राय सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों, रस, ध्वनि, लक्षणा व्यंजना आदि का निर्देश किया है, परन्तु उन्होंने व्याख्यातव्य मे आए हुए अलकारों का विवेचन भली भाँति किया है। टीकाकार ने अपनी टीकायें व्याख्यातव्यों से सम्बद्ध शकाओं के समाधान भी दिये हैं। वे क्षेपकों के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने अपनी टीका की भूमिका के अतर्गत क्षेपकवादी टीकाकारो एवं 'मानस' के स्वच्छद पाठ-सशोधकों एव सपादकों की घोर भर्त्सना की है। उन्होंने अपनी टीका का पाठ 'मानस' की विशुद्ध एव प्रामाणिक प्रतियो के आधार पर रखा है। टीका के प्रत्येक काड के अन्त मे उसमें आये हुए विविध छदो की सख्या भी दी गयी है। हमने टीका में किये गये काव्यशास्त्रीय तत्वों के विवेचन पर विस्तार से विचार इसी शोध प्रबन्ध के तृतीय खण्ड के अन्तर्गत काव्य शास्त्रीय वर्ग की टीकाओं का विवेचन करते समय किया है।

---

१ वीरकवि जी कृत 'मानस' की टीका, प्र० सं० की भूमिका।

टीका की भाषा तत्सम शब्द प्रधान खड़ी बोली गद्य है। शैली विशद एवं गम्भीर है। उसमें देशज एवं अरबी फारसी के भी शब्द प्रयुक्त हैं। टीका की विशेषताओं का निरूपक एक एवं उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— 'जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव तब प्रगट देखावा।
सती दीख मग कौतुक जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥

अर्थ—'रामचन्द्र जी समझ गए कि सती को दुःख हुआ है तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट रूप से सूचित किया। सती ने यह खेल देखा आगे रास्ते में सीता जी और भाई लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी चले जा रहे हैं।

शंका—जब सती जी रामचन्द्र जी को पहचान गई और लज्जा से भयभीत हो शोक के साथ शिवजी के पास चली तब रामचन्द्र जी ने अपना प्रभाव क्यों दिखाया।

उत्तर—रामचन्द्र जी अन्तर्यामी हैं। वे सती के मन का सन्देह जानते हैं कि उनके हृदय में इस बातकी प्रबल शंका है कि ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नर नाहि न जानत वेद। उसका अभी पूरा समाधान नहीं हुआ, क्योंकि केवल सीता जी के रूप में सती को पहचान लेना सशय निर्मूल होने के लिए काफी नहीं है। कितने ही योगी तपी ऐसा कर सकते हैं। यहाँ रामचन्द्र जी का प्रभाव दिखाना, हिन्दी नवरत्न के लेखकों को बड़ा अनुचित जान पड़ा, उन्होंने गोसाइं जी पर आक्षेप किया पर यह मिश्रबन्धुओं का भ्रम है।'[1]

टीकाकार ने उक्त दोनों अर्द्धालियों का विशद अशराय करते हुए भगवान राम द्वारा सती को स्वप्रताप के दिग्दर्शन के औचित्य पर जो शंका उठायी गयी है उसका समुचित एवं सप्रमाणिक समाधान किया है। इस सम्बन्ध में मालवीय जी ने हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक-इतिहासकार मिश्र बन्धुओं के कथन को, जिसमें इन्होंने तुलसीदास के राम के उक्त कृत्य को अनुचित ठहराया है गर्हित बताया है। टीकाकार की शैली सुगम एवं प्रवाहपूर्ण है। भाषा प्रसाद गुणपूर्ण है। इसमें जहाँ एक ओर प्रभाव, शोक, अन्तर्यामी सदृश संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग है, वहीं पहचान हिन्दी के देशज शब्दों एवं काफी, रास्ता, सदृश अरबी फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा परिष्कृत एवं हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल निखरी हुई है।

रामचरित मानस की टीका (समानार्थी संस्कृत श्लोका सहित)

टीकाकार ठाकुर रणबहादुर सिंह

श्री रणबहादुर सिंह जो शाहमऊ टेकारी के ताल्लुकेदार बाबू गगाबख्श सिंह के अनुज थे। आपका समय विक्रमी २० वी शती का उत्तरार्द्ध है। आप की रामचरित मानस में अतीव श्रद्धा थी। आप 'मानस के नाना पुराण निगमागम सम्मत स्वरूप के

---

[1] वीरकवि कृत रामचरितमानस सटीक, प्र० स०, पृ० ७६ (बालकाड)।

सिद्ध्यर्थ संस्कृत के पर्याप्त साहित्य का अध्ययन स्वयं किया और कालान्तर मे इस तथ्य के विश्लेषणार्थ प्रचुर धन राशि का व्यय करके कई पंडितों की सहायता से रामचरित-मानस के प्राय प्रत्येक पद के समानार्थी श्लोकों से संयुक्त 'मानस' के सातों काडो की टीका प्रकाशित करवायी।

रामचरितमानस की टीका
(समानार्थी संस्कृत श्लोको सहित)

श्री रणबहादुर सिंह ने संस्कृत के दो पंडितो–श्री मातृदत्त महगोर एव प० ललिता प्रसाद ओझा-की सहायता से 'मानस' की एक ऐसी टीका तैयार की, जिसमें मानस के व्याख्यानदो का अर्थ उनके ही समान भाव वाले संस्कृत साहित्य के उद्धरणों के द्वारा ही व्यक्त हो जाय। इस प्रकार के प्रयत्न से उन्होंने यह सिद्ध किया है कि 'मानस' महाभाष्य नाना पुराण निगमागम सम्मत है एवं संस्कृत साहित्य के समस्त राम चरितात्मक ग्रन्थो के भावों के अनुकूल ही लिखा गया है।[1] ठाकुर साहब ने संस्कृत साहित्य से मानस का प्राय प्रत्येक पंक्ति मे समान भाव वाली पंक्तियों के अन्वेषणार्थ पर्याप्त धन एवं समय लगाया था।

स्वयं रणबहादुर सिंह के कथनानुसार इस कार्य के सम्पादनार्थ पच्चीसों वर्षों का समय लगा था।[2] *टीका का समग्र भाग एक ही साथ प्रणीत एवं प्रकाशित नहीं हो* पाया, अपितु यह टीका समय-समय पर खण्डश प्रकाशित होती रही। 'मानस' के भिन्न-भिन्न काडो की समश्लोकी टीकाओ का रचना काल ऐतिहासिक क्रम से इस प्रकार है—

अरण्ड काड—अग्रहण शुक्ल ५ वि० सं० १६७६, किष्किंधा कांड पौष शुक्ल १३ वि० स०, १६७६, सुन्दर काड—विजयादशमी १६७६, लंका कांड—मार्ग शीर्ष शुक्ल ११ वि० स० १६८७ तथा बालकांड एवं उत्तरकांड संवत् १६८७ वि० की विजयादशमी। ये सभी टीकाएँ उपर्युक्त तिथियो पर ही प्रेस में प्रकाशनार्थ भेजी गयी थीं और मानस के सभी काडो की टीकाओं का प्रकाशन राजा साहब के ही गंगाधर प्रेस बरेली से संवत् १६८७ तक सम्पन्न हो गया था।

इस टीका के अन्तर्गत सैकड़ों संस्कृत ग्रन्थो से 'मानस' के सम श्लोकी उद्धरण सकलित किये गए हैं। इन संस्कृत ग्रन्थों की कुल संख्या ४६१ है। इनमे से बालकांड की समश्लोकीय टीका के अन्तर्गत ६७ संस्कृत ग्रन्थों की सहायता ली गयी है। इसी प्रकार-मानस के अयोध्या, आरण्य, किष्किंधा, सुन्दर, लंका एवं उत्तर कांडो की टीकाएँ क्रमश १६१, ४४, ७१, ५३, ३२ एवं ४६ संस्कृत ग्रन्थों की सहायता से प्रणीत की गयी हैं।

---

१. रणबहादुर सिंह कृत मानस की टीका की भूमिका।
२ रणबहादुर सिंह कृत टीका (उत्तर काण्ड) की भूमिका।

इसमें वेद, पुराण, दर्शन, मनुस्मृति, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष एवं विभिन्न मुनियों के संहिता ग्रन्थ आते हैं।

कितने ही मानस मर्मज्ञ एवं संस्कृत विद्वान तो उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में शंका उठाते हैं। उनके अनुसार रणबहादुर सिंह की टीका में दिये गए कितने ही समश्लोकीय संस्कृत पद जाली हैं। स्वयं मानसपीयूषकार का यह दृढ़ अभिमत है कि रणबहादुर सिंह जी कृत मानस की टीका के समान भाववाचि संस्कृत के समश्लोकीय पदों के समस्त संग्रह के कुछ ही पद प्रामाणिक एवं विशुद्ध हैं। ऐसे संस्कृत पदों की संख्या समस्त संग्रह का आठवाँ भाग है। शेष सभी पद अप्रामाणिक हैं।[1] कहा तो यह जाता है कि 'मानस' के समानार्थी संस्कृत श्लोकों के संग्रहार्थ रणबहादुर सिंह जी मुँह माँगा धन पंडितों को देते थे। यदि कोई संस्कृत पंडित को किसी श्लोक के पता लगाने के लिए अति दुरम्य प्रदेश में स्थित किसी विशेष संस्कृत ग्रन्थ को देखने के निमित्त हजारों रुपये की धन-राशि माँगता तो वे तत्पर हो जाते थे। रुपया पाकर ये पंडित लोग घर ही बैठ जाते थे और स्वयं संस्कृत के श्लोक जो बिल्कुल मानस की अर्द्धालियों के सानुरूप होते थे, विरचित कर ठाकुर साहब की सेवा में प्रस्तुत कर देते थे। इस प्रकार इस प्रकार इस टीका के अन्तर्गत पंडितों के द्वारा जाली संस्कृत पदों का अत्याधिक मात्रा में संयोजन हो गया। जो भी हो, परन्तु रणबहादुर सिंह की टीका में कुछ ऐसे पद अवश्य हैं, जो प्रामाणिक ग्रन्थों से लिये गये हैं।

टीका में प्रथमतः 'मानस' का मूल दिया गया है। इसके पश्चात् ही उनके समश्लोकीय संस्कृत पद रखे गए हैं और इन पदों का हिन्दी में रूपान्तरानुवाद किया है। 'मानस' के मूल (व्याख्यातव्य) का अर्थ नहीं लिखा गया है उसका अर्थ तो संस्कृत के मूल व्याख्यातव्य से ही प्रकाशित हो जाता है। टीका के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी स्थल हैं जिनके समश्लोकीय पद नहीं दिये गए हैं। इस सम्बन्ध में 'मानस' के बालकाण्ड के 'मानसरोवर' एवं 'सरयू' रूपक वर्णन का प्रसंग विशेष रूप उल्लेखनीय है। ऐसे स्थलों के अर्थ दे दिए गए हैं। टीका की भाषा खड़ी बोली गद्य है। भाषा में सरलता विद्यमान है। उसमें पंडिताऊपन एवं शब्द-रूपों की अशुद्धि भी वर्तमान है। टीका के एक उद्धरण से ये समस्त बातें प्रत्यक्ष हो जायेंगी—

मूल—'सम महि तृण पल्लव डासी। पाय पलोटिहि निसि दासी।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागहि तात बयारि न मोहीं॥

ऋष्य शृङ्ग संहिता—समान भूमौतृण वृक्ष पल्लवानास्तीर्य-मदाम्बुजमर्दनं तव। करिष्यतीयं निखिला निशोषिनी निरीक्ष्य मूर्ति च पुनः पुनर्मृदुम्। नवोष्णवायुर्नमनाय विग्रहे लगिष्यति स्वामि वर प्रसीद मे।

अर्थ—समान भूमि पर घास और वृक्षों के पत्तों का बिछौना कर यह दासी सारी रात आपके चरण मीजती रहेगी, बारंबार आपकी भली मूर्ति देखने में हे

---

१. मानसपीयूष (लंका काड) तृ० सं० की भूमिका।

नाथ मेरी देह मे गरम हवा न लगेगी। हे सुन्दर स्वामी ! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो (बन चलो।'[१]

मानस की मूल चौपाई की टीका के प्रसग म दिया ऋष्य भृङ्ग सहिता का उपरोक्त पद तो बिल्कुल ही 'मानस' की चौपाइयो के समान है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे तुलसीदास ने इनका ही विशुद्ध अनुवाद हो कर दिया हो।

श्लोक के अक्षरानुवाद की भाषा अशुद्ध है, उसमे रात्रि के लिए राति, बार बार के लिए वारवार सदृश शब्दो का प्रयोग किया गया है। पैर दबाने के निमित्त *'मीजना' क्रिया का प्रयोग, टीकाकार की भाषा के अन्तर्गत, 'ग्राम्य' शब्दो के प्रयोग की* ही ओर इगत करता है।

यहा पर हमे इस टीका के सम्बन्ध मे जो बात कह देनी अत्यन्त आवश्यक लगती है, वह यह कि इस टीका के पाठको को इसके समश्लोकीय पदो की प्रामाणिकता को भावुकता या अध वृत्ति स विश्वास ही नही कर लेना चाहिए। इसमें बहुत से पद ऐसे हैं जो मुनि विशष की प्रामाणिक पुस्तक से उद्धृत तो बताये गये हैं, परन्तु उन श्लोको की भाषा शैली एव भाव को देखते हुए उनकी विशुद्धता एवं प्रामाणिकता सन्देहास्पद सी लगती है। मजा तो यह है कि इन श्लोको को देते समय यह भी नहीं निर्देश किया गया है कि वे अमुक ग्रन्थ के किस अध्याय से लिखे गये हैं। कितने ही ग्रन्थो के नाम भी स्वकल्पित ही लगते हैं। इनमे से अत्यधिक ग्रन्थ तो सुलभ भी नही हैं। अतएव इन सब बातो का विचार रखते हुए 'मानस' के ऐसे समश्लोकीय पदो के विषय मे सदैव सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए।

'मानस' सटीक (सुन्दर काण्ड) .
टीकाकार शिवशकर लाल व्यास

श्री शिवशकर लाल जी शुक्ल का जन्म कानपुर के नवाबगंज मुहल्ले मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री अम्बिका प्रसाद शुक्ल था। आपकी शिक्षा दीक्षा साधारण स्तर पर हुई थी। आप जिला बोर्ड मे बिल क्लर्क थे। आप 'मानस' की कथा भी कहा करते थे। जिस समय आप बाराबंकी जिला परिषद् म कार्य कर रहे थे, उसी समय आपने किन्ही रघुनंदन जी एव शंकर जी नामक अपने दो स्नेहियो की कृपा से 'मानस' सुन्दर काड की टीका लिखी।[२] आपका समय विक्रम की बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

सुन्दरकाड सटीक

शिव शकर लाल शुक्ल कृत सुन्दर काण्ड की टीका का रचना-काल पौष शुक्ल सवत् १६७६ है। इसका प्रकाशन, सवत् १६७६ मे ही देशबधु यंत्रालय बाराबंकी म

१ *बाबू रणबहादुर सिंह कृत रामचरितमानस की टीका प्र० सं० पृ० ८६* (*अयोध्या काण्ड*)।

२ श्री शिवशंकरलाल कृत सुन्दरकांड सटीक प्र० सं० की भूमिका।

हुआ। यह एक सामान्य कोटि की 'मानस' की टीका है। इसमे 'मानस' की अर्धालियो के विविध पदो के अर्थ की संगति तद् अभिप्राय द्योतक 'मानस' की ही अन्य चौपाइयो से लगाई गई है। टीकाकार ने अपनी टीका की भूमिका मे इसी तथ्य को बडा ही महत्व देते हुए लिखा है कि मैंने टीका मे सर्वथा नवीन एवं गूढ भावो को द्योतित किया है। टीका की भाषा खडी बोली गद्य है, भाषा सरल होने हुए भी अपरिष्कृत है एवं उस पर पंडिताऊपन का प्रभाव परिलक्षित होता है। अरबी-फारसी के आमफहम शब्दो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इनकी टीका से एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इन समस्त तथ्यो का परिचय देने मे अलं होगा—

मूल— 'जामवंत के बचन सुहाये।
सुनि हनुमान हरषि उर लाये ॥

'जामवत के शोभायमान वचन सुनकर, हनुमान जी को अति भाते भये। शोभायमान वचन कौन थे यह वचन थे इतना कहहु-तात तुम जाई। सातहि देखि कहो सुधि आई। तब निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लाग संग कपि सेना कपि सेन संग संहारि निशाचर राम सीतहि आनि है त्रैलोक्य पावन सुयश सुर नर मुनि नारदादि गाइ है। यह बातें सुनकर शोभायमान मालूम हुई कि जामवन्त कहते हैं कि तुम सिर्फ सीताजी की सुधि लाओ फिर काम तो सब राम ही जी बना लेंगे तुम्हें बडाई मुफ्त मे मिलेगी। राम जी के सुयश और उनकी जीत के बचन सुहाये थे।[1]

उपर्युक्त अर्द्धाली की टीका करते समय टीकाकार ने प्रथमत, उसका अक्षरार्थ दे दिया है। इसके उपरान्त अर्द्धाली के 'शोभायमान' वचन का रहस्य खोलने मे अपनी सारी शक्ति लगा दी है। टीका की भाषा मे शैथिल्य है। वाक्य विन्यास सुव्यवस्थित नही है। कितने ही शब्दो का व्यर्थ प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—प्रथम पक्ति मे ही 'शोभायमान वचन कौन थे यह वचन थे' के स्थान पर 'शोभायमान वचन ये थे' से ही पूरा अभिप्राय निकल सकता था। 'भये' शोभायमान सदृश शब्द भाषा के पंडिताऊपन को ही सिद्ध कर रहे हैं। मालूम, मुफ्त, सिर्फ आदि शब्द भाषा मे अरबी-फारसी शब्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति के परिचायक है।

टीका मानस (सुन्दरकाण्ड) सटीक, टीकाकार पं० शीतला प्रसाद तिवारी

पं० शीतला प्रसाद तिवारी एक सुशिक्षित मानस प्रेमी ख्यात हैं। आपको बचपन से ही 'मानस' के अध्ययन मे अभिरुचि थी। आप जब नैनी एग्रीकल्चर कालेज मे कृषि विज्ञान के छात्र थे, तभी आप वहां रामायण क्लब मे 'मानस' की कथा अपने सहपाठियो को सुनाया करते थे। इस क्लब की ही प्रेरणावश आपने 'मानस' के सुन्दरकाण्ड की टीका लिखी था।[2] आपका समय (रचनाकाल संवत् १९८३) वि० की बीसवी शती का उत्तरार्ध है।

---

१. वही, पृ० १।
२. मानस (सुन्दरकाड) सटीक प्र० सं० की भूमिका।

मानस (सुन्दरकाण्ड) सटीक

पं० शीतला प्रसाद तिवारी कृत 'मानस' के सुन्दर कांड की टीका का प्रथम प्रकाशन सवत् १९८३ (सन् १९२६) मे हुआ। यह 'मानस' के सुन्दर काड की एक सामान्य टीका है। इनकी अर्थ करने की शैली सरल एव स्पष्ट है। मानस के व्याख्यातव्यों के विस्तृत व्याख्यान मे न पड कर उन्होंने उनका सरल एवं सामान्य अर्थ कर दिया है। भाषा खडी बोली गद्य है। भाषा मे सरलता वर्तमान है उनकी टीका के स्वरूप का परिचायक एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है--

मूल— 'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट
लोचन निज पद जंत्रित प्राण जाहि केहि बाट ॥'

इन प्रश्नो का सुनकर हनुमान जी ने कहा—आपका नाम ही जिसे कि वह निरतर रटती हैं इस समय लका मे उनका पहरेदार सिपाही है और उसका ध्यान ही उनके हृदय रूपी महल के लिए फाटक के समान है। नेत्रों को दोनों पावों के घुटनों के बीच मे रखकर, मानों अपने शरीर रूपी मन्दिर के फाटक पर ताला बन्द कर रखा है—ऐसी स्थिति मे भला किस मार्ग से उनके प्राण अन्यत्र कही जा सकते हैं ?'[1]

उक्त अर्द्धाली का बडा ही स्पष्ट अर्थ टीका की उपरोक्त पक्तियो मे व्यक्त किया गया है। भाषा मे सरलता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है।

रामायण भाष्य ,किष्किधा काड, भाष्यकार श्री शिवरत्न शुक्ल

'मानस' के प्रसिद्ध टीकाकारो मे श्री शिवरत्न शुक्ल का नाम आता है। बछरावाँ (रायबरेली) निवासी श्री शिवरत्न शुक्ल की आयु इस समय लगभग ८० वर्ष है। इस वृद्धावस्था मे भी आप साहित्य-सेवा मे रत हैं। इधर आपने मानस' के शेष ६ कांडों का भी विस्तृत व्याख्यान प्रणीत किया है जो हस्तलिखित रूप मे है। आप एक सुकवि भी हैं। आपकी कवितायें प्राय कल्याण मे प्रकाशित होती रहती हैं। इन्हें संस्कृत साहित्य का ज्ञान तो है ही, साथ ही साथ ये पाश्चात्य साहित्य के भी बड़े अच्छे अध्येता हैं। इनकी टीका इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसमे जहाँ एक ओर इन्होंने मनुस्मृति आदि भारतीय सिद्धान्तानुकूल 'मानस' का टीकात्मक विवेचन किया है, वहां इन्होंने पाश्चात्य विचार पद्धति पर आधारित मनोविज्ञान एवं सामाजिक शास्त्र के सिद्धान्तो के सहारे 'मानस' का व्याख्या आधुनिक सुशिक्षितो के मनोनुकूल की है।

रामायण भाष्य—

पं० शिवरत्न शुक्ल कृत 'रामायण भाष्य' मानस के किष्किन्धा कांड पर लिखित एक भाष्य ग्रंथ है। इस भाष्य के अन्तर्गत 'मानस' के व्याख्यातव्यों पर प्राचीन भारतीय

---

१. प० शीतला प्रसाद तिवारी कृत 'मानस' सुन्दर काड (सटीक), प्र० स०, पृ० ४६-४७।

धम ग्रन्थों एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक एवं बुद्धिवादी विचारधाराओं के अनुसार विचार विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

रामायण भाष्य टीका की रचना श्रावण (मल मास) शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी विक्रम संवत् १९८५ में पूर्ण हुई।[1] इसका प्रथम प्रकाशन संवत् १९८६ विक्रमी में हुआ। यह मानस के किष्किन्धा काड की एक सुविस्तृत व्याख्या है। यह लगभग ४४२ पृष्ठों का विस्तृत टीकात्मक ग्रन्थ है। इस भाष्य में टीकाकार ने सामाजिक सुगठन एवं मर्यादा वादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन मुख्य रूप से किया है। इस तथ्य के निरूपणार्थ टीकाकार ने वल्कि पौराणिक ग्रन्थों के अतिरिक्त मनु स्मृतियों एवं संस्कृत काव्य ग्रन्थों का सहारा लिया है। साथ ही साथ आधुनिक कालीन नैतिकता वाले सिद्धान्तों मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर समाज को मर्यादित रखने में सहायक बुद्धिपरक विवेचना को प्रस्तुत किया है। उसने अपने इस ग्रन्थ में समाज की मर्यादा उल्लंघन को प्राचीन एवं आधुनिक दोनों मतों के अनुसार गर्हित सिद्ध किया है। टीकाकार ने प्रथमतः मूल का अक्षरार्थ दिया है इसके पश्चात् उस पर अपना विस्तृत व्याख्यान प्रस्तुत किया है।

भाष्य की शैली गम्भीर एवं विवेचनात्मक है। इसकी भाषा परिष्कृत है। यहा रामायण भाष्य का एक आदर्श उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— अनुज वधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या ये सम चारी ॥॥

हे शठ भाई की स्त्री बहिन पुत्र वधू और कन्या ये चारों समान माननीय है।

समाज में पुरुष और स्त्री दोनों एक साथ रहते हैं। उन दोनों में एक दूसरे की ओर झुकने का जातिगत स्वभाव है। शास्त्रों में स्त्री की उपमा लता से दी गयी है कि जिस प्रकार लता बौडी निकट के किसी पदार्थ से लिपट जाती है उसी प्रकार स्त्री भी साथ रहने वाले वह चाहे कोई हो पुरुष को अपना तन-मन-धन दे देती है। चाहे ऐसा निकट रहने वाला पुरुष ऐसी इच्छा करे अथवा न करे परन्तु स्त्री जाति अपनी ओर से छेड छाड करके लता की भाँति उसको लिपट जावेगी इसी कारण मनु जी ने स्पष्ट शब्दों में मना किया है कि एकान्त में पुरुष किसी स्त्री के निकट न बैठे चाहे माता कन्या बहिन कोई या आत्मीय व्यक्ति है। स्त्री जाति के साथ जितने सम्बन्ध पिता पुत्र भाई आदि के हैं वे निरे साधारण हैं। क्योंकि यह यथाय जातिगत स्वभावों के प्रतिकूल एक दूसरे के साथ व्यवहार करें। जैसे पशु किसी सम्बन्ध का ज्ञान न रख समान रूप से जननी भगनी के साथ सहवास करते हैं और मनुष्य जाति में भी कहीं-कहीं नाम मात्र की छूट के साथ समानता के साथ व्यवहार करते हैं अस्तु थोड़े में कहा जाता है कि स्त्री पुरुष के बीच प्राकृतिक आड प्राकृतिक सम्बन्ध होने से नहीं होती। इसी से बुद्धिमान

---

१ सवत् सर उन्नीस से अरु पच्चासी जोर। श्रावण सित मलमास मल चतुर्दशी मोर।
पूरन भाष्य भयो तबै शुभ किष्किन्धा करे। पढ कर प्रभु प्रेरव अहै हा कृपालु कोचेर ॥
—रामायण भाष्य की पुष्पिका।

और सदाचारी पुरुष सदैव विशेष सम्बन्धी व्यक्तियों के भी साथ बड़ी सावधानता के साथ रहते हैं। सभ्य समाज में लज्जा और वात्सल्य प्रेम की मात्रा इतनी बढ़ी है कि उन दोनों ने वर्ग की प्रकृति को इतना दाबा है कि वह कठिनता पूर्वक देखने में आती है। यहाँ तक कि कहीं कहीं दोनों वर्ग अपनी जाति के स्वभाव को विशेष रक्त सम्बन्धी के पवित्र व स्वच्छ प्रेम में भूल जाते हैं। और चाहे माता पुत्र हो अथवा चाहे पिता-पुत्री हो माता दोनों के स्थूल शरीर का ध्यान नहीं है और वे सूक्ष्म शरीर में प्राप्त हो दिव्य पवित्र स्नेह का परस्पर करते हैं परन्तु उसी के साथ जैसे ही स्थूल शरीर का ज्ञान हुआ वैसे ही जाति भिन्नता का भाव आ गया, और उसके आते ही हृदय में रक्त सम्बन्धी की भी सुन्दरता आदि गुणों द्वारा सम्भावनीय रूप से ऐसे जातिगत भाव मन में क्षण मात्र के लिए आ जाते हैं जैसे किसी अन्य व्यक्ति के देखने से आवें। परन्तु उसी के साथ जैसे मस्त गजराज दृढ़ जंजीरों द्वारा बाँध रक्खा जाता है वैसे ही प्राकृतिक लहर का दमन भी लज्जा समाज-विधान तथा लोक मर्यादा द्वारा रोका जाता है। अतएव श्री महाराज कहते हैं कि ऐसी विशेष सम्बन्ध की चारों स्त्री-कन्या के समान हैं। कन्या की प्रतिष्ठा स्वतः सिद्ध है कि उसमें जन्मकाल से लेकर युवा अवस्था के पहुँचने के पूर्व तक पिता के वात्सल्य भावों की छाप इसमें इतने गहरे तक पड़ी है कि वे प्रायः दोनों अपने जीवन काल में उससे बाहर नहीं जा सकते। दूसरी ओर भाई की स्त्री, पुत्र-वधू ये दूसरे घरों में स्थानी हुई और विशेष अवस्था प्राप्त कर श्वसुरकुल में आई है। इनके साथ वात्सल्य भाव विचार, जैसा कन्या तथा बहिन के साथ है, उतना नहीं होता है। इसलिए इनका मान कन्या के समान रखा गया है। और इसी भाव का निर्वाह करने के लिए पुत्र-वधू तथा भ्रातृ वधू परदा, चाहे कपड़े का अथवा लज्जा का अपने श्वसुर तथा जेठ के साथ करती है।'[1]

उपर्युक्त व्याख्यान में भाष्यकार ने यह बताया है कि वात्सल्य भाव एवं नैतिकता वाले दृढ़ सामाजिक नियमों ने हमें मर्यादित रखा है उन्होंने हमें वह विवेक दिया है जिससे हम अपनी अनेकानेक पाशविक वृत्तियों को नियंत्रित करके समाज में युक्तायुक्त आचरण की परख करते हैं और सद् मार्ग एवं सद् वृत्ति के पथ पर चलते हैं। इसी रीति से हमने सीखा कि हमें समाज में ऊँच नीच 'गव' 'सम' के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसीलिए हमने सहज वात्सल्य को अधिकारिणी अपनी पुत्री के समान अपनी भ्रातृ वधू भगिनी और पुत्र वधू को भी माना। विद्वान एवं विचारशील टीकाकार का उपर्युक्त विवेचन बहुत ही युक्तियुक्त एवं बुद्धि ग्राह्य है। उसकी शैली विशद है। भाषा में परिष्कार है।

मानस के अयोध्या काण्ड की टीका
टीकाकार लाला भगवान दीन जी 'दीन'

हिन्दी के सुप्रसिद्ध टीकाकार स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी का जन्म सवंत्

---

1 श्री रामायण भाष्य, प्र० सं०, पृ० १३० ३२।

१६२३ वि० में हुआ था। आपका प्रारम्भिक जीवन 'छतरपुर' (बुन्देलखण्ड) में व्यतीत हुआ। आप हिन्दी के उत्तम विद्वान् एवं पारखी थे। आप ने मध्यकालीन (भक्ति एवं रीतिकालीन) हिन्दी-साहित्य का बड़ा ही गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन किया था। इसीलिए आप इस काल के साहित्य का विश्लेषण बड़े ही अधिकारपूर्वक किया करते थे। आपके जीवन में सादगी थी रहन-सहन में पुरानापन था। दीन जी के जीवन पर विदेशी संस्कारों का बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। इसीलिए वे क्या काव्य क्षेत्र, क्या सामान्य जीवन सर्वत्र ही अपना मापदण्ड विशुद्ध भारतीय ही रखते थे।

कालान्तर में आप वाराणसी आ गए। यहाँ आपने अपनी साहित्य साधना विधिवत् प्रारम्भ की। आप को हिन्दी शब्द सागर में सम्पादकों में स्थान मिला। बाद में काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक के रूप में भी आप की नियुक्ति हुई। हिन्दी साहित्य की व्यवस्थित रूप में शिक्षा देने के लिए आपने वाराणसी में ही एक साहित्य विद्यालय खोला था। आपके प्रबुद्ध शिष्यों में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (अध्यक्ष मगध विश्वविद्यालय) का नाम उल्लेखनीय है। लालाजी एक अच्छे कवि भी थे। आप ब्रज एवं खड़ी बोली दोनों में ही कविताएं करते थे। आप लक्ष्मी नामक पत्र के सम्पादक भी रहे। लालाजी का देहावसान सं० १९८७ वि० में हो गया।

लाला जी का साहित्य

दीन जी ने तीन काव्यों वीर क्षत्राणी, वीर बालक और वीर पंचरत्न का प्रणयन किया था। इनके अतिरिक्त आपने 'रामचरित मानस (अयोध्या काड) रामचंद्रिका, कविप्रिया, दोहावली, कवितावली, बिहारी सतसई आदि की टीकाएं लिखी थी। आपकी फुटकल कविताओं का संग्रह नवीन बीन या नदी में दीन है।

टीका

सुप्रसिद्ध साहित्यिक टीकाकार श्री लाला भगवान दीन कृत 'मानस' के अयोध्या काड की आधुनिक व्याख्यान पद्धति से लिखी गयी एक साहित्यिक टीका है। 'मानस' के टीका साहित्य में संभवत यही प्रथम टीका है जिसमें साहित्यिक टीका रचना का आधुनिक स्वरूप पूर्ण रूप से विकसित हुआ है। यद्यपि इसके पूर्व श्री विनायक राव एवं बाबू श्यामसुन्दरदास ने भी मानस की साहित्यिक टीकाओं की रचना का भरपूर प्रयास किया था परन्तु उनकी टीकाओं पर न्यूनाधिक रूप से पूर्ववर्ती टीका-पद्धति का प्रभाव पड़ ही गया था। लाला जी की टीका इस प्रकार के प्रभावों से सर्वथा परे है। उसमें मानस' के व्याख्यातव्यों के काव्यात्मक स्वरूप का पूर्ण विश्लेषण मिलता है। टीका का रचनाकाल अज्ञात है। अतएव अनुमानत इस टीका की रचना उनके स्वर्गवास (सं० १९९०) काल के ६ वर्ष पूर्व मान जा सकती है। इसका प्रथम प्रकाशन नन्दकिशोर एंड ब्रदर्स, चौक, वाराणसी के द्वारा सम्पन्न हुआ।

टीकाकार ने प्रथमत व्याख्येय स्थलों के क्लिष्ट पदों का शब्दार्थ दिया है। इसके उपरात यदि आवश्यक हुआ है तो व्याख्येय अंश के विषयक कुछ 'विशेष सदर्भ

देकर उसका विस्तृत एव विशद व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है। टीका के अन्तगत दीन जी ने व्याख्येयपद के काव्य शास्त्रीय तत्वो अलकारो, शब्द शक्तियो, छन्दो आदि का भी निर्देश किया है। व्याख्याओ की अन्तगत कथाओ को टीका के परिशिष्ट म उल्लिखित कर दिया गया है।

टीका की शैली विशद गभीर एव विश्लेषणात्मक है। भाषा प्रौढ एव परिष्कृत है परन्तु कहीं कहीं पर उसम ग्राम्य शब्दो का भी प्रयोग दृष्टिगत होता है। यह एक उदाहरण ही टीका की इन सारी विशेषताओ को प्रत्यक्ष कर देने मे समर्थ होगा—

मूल— उर उमगेउ अबुधि अनुरागू। भयेउ भूप मन मनहुँ प्रयागू।
सिय सनेह बट बाढत जोहा। तापर राम प्रेम सिसु सोहा॥
चिरजीवी मुनि ग्यान विकल जनु। बूडत लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहि विदेह की। महिमा सिय रघुवीर सनेहकी॥

शब्दार्थ— अंबुधि समुद्र, वट अक्षयवट सिसु-बच्चा (बाल मुकुन्द जी) चिरजीवी मुनि मारकण्डय ऋषि।

विशेष—यहाँ पर तुलसीदास जी ने माया प्रलय का रूपक बाधा है उस प्रलय के समय केवल अक्षयवट बच जाता है और सम्पूर्ण संसार महा सागर म लीन हो जाता है।

भावार्थ—जनक जी के हृदय म प्रेम का समुद्र उमडने लगा। उनका मन ही मानो प्रयाग हो गया जहा पर उन्होंने सीता के प्रति प्रेम रूपी अक्षयवट को बढ़ते हुए देखा। (जिस अक्षय बट के पते पर) राम प्रेम रूपी बच्चा (बालमुकुन्द लटा हुआ) शोभित था। जनक जी को व्याकुल ज्ञान ही चिरजीवी मारकण्डय मुनि है जिसने बूडते बूडते राम प्रेम रूपी (बालमुकुन्द) का अवलम्बन पा लिया। (अर्थात् जिस प्रकार प्रलय का दृश्य देखने की इच्छा होने पर मारकण्डय जी समुद्र मे तैरते अक्षयवट के पते पर सोए हुए भगवान के बाल रूप का अवलम्बन पाकर स्थिर चित हुए थे, उसी प्रकार जनक जी के हृदय म जो माता प्रेम का उद्वेग हुआ तो वे उसम डूबने उतराने लगे। उनका ज्ञान मोह म परिणत होने को था कि राम के ऐश्वय रूप का ध्यान आया और तब माता और राम को अनादि शक्ति और ईश्वर समझ कर (बेटी दामाद का भाव छूट गया) तब उन्हे सान्त्वना मिली। राजा जनक जी की बुद्धि ममता म नहीं मग्न हो गयी, बल्कि यह सीता राम के प्रेम की महिमा है कि उसमें जनक जी भी डूब रहे थ।

अलकार—उत्प्रेक्षा स पुष्ट साग रूपक। (नोट) यहाँ रूपक का बडा ही समुचित प्रयोग हुआ है कोई अन्य रूपक यहाँ जनक जी की मानसिक परिस्थिति का निदर्शन भी न करा सकता।

कथा परिशिष्ट म देखिये।"[1]

---

१ लाला भगवानदीन जी कृत अयोध्याकाण्ड सटीक, प्र० स०, पृ० ४३४ ३५।

उपर्युक्त उद्धरण मे व्याख्येय चौपाइयो का उनके शब्दार्थ, संदर्भ सहित विस्तृत एवं विशद व्याख्यान किया गया है। इसके अतिरिक्त नोट मे उत्प्रेक्षापुष्ट साग रूपक से गर्भित व्याख्येय मे रूपकालंकार के पुट को संयुक्तिक एव साभिप्राय बताते हुए, उसे जनक जी की मानसिक दशा का उद्घाटक कहा गया है।

भाषा प्रौढ एवं तत्सम प्रधान है, परन्तु उसमे 'बूडते' सदृश ग्राम्य शब्दो का भी प्रयोग किया गया है।

मानसपीयूष
टीकाकार . श्री अंजनीनंदन शरण

मानसपीयूषकार का वास्तविक नाम शीतला सहाय सावत है। रामानद सम्प्रदाय मे दीक्षित हो जाने पर आप के गुरु ने आपका दीक्षा सम्बन्धी नाम अजनीनन्दन शरण रखा। इसी नाम से आप आज प्रसिद्ध हैं। श्री अंजनी नन्दन शरण जो कायस्थ कुल मे उत्पन्न हुए थे। बी० ए० का परीक्षा पास कर आपने वकालत की शिक्षा भी प्राप्त की। उनके निकटवर्ती सूत्रो[१] से पता चलता है कि उन्होने कुछ दिनो तक कचहरी में वकालत भी की थी परन्तु उनका मन इस क्षेत्र मे बिल्कुल लगता नही था। उनकी प्रवृत्ति दिनो दिन भगवद्भक्ति की ओर दृढ होती जा रही थी। एक दिन (संभवत पत्नी वियोग के पश्चात्) उन्होंने घर गृहस्थी सदा के लिये त्याग ही दी और अयोध्या चले आये। यहाँ आकर ये साधु महात्माओ के सत्संग का लाभ एव उनकी 'मानस' की कथाओ का नियमित रूप से श्रवण करने लगे। सावत जी का 'मानस' कथा की ओर अत्यधिक झुकाव था। वे नित्यश. अयोध्या स्थित 'मानस' की दो सर्वोत्तम व्यास गद्दियो—मणिराम छावनी एव बडी छावनी के तत्कालीन भारत प्रसिद्ध व्यास, क्रमश श्री प० रामवल्लभ शरण जी एव बाबा रामबालक दास की कथायें सुनते थे और उनके मानस व्याख्यानो को नोट भी करते जाते थे।

कालान्तर मे श्री अंजनीनन्दन शरण जी ने रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय के तत्कालीन सुप्रसिद्ध संत श्री भगवान प्रसाद 'रूपकला जी' से गुरु-मत्र लेकर सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये। गुरु की इन पर बड़ी कृपा थी। उन्होने इनकी मानस-कथा व्याख्यान के संग्रह की ओर अगाध रुचि देख कर इन्हें आदेश दिया कि तुम 'मानस' की एक ऐसी टीका तैयार करो जिसमे 'मानस' के प्राचीन अर्वाचन एवं आधुनिक सभी टीकाकारो के भाष्य संकलित हो। गुरु निदेश का पालन श्री अजनी नन्दन शरण जी ने बडी ही निष्ठा

---

१. श्री अंजनीनन्दन शरण जी विशुद्ध विरक्त संत हैं उन्होंने अपनी जीवनी विषयक तथ्यों को पूर्णतया गुप्त रखा है। इसी कारण हमें उनके गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध पूरे तथ्य न मिल सके। जो कुछ जीवन-वृत्त इतस्तत से हमे उनके सम्बन्ध मे मिल सका उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

एवं लगन से किया। इन्होंने अपार परिश्रम के पश्चात् 'मानस' की मानसपीयूष जैसी उत्कृष्ट एवं विशालतम संग्रहात्मक टीका तैयार की।

प्रो० रामदास गौड एव लाला भगवान दीन एव राजबहादुर आत्मगौड आपके परम स्नेही मित्र थे। उन्होंने मानसपीयूष की रचना के हेतु आपको बड़ा ही प्रोत्साहन एवं सहायता दी।

मानसपीयूषकार बड़े ही सज्जन एवं त्यागी महात्मा है। अध्यवसाय एवं परिश्रम के वे मानो मूर्त्तिमत रूप हैं। अतिवृद्धावस्था मे भी वे राम-साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन मे लगे रहते है। सम्प्रति ये अपनी ८० वर्ष की अति वृद्धावस्था मे विनयपीयूष को विशाल संग्रहात्मक टीका के प्रणयन मे व्यस्त हैं। विनयपीयूष का कुछ भाग प्रकाशित भी हो चुका है।

मानसपीयूष

श्री अंजनीनन्दन शरण कृत 'मानसपीयूष' मानस की वृहत्तम टीका है। यह एक संग्रह प्रधान टीका है जिसमे सभी प्राचीन एव आधुनिक 'मानस'-टीकाकारो के विविध प्रकार की 'मानस'-टीकाओ के मात्र सकलित हैं। इस टीका की रचना-परिणति में पर्याप्त समय लगा है। स्वय मानस-पीयूषकार के कथनानुसार मानसपीयूष का लेखन एवं साथ ही साथ प्रकाशन भी ईसवी सन् १९२२ से ही प्रारम्भ हो गया था, प्रथमत यह कुछ दोहो की ही टीका के रूप मे खण्डश अयोध्या के ही सीताराम प्रेस से निकलती रही। कुछ दिनों के पश्चात् काण्डगत टीका रूप मानसपीयूष टीका का प्रकाशन सीताराम प्रेस जालपादेवी (बनारस) से प्रारम्भ हो गया। धीरे-धीरे समय समय खण्ड-खण्ड मे मानसपीयूष टीका प्रकाशित होती रही। यही क्रम विक्रम संवत् १९९१ तक चलता रहा। इस प्रकार 'मानस' के सम्पूर्ण काडो की टीका मानसपीयूष के प्रथम सस्करण के रूप मे लगभग १२-१२ वर्षों मे पूर्ण हुई। इसके पश्चात् स्वय पीयूषकार के ही स्व-प्रकाशनाधिकार मे मानसपीयूष का दूसरा, तीसरा सस्करण तथा मानस पीयूष बालकांड का चौथा सस्करण भी सीताराम प्रेस (वाराणसी) से ही निकला। तदोपरान्त आपने गीता प्रेस जैसी समर्थ एव सुयोग्य प्रकाशन संस्था को मानस-पीयूष का प्रकाशनाधिकार दे दिया। यहाँ से भी यह सम्पूर्ण टीका अपने अक्षुण्ण एवं अखण्डितरूप में एक बार छप चुकी है। गीताप्रेस संस्था ने इसका मूल्य आधा ६५ रु० कर दिया है। अतएव इसका विक्रय शीघ्र ही समाप्त हो गया। पुन. यह संस्था अपने यहाँ से इसका दूसरा सस्करण निकालने जा रही है।

मानसपीयूष टीका की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसमें टीका के पाठक को क्या साम्प्रदायिक, क्या असाम्प्रदायिक, क्या भक्त, क्या साहित्यिक, क्या योग हठ होग, क्या वैज्ञानिक क्या सभी दृष्टिकोणो के समर्थक राजनीतिक, सामाजिक एव मर्यादावादी—मानस व्याख्याताओ, समीक्षकों एवं विवेचको के प्राचीन एवं आधुनिक मत एक ही स्थल पर संग्रहीत रूप मे मिल जाते हैं।

मानसपीयूषकार ने एक कुशल सम्पादक की भांति उपर्युक्त टीकाकारों के यथा-पेक्षित भावों को व्याख्यातव्य विशेष की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत कर दिया है और आवश्यक स्थलों पर उसने अपनी बहुमूल्य टिप्पणियाँ एवं 'नोट' भी दिये हैं।

टीका के अन्तर्गत भक्त्यात्मक, साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से 'मानस' का युक्तियुक्त एवं समीचीन व्याख्यान विवेचन किया गया है। इस शोध प्रबन्ध के तीसरे खण्ड के उक्त विभिन्न दृष्टिकोणों से विभाजित मानस-टीकाओं का पृथक्-पृथक् विवेचन करते हुए हम 'मानसपीयूष' टीका की उक्त प्रकार की विशेषताओं का उल्लेख करेंगे।

टीकाकार ने प्रथमतः व्याख्यातव्यों के क्लिष्ट पदों का शब्दार्थ लिखा है, तत्पश्चात् उनका अक्षरार्थ, विशेष टिप्पणी (विशेषतः पंडित रामकुमार जी के भाव) दी है। इसके अनन्तर उन पर अन्य टीकाकारों के भाव उल्लिखित किये गये हैं। विभिन्न टीका स्थलों में आये हुए अलंकार छन्दादि का भी यथास्थान, निर्देश कर दिया गया है। टीकाकार ने मुख्य-मुख्य स्थलों की टीकाओं के अन्तर्गत अपने विशेष 'नोट' एवं टिप्पणियों को भी दिया है। इनमें प्रायः व्याख्येय विशेष पर अपने मौलिक भाव दिये गये हैं अथवा कभी अन्य टीकाकारों के भावों से सहमति अथवा असहमति प्रकट की गयी है। शंका समाधान भी दिये गये हैं। कभी-कभी इन 'नोटों' में ही टीकाकार ने व्याख्यातव्य में अलंकार शब्दशक्ति, ध्वनि आदि काव्यशास्त्रीय तत्वों पर अपने विचार भी प्रकट किये हैं।

टीका की शैली सुबोध एवं सुस्पष्ट है। भाषा सरल एवं सामान्य कोटि की है। उसमें अपरिष्कार एवं अपरिमार्जन वर्तमान है, कहीं-कहीं शब्दों के प्रयोग भी अशुद्ध रूप में मिलते हैं। 'मानस' पीयूष टीका के एक उद्धरण से उसकी सामान्य विशेषतायें प्रकाश में आ जायेंगी —

मूल—निज भुज बल मैं बैरु बढ़ावा। देइहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा।
अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा।
चले वीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली।

अर्थ—मैंने अपनी भुजाओं के बल पर वैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है, उसे मैं (अकेला) उत्तर दूँगा ॥६॥ ऐसा कहकर पवन समान तेज चलने वाला रथ सजाया। समस्त लड़ाई वाले बाजे बजने लगे ॥७॥ अतुल बलवान सब वीर योद्धा ऐसे चले मानो कज्जल की आँधी चली ॥८॥

बंदन पाठक—देहौं उतरु इति। भाव यह कि यह न समझो कि मैं भाई और पुत्र के मरण से दुखी हूँ, क्योंकि यह शूरवीरों का काम ही है। (वि० लि० भाव पूर्व चौपाई में देखिये)।

नोट—१ वाल्मी० ९३। २६-३० में जो उसने कहा है कि 'मैंने हजारों वर्ष तप करके ब्रह्माजी को संतुष्ट कर उनकी कृपा से धनुष, बाण और कवच प्राप्त किया है, उनको लेकर रथस्थ हो जब मैं युद्ध में खड़ा होऊंगा तब मेरे सामने इन्द्र भी नहीं आ सकेंगे।

देवता दैत्य सभी से वर द्वारा मैं निर्भय हूँ।' यह सब 'निज भुज बल' में कवि ने कह दिया है। २—बाजे जुमाऊ बाजा—बाजहिं ढोल निसान जुमाऊ।—४०।२-३। देखिये।

३—जनु कज्जल कै आंधी चली। अत्यन्त काले है, अत कज्जल कहा। 'आंधी चली' कह कर के जनाया कि शीघ्र मद नष्ट हो जायेंगे। यहाँ अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है। (सेना को देखने वाले देवादि के हृदय में धवका लगा, वे त्रस्त हो गये। यह मुख्य भाव है। यह भाव तथा आश्चर्य सूचित करके विचार से एक-एक मात्रा कम रखी गयी। (स्वामी प्रज्ञानदजी)।[1]

उपर्युक्त अर्द्धालियों की टीका करते हुये मानसपीयूषकार ने प्रथमत उनका अक्षरार्थ दिया, इसके उपरात पीयूषकार ने अर्द्धालियों की विस्तृत व्याख्या देते हुये वदन पाठक जी और अपने तीन नोट दिये हैं। अन्त मे स्वामी प्रज्ञानन्द जी के व्याख्यातव्य अर्द्धालियों की एक मात्रा हीनता विषयक विचार दिया गया है।

पीयूषकार ने अपने प्रथम 'नोट' म रावण के अपराजेय एवं साहसपूर्ण वचन की पुष्टि उसके द्वारा वाल्मीकि रामायण मे कथित शौर्य पूर्ण वचनों से की है। तीसरे नोट के अन्तर्गत पीयूषकार ने व्याख्यातव्य की अन्तिम अर्धाली में व्याप्त वस्तुत्प्रेक्षालंकार का निर्देश किया है।

भाषा मे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग किया गया है। उसमे कितने ही ग्राम्य शब्दों अथवा सामान्य कथावाचकों द्वारा प्रयुक्त शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं जैसे जताया के स्थान पर 'जनाया' सदृश अशुद्ध शब्द का प्रयोग भी दर्शनीय है।

मानस सटीक :

टीकाकार . पं० रामनरेश त्रिपाठी—

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एव तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक स्वर्गीय श्री रामनरेश त्रिपाठी का जन्म संवत् १९४६ में जौनपुर जिले के कोइरीपुर नामक ग्राम मे हुआ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता प० रामदत्त त्रिपाठी एक भगवद्भक्त कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। यद्यपि इन्हें विद्यालयीय शिक्षा साधारण ही प्राप्त हुई थी, तथापि अपने असाधारण अध्यवसाय के बल पर आप एक अच्छे साहित्यज्ञ बन गये। आप हिन्दी की सेवा मे सतत लीन रहे। आप एक अच्छे कवि थे। राष्ट्रीय कविता क्षेत्र मे आपका महत्व अत्यधिक है। आपने कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया था। नाटक एवं आलोचना क्षेत्र मे भी आपने अपनी लेखनी द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किया। आप तुलसी साहित्य एवं तुलसीदास के जीवन विषयक तथ्यों की खोज में भी विशेष रत रहे थे। आपने 'मानस' की एक टीका लिखी थी, जो गांधी जी की दृष्टि में मानस के एक अच्छे (गद्य)

---

१. मानसपीयूष तृ० सं०, पृ० ४०६ (लंकाकांड)।

अनुवाद के रूप मे है।[1] आपका स्वर्गवास सं० २०१८ वि० मे प्रयाग मे हो गया। रामचरितमानस की टीका के अतिरिक्त आपकी विभिन्न साहित्यिक रचनाओ की सूची इस प्रकार है—

खण्ड काव्य—पथिक मिलन।
कविताओ का संग्रह—मानसी।
सम्पादित—कविता कौमुदी छ: भाग, ग्राम गीतो का संग्रह।
नाटक—प्रेम लोक।
आलोचना—गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कविता (दो भागो मे)।

रामचरितमानस सटीक

सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार पं० रामनरेश त्रिपाठी कृत रामचरितमानस टीका की रचना की परिणति आश्विन कृष्ण ३० सवत् १९९२ मे हुई थी। इसका प्रथम प्रकाशन स्वयं टीकाकार द्वारा सन् १९३६ ई० मे सम्पन्न हुआ। पुन इसका नवीन संशोधित संस्करण दिल्ली के 'राजपाल ऐण्ड सन्स' प्रकाशन संस्था के स्वत्वाधिकार मे वि० सवत् २००८ (सन् १९५१ ई०) मे निकला। यह टीका भी गीता प्रेस की 'मानस' टीका के समान अधरार्थ मूलक ही है। त्रिपाठी जी की 'मानस' टीका एवं गीता प्रेस की 'मानस' टीका के स्वरूप मे कोई तात्विक अन्तर नही है। हां, त्रिपाठी जी ने अपनी 'मानस' की टीका के अन्तर्गत 'मानस' के व्याख्यातव्यो मे उपलब्ध विभिन्न प्रकार के अलंकारो का बड़ी ही तत्परता से निर्देश किया है। व्याख्येय तथा क्लिष्ट शब्दो का अर्थ पादटिप्पणी मे कर दिया गया है। उन्होंने टीका मे तुलसीदास के जीवन-चरित पर साहित्यिक एवं विवेचनात्मक दृष्टि से विचार किया है। टीका के अन्त मे रामचरितमानस के चुने हुये उपदेशो का एक संकलन भी दिया गया है।

टीका की भाषा परिष्कृत है। उसमे सरल एवं सुबोध शब्दो का प्रयोग हुआ है। अरबी-फारसी के आमफहम शब्दो का भी प्रयोग किया गया है। टीका की अर्थ शैली विशद एव सहज है।

त्रिपाठी जी की टीका का यह एक उद्धरण उसकी सामान्य विशेषताओ का दिग्दर्शक है—

मूल—'रघुवर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहेर ठाटू।
लषन दीष मल उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुप जिमि नारा।
नदी पन च सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठ भेरी॥

---

१ पं० रामनरेश त्रिपाठी कृत मानस की टीका के प्रारम्भ मे प्रकाशित गाधी जी की प्रशस्ति।

अर्थ—'रामचन्द्र ने कहा—लक्ष्मण ! घाट तो अच्छा है, अब कहीं, ठहरने की व्यवस्था करो। तब लक्ष्मण ने पयस्विनी नदी के उत्तर किनारे को देखा, जिसके चारो ओर धनुष के समान एक नाला फिरा हुआ है। उस धनुष की प्रत्यंचा डोरी तो वह नदी है, शम दम दान बाण है, कलियुग के सब पाप उसके हिंसक पशु (शिकार) हैं चित्रकूट पर्वत ही मानो अचल शिकारी है जिसका घात (निशाना) कभी नहीं चूकता नहीं और सामने से मारता है (सागरूपक अलकार)।'[1]

पादटिप्पणी—१—ठौर, जगह, २—व्यवस्था, ३—प्रत्यंचा डोरी, ४—शिकार पशु, ५—शिकारी।[2]

उपर्युक्त अर्द्धालियो की टीका बडे ही विशद ढंग से अक्षरार्थ रूप मे की गयी है। सागरूपक अलकार का भी निर्देश कर दिया गया है। क्लिष्ट शब्दो का अर्थ दे दिया गया है। टीका के अन्तर्गत प्राय सरल शब्दो का ही प्रयोग किया गया है। उसमें 'निशाना' फारसी, 'शिकार' अरबी सदृश शब्दो का प्रयोग भी दर्शनीय है।

रामचरितमानस सटीक (गीताप्रेस) :
टीकाकार . श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार 'भाई जी'

'कल्याण' के यशस्वी सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार का जन्म आश्विन कृष्ण द्वादशी संवत् १९४९ वि० (१३ सितम्बर, सन् १८९२ ई०) को शिलांग (आसाम) मे हुआ था। इनके पिता श्री भीमराज जी मूलत रतनगढ बीकानेर स्टेट (राजस्थान) के निवासी थे और शिलाग मे कपडे का व्यवसाय करते थे। इनकी माता का स्वर्गवास इनके जन्म के कुछ ही महीनो के पश्चात् हो गया। इनका लालन पालन इनकी मातामही श्री रामकोर देवी ने किया। कालान्तर में ये लोग शिलाग से कलकत्ते चले आये। आपकी प्रारंभिक शिक्षा कलकत्ते मे ही हुई। आपकी पाठशाला की शिक्षा अधिक नहीं मिली थी। घर पर स्वाध्याय आपने किया। इसमें आपकी प्रगाढ रुचि थी। अल्प वय में ही आपने हिन्दी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इसके अतिरिक्त कलकत्ते मे ही आपने संस्कृत, बगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओ का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और इन भाषाओ के साहित्य विशेषत धर्म-साहित्य का भी अच्छा अध्ययन किया।

प्रारंभ में आपकी रुचि राष्ट्रीय काग्रेस के तत्वावधान मे होने वाले आन्दोलनों की ओर अधिक थी। अपनी अल्पवय मे ही पोद्दार जी बंग भंग आन्दोलन मे सोत्साह सक्रिय रूप से भाग लिया। आप क्रान्तिकारी दल के कर्मठ कार्यकर्ता बन गये। कांग्रेस के तत्कालीन बगीय नेताओ—सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, अश्विनीकुमार दत्त तथा अरविन्द से आपका घनिष्ठ सम्पर्क था। इन्हीं दिनों आपके साहित्यिक जीवन का उदय होता

---

१ वही, की विज्ञप्ति।
२. वही, पृ० ५१७।

है। आपने कलकत्ते मे निकलने वाले पत्र 'भारत-मित्र' के अन्तर्गत युद्ध सम्बन्धी एक लेखमाला सन् १९१३-१४ ई० मे निकाली। इसी के लगभग गर्दे जी के द्वारा सम्पादित पत्र 'नवनीत' में आपका धर्म के स्वरूप पर एक लेख निकला। इसी समय आपका परिचय महात्मा गाधी एव महामना मालवीय जी से कलकत्ते मे ही हुआ। सन् १९१४ ई० मे अंग्रेज सरकार के विरुद्ध आन्दोलन मे सक्रिय भाग लेने के कारण आपको अलीपुर जेल मे रखा गया। इसके उपरात तत्कालीन 'डिफेन्स आफ इण्डिया ऐक्ट' के अन्तर्गत शिमलापाल (बाकुरा बंगाल) मे आपको २१ महीने के एकान्तवास (इन्टरमेण्ट) की सजा मिली। २१ महीने के पश्चात् आप वहाँ से रिहा कर दिये गये।

शिमला पाल के राज बदी जीवन मे ही आपके जीवन का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। उस समय आपकी वृत्ति आत्म चिन्तन मे लीन हो गयी। वहाँ आप निरंतर हरिनाम भजन एवं धार्मिक साहित्य के पठन-मनन मे लीन रहते थे। इन्ही दिनो आपने नारद के भक्ति सूत्रो की एक विशद टीका लिखी थी, जो कालान्तर मे गीता प्रेस से प्रकाशित हुई। धार्मिक संस्कारो की प्रबलता के कारण अब क्रान्तिकारी जीवन की ओर से आपकी वृत्ति हटने लगी थी।

शिमलापाल की रिहाई के आदेश के साथ ही आपको बंगाल छोड देने का सरकारी आदेश मिला। अब आप बम्बई आ गए। वहाँ आने पर आपकी घनिष्ठता तत्कालीन कर्मठ काग्रेस सेवक सेठ जमनालाल बजाज से और अधिक हो गयी। यहाँ काग्रेस के शिखर के नेताओ—महात्मा गाधी, राजेन्द्र बाबू, पं० मोतीलाल नेहरू आदि का आना प्राय हुआ करता था। वहाँ आप ही सेठ जमनालाल जी की ओर से उनके आगत-स्वागत मे रहते थे। इस प्रकार इन नेताओ से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। यद्यपि उपर्युक्त कर्मठ राजनीतिक नेताओ से आपका घनिष्ठ सम्पर्क था तथापि अब आपकी वृत्ति मे एक क्रान्तिकारी मोड आ गया था। फलत राजनीतिक जीवन से तटस्थ हो आपकी वृत्ति अध्यात्म साधना मे एकनिष्ठ हो गयी।

आपके साहित्यकार मित्रो मे स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं श्री शरत्चन्द्र भी थे। गीता के मर्मविद् सेठ जयदयाल जी गोयन्दका आपके परम आत्मीय हैं। आपने अपने परम सुहृद सेठ जयदयाल जी गोयन्दका की प्रेरणा तथा सहयोग से अपने सम्पादकत्व मे बम्बई से धर्म-ज्ञान-वैराग्य-तत्त्व से गर्भित मासिक पत्र 'कल्याण' अगस्त सन् १९२६ ई० से निकालना प्रारम किया। अन्त मे १९२९ ई० मे आप गोरखपुर आ गए और यहाँ से कल्याण का प्रकाशन होने लगा। आपकी अद्भुत कर्मठता और साहित्यिक-धार्मिक साधना का मूर्तिमान स्वरूप 'कल्याण' आज विश्वख्याति का पत्र बन गया है। सम्प्रति इसकी लगभग १५०००० प्रतियाँ प्रकाशित हो रही हैं। लाखो-करोडो भव-आतप तापित जनता का इससे 'कल्याण' हो रहा है। कल्याण के अंग्रेजी संस्करण 'कल्याण कल्पतरु' के भी आप प्रधान सम्पादक हैं। इसके अतिरिक्त गीता प्रेस से प्रकाशित होने वाले पत्र—महाभारत के भी आप सम्पादक रह चुके हैं। आप अच्छे भक्त-कवि भी हैं। आप गीता प्रेस के कुछ दिनो तक प्रकाशक भी रह चुके हैं।

श्री पोद्दार जी का व्यक्तिगत जीवन बड़ा ही पवित्र है। नैतिकता, सदाचार जैसे आप में ही मूर्तिमान हो गये हैं। आप में उदार दानशीलता, परम उदार उदारता, आर्त जन-सेवा भावना एवं भगवत् में अटूट आस्था आदि गुण मानों घर कर गये हैं। भगवान् कृष्ण के आप परम उपासक हैं। आप राधा-माधव के नित्य एवं दिव्य स्वरूप के श्रेष्ठ कोटि के व्याख्याता हैं। आपकी निष्ठा भगवान् के अन्य विग्रहों में भी गहन रूप से है। आप संसार के अन्य धर्मों बौद्ध, जैन, ईसाई आदि के प्रति उदार दृष्टि रखते हैं। आपकी भारतीय संस्कृति, साहित्य के अध्ययन में तथा विश्व के संत महात्माओं के जीवन चरित के परिशीलन में अगाध रुचि है।

आपके उपर्युक्त असाधारण गुणों के कारण आपको लोग आध्यात्मिक जगत् की एक विभूति मानने लगे हैं। जनता और सरकार सभी के आप प्रिय एवं सम्मान्य पात्र हैं। सरकार ने तो आपको कितनी ही बार उच्चतम सम्मानित पदों एवं पदवियों से अलंकृत करना चाहा, परन्तु आपने सविनय उसके अनुरोधों को अस्वीकृत कर दिया। यह है आपकी त्याग वृत्ति का उत्कृष्टतम उदाहरण।

साहित्य-सेवा

तुलसी-साहित्य के प्रति आपकी गहन रुचि है। आपने रामचरितमानस, विनय-पत्रिका एवं दोहावली पर टीकाएँ लिखी हैं। आप मात्र टीकाकार ही नहीं है, अपितु लगभग ७००० पृष्ठों के मौलिक साहित्य के रचयिता भी हैं। इस मौलिक साहित्य के अन्तर्गत आपके द्वारा लिखित—श्री राधामाधव चिन्तन, कल्याण कुंज (३ भागों में), लोक-परलोक सुधार (५ भागों में), प्रेम दर्शन तथा श्री राधा माधव-रस-सुधा (पद) आदि रचनायें आती हैं।

रामचरित मानस सटीक (गीता प्रेस)

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी कृत रामचरितमानस की टीका मानस की अन्य सभी टीकाओं से अधिक प्रचलित है। इसकी लाखों प्रतियां प्रकाशित हुई हैं। गीता प्रेस जैसी धर्म प्रचारक प्रकाशन संस्था के तत्वावधान में प्रकाशित तथा श्री पोद्दार जी जैसे परम भागवत तथा प्रबुद्ध विद्वान के द्वारा रचित होने के कारण इस टीका की लोक-प्रियता अत्यधिक बढ़ गयी है। इस टीका का प्रथम प्रकाशन संवत् २००४ वि० में गीता प्रेस गोरखपुर से हुआ था।

पोद्दार जी कृत 'मानस' प्रचार की दृष्टि से लिखी गयी है। इसमें 'मानस' की कोई विस्तृत विवेचनात्मक व्याख्या नहीं प्रस्तुत की गयी है, अपितु 'मानस' के व्याख्या-तव्यों का सरल एवं सामान्य अर्थ लिख दिया गया है। एक प्रकार से यह टीका 'मानस' के गद्यानुवाद रूप में ही है। हाँ, टीकाकार ने 'मानस' के व्याख्यातव्यों का जो भावार्थ किया है वह स्पष्ट एवं विशुद्ध है। साथ ही साथ जहाँ तक हो सका, मानस के अर्थ-*अभिप्राय को सीधे ढंग से व्यक्त करने का यथासंभव प्रयास किया है।*

टीका की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली गद्य है। इसमें सरलता एवं स्पष्टता वर्तमान है। अर्थ-शैली की ऋजुता स्तुत्य है। निम्नलिखित उदाहरण द्वारा इस टीका की उपर्युक्त विशेषताओं का निदर्शन भली-भाँति हो जा रहा है—

मूल—'सखि सब कौतुक देखनि हारे। जेउ कहावत हितू हमारे।
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठि भलि नाहीं॥'

हे सखी! वे जो हमारे 'हितू' कहलाते हैं, वे भी तमाशा देखनेवाले हैं कोई भी (इनके) गुरु विश्वामित्र जी को समझाकर नहीं कहता कि ये (रामजी) बालक हैं, इनके लिये ऐसा हठ अच्छा नहीं। (जिस धनुष को रावण और बाण—जैसे जगद्विजयी वीर छू तक न सके, दूर से ही प्रणाम करके चलते बने। उसे तोड़ने के लिये मुनि विश्वामित्र जी का रामजी को आज्ञा देना और राम जी का उसे तोड़ने के लिए आगे बढ़ना रानी को हठ जान पड़ा, इसलिये वे कहने लगीं कि गुरु विश्वामित्र को कोई समझाता नहीं।)'[1]

टीकाकार ने उपर्युक्त अर्द्धाली का अक्षरार्थ करने के पश्चात् उपर्युक्त अर्द्धालियों के भावों को और अधिक सुस्पष्ट करने के निमित्त ही कोष्ठक में धनुर्यज्ञ के प्रसंग में रावण एवं बाणासुर सदृश जगद्विजयी वीरों के परास्त साहस का उल्लेख करके जनक-पत्नी सुनैना के परिताप को स्पष्ट कर दिया है। टीकाकार ने अत्यन्त सीधी-सादी भाषा का प्रयोग किया है जिसे हिन्दी भाषा का सामान्य ज्ञाता भी बड़ी ही सरलता से इसे समझ सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरलता के लिए ही उसने मानसकार द्वारा प्रयुक्त शब्द 'हितू' को ही ज्यों का त्यों रख दिया है।

भाष्य-सुन्दर प्रकाश :

भाष्यकार . श्री रमाशंकर प्रसाद जी एडवोकेट—

श्री रमाशंकर प्रसाद जी एम० ए०, एल० एल० बी० का जन्म उत्तर प्रदेश में बलिया जिले के सोवईबान नामक ग्राम में ज्येष्ठ कृष्ण १० संवत् १९६० विक्रमी को शिवरतन लाल जी के यहाँ हुआ था। इन्होंने म्योर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद तथा प्रयाग विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। ये एक मेधावी छात्र थे और सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण कीं।

ये हिन्दी तथा अंग्रेजी के प्रतिभा-सम्पन्न लेखक हैं। इनके साहित्यिक जीवन में जो प्रवाह, चमत्कार और शालीनता है, वह इनकी अर्जित सम्पत्ति है। हिन्दी भाषा में 'संक्षिप्त बिहारी', 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' तथा 'सुन्दर प्रकाश' और अंग्रेजी भाषा में 'इण्डिया सोशल एण्ड पोलिटिकल' तथा कानून की पुस्तकें लिखी हैं। इधर इन्होंने 'पिलर्स आफ पीस' नामक पुस्तक की रचना की है।

भारतीय संस्कृति पर इन्होंने विशेष अध्ययन तथा मनन किया है तथा साहित्यिक एवं धार्मिक कार्यों में इनकी विशेष रुचि है।

१ रामचरितमानस सटीक, दशम् संस्करण, पृ० २८८।

ये इलाहाबाद हाईकोर्ट तथा सुप्रीमकोर्ट के ऐडवोकेट हैं।[1]

सुन्दर प्रकाश

रमाशंकर प्रसाद कृत सुन्दर प्रकाश 'मानस' के लोकोपकारी, शान्तिदायी एवं सामाजिक मर्यादावादी स्वरूप का विवेचक भाष्य ग्रन्थ है। विद्वान भाष्यकार ने प्राचीन भारतीय नैतिक सामाजिक सिद्धान्तो तथा आधुनिक भौतिकवादी बुद्धिपरक मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक विचार धाराओ से समन्वित सिद्धान्त भूमि पर 'मानस' का गंभीर एवं विस्तृत विवेचन अपने इस टीकात्मक ग्रन्थ मे किया है। उसने अपनी इस टीका को भाष्य कहा है।[2]

सुन्दर प्रकाश का प्रकाशन सवत् २००६ में हुआ। यह जैसा कि नाम ही से विदित है, 'मानस' के सुन्दर काड की सुविस्तृत टीका है। टीकाकार ने प्रथमत मूल का सामान्य अर्थ दिया है, पुन उसके कुछ क्लिष्ट या व्याख्या सापेक्ष शब्दों का अर्थ पाद टिप्पणी मे दे दिया है। ये अर्थ मात्र कोषो के ही आधार पर ही नही दिये गये हैं, अपितु तदर्थ उपनिषदो, पुराणो, मनुस्मृतियो आदि का भी आधार लिया गया है। इसके उपरात यदि व्याख्यातव्य बडा ही गूढ, विवादास्पद एवं विस्तृत व्याख्या-सापेक्ष हुआ तो वही 'विवेचन' शीर्षक देकर उस पर विस्तार से विचार किया गया है। यह विचारणा, भौतीय वैदिक औपनिषदिक, पौराणिक एवं धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तो के आधार पर तो की ही गयी है, आवश्यकतानुसार आधुनिक मनोविज्ञान, विज्ञान एव समाजशास्त्रीय विचार-धाराओ के अनुकूल भी विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इस टीका का एक मुख्य उद्देश्य मानस के सास्कृतिक पक्ष का उद्घाटन करना है।

टीकाकार ने कुछ स्थलो पर 'मानस' की व्याख्या विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक, नृव शास्त्र (अन्थोपालाजी) एव डारविन के विकासवादी सिद्धान्त (थेअरी आफ एवाल्यूशन) की मान्यताओ के सहारे तथ्यो की विवेचना की है। इस सम्बन्ध में इस टीकात्मक ग्रन्थ मे *हनुमान सुग्रीव एवं जामवतादि वानर भालू सेनानियो का परिचय देखा जा* सकता है।[3]

भाष्यकार ने अपने भाष्य के अन्त में सूक्ष्मावलोकन नामक शीर्षक देकर 'मानस' के सुन्दर काड की भाषा शैली, विषय वस्तु, सिद्धान्त एवं शान्ति स्थापना-हेतु 'मानस' की रचनात्मक भूमिका आदि तथ्यो पर विशद विवेचन दिया गया है।

भाष्य क्षेपक रहित है। व्याख्येय मे आये हुए अलंकारादि काव्यशास्त्रीय तत्वो एवं अन्तर्गत कथाओ को ग्रन्थ के परिशिष्ट मे दे दिया गया है। टीका की शैली गंभीर

---

१. श्री बद्रीप्रसाद जायसवाल के २७ नवम्बर, १९६२ के पत्र में लिखित थी रमाशंकर प्रसाद जी की जीवनी के आधार पर।

२ सुन्दर प्रकाश, प्र० सं०, की भूमिका

३. सुन्दर प्रकाश, प्र० स०, पृ० २१, २६०, ३१५, ३५१ इत्यादि।

एवं विवेचनात्मक है। उसमें विशदता है। भाषा परिष्कृत एवं प्रवाहपूर्ण है। उसमें यत्र तत्र शब्दों के असाधु प्रयोग भी प्राप्त हो जाते हैं। सुन्दर प्रकाश की उपर्युक्त विशेष-ताओं के दिग्दर्शनार्थ यहाँ उससे एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥६॥

अर्थ—'(समुद्र अपने ऊपर के कथन के प्रमाण में कहता है कि) ढोल गँवार शूद्र पशु (और) स्त्री ये सब ताड़ना के अधिकारी हैं (अर्थात् इनको नियंत्रण से लाभ होता है) ताड़न ताड़ना नियंत्रण, दंड 'लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद्बहवोगुणा:' चा० नी० २।१२ लाड़ प्यार से बहुत दोष और ताड़ना से बहुत गुण होता है, इसलिए पुत्र को और शिष्य को ताड़ना देना चाहिए। अधिकारी अधिकार योग्य, योग्यता प्राप्त पात्र (सुचित का, जिज्ञा का इ०)। साधारणत: अधिकारी किसी उत्तम या इष्ट वस्तु का होता है, दुखदाई वस्तु का नहीं। अतएव ताड़न के अधिकारी में या तो व्यंग प्रयोग समझें या ताड़ना को वरदान रूप मानें। विशेष अवस्थाओं में ताड़न को हितकर ही मानते 'जैसे ऊपर के चाणक्य के कथन से स्पष्ट है अथवा 'स्पेयर दी रॉड एण्ड स्पाइल दी चाइल्ड' बच्चे को न मारो तो वह बिगड़ जाय। इस चौपाई में भी ताड़ना का हित कर ही मानना संगत है यदि ऐसा न होता तो दुष्ट या पापी को ताड़ना करना अवश्य कहा जाता। परन्तु यहाँ पर पाँचो में किसी में दोष या पाप का आरोपण नहीं है।

विवेचन—समुद्र के कहने का भाव यह है कि ढोल आदि पाँचों ताड़न के अधिकारी हैं, मैं भी इन्हीं में से एक हूँ—इसलिए ताड़न का अधिकारी हूँ और ताड़ना पाकर मैं सीख गया। अब यह विचार करें कि समुद्र अपने को किसमें गिनाता है। यदि किसी में नहीं आता तो फिर इस चौपाई के कहने का तात्पर्य या प्रसंग ही क्या था। पीछे और आगे की चौपाइयों को देखते और वर्तमान प्रसंग का विचार करते हुए यही कहना पड़ता है कि समुद्र अपने को भी, ताड़ना का अधिकारी बतला रहा है। तभी पहले अपने को जल कहकर जड़ बतलाया (चौ० २) फिर उसी के अनुरूप 'मोहि सिख दीन्हीं' कहा (चौ० ५)। अतः जब समुद्र अपने को ताड़ना का अधिकारी बतलाता है तो ढोल आदि किस वर्ग में रखा जाय।

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि नारी को ताड़ना का अधिकारी कहने का क्या तात्पर्य है। ढोल के लिए स्पष्ट है कि ठोकने या पीटने से बजता है, पशु को भी मार कर ठीक मार्ग पर ले चलते हैं उसे समझा नहीं सकते। गँवार में ज्ञान की कमी होती है इस-लिए उसे ठीक समझा नहीं सकते, उसे भी दंड का भय दिखाते हैं। शूद्र को भी विद्या विहीन होने के कारण ठीक से समझा नहीं सकते, ताड़ना करते हैं। परन्तु स्त्री को ताड़ना का अधिकारी कैसे समझा जाय। यदि वह गँवार है तो गँवार वर्ग में आ गई और शूद्र है तो शूद्र वर्ग में परन्तु गँवार और शूद्र न होने पर भी अर्थात् ज्ञान और विद्या से युक्त भी ताड़ना की अधिकारी क्यों कही गई।

यदि यह कहें कि स्त्री जाति को नीच दृष्टि से देखा गया है और यही समझ कर उसे ताड़ना का अधिकारी कहा गया है (जैसे कि आज कल के कुछ समालोचक कहते हैं) तो यह ठीक नहीं, क्योंकि गोसाईं जी ने स्त्री जाति को नीच नहीं देखा है, सीता, पार्वती, अनुसूया तथा मंदोदरी के उदाहरण स्पष्ट हैं, यहाँ तक कि चाण्डाली शबरी को भी नीच नहीं समझा है। यदि यह कहें कि जैसे योगी या संन्यासी स्त्री को पतन का कारण समझते हैं और इसलिए उसको नीची दृष्टि से देखते हैं क्योंकि वह कामेच्छा को बढ़ानेवाली होने से साधन के मार्ग में रुकावट डालती है वैसे यहाँ भी समझा है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि तुलसीदास उन लोगों में नहीं कहे जा सकते। एक तो इनको भक्ति और ज्ञान का मार्ग अपनी स्त्री ही के उपदेश से मिला, दूसरे इनके मत से तो स्त्री भी बहुत श्रेष्ठ है यदि वह पतिव्रत धर्म पर रहे अथवा भगवान की भक्ति करे, जैसे अनुसूया या शबरी। फिर यदि यह कहा जाय कि स्त्री ज्ञान अथवा विद्या की अधिकारिणी नहीं है इसलिए वह भी गँवार या शूद्र की भाँति है तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि गोसाईं जी तो यह बतलाते हैं कि शंकर जी ने रामायण का ज्ञान तथा गूढ़ ज्ञान भी पार्वती जी को दिया। इसके अतिरिक्त परम गूढ़ ज्ञान जो वेदों से प्राप्त हुआ है और उपनिषद् ग्रन्थों में कहा गया है वह भी याज्ञवल्क्य ने गार्गी स्त्री से कहा है (बृहदारण्यक उपनिषद) अतएव परम ज्ञान की अधिकारी भी स्त्री हो सकती है। एक महाशय ने कहा कि यह वचन जड़ समुद्र का है अतएव जड़ मय है, परन्तु यह भी ठीक नहीं, क्योंकि अन्य वचन जड़मय नहीं हैं तो यही अकेले क्यों ऐसा माना जाय। यदि कोई यह कहे कि यों ही लिख दिया है, इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया होगा तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि एक तो गोसाईं जी इतने उच्चकोटि के कवि और विचारक थे कि इस प्रकार विचारे न लिखते और दूसरे प्रसंग लिख रहे हैं वह इतना गूढ़ और विचारपूर्ण है कि उसमें अविचार या असावधानी का स्थान नहीं।

पाद टिप्पणी—गँवार शब्द 'गाँव' से निकला है। गाँव और नगर की पृथकता से गँवार का अर्थ है जो नागर या चतुर न हो अथवा शिष्ट पढ़ा लिखा या जानकारी रखनेवाला न हो, जिसमें ज्ञान की कमी हो।

पाद टिप्पणी—शूद्र, चौथे वर्ण का, जो अध्ययन आदि में असमर्थ हो, विद्याहीन न कि केवल जाति का शूद्र। विद्याध्ययन का सामर्थ्य रखने वाला शूद्र नहीं कहा जायगा। (१।३।३३,३४,३५)। यही सिद्धान्त छांदोग्य उपनिषद् के चौथे प्रपाठक में भी पाया जाता है। जान श्रुति नामक शूद्र को ब्रह्म वेत्ता रैक ने ब्रह्म विद्या पढ़ाई। इसी प्रकार सत्य काम जाबाल को गौतम ऋषि ने उपनयन संस्कार करा के ब्रह्मचारी बनाया (४।४।५) फिर यही सिद्धान्त गीता में भगवान ने इस प्रकार बतलाया है कि चातुर्वर्ण्यमया सृष्टं गुण कर्म विभागशः' (४।१३) अर्थात् (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र) चारों वर्णों को मैंने गुण और कर्म के विभाग से बनाया है। अतएव क्रिया आदि से रहित सद्‌कर्मों से हीन जो है वही शूद्र है (दे० पृ० ३०६-१० द्विज)।

जो प्रसंग चल रहा है उस पर और पिछले की चौपाइयों पर विशेष ध्यान देने से यह अनुमान होता है कि ऊपर की चौपाई (१) में जिन पांच महाभूतों का वर्णन है उन्हीं के सड्गती विषयों का उल्लेख इस चौपाई में क्रमानुसार किया गया। अर्थात् (१) गगन (२) समीर (३) अनल (४) जल और (५) धरणी को जड़ बतला कर उन्हीं के उदाहरण में क्रमानुसार उन्हीं के सड्गत (१) ढोल (२) गँवार (३) शूद्र (४) पशु और (५) नारी का उल्लेख किया है। ढोल आकाशवत् है जैसा कि स्पष्ट है। उसमें पोलापन रहता है जो आकाश ही है। फिर जो आकाश का गुण है शब्द वही उसका भी है। आकाश को इस बात की चेतना नहीं है कि वह कहाँ और किस दशा में व्याप्त है। ढोलक भी चेतना शून्य है परन्तु ठोकने से बजता है। वायु को इस बात की चेतना नहीं है कि वह पर्वत पर टकरा रही है या कोमल सुगंधित पुष्प पर लग रही है। इसी प्रकार गँवार को भी यह ज्ञान नहीं रहता कि वह शिष्ट वचन बोलता है कि अशिष्ट अथवा कितने बलवान से भिड़ रहा है, उसे दंड के बल से सुधारना पड़ेगा। अनल यह विचार नहीं करता कि सूखा हुआ तिनका भस्म कर रहा है या राजभवन या किसी महात्मा की कुटी। इसी प्रकार शूद्र भी जड़वत् कार्य करता है, वह सांप को भी मार डालेगा और मनुष्य को भी। उसको ताड़ना द्वारा उचित मार्ग पर लाना होगा। जल का स्वभाव नीचे की ओर बहना है, वह यह विचार नहीं करता कि सूखी भूमि पर वह बह कर उसको सींचता है अथवा चींटियों पर बह कर उनको मार डालता है। इसी प्रकार पशु भी जड़वत् कार्य करता है वह दौड़ता भागेगा तो यह विचार नहीं करेगा कि खेती के पौधे रौंद रहा है अथवा किसी बच्चे को

पाद टिप्पणी—जगतगुरु आद्य शंकराचार्य ने कहा है 'नरकस्य द्वारं किमेकं नारी' अर्थात् (प्रश्न) नरक का एक द्वार क्या है, (उत्तर) नारी। इससे कुछ लोग अनुमान करते हैं कि स्त्री को नीचा देखा गया है और उसके प्रति अन्याय किया गया है। परन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म रूप से देखने पर इसमें स्त्री की प्रशंसा दिखलाई पड़ती है न कि निंदा। उक्त कथन का स्पष्ट भाव यह कि स्त्री साधना की ओर से खींचकर विषय वासना की ओर लानेवाली है जिससे वह नरक की ओर जायगा। इस पर शंका यह उठती है कि जैसे पुरुष को स्त्री विषयासक्त बना सकती है वैसे ही स्त्री को पुरुष भी बना सकता है, अतएव यदि पुरुष के लिए स्त्री नरक का द्वार है तो उसी तर्क से स्त्री के लिए पुरुष भी वही है। यह तर्क भ्रमपूर्ण है। भारतीय संस्कृति का ज्ञाता एक क्षण में यह समझ सकता है कि पुरुष इतना समर्थ नहीं माना गया है कि वह स्त्री के आकर्षण को रोक ले और नरक की ओर न जाय। बड़े से बड़े योगी, ऋषि तथा देवता भी स्त्री के रूप से मोहित होकर विचलित हो गए हैं, जैसे महामुनि विश्वामित्र, ब्रह्मर्षि नारद, इन्द्र तथा स्वयं कामदेव को भस्म करने वाले शंकर जी इत्यादि। परन्तु स्त्रियाँ इतनी समर्थ मानी गई हैं, कि वे विचलित नहीं हुई हैं। वह अपने धर्म पर अटल रही हैं, जैसे अनुसूया की परीक्षा करके त्रिदेव भी हार गए अतएव इस कथन से स्त्री की समर्थता प्रकट है।

कुचल रहा है। उसको मार कर ही भगाना होगा। इस क्रम से समुद्र पशु वर्ग मे आता है और वास्तव मे भी वह जीव जंतुओ मे भरा हुआ पशुमय ही है। पृथ्वी का स्वभाव सहिष्णुता या क्षमाशीलता का है ('क्षमया पृथ्वी सम '[1] वा० रा० १।१८ क्षमा में पृथ्वी के समान) चाहे उसके ऊपर मल मूत्र करें या फूल बरसावें। अतएव उसकी सहिष्णुता विचार रहित है। अब इससे संगत स्त्री का स्वभाव देखें। मनोवैज्ञानिक बतलाते हैं कि स्त्री भावपूर्ण होती है अर्थात् युक्ति बुद्धि प्रधान न होकर भाव प्रधान होती है। पाश्चात्य तत्व वेत्ता भी बतलाते हैं कि स्त्री मे 'राजन' (तर्क बुद्धि) की अपेक्षा 'इमोशन' (मनोभाव) अधिक होता है। इसी से स्त्री मे प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, सेवा अथवा घृणा, द्वेष, क्रोध, इत्यादि का आवेश अधिक होता है, कर्तव्या-कर्तव्य का विचार कम। दूसरे शब्दो मे हृदय या अंत करण की शक्ति अधिक होती है, मस्तिष्क की कम, अर्थात् बुद्धि से अधिक प्रबल मन होता है। अतएव स्त्री के मनोवेग को रोकना सरल कार्य नही है, क्योकि मन की वृत्तियाँ बुद्धि द्वारा रोकी जाती हैं। बुद्धि के कम प्रबल होने के कारण मन को रोकने के लिए विशेष नियत्रण दंड या ताडना की आवश्यकता होती है यदि मनोवृत्ति भक्ति या तपस्या की ओर हुई तो पुरुष की अपेक्षा शीघ्रतर मनोरथ सिद्ध कर लेगी। इसी से देखा जाता है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो ने बहुत कम तपस्या आदि करके फल प्राप्त कर लिया है, जैसे पार्वती जी। परन्तु यदि किसी परिस्थिति मे स्त्री की मनोवृत्ति को रोकना हुआ (जैसे कुमार्ग से फेरने के लिए) तो उसमे स्वय बौद्धिक या तार्किक शक्ति कम प्रबल होने से बाहरी नियंत्रण या ताडना का प्रयोग करना पड़ेगा, जैसे बच्चो की दशा है कि उसमें बुद्धि का पूर्ण विकास न होने से ताडना की आवश्यकता पडती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्धि और मन के आपेक्षिक बल सम्बन्ध के कारण स्त्री को ताडना का अधिकारी बतलाया है न कि उसको नीच अथवा विद्या आदि का अनधिकारी समझकर।

अतएव इस चौपाई के कथन का आधार बुद्धि का अभाव या दौर्बल्य है न कि नीच दृष्टि इत्यादि। ढोल आदि पाँचों मे एक अर्थात् ढोल अचेतन है, उसमे बुद्धि का पूर्णतया अभाव है, शेष चार चेतन हैं उनमें एक अर्थात् पशु मे विवेक नहीं होता जिससे बुद्धि नही चलती, दो अर्थात् शूद्र और गँवार में विवेक कम होता है उनकी बुद्धि का विकास कम रहता है, अन्तिम अर्थात् स्त्री मे विवेक या बुद्धि के अस्तित्व अथवा विकास मे सन्देह नही परन्तु मनोभाव अधिक प्रबल होने से बुद्धि का आरोपित बल कम होता है।'[2]

---

१ 'बुद्धि तु सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च' कठो० १।३।३ बुद्धि को सारथी (शरीर रूपी रथ हाँकने वाला) और मन को प्रग्रह (लगाम) समझो (जिससे इन्द्रिय रूपी घोड़े वश मे रखे जाते हैं)। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि मैं मन की वासनाओं को श्रेष्ठ बुद्धि से दबाता हूँ।

२ सुन्दर प्रकाश, प्र० म०, पृ० ३५०-५६।

उपर्युक्त व्याख्यान मे टीकाकार ने प्रथमत. सामान्य व्याख्या के अन्तर्गत 'ताड़ना' का औचित्य चाणक्य नीति के 'लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद्बहवोगुणा.' के पूर्वीय आप्त वचन एवं 'स्पेयर द राड ऐण्ड स्वायल द चाइल्ड' वाले पाश्चात्य प्रामाणिक वचन से सिद्ध किया है एवं विवेचन शीर्षक प्रकरण मे अत्यधिक भाव प्रवणा नारी की मर्यादा के रक्षणार्थ प्रताड़ना को अपेक्षित बताया है।

गवार एवं शूद्र का शब्दार्थ दर्शनीय है। शूद्र का अर्थ ज्ञापित करने के निमित्त भाष्यकार ने उस पर सामवेद, वृहदारण्यक उपनिषद् मे दिये गये तत्सम्बन्धी उल्लेखों का आधार लिया है। भाष्यकार की विद्वतापूर्ण विवेचना शैली प्रशंसनीय है। शैली की एक प्रमुख विशेषता प्रवाहमयता है। उसने मानस की इस विवादास्पद अर्द्धाली का औचित्यपूर्ण एवं मार्मिक व्याख्यान प्रस्तुत किया है। टीकाकार की अर्थ शैली गम्भीर एवं विशद तथा विवेचना प्रधान है। भाषा विशुद्ध खड़ी बोली गद्य है उसमे संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाष्य मे दिये गये संस्कृत के सटीक उद्धरण भी ध्यान देने योग्य हैं। भाष्यकार ने अंग्रेजी की प्रसिद्ध कहावतों को भी प्रयुक्त कर दिया है। भाषा के अन्तर्गत 'ठोरना' सदृश गवार शब्द वर्तमान है। उसमें 'गोस्वामी' के स्थान पर 'गोसाईं' जैसे असाधु शब्द—प्रयोग भी देखे जा सकते हैं।

देवदीपिका टीका :

टीकाकार · श्री देवनारायण द्विवेदी—

श्री देवनारायण जी द्विवेदी बनारस के निवासी टीकाकारो मे हैं। आपकी बाल्यावस्था से ही मानस मे अच्छी गति रही। आपने भार्गव भूषण प्रेस (बनारस) के अधिष्ठाता स्वर्गीय श्री शम्भूनाथ भार्गव पप्पा जी की प्रेरणावश 'मानस' की एक क्षेपक युक्त टीका लिखी है।[1] आपने तुलसीकृत कवितावली एवं विनयपत्रिका पर भी टीकाएँ लिखी हैं।'

देवदीपिका टीका—

श्री देवनारायण द्विवेदी कृत देवदीपिका टीका का प्रथम संस्करण संवत् २००६ विक्रमी भार्गव बुक डिपो वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ। यह टीका स्वयं श्री शम्भूनाथ भार्गव पप्पा जी की प्रेरणा से लिखी गई थी। इस टीका के अब तक कुल आठ संस्करण निकल चुके हैं। इसकी विशेष लोकप्रियता का कारण यह है कि यह एक अच्छी प्रकाशन संस्था से प्रकाशित हुई है एवं इसका मूल्य भी अधिक नहीं है। यह टीका व्याख्या की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखती है। इनमें 'मानस' के व्याख्याओं का वैसा ही सीधा एवं सामान्य अर्थ कर दिया गया है, जैसा कि 'मानस' की अन्य अक्षरार्थ मूलक टीकाओं में भी किया गया है। हाँ टीका मे अन्य प्रकार की मनोरंजक एवं आकर्षक सामग्रियाँ भी जोड़ दी गयी हैं। जैसे श्रीमद् गोस्वामी जी की जीवनी, राम शलाका प्रश्न, रामकलेवा, रामायण माहात्म्य, नवाह्नपारायण, मास पारायण, विश्राम स्थान,

१. देवदीपिका टीका, प्र० सं० की भूमिका।

पारायण विधि, लवकुश काड क्षेपक सहित, राजा सागर की कथा, सुलोचना सती, नारांतक कथा, अहिरावण कथा एवं १४ निरंगे आकर्षक चित्र। टीका की भूमिका में टीकाकार ने अपने आपको 'मानस' के क्षेपको से उदासीन बताया है,[1] तथापि इस टीका के अन्तर्गत क्षेपक कथाओ का प्राबल्य है। सम्भवतः यह कार्य प्रकाशकों के अनुरोध से किया गया हो, ताकि सामान्य जनता मे इस टीका की लोक प्रियता बढ़े।

टीका की शैली सुबोध है, भाषा खड़ी बोली गद्य है। उसमें संस्कृत तत्सम शब्दो के प्राबल्य के होते हुए भी ऋजुता वर्तमान है। इस टीका में एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे।
होत न भूतल भाउ भरत के। अचर सचर चर अचर भूत को॥'

दोहा— 'प्रेम अमिअ मन्दर विरह, भरत पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिन्धु रघुबीर॥'

अर्थ—'भरत जी की दशा देखकर सिद्ध साधक लोग प्रेम मग्न हो गये और उनके स्वाभाविक प्रेम की सराहना करने लगे कि यदि पृथिवी पर भरत का आविर्भाव न हुआ होता तो अचर को सचर अर्थात् चलने वाला या जड़ का चलने वाला या चेतन को तथा चर को अचर कौन करता ?

प्रेम अमृत है, वियोग ही मंदराचल पर्वत है और भरत ही गंभीर समुद्र हैं। कृपा सागर राम जी ने देवताओ और साधुओ के कल्याणार्थ भरत रूपी गहरे समुद्र को वियोग रूपी उपने मंदराचल से मथकर यह अमृत प्रकट किया है।'[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'मानस' के व्याख्यातव्य का सीधा सा अक्षरार्थ किया गया है। उक्त टीका की भाषा मे तत्सम शब्दो के प्रयोग का बाहुल्य है।

प्रकरण ४

समन्वयात्मक व्याख्या-प्रणाली प्रधान टीकाएँ

इस प्रकरण में 'मानस' की उन टीकाओं का उल्लेख किया जायगा, जिसमें व्यासों की कथावाचकी एवं आधुनिक व्याख्यान-पद्धति का सम्मिश्रण है।

तिमिरनाशक टीका

टीकाकार : लाला गार्ड और पंडित बच्चूलाल जी सूर

लाला गार्ड—आगरा निवासी लाला जी रेलवे विभाग के अन्तर्गत गार्ड के पद पर कार्य करते थे। ये सुप्रसिद्ध 'मानस' वक्ता श्री बच्चू सूर के संरक्षक एवं 'मानस'—गुरु थे।

---

१. देवदीपिका टीका, प्र० स० की भूमिका।
२. देवदीपिका टीका, अष्टम संस्करण (१९५६ ई०) पृ० ४८६, (अयोध्या कांड)।

५० बच्चू सूर—बच्चू सूर खीरी (लखीमपुर) जिले के जमुनिया नामक ग्राम के निवासी थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। ये बडे ही मेधावी एवं प्रज्ञाशील थे। बचपन मे ही इनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर श्री लाला गार्ड ने इन्हें अपने संरक्षण मे ले लिया और 'मानस' तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थो मे इनकी अभिरुचि उत्पन्न कराई। बच्चू जी सूर की स्मरण शक्ति बडी ही अद्भुत थी। शताधिक ग्रन्थो के वस्तु-तथ्य सदैव इनकी जिह्वा पर विराजमान रहा करते थे। ये कट्टर सनातनी थे। ये स्वयं एक उत्तम कोटि के आशु कवि थे। बच्चू सूर अपने समय के सर्वश्रेष्ठ रामायणियो म गिने जाते थे। उनकी वाणी का मानस श्रोताओ पर अचूक प्रभाव पडता था। लाग मन्त्र मुग्ध हो इनकी 'मानस' कथा का श्रवण करते थे। कोई १५–२० वर्ष हुए, इनका स्वर्गवास हो गया।

बच्चू सूर 'मानस' के सम्पूर्ण काडो की टीका लिखना चाहते थे, परन्तु वे अपने जीवन-काल मे अरण्य, किष्किधा एव सुन्दर काड की ही टीका पूर्ण कर पाये। 'मानस' टीका के अतिरिक्त उनके लिखे अन्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) सुदेश राग माला (प्रथम और द्वितीय भाग)।
(२) अमृत राग (प्रथम द्वितीय भाग)।
(३) मूर्ति पूजा मडन प्रकाश।
(४) स्त्री ज्ञान दर्पण।
(५) लाख बात की एक बात।
(६) आल्हा खड माडो की लडाई (प्रथम द्वितीय भाग)
(७) सनातन धर्म भजन माला (प्रथम द्वितीय भाग)।
(८) दिव्य विचार माला (प्रथम द्वितीय भाग)।
(९) कजली प्रकाश।
(१०) कजली विनोद।
(११) आल्ह खड ढेबा का विवाह असुरीगढ की लडाई।
(१२) सत्यवान सावित्री चरितामृत अर्थात् वट सावित्री व्रत महात्म्य।

तिमिरनाशक टीका

पडित बच्चू सूर एव श्री लाला गार्ड कृत 'मानस' के सुन्दर काड की तिमिर-नाशक टीका (प्रथम खड) का प्रकाशन सवत् २००० वि० मे एल० बी० प्रेस, सीतापुर से हुआ। इसमे सुन्दर काड के पूर्वार्द्ध की टीका की गयी है। तिमिरनाशक टीका 'व्यास' शैली पर आधृत है। इसमे टीकाकार ने 'मानस' का अर्थ व्यासो की चमत्कारिक एव कुतूहलोत्पादक अर्थ पद्धति पर किया है। टीकाकार द्वय ने तुलसी साहित्य एव अन्य सस्कृत ग्रन्थो तथा विविध प्रकार के सवैये कुण्डलियो एव भजनो का पुट रखते हुए व्याख्येयो का अर्थ स्पष्ट किया है। टीकाकार की भाषा खडी बोली हिन्दी है। भाषा अपरिष्कार एव अशुद्धिया यत्र-तत्र दृष्टिगत होती हैं। तिमिरनाशक टीका का एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल— 'बार-बार रघुवीर सँभारी । तरकेउ पवन तनय बलभारी ॥'

अर्थ—'उस सुन्दर पर्वत पर चढ़ कर बारम्बार रघुवीर (रामचन्द्र) का सुमिरण कर भारी बलवाले हनुमान ने कुलाच भारी अमूल्य पदार्थ पास में रखने वाला व्यक्ति जब किसी अन्य स्थान पर शीघ्र जाना चाहता है तो मेरा वह अमूल्य पदार्थ नीचे न गिर जाय इसलिए वह उसे बारम्बार संभालता है (अमूल्य वस्तु रघुनाथ जो अन्य स्थान लंका जाने व्यक्ति श्री हनुमान जी) अथवा श्री महावीर जी के पास अमूल्य वस्तु वही श्री रामचन्द्र जी की दी हुई मुद्रिका है । मुद्रिका को नीलमणि से जड़ी हुई होने के कारण अमूल्य नहीं कहा अमूल्य वह इससे है कि वह राम नाम से अंकित है । तो राम नाम से अंकित परन्तु वह मुदरी रहने वाली सुन्दर जानकी के हाथ की है जो केवट के उतराई के समय में रामचन्द्र को दी थी फिर लौटा कर रघुनाथ जी ने सीता जी को नहीं दी हम इस विषय में विस्तृत रूप से आगे लिखेंगे । सीताराम के प्राणरक्षा और धीरज देने के लिए दोही पदार्थ हैं । सीता के पास राम नाम और राम के पास सीता जी की दी हुई मुद्रिका । जैसा कि आगे लिखा है कि—

मूल— 'नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद यन्त्रित प्राण जाहिं केहि बाट ॥'

'किष्किधा काड के द्वितीय श्लोक में जानकी जी को रामनाम जीवन कहा है, वही मुदरी श्री रामचन्द्र जी की दी हुई हनुमान जी सीताजी को देने के लिए लङ्का लिये आ रहे हैं । कुलाच मारने के समय वह गिर न जाय इस कारण अन्त करण में रघुवीर को और बाहर मुदरी संभारी इस कारण बार-बार लिखा । अथवा जब बलवान अपने बल का स्मरण करता है तब शरीर रोमाञ्चित हो जाता है सो कवि का आशय है कि रोम-रोम से रघुनाथ जी का सुमिरण किया इस कारण बार-बार लिखा । अथवा जब भारी बलवाले हनुमान तड़के तब रघुनाथ जी ने इन्हें बार-बार संभाला । बारम्बार संभालने का कारण यह था कि ये जिस पर्वत पर पैर धरते थे वह पाताल को चला जाता था । वही पर्वत के साथ ये भी पाताल को न चले जायँ इस हेतु 'बार बार रघुवीर' कहने का भाव यह कि वीर ही वीर को सम्हालता है ।

सुन्दर भूधरन्त्वेकमासीदब्धि तटे कपि ।
ध्यात्वा पुन पुन रामं कौतुकादारुहोतम् ॥१॥
ततो गर्जंदलिरा बलेन महता युत ।

दण्डक

सिन्धु के समीप एक भूधर विशाल अति,
तासु पै फलाँगि चढ़यो वीर बलवान है ।
कर किलकिला देह कला धीर धका धल्यो,
शेष मन शंका आज संका को पयान है ॥

बाल धी घुमाय जनु हाय फहराय तन,
गाज्यों मुख बाय गिर सिंह के समान है।
गिरि पै विराज्यो गाज्यो भाज्यो दुख कौशन को,
लाज्यो लखि मारतंड ऐसो हनुमान है।"[1]

उपर्युक्त अर्द्धाली के व्याख्यान मे यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि व्यास शैली की व्याख्या मे प्रवीण टीकाकार द्वारा उपर्युक्त अर्द्धाली के संमारो एवं बार बार पदो के आधार पर अनेक प्रकार के कुतूहलोत्पादक अर्थों का विधान किया गया है। टीकाकार की भाषा मे शब्दो की वर्तनी एव व्याकरण सम्बन्धी भूलें मिलती हैं। उदाहरणार्थ— उपर्युक्त उद्धरण मे उन्होंने 'व्यक्ति' के लिए 'व्यक्ती' स्मरण के लिए 'सुमिरण' एवं 'धीरज' शब्दो का प्रयोग किया है। उन्होंने एक स्थान पर स्त्रीलिंग सम्बन्धकारक की विभक्ति 'की' के स्थान पर सम्बन्धकारक की 'के' का प्रयोग किया है—जैसे 'सीताराम के प्राण रक्षा'। प्राण-रक्षा जैसे स्त्रीलिंगवाची सामासिक शब्द के साथ 'के' सम्बन्ध कारक को न लगाकर स्त्रीलिंगवाची सम्बन्धकारक की विभक्ति 'की' लगानी चाहिए थी।

रामचरितमानस सटीक
टीकाकार . स्वामी अवधबिहारी दास नंगे परमहंस

स्वामी अवध बिहारीदास जी का जन्म विक्रम की २० वी शताब्दी के प्रारम मे गाजीपुरजिला अन्तर्गत चादपुर नामक ग्राम मे हुआ था। आप जाति से भूमिहार ब्राह्मण थे। आपकी शिक्षा केवल प्रारंभिक कक्षा तक ही हुई थी। आपका बाल्यावस्था से ही 'मानस' मे बडा अनुराग था। गाँव मे बडे बूढो से जाकर आप मानस का पाठ सुनते थे और स्वय उन्हें सुनाते थे। यदा-कदा 'मानस' का अर्थ भी किया करते थे। आपका विवाह हुआ और कुछ दिनो तक आपका गृहस्थ जीवन बडे सुख से बीता। आपको एक पुत्र लाभ भी हुआ था। इस गृह प्रपच मे लगे रहने पर भी आपकी निष्ठा अध्यात्म पथ पर निरतर बढती ही जा रही थी। एक बार जब आप प्रयाग गए, तो वहाँ के सुप्रसिद्ध संत श्री स्वामी बिहारी दास जी से आपका सतसंग हुआ और आप उनसे बहुत प्रभावित हो गए। इसके पश्चात् आपने घर आकर गृहस्थी का सारा भार अपनी पत्नी एवं पुत्र को सौप दिया और स्वयं प्रयाग आकर उपर्युक्त स्वामी जी के सान्निध्य मे रहने लगे। उन्ही स्वामी जी से आपने श्री राममत्र की दीक्षा ले ली। स्वामी जी ने इन्हे रामचरितमानस, भगवद्गीता एव विष्णु सहस्र नाम आदि ग्रन्थो का सम्यक् बोघ कराया। पाच वर्षों तक गुरु का सान्निध्य आपको प्राप्त रहा। इसके पश्चात् जब वे स्वर्गवासी हुए तब भी आप उनके निवास-स्थान बाघ गुफा त्रिवेणी संगम प्रयाग पर रहकर अपनी अध्यात्मिक साधना मे प्रवृत्त रहे। आपकी साधना एवं 'मानस' मर्मज्ञता

---

१. तिमिरनाशक टीका, प्र० सं०, पृ० २८-२९।

से प्रभावित भक्तों एवं श्रद्धालुओं की सदा भीड़ आपके आश्रम पर लगी रहती थी। स्वामी जी नंगे बदन रहा करते थे अतएव उन्हें लोग नंगे परम हंस कहते थे।

आप रामचरितमानस को अद्‌भुत और अपूर्व धर्मग्रन्थ मानते थे। आप उसकी साहित्यिकता के भी बड़े अच्छे मर्मज्ञ थे। आप अन्य मानस व्याख्याताओं की टीकाओं की जो आपको मानसकार के अभिप्राय के विरुद्ध जान पड़ती थीं बड़ी कड़ी आलोचना भी किया करते थे।

आपने पं० रामनरेश त्रिपाठी की टीका की बड़ी प्रबल आलोचना की थी। इसी प्रकार पंडित रामनगन त्रिपाठी की पुस्तक रामायण प्रदीप का तीव्र खंडन उन्होंने अपनी तीन रचनाओं—नास्तिक रामायण प्रदीप खंडन, रामायण प्रदीप (मीमांसा जल्पवाद) खंडन तथा छलवाद का उत्तर—में किया है।

आप 'मानस' के क्षेपकों के बड़े विरोधी थे। उन्होंने सारन गढ़ निवासी बाबू श्याम लाल गुप्त के क्षेपक युक्त मानस संस्करण 'बाल काड' का नया जन्म को दोषयुक्त ठहराया और उसके विरोध में 'बाल काड नया जन्म खण्डन' नामक एक पुस्तक लिख कर प्रकाशित करायी।

आपके सुयोग्य शिष्य श्री जयरामदास जी दीन थे। वे अच्छे 'मानस' ज्ञाता थे।

आपका साकेतवास सन् १९४६ ई० संवत् २००३ विक्रमी में हो गया।[1]

रामचरित मानस सटीक

स्वामी अवधविहारी दास कृत मानस-टीका का रचना-काल संवत् २००२ है।[2] इसका प्रकाशन पं० चन्द्रशेखर शास्त्री के द्वारा संवत् २००३ में हुआ था। यह 'मानस' के सप्तकाडों की एक क्षेपक विरहित टीका है। टीका का मूलोद्देश्य जैसा कि उसकी विज्ञप्ति में भी कहा गया है, 'मानस' के समस्त रूपक उपमा आदि अलंकारों के भावों एवं उसके व्याख्यातव्या के कर्ता कर्म क्रिया, विशेषण, विशेष्य की समुचित मीमांसा करते हुये विस्तृत व्याख्यान प्रस्तुत करना है। टीकाकार ने 'मानस' के भक्तिपरक एवं विवादास्पद व्याख्या स्थलों की भी विस्तृत टीका की है। टीका प्रधान रूपण खण्डन-मण्डन परक अर्थ प्रणाली से गर्भित है। टीकाकार ने अन्य टीकाकारों की व्याख्या विशेष को जो उसे दोष पूर्ण प्रतीत हुई, खंडित करके उसके स्थान पर अपने भावों को प्रतिष्ठित किया है। इस हेतु उसने उन स्थलों पर गंभीर एवं तर्क पूर्ण विवेचना भी प्रस्तुत की

---

१. स्वामी अवध विहारी दास नंगे परमहंस कृत मानससटीक प्र० सं० में प्रकाशित स्वामी जी की जीवनी के आधार पर।

२ रा० वि० मिश्र अधीक्षक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद के दि० ११-२-६८ के पत्र के आधार पर।

३ परमहंस जी कृत मानससटीक की रा० ब० स० भूमिका।

है। टीका मे यद्यपि प्राचीन टीकाकारो की वर्णभूत या प्रश्नोत्तर परक अर्थ प्रणाली का प्रयोग किया गया है एवं उन्हीं की भाँति अपने अर्थ अभिप्रायो की पुष्टि 'मानस' के ही पदों से की गयी है, तथापि इसमे मध्यकाल के 'मानस' के व्यासो की भाँति उसकी टीका मे अनेकार्थ, परम एवं चमत्कारवादी तत्त्वों को स्थान नहीं मिला है।

टीका की भाषा खड़ी बोली हिन्दी गद्य है। भाषा मे अपरिष्कार पाया जाता है। उसके वाक्य-विन्यास शिथिल एवं अशक्त हैं। कहीं-कहीं शब्दो के अशुद्ध रूपो का भी प्रयोग हो गया है। भाषा के व्याकरणिक दोष के सामान्यतया दृष्टिगत ही हो जाते हैं।

टीका के स्वरूप के परिचयार्थ एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

मूल—(दोहा)—'बाल चरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहु रंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग ॥४१॥

'चारो भाइयों के बालचरित बहुत और अनेक प्रकार हैं वही बहुत और कई रङ्ग के कमल हैं। कमल में मकरन्द है तो चरित मे मधुरता है। पुन भौंरे कमल से आनन्द ले रहे हैं तो राजा रानी भौंरे हैं बालचरित कमल से आनन्द ले रहे हैं। सूचित रहे कि मधुकर शब्द से दम्पत्ति का बोध है क्योंकि दो ही रसग्राही हैं। और जो यह अर्थ टीकाकारो ने लिखा है कि चारो भाइयो के बालचरित कमल हैं और राजा रानी का जो सुकृत है वही मधुकर है तो ऐसा अर्थ करने से कई दोष उपस्थित हो जाते हैं। प्रथम दोष तो यह है कि जैसे कमल भोग है और मधुकर भोक्ता है वैसे ही चारो भाइयो के बालचरित भोग हैं और राजा रानी भोक्ता हैं न कि राजा रानी के शुभ कर्म भोक्ता हैं जो कि कर्म भोक्ता हो ही नहो सकता है क्योंकि कर्मों का करनेवाला भोक्ता होता है प्रमाण 'करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई।।' अत सुकृत कर्म का भौंरा बनाना यह वेद के विरुद्ध है और नीति दोष है। यह पुन जब बालचरित कमल है तो बालचरित कमल का सुख अनुभव करनेवाला माता, पिता भ्रमर हैं। अब देखा जाय कि यह बालचरित का सुख राजा रानी को हो रहा है न कि उनके सुकृत कर्म को हो रहा है अत जब बालचरित कमल है तब राजा रानी भ्रमर हैं। पुन. सरित में जलपक्षी हैं तो कविता सरित मे सुकृती परिजन जलपक्षी हैं। और जो यह अर्थ टीककार लिखते हैं कि परिजन के सुकृत कर्म जल के पक्षी हैं तो ऐसा अर्थ करने से मार्गविरोध उपस्थित हो जाता है क्योकि जब (कर्ता, कर्म) अर्थात् कर्म और कर्म का करनेवाला दोऊ एक साथ लिखे हैं कि परिजन सुकृत, तब कर्म, कर्ता का विशेषण हो जायगा कि 'सुकृती परिजन' क्योंकि कर्म तो कर्ता का किया हुआ है। अत सुकृत के करता जो परिजन हैं वही जलपक्षी हैं। पुन सुकृत क्या है अच्छा कर्म है वह अच्छा कर्म किसका किया हुआ है—परिजनों का किया हुआ है। जब अच्छा कर्म परिजनो का

१. नंगे परम हंस कृत टीका की भूमिका।

किया हुआ है तब वह सुकृती परिजन कहे जायेंगे अब यदि कहिये कि मूल में ग्रन्थकार तो प्रथम परिजन शब्द लिखे हैं तब सुकृत शब्द लिखे हैं (उत्तर) मूलग्रन्थ अवरेव से बना हुआ है प्रथम पदच्छेद किया जायगा। कि 'सुकृत परिजन' तब भाषा किया जायगा कि 'सुकृत परिजन' अब यदि कहिये कि मूल मे सुकृती परिजन लिखा हो तब उसका भाषा करने में पदच्छेद कैसे होगा ? (उत्तर) पुन वही शब्द रखा जायगा जैसे रवि तमारि शब्द का उलथा सूर्य किया जाता है और सूर्य शब्द का उलथा नही किया जाता उसी तरह परिजन सुकृत का पदच्छेद होगा सुकृती परिजन का नहीं होगा। अतः परिजन सुकृत की शङ्का करनी वृथा है। पुन जैसे जलपक्षी जल मे कमलों से सुख उठाते हैं उसी तरह परिजन चारों भाइयों के बालचरित से सुख उठाते हैं (प्रमाण) 'बड़े मदे परिजन सुखदाईं'। अत परिजन की और जलपक्षी की सपना दी गई है। जल पक्षी को कमल के सम्बन्ध का (प्रमाण) 'सुर सर सुभग बनज बनचारी। डाबर योग कि हंस कुमारी॥' पुन यह प्रसङ्ग दोनो सरिताओं की समता का है दोनों की तद्रूपता दिखानी पड़ती है और 'बालचरित चहुँ बन्धु' यह दोहा मे भोग भोगता का भाव रक्खा गया है वह भाव बैठाना पड़ता है।[1]

उपर्युक्त दोहे की टीका करते हुए स्वामी जी ने कमल एवं 'चहुँ बन्धु' के चरित्र की समानरूपता का विश्लेषण किया है। इसके अनन्तर उन्होंने अन्य टीकाकारों के उन अर्थों का खण्डन किया है, जिनमे इस रूपक का युक्तियुक्त विश्लेषण नहीं हुआ और दोहे का अर्थ अभिप्राय अशुद्ध हो गया है। टीकाकार ने उक्त अर्द्धाली की व्याख्या उसका उचित अन्वय करते हुये उसम आये हुये कर्ता कर्म की उपयुक्त संगति बैठाते हुये की है।

टीकाकार ने टीका के अन्तर्गत भावों को समझाने के लिये संस्कृत टीकाओं की प्रश्नोत्तरवाली पद्धति अपनायी गयी है, जो 'मानस' के व्याख्य टीकाकारों की टीका-पद्धति की एक विशेषता है। 'मानस' की अर्द्धालियों को टीकाकार ने अपने कथन की प्रामाणिकता सिद्ध करने के निमित्त प्रचुर मात्रा में उद्धृत किया है।

उद्धरण मे आये हुये वाक्य बहुत लम्बे-लम्बे हैं इसलिये उनमे शैथिल्य आ गया है। उपर्युक्त उद्धरण में 'भोक्ता' के लिये 'भोग्ता' उल्था के लिये 'उलथा', 'भोगी' के लिये 'भोजक' जैसे असाधुरूपों का प्रयोग किया है।

विजया टीका :

टीकाकार : श्री विजयानन्द जी त्रिपाठी—

श्री विजयानन्द त्रिपाठी जन्म संवत् १६३८ की विजयादशमी को काशी के मदैनी मुहल्ले के अन्तर्गत शाण्डिल्य गोत्री सरयू पारीण ब्राह्मण के घर में हुआ था।

---

1. अवध बिहारी दास कृत मानसमटीक, प्र० सं०, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, (पृ० ६२-६३) बाल कांड।

आपने एफ० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी। बचपन से ही पिता की प्रेरणा से 'मानस' में आपकी गहन रुचि हो गई थी। वयस्क होने पर ब्रह्मो के सतसंग एवं अपने समय के सर्वश्रेष्ठ रामायणी प० रामकुमार जी एवं उनके शिष्य प० देवीपलट तिवारी आदि रामायणियों की कृपा से 'मानस' का मर्म आपने पा लिया था। आपने 'मानस' ग्रन्थ को लगान (अर्थ करने) की रीति प० रामकुमार जी से ही प्राप्त की थी। आपने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है।[1]

त्रिपाठी जी ने संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के विविध ग्रन्थों का खूब आलोडन किया था। उनका प्रवेश संस्कृत साहित्य में सम्यक् रूप से था। वे अद्वैतवादी विचार के दार्शनिक पंडित थे। मानस में उसी दर्शन की छाप आप मानते थे। आपने अपनी टीका के अर्थों का पुष्टिकरण विविध साहित्यिक धार्मिक ग्रंथों से किया है।

त्रिपाठी जी की अभिरुचि हठयोग में भी थी। उन्होंने योगाभ्यास सम्बन्धी साधना के नियमों को प० षडानन जी एवं नवीनानन्द जी उदासी से सीखा भी था। त्रिपाठी जी की 'मानस'-व्याख्यान सम्बन्धी मौलिक एवं विद्वत्तापूर्ण सूझ-बूझ के कारण उन्हें 'मानस' के रामायणियों एवं प्रेमियों ने 'मानस राजहंस' की उपाधि दी थी। उनकी मृत्यु १६ मार्च, सन् १९५५ ई० में हो गयी।

विजयानन्द जी का साहित्य—

मानस की सुप्रसिद्ध विजया टीका के अतिरिक्त उनके लिखे हुये ग्रन्थ निम्न हैं —

१ पतितपावन परिचय (सरयूपारी) ब्राह्मणों का संक्षिप्त इतिवृत्त। प्रकाशक— प० चन्द्र शेखर वाजपेयी, सीता प्रेस, स० १९६५।
२ कल्कि विजय (प्रकाशित), हितचिंतक प्रेस।
३ प्रबोध चन्द्रोदय का गद्यपद्यानुवाद (प्रकाशित) हि० चि० प्रेस।
४ मन्दिर प्रवेश मीमांसा, सूर्य प्रेस।
५ शतपञ्च चौपाई (प्रकाशित)—गीता प्रेस।
६ काशी केदार माहात्म्य (भाषानुवाद) (प्रकाशित)—अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय काशी।
७ श्री रामचरित मानस का सम्पादन—संवत् १९९३, लीडर प्रेस से प्रकाशित।
८ मानस प्रसंग—प्रकाशक मानस संघ, सतना।
९ समुझाई—प्रकाशक मानस संघ, सतना।
१० मानस व्याकरण—(अप्रकाशित)।

---

१ मानसराजहंस की प्रकाशित जीवनी विजयी टीका, प्र० सं०, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

११ वीरसिंह नाटक और शत भानु जय हनुमत्स्तोत्र---(अप्रकाशित)।
१२ त्रिपुर रहस्य के ज्ञान खंड का हिन्दी अनुवाद।
१३. भक्ति मुक्तावली (लिखित)।

उपर्युक्त ग्रंथो की तालिका देखने से ज्ञात होता है कि पं० विजयानंद जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कुशल टीकाकार के अतिरिक्त अच्छे अनुवादक, नाटककार, संपादक, वैयाकरण एवं कवि भी थे।

विजया टीका

विजया टीका की रचना संवत् २०१० वि० मे पूर्ण हो चुकी थी।[1] इसका प्रकाशन वाराणसी के सुप्रसिद्ध प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास के द्वारा संवत् २०११ वि० मे हुआ। यह टीका तीन खंडो में प्रकाशित है। टीका में साहित्यिक एवं 'व्यास-प्रणाली' का सुन्दर समन्वय है। इसमे दोनों प्रणालियों की विशेषताएँ मिलती हैं। टीका दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवाद से प्रभावित है। कहीं-कहीं पर यह हठयोग से भी प्रभावित है। टीका क्षेपकों से विहीन है। पाठ विशुद्ध है।

टीकाकार ने 'मानस' के व्यासो एवं रामायणियों से 'मानस' का अध्ययन अवश्य किया है उसके अर्थ लगाने की परंपरा उनसे ही सीखी है, परन्तु वह उनकी अतिरंजनावादी चमत्कारिक अर्थ-शैली से पूर्णतया परे रहा है। इस सम्बन्ध में उसका निम्नांकित कथन ध्यान देने योग्य है :---

'पाठक इसमें किसी चमत्कारिक अर्थ अद्भुत भाव या विभिन्न कथानकों की आशा न करें। इसमें विशेषता इतनी ही है कि ग्रन्थ से ग्रन्थ लगाने की चेष्टा की गयी है। जहाँ आवश्यकता पड़ी है, वहाँ अन्य ग्रन्थों से भी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, पूज्यपाद ग्रन्थकार के अनुसरण का भी प्रयत्न किया गया है। अर्थ करने मे वाक्यो की सगति का विशेष ध्यान रक्खा गया है।'[2]

विजया टीका के रचयिता ने रामचरितमानस के भावों की टीका करने के निमित्त ग्रन्थ से ही ग्रन्थार्थ को प्रकाशित करने की 'मानस' की प्राचीन टीकाकारो की अर्थ प्रणाली का सहारा लिया है। परन्तु उसने इन भावों को बड़ी सुव्यवस्था के साथ अपनी टीका मे प्रस्तुत किया है। यदि आवश्यकता हुई है तो टीकाकार ने प्रथमत. 'मानस' मूल का विशद अक्षरार्थ दिया है। इसके उपरांत पदो की विस्तृत व्याख्या भी टीका के विशेष शीर्षक के अन्तर्गत दी है। इसके अनन्तर व्याख्यातव्य मे आये अलंकारों, छन्दों पर भी पृथक् रूप से विचार किया है। यदि उसे कहीं अपेक्षित प्रतीत हुआ है तो उसने व्याख्यातव्य के क्लिष्ट शब्दों का अन्वय, शब्दार्थ एवं उनकी व्युत्पत्ति भी दी है।

---

१ पं० विजयानन्द जी के सुपुत्र पं० सहनन्दन त्रिपाठी के दिनांक १३-३-१९६४ ई० के पत्र के आधार पर।

२. विजयाटीका प्र० सं०, की प्रस्तावना।

उसकी व्याख्या-पद्धति बडी ही स्पष्ट एवं सुबोध है। टीका को भाषा परिष्कृत संस्कृत तत्सम शब्द प्रधान खडी बोली गद्य है। टीका की भाषा पर रामचरितमानस की भाषा का भी प्रभाव परिलक्षित होता है मानस के बहुत से शब्दों को टीकाकार ने ज्यों का त्यों अपनी टीका मे रख दिया है जैसा कि कथावाचक व्यास अपनी व्याख्याओ में अक्सर किया करते हैं। विजया टीका का एक उद्धरण अपनी इन विशेषताओ को प्रत्यक्ष कर देने मे समर्थ है—

मूल—'मंगल करनि कलिमल हरनि, तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूट कविता सरित की ज्यों, सरति पावन पाय की।।
प्रभु सुजस संगति भनिति भल, होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की, सुमिरत सुहावनि पावनी।।

अर्थ—'तुलसीदास जी कहते हैं कि राम की कथा, कल्याण करने वाली, और कलियुग के पापों को दूर करने वाली है। कविता सरिता की टेढ़ी गति, पवित्र जल वाली गंगा की गति के समान है। प्रभु के सुयश के साथ यह कविता भली और सुजन मन भावनी होगी। महादेव जी के अंग के साथ मसान का राख भी स्मरण करने में सुहावनी और पवित्र है।

व्याख्या—कविता सरिता की गति टेढी है, पर रामयश रूपी जल से भरी है। गंगा की भाँति सब लोग पवित्रता पर ध्यान देते हैं, काशी की गंगा की भाँति टेढी गति की अधिक शोभा है। मुझसे कविता करते नहीं बना, उसकी गति टेढी हो गयी पर राम यश से भरी है अत सुजन मन भावनी है (इनसे गुण दोष कहा) अब कहते हैं कि रामयश शंकर का शरीर है मेरी कविता मसान की राख है, भयावनी और अपावनी है, सो शिव जी के शरीर के सम्बन्ध से सुहावनी और पावनी हो गयी। इससे अलंकृता कहा क्योंकि विभूति शिवजी का अलंकार है, भावार्थ यह है कि राम यश के साथ होने से मेरे शब्दो मे विस्ताकर्षकता अर्थ मे माधुर्य आ जायगा, दोष तुच्छ हो जायेंगे, और सुहावनी पावनी होकर कविता अलकृत भी हो जायगी। क्रूर का ही प्राकृतरूप कूर है, गति के साहचर्य से टेढा माना गया।

मंगलि करणि से मंगल भवन कहा कलि मल हरणि से अमगल हारी कहा, 'कथा रघुनाथ की' कह कर 'पुराण श्रुति सार' कहा, पावन पाय को कह कर 'अति पावन कहो' 'सुजन मन भावनी' से उमा महेश प्रिय कहा सा जो कुछ (६) गुण नाम में कहे थे वे शब्दान्तर से मेरी कविता सरिता मे आ गए।

पा०—यह हरिगीतिका छंद है, २८ मात्रा का एक पाद होता है, १६ पर यति होती है, अन्त मे लघु और गुरु होता है, किसी चौकल मे जगण न पड़ना चाहिए।

---

१. विजया टीका, प्र० सं०, पृ० ३१ (बाल काड)।

उपर्युक्त छंद की विस्तृत टीका करते हुए टीकाकार ने मानस-काव्य के गंगा सरिता रूपक का विशद विश्लेषण किया है। उसने रूपक के प्रस्तुत अप्रस्तुत पक्ष के साम्य को बडी बारीकी से प्रस्तुत किया है। टीकाकार ने अपने उक्त-व्याख्यान को 'मानस' के ही उद्धरणो के पुट से विशेष रूप से प्रमाणित किया है।

अन्त मे मानस व्यास विजयानन्द जी ने अन्य 'मानस' व्यासों की भाँति रूपक छंद के एक एक पद से मानस कथा की अन्यत्र कही गयी विशेषताओ का निर्देश किया है जैसे *कथा 'मंगल करणि' का अभिप्राय उन्होंने कथा की पूर्व वर्णित विशेषता 'मगल* भव न अमंगल हारी' बताया है। इसी प्रकार उद्धरण मे अन्य विशेषणो का भी अभिप्राय समझाया गया है। अन्तत हरिगीतिका छंद की परिभाषा दी गयी है।

टीका की भाषा सामान्यत संस्कृत प्रधान है। परन्तु उसकी व्याख्या करते हुए टीकाकार ने 'मानस' मे प्रयुक्त शब्दो को ज्यो-त्यो रख दिया है। उक्त उद्धरण मे आये हुए मन-भावनी, 'मसान', भयावनी, अपावनी, सुहावनी प्रभृति शब्द इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

सिद्धान्तभाष्य :

टीकाकार : श्री कान्त शरण जी

श्री श्रीकान्त शरण जी का जन्म आषाढ शुक्ल दो सवत् १९५२ को प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत त्रिजहडी नामक ग्राम मे हुआ था। इसके पिता का नाम राम अवतार मिश्र था। इन्हे प्रारंभिक शिक्षा गाँव के पास ही के एक प्रारंभिक विद्यालय मे मिली थी। बाल्यावस्था मे ही इनके पिता का देहावसान हो गया। अतएव गृहस्थी का भार इनके ऊपर पडा। इनका विवाह भी हो चुका था। जीविकोपार्जनार्थ ये कलकत्ते चले गये। और वहीं पर कुछ दिनों तक एक पूजीपति के यहाँ 'निलक' के पद पर कार्य किया। कलकत्ते मे ये नित्यश 'मानस' की कथा सुनने जाया करते थे। धीरे-धीरे मानस मे इन्हें तीव्र अनुराग हो गया। इसी बीच इनकी पत्नी का भी देहान्त हो गया। अब इनका मन संसार से बिल्कुल खिंच गया और अयोध्या मे आकर ये विरजत सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये। इन्होंने गोलाघाट मे तत्कालीन सुप्रसिद्ध रसिक संत श्री स्वामी राम वल्लभाशरण (गोलाघाट) से गुरु मत्र लिया। इसके पश्चात् गुरु आज्ञा ले आप चित्रकूट चले गए और वहाँ १२ वर्ष का कल्पवास किया। इस बीच आपने करुणा-सिन्धु जी एवं बैजनाथ जी को 'मानस' की टीकाओं का खूब आलोडन-विलोडन किया। वहाँ आप 'मानस' की कथा भी संतों को सुनाया करते थे। परन्तु चित्रकूट की जलवायु का प्रभाव आपको अनुकूल न पड़ी आपका स्वास्थ्य दिनो दिन गिरने लगा अतएव आप पुनः अयोध्या आ गये। कालान्तर मे सद्गुरु सदन के निकट ही सद्गुरु कुटी का निर्माण करके स्थायी रूप मे यहाँ रहने लगे। आपने तुलसीदास के साहित्य का सम्यक् रीत्या अनुशीलन किया साथ ही साथ स्वाध्याय के बल पर संस्कृत व्याकरण का भी साधारण ज्ञान प्राप्त

कर लिया। संस्कृत का बोध हो जाने पर आपने भागवत पुराण, विष्णु पुराण, पद्म-पुराण, महाभारतादि संस्कृत के महान ग्रन्थो का अध्ययन किया।

इसी बीच आप जन सामान्य (विशेषत बिहार प्रान्त की जनता) मे बराबर मानस को कथायें कहते थे एवं मानस प्रवचन किया करते थे। धीरे-धीरे आपकी ख्याति 'मानस' के सुप्रसिद्ध वक्ता के रूप मे हो गयी। आप तुलसीसाहित्य के परम सेवी महात्मा हैं। आपने तुलसी साहित्य के समस्त (बारहो) ग्रन्थो पर विशद टीकाएं लिखी हैं। आप अपने को करुणासिन्धु जी की टीका से प्रभावित मानते हैं। इस समय आपकी मान्यता तुलसी साहित्य के भारत-प्रसिद्ध मर्मज्ञों मे है। आपने अपने सम्प्रदाय (रामभक्ति के शृ गारिक सम्प्रदाय) से सम्बन्धित दो ग्रंथो—मंजुरमाष्टयाम एवं प्रपत्ति रहस्य की भी रचना की है। आपकी समस्त रचनाओ मे मानस का सिद्धान्त भाष्य सर्वोत्तम है।

सिद्धान्त भाष्य

सिद्धान्त भाष्य मानस के टीकासाहित्य मे मानसपीयूष के पश्चात् विशालतम टीका ग्रन्थ है। इस भाष्य का प्रकाशन पुस्तक भडार प्रकाशन संस्था (पटना) मे संवत् २०१५-१६ वि० मे हुआ। इसका रचना काल सं० २०१४ विक्रमी है।[1] स्वयं श्रीकान्त शरण जी ने इस टीका को मानस का भाष्य कहा है।[2] इस टीका के भाष्यत्व पर हमने स्वतंत्र ढंग से अगले अध्याय मे यथा स्थान विचार किया है।

सिद्धान्त भाष्य टीका चार खंडो मे प्रकाशित है। प्रथम खंड मे बाल काड द्वितीय खड मे अयोध्या, तृतीय खंड मे अरण्य, किष्किधा एव सुन्दर काड तथा चतुर्थ खंड में लंका एवं उत्तर काडो को टीकाएं मुद्रित हैं। टीकाकार ने ग्रंथारंभ मे एक विस्तृत भूमिका लिखकर अपने 'विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त समेत' भाष्य के आध्यात्मिक उद्देश्य पर प्रकाश डाला है।

टीकाकार की व्याख्या आध्यात्मिक स्फुरणो से युक्त होती हुई भी विशिष्टाद्वैत एवं रामानन्दीय सम्प्रदाय से प्रबल रूप से प्रभावित होती हुई भी साहित्यिकता से युक्त है। इस तथ्य पर हम अगले खण्ड के अंतर्गत दार्शनिक-साहित्यिक-टीकाओ के प्रकरणो मे सम्यक् रीति से विचार करेंगे।

टीकाकार ने व्याख्येय स्थलो के विषम शब्दो का शब्दार्थ दिया है, इसके अनन्तर उनका अक्षरार्थ तदनन्तर उन पदो का विस्तृत व्याख्यान किया है। उक्त स्थलो मे आने वाली सापेक्षिक महत्व की शंकाओ को भी टीकाकार ने स्वयं उठाया है और उनका समाधान किया है। उसने दार्शनिक एवं भक्ति की गूढ बातो पर तो विस्तृत रीति से विचार किया है, साथ ही व्याख्येय मे प्राप्त होने वाले काव्यशास्त्रीय अगो, रस अलंकार एवं छन्दादि का भी निर्देश यथा-अपेक्षित रूप मे किया है। टीकाकार ने विविध

---

१. सिद्धान्त भाष्य उत्तर कांड की पुष्पिका।
२. वही, भूमिका।

संस्कृत ग्रन्थों की सूक्तियों एवं उद्धरणों से अपनी व्याख्या को पुष्ट किया है। टीका का पाठ विशुद्ध है। वह क्षेपक रहित है।

यद्यपि भाष्य पर उसके पूर्ववर्ती टीकाकारों के भावों की स्पष्ट छाप है, जिसे स्वयं भाष्यकार भी स्वीकार करता है, परन्तु उसने उन भावों को सजोकर उन्हें व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से अपनी व्याख्या में समाहित कर लिया है। उसकी व्याख्या की रीति इतनी मौलिक है कि सामान्य पाठक को यह आभास ही नहीं हो सकता है कि यहाँ अन्य टीकाकारों के भावों की भी झलक है। जो हो, श्रीकान्तशरण जी ने सिद्धान्त भाष्य की रचना करके एक विशद एवं पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ 'मानस' के टीका साहित्य को दिया है।

सिद्धान्त भाष्य की भाषा खड़ी बोली गद्य है। यद्यपि टीकाकार ने अपनी टीका की भाषा को भरपूर परिष्कृत एवं विशुद्ध करने का प्रयास किया है तथापि उसमें कहीं-कहीं व्याकरणिक दोष, वाक्य विन्यास में शैथिल्य एवं ग्राम्य शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

टीकाकार की शैली प्रसाद गुण पूर्ण एवं विशद है। उसकी टीका शैली व्यासों की अर्थ शैली से भी प्रभावित है।

यहाँ हम सिद्धांत भाष्य की सामान्य विशेषताओं का परिचायक एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूल—'तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवध पति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करई बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।

अर्थ—'तृण (तिनके की ओट (परदा) रखकर और अपने परम स्नेही अवधपति श्री राम जी का स्मरण करके वैदेही श्री जानकी जी कहने लगी ॥६॥ हे दशान ! सुन क्या जुगनू के प्रकाश से कभी भी कमलिनी विकसित होती खिलती है ? ॥७॥ श्री जानकी जी कहती हैं कि अरे दुष्ट ऐसा मन में समझ। तुझे रघुवीर श्री रामजी के बाणों की स्मृति नहीं है ॥८॥

विशेष—(१) तृन धरि ओट—'श्री जानकी जी ने तृण का परदा करके रावण से बातें की, सम्मुख नहीं, यह मर्यादा की रक्षा है, यथा—'तृणमन्तरतः कृत्वा तमुवाच निशाचरम्।' (महा० वन० २८१।१७) श्री सीता जी उसी तरह पर पुरुष की ओर दृष्टि नहीं करतीं, जैसे श्रीराम जी पर स्त्री की ओर नहीं देखते, यथा—'मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नर हेरी।' (बा० दो० २३०) 'न रामः परदारांश्च चक्षुर्भ्यामपि पश्यति॥' (वाल्मी० २।७२।४८), वैदेही और अवधपति —'का भाव यह है—(क) अपने मायके और पतिकुल के महत्व को आगे करके बोली, यथा—अकार्यं न मया कार्यं मे कपल्या विगर्हितम्॥ कुलं संप्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया। एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी॥' (वाल्मी० ५।२१।४-५) अर्थात् मैं सती हूँ, मेरा जन्म

बड़े कुल मे और व्याह पवित्र कुल मे हुआ है। अत अकार्य मुझसे नही हो सकता। (ख) रावण ने अब ऐश्वर्य का लोभ दिखाया है उसके प्रति भी तृण-ओट द्वारा लक्षित किया कि अपने उभय कुल के ऐश्वर्य के आगे मैं तुम्हारे ऐश्वर्य को तृणवत् मानती हूँ।

सुमिरि अवध पति परम सनेही—का भाव—(क) तू लंका मात्र का ऐश्वर्य दिखाता है, पर मेरे स्वामी अवधपति हैं, जो चक्रवर्ति-पाद है। स्नेह दिखाता है, मेरे स्वामी परम स्नेही हैं। अत उनमे तुममे बडा अन्तर है। वही आगे कहती हैं यथा—सुनु दशमुख खद्योत प्रकासा।—' (ख) वे अवध के आश्रित मात्र के रक्षक हैं और मेरे तो परम स्नेही ही हैं। अत मेरी रक्षा अवश्य करेंगे। (ग) भक्त जो कुछ कहते हैं अपने इष्ट के बल पर ही यथा—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरि जहि दीन्ह असीस' (बा० नो० ७०) करि प्रनाम बोले भरत सुनिरिसीय रघुराज' (अ० दो० २९७) वैसे ही यहाँ भी श्री जानकी जी इष्ट के बल पर हो कहती हैं। कहति बंदेही—का भाव यह कि न बोलने से स्वीकृति समझी जायगी। कहा भी है—'मौनंसम्मति लक्षणम्' यथा—'चलेउ सुमन्तराय रथ जानो।' (अ० दो० ३८)।

सुनु दसमुख खद्योत—'रावण ने कहा था—एक बार बिलोकु मम ओरा। उसका उत्तर श्री जानकी जी यों देती हैं कि तू जुगनू के समान है, तेरे प्रलोभन रूप प्रकाश मे मेरे नेत्र कमल नही खिल सकते, किन्तु भानु रूप भानुकुल भानु को देखकर ही वे प्रफुल्लित होगे। पुन जैसे जुगनू का प्रकाश सूर्योदय से पहले ही रहता है, वैसे ही तेरी दुष्टता स्वामी श्रीराम जी के आने तक ही है। जैसे कमलिनी सूर्य की ही अनुवर्तिनी है, वैसे ही मैं श्रीराम जी की ही अनन्या पत्नी हूँ यथा—अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।' (वाल्मी० ५।२१।१।१५) तथा उत्तम के अस बस मन माही। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाही॥ (अर० दो० ४)।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा, क्योंकि यहां कमलिनी कथन अप्रस्तुत है, इसके द्वारा श्री सीताजी ने अपनी वृत्ति कही है।

(३) अस मन समुझु कहति जानकी।—तू ऐसा मन मे समझ ले कि मैं (रावण) खद्योत के समान हूँ और श्रीराम भानु हैं, उनसे और तुझ मे इतना अन्तर है। पुन यह भाव है कि सूर्य के प्रति कमलिनी जैसा मेरा श्रीराम जी मे भाव है। जुगनू कम प्रकाश वालों की सीमा हैं और भानु परिपूर्ण प्रकाश वालो की—अस मन समुझु।

(४) खल सुधि नहिं—'रघुवीर के बाण दुष्टो के नाशकारक हैं—यथा—मुनि पालक खल सालक बालक।' हम छत्री—तुम से खल भ्रम खोजत फिरही॥ (अर० दो० १८) उनके बाणो की क्या सुधि नहीं है? शंका—अभी तुमने श्रीराम के बाण का प्रभाव कहाँ देखा सुना जो सुधि करे।

समाधान—जयन्त ने, जिसने बिना फर के बाण से भी तीनो लोको मे शरण नही पाई थी, उसे इसने सुना ही होगा (पुन शूर्पणखा से सुना है यथा—परम घोर धन्वी गुन नाना।—खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन मंह सकल कटक उन्ह मारा॥

(अर० दो० २१) मारीच से भी उसने सुना है यथा—बिनु फरसर रघुपति मोहि मारा ।। सत जोजन आयउ छन माहो । (आ० दो० २४) इसी से डर कर यती का वेष बना सीता हरण के लिये आया था । श्री सीताजी उन्हीं बातो का स्मरण कराती हैं ।'[1]

टीकाकार ने उपर्युक्त अर्द्धालियो का प्रथमत: अक्षरार्थ दिया । इसके अन्तर उसके प्रत्येक चरण की सुविस्तृत व्याख्या दी है, उनमे कुछ पदो के विस्तृत भाव दिये हैं। इन भावों की पुष्टि 'मानस' की पंक्तियों के अतिरिक्त बालमीकि रामायण एवं महाभारत आदि ग्रंथो से की गयी है । अन्त मे शंका उठाकर उसका समाधान भी दिया गया है ।

उक्त व्याख्यान मे व्यासो की विश्लेषणात्मक शैली प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होता है । भाषा के अन्तर्गत व्याकरणिक दोष वर्तमान है—उदाहरण के लिये उक्त उद्धरण के समाधान शीर्षक प्रकरण की प्रथम पंक्ति मे जयन्त के साथ 'ने' कर्ता कारक का चिन्ह व्यर्थ म ही जोडा गया है, साथ ही इसका समस्त वाक्य-विन्यास शब्दो के स्थापन के अभाव म शिथिल पड गया है । इस प्रकार भाषा मे अस्पष्टता भी आ गयी है—उक्त वाक्य के शैथिल्य को दूर करने के लिये उसे बहुत कुछ इस प्रकार से पुन व्यवस्थित किया जा सकता है—'बिना फर के रामबाण द्वारा संधानित होने पर जयन्त ने तीनो लोकों मे शरण नही पाई थी, इसे रावण ने सुना ही होगा ।' इस प्रकार जयन्त के साथ 'ने' का प्रयोग भी ठीक लगता है और वाक्य मे भी चुस्ती एवं स्पष्टता आ गयी है ।

प्रकरण ५

'मानस' की अन्य टीकाएँ

इनके अतिरिक्त 'मानस' के कुछ और टीका-ग्रंथों का भी पता चला है, जिनका सांकेतिक परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

१—'मानस' सटीक—

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से ज्ञात हुआ कि बलरामपुर (गोंडा) के निवासी श्री गुरुदेव लाल ने संवत् १७५७ विक्रमी मे मानस की एक टीका लिखी थी। परन्तु यह टीका सम्प्रति अप्राप्त है । गोंडा जाने पर भी इसके विषय में हमें कोई सामग्री नहीं मिली ।

२—मानस सटीक—

रीवा नरेश राजा रघुराज सिंह ने अयोध्या के सुप्रसिद्ध रसिक सन्त श्रीराम प्रसाद बिन्दुकाचार्य को मानस की एक टीका का प्रणेता भी बताया है ।[2] परन्तु यह टीका अनुपलब्ध है ।

१—सिद्धान्त भाष्य, प्र० सं०, पृ० ६६११-१२ ।

२ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, प्र० सं०, पृ० ४१६ ।

३—अयोध्या के हारचरण दास नामक एक सन्त ने 'मानस की टीका लिखी थी। हम यह टीका प्राप्त न हो सकी। इसका समय सवत् १८३६ १८६६ वि० है।[1]

३—तुलसो तत्व प्रकाश एव तुलसी भाव प्रकाश नामक दो टीकात्मक ग्रंथो के रचयिता स्वर्गीय श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु है। ये दोनो टीकाएँ प्रकाशित हैं।

५— मानस के धम रथ एव 'सखी गीता इन दो प्रकरणों पर प० रामकुमार दास रामायणी ने दो विस्तृत टीकाओ की रचना की है। ये दोनों टीकाए प्रकाशित हैं।

६— मानस प्रबोधिनी—वाराणसी के श्री नारायण कात व्यास ने मानस के परशुराम सवाद पर एक टीका लिखी है जो प्रकाशित है।

७—रामायण अय द्वादसी—मारगगढ (मध्य प्रदेश) के निवासी श्री विजय शकर श्यामलाल के यहा मानस की एक टीका की प्राप्ति की सूचना मिली है जिसमे मानस के प्रत्येक व्याख्येय के बारह अथ किये हैं।

८—स्वर्गीय राममुदर दास रामायणी (निवासी मानिक्पुर कडा प्रयाग) ने मानस के प्रत्येक व्याख्येय की नौ अर्थों से युक्त एक टीका लिखी है। यह टीका अप्रकाशित है।

६— मानस के राम राज्य, 'राम गीता तथा अहिल्योद्धार प्रकरणो पर प्रख्यात मानस व्यास श्री बिदु जी (प्रमधाम, वृदावन) ने पृथक-पृथक टीकाएँ लिखी हैं। ये सभी प्रकाशित हैं।

१०—शतपच चौपाई (तत्व प्रदर्शनी टीका सहित)—इसके रचयिता श्री हरगोविन्द तिवारी हैं। यह प्रकाशित है।

११—श्री विजयानन्द त्रिपाठी के शिष्य स्वर्गीय श्री बाकेराम (वारणसी) जी ने मानस के सुन्दर काड की टीका लिखी है, जो अप्रकाशित है। यह टीका स्वय लेखक के पास है।

१२—बम्बई मे प्रकाशित रामतीर्थ नामक मासिक पत्र के सपादक योगिराज उमेशचद्र जी मानस की टीका धारावाहिक रूप से अपने पत्र म प्रकाशित कर रहे हैं। अभी बालकाड की टीका चल रही है।

१३— मानस की एक हस्तलिखित योगपरक टीका श्री महेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव विन्ध्यवासिनी नगर, गोरखपुर के यहा प्राप्य है।

१४—श्रीकान्त शरण ने सिद्धात तिलक नामक मानस के सातो काडो का टीका लिखी है। आपने ही नाम-वदना प्रकरण (मानस बालकाण्ड) की एक सुविस्तृत टीका लिखी है। ये दोनो टीकाएँ प्रकाशित हैं।

१५—रामचरित मानस बोध नामक एक टीकात्मक ग्रन्थ की रचना श्री मधु कवि नामक सज्जन ने की है। टीका अप्रकाशित है।[2]

---

१ राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४१६

२ हस्तलिखित पोथियो का विवरण, चौथा खड, सम्पादक-नलिन विलोचन शर्मा, पृ२६।

१६—मानसदीपिकाकार बाबा रघुनाथदास ने विश्राम सागर नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें 'मानस' के तत्वार्थ का निरूपण बड़े ही सुष्ठ ढंग से किया है। यह ग्रन्थ संतों में बड़ा ही लोकप्रिय है।

१७—महंत गंगादास (छोटा छत्ता जगन्नाथ पुरी, उड़ीसा) ने 'मानस' की एक टीका लिखी है, जिसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तपरक अर्थ किये गए हैं। यह टीका प्रकाशित है।

१८—मानस हंस नामक पत्रिका के रूप में श्री मानस शास्त्री ने जो भारत के प्रख्यात रामायणी श्री बिन्दु जी के जामाता हैं, मानस के सुन्दर काड की टीका, धारावाहिक रूप से निकाली थी। यह पत्रिका प्रेम धाम प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित होती थी। सम्प्रति इस पत्र के बंद हो जाने से टीका का प्रकाशन बंद हो गया है। इस टीका का नाम भी मानस हंस ही है। टीका व्यासो की शैली से प्रभावित है। इसमें मानस के व्याख्येयो का अर्थ विस्तार से किया गया। टीकाकार ने अपनी टीका के अन्तर्गत अन्य टीकाकारो के मतों को भी मानसपीयूष से उद्धृत करके प्रकाशित किया है।

१९—इधर मानस मुक्तावली नामक एक बृहद् व्याख्यान एवं विवेचन परक श्रेष्ठ टीकात्मक ग्रन्थ मानस के सुधी एवं श्रेष्ठतम व्यास पं० रामकिंकर जी व्यास ने लिखा है, जो बिरला न्यास से प्रकाशित (१९७५) हुआ है।

ऐसी सूचना मिली है कि मानस के सातो काडो की एक हस्तलिखित टीका रामायणी श्यामसुन्दरदास (वृन्दावन घाट, कड़ा, प्रयाग) के पास है। इस टीका के अन्तर्गत मानस की प्रत्यक व्याख्येय पंक्ति के ८-९ अर्थ किये गये हैं।

इनके अतिरिक्त मानस की दो सकलन प्रधान टीकाओ—मानसभाष्य एव मानस पीयूष में अनेक मानस व्याख्याताओं के टिप्पण प्रकाशित हैं। मानस भाष्य के अन्तर्गत मानस के निम्नलिखित प्रमुख व्याख्याकारो की व्याख्यायें प्रकाशित हैं —

सर्वश्री काष्ठजिह्वा स्वामी, श्री जहाँगीर शाह औलिया कृत 'मानस चौपाई' मदन पाठक, बेनीदास दादूपंथी, प० छेदीलाल द्विवेदी आदि की व्याख्यायें।

इसी प्रकार मानस पीयूष के अन्तर्गत प्रकाशित टिप्पणो के प्रमुख व्याख्याता ये विद्वान हैं—

सर्वश्री रामकुमार जी रामायणी, संतराम प्रसाद शरणदीन, स्व० रामदास गौड़, स्व० राजबहादुर लामगोड़ा, स्व० लाला भगवानदीन, तथा पं० रामकुमारदास रामायणी आदि।

प्रकरण—६

रामचरितमानस के अनुवाद

मानस की उपर्युक्त विवेचित टीकाओं के अतिरिक्त हिन्दीतर भारतीय एवं अभारतीय लगभग १६-१७ भाषाओं में हुए 'मानस' के अनुवादों का भी पता चला है। ये

अनुवाद ही विविध भाषा-भाषियों को 'मानस' का अवबोध कराने के साधन हैं। अतएव इन्हें भी हमे 'मानस' की टीकाओ के समान ही महत्व देना चाहिए। हम इसी तथ्य को दृष्टि मे रख कर विविध भाषाओ में हुए मानस के अनुवादो का उल्लेख यहाँ करना चाहते हैं।

'रामचरितमानस' जैसे सार्वजनीन एवं सार्वकालिक महत्व रखनेवाले ग्रन्थ ने देश-विदेश की विविध भाषाओ के विद्वानो संतो पर अपना अचूक प्रभाव डाला। फलत वे 'मानस' के तत्त्व का बोध जन-सामान्य को कराने के निमित्त भी प्रयत्नशील हुए और उन्होंने अपनी-अपनी भाषाओ मे इसके गद्यानुवादो, पद्यानुवादो अथवा गद्य-पद्य मिश्रित अनुवादों की रचना की। 'मानस' के अनुवाद जहाँ हिन्दीतर भारतीय भाषाओं—संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, तेलुगु, मलयालम आदि मे हुए हैं, वहीं पर फारसी, अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन और नेपाली सदृश विदेशी भाषाओ में भी 'मानस' अनूदित है। इन अनुवादो के द्वारा 'मानस' के प्रचार-प्रसार मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। प्रथमत यहाँ पर हिन्दीतर भारतीय भाषाओ मे हुए अनुवादो का संक्षिप्त साकेतिक परिचय प्रस्तुत किया जायगा। इसके पश्चात् विदेशी भाषाओ मे हुए मानसानुवादो का भी उल्लेख किया जायगा।

हिन्दीतर भारतीय भाषाओ मे 'मानस' के अनुवाद

संस्कृत भाषा

संस्कृत भाषा मे हुए मानस के अनुवाद निम्नलिखित हैं—

१—हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एव सस्कृत के विद्वान महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी ने मानस का एक सस्कृत अनुवाद किया था, जिसका कुछ अंश उनके द्वारा प्रकाशित 'मानस पत्रिका' नामक टीकात्मक ग्रन्थ मे प्रकाशित भी है। यह संस्कृत अनुवाद 'मानस' के छन्दो के ही अनुरूप है।

२—सर जार्जग्रियर्सन की सूचना के अनुसार, बलिया जिले के बलभद्र शुक्ल एवं तीन अन्य पंडितो ने मिलकर संस्कृत श्लोको मे मानस का ऐसा सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया है कि दोनो रचनायें एक दूसरे से अभिन्न प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि दोनो एक दूसरे के अनुवाद हैं।[1] जार्जग्रियर्सन को इस अनुवाद के आरण्य एवं सुन्दर काड के प्रकाशित संस्करण प्राप्त थे और उन्होंने इस अनुवाद की बडी प्रशंसा की थी।[2] सम्प्रति यह अनुपलब्ध है।

३—श्री गोपेन्द्रभूषण साख्यतीर्थ, सम्पादक 'बंग विबुध जननी सभा' नदिया (बंगाल) ने 'मानस' के सप्त काडो का एक उत्कृष्ट सस्कृत अनुवाद किया है। यह अनु-

१. इण्डियन ऐण्टिक्वेरी (सन् १९१२) वाल्यूम १२, पृ० २७४।
२. वही।

मानस के सात काण्डों के नामों के अनुसार ही सात काडों में विभाजित है। यह मानस का पद्यात्मक अनुवाद है। इसका कुछ भाग बिहार यूनिवर्सिटी जर्नल वाल्यूम ४ नं० १—ह्यूमैनिटीज नवम्बर १९५८ 'में प्रकाशित भी हो चुका है। साहित्यतीर्थ जी का कथन है कि उन्होंने विशेषत दक्षिणी विद्वानों की सुविधा के लिए अपने अनुवाद की संस्कृत टीका भी साथ-साथ दी है।[1]

उर्दू भाषा

उर्दू भाषा में 'मानस' के पाँच अनुवाद हुए हैं—

१—रामायण विहार—इसकी रचना श्री बाके बिहारी लाल ने की है। यह 'मानस' का एक संक्षिप्त पद्यात्मक अनुवाद है।[2]

२—शंकर दयाल फरहत ने 'मानस का एक अनुवाद किया है जो रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। यह नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित है।

३—श्री कैलाश सिंह ग्राम कथा, उन्नाव के पास सन् १८८५ ई० के हस्तलेख के रूप में एक अनुवाद प्राप्य है।

४—श्री राम स्वरूप कौशल के द्वारा किया गया 'मानस' का उर्दू अनुवाद सन् १९२६ ई० में लाहौर से प्रकाशित हुआ है।

(५) श्री जगन्नाथ कुश्तर ने 'मानस' का अनुवाद किया है, जो कानपुर से तथा नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित है।[3]

बंगला भाषान्तर्गत मानस के अनुवाद

महान धार्मिक काव्य रामचरित मानस का गद्य-पद्यानुवाद प्राय सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में हो गया है। मानस के सबसे अधिक अनुवाद शायद हिन्दी के पश्चात् सबसे समृद्ध भारतीय भाषा बंगला में हुआ है। इसमें मानस के पाँच (गद्य-पद्य) अनुवाद हैं।

(१) श्री राधिका प्रसाद जी बन्द्योपाध्याय ने 'मानस' का गद्यानुवाद किया है जो भारत धर्म महा मडल, वाराणसी से प्रकाशित है।

(२) सतीश चन्द्र दास गुप्त द्वारा किया गया 'मानस' का गद्यानुवाद है, जिसका प्रकाशन खादी प्रतिष्ठान, कालेज स्क्वायर कलकत्ता द्वारा किया गया है।

(३) बंगाल भूमि निवासिनी श्रीमती जीवन बाला देवी ने 'रामचरितमानस' का एक विशिष्ट प्रकार का अनुवाद निकाला है, जिसमें उन्होंने मानस के छन्दों, दोहे, चौपाई, सोरठा, हरिगीतिकादि के विषम शब्दों का अर्थ देते हुए उसको बंगलान्तर्गत पद्य एवं गद्य

---

१ श्री योगेन्द्रभूषण साहित्यतीर्थ के ३ अगस्त, १९६२ के पत्र के आधार पर।

२. इस्लाम के अलावा मजाहब की तरवीज में उर्दू का हिस्सा, पृ० ६७।

३. 'मानस' का काशिराज संस्करण, पृ० ५७५।

दोनो शैलियो मे अनुदित किया है। यह अनुवाद उत्तर बंगला साहित्य मन्दिर जलपाई गुडी से प्रकाशित है।

(४) श्री वीरेन्द्रलाल भट्टाचार्य, एम० ए० रामचरितमानस के ही दोहे-चौपाई के अनुरूप बंगला मे मानस का दोहे-चौपाई मे अनुवाद किया है।

(५) श्री सीतारामदास ओंकारनाथ, कटक पहाडपुरी द्वारा मानस का एक बंगला अनुवाद गद्य शैली मे प्रस्तुत किया गया है जो (समवत) छपकर पूर्ण हो गया है।[1]

गुजराती भाषा

(१) श्री रतनलाल नाथो शकर कृत मानस का गद्यानुवाद है जो सस्तु साहित्य-वर्धक कार्यालय अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित किया गया है।

(२) श्री छोटालाल चन्द्रशंकर शास्त्री द्वारा विरचित 'मानस' का एक और गद्यानुवाद उक्त सस्तु साहित्यवर्धक कर्यालय से छपा है।

मराठी भाषा

मराठी भाषा मे भी मानस के तीन अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। उनमे दो गद्यानुवाद तथा एक पद्यानुवाद है।

(१) श्री यादव शंकर जामदार कृत मानस का गद्यानुवाद है जो चित्रशाला प्रेस पूना से मुद्रित हुआ है।

(२) श्री रामचन्द्र चिन्तामणि श्रीखंडे द्वारा रचित 'मानस का गद्यानुवाद पूना के ही मंगलवार प्रेस से छपा है।

(३) महाराष्ट्र के अच्छे मानस मर्मज्ञ श्री प्रज्ञानानंद सरस्वती कृत मानस का एक अच्छा पद्यानुवाद है जो श्री शारदा प्रेस पूना से प्रथमवार शक संवत् १८० १ मे छपा था। इसका द्वितीय सस्करण भी प्रकाशित हो चुका है।

कन्नड भाषा

(१) श्री दत्तात्रेय कृष्ण भारद्वाज ने मानस का गद्यानुवाद कन्नड भाषा मे किया जो तुलसी कार्यालय बेंगलूरा से प्रकाशित है।

(२) श्री वेंकटेश कुलकर्णी ने भी कन्नड मे 'मानस' का गद्यानुवाद किया है, जिसका प्रकाशन ट्रेनिंग कालेज धारवाड से हुआ है।

तेलुगू भाषा

(१) श्रीनिवास शर्मा कृत मानस का तेलुगू मे किया गया गद्यानुवाद रामस्वामी शास्त्रु एंड सन्स मद्रास के द्वारा प्रकाशित है।

(२) श्रीमती तुलसीदास दासी ने मानस का गद्यानुवाद किया है जो मूलपेट नेल्लोर से प्रकाशित है।[2]

---

१. श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार से प्राप्त मानस—अनुवादो की तालिका के आधार पर।
२ वही

तमिल भाषा

तमिल के अन्तर्गत किया गया अनुवाद मुद्रित है।

असमिया भाषा

इस भाषा में एक अनुवाद किया है, जो अमुद्रित है।[1]

मलयालम भाषा

मलयालम भाषान्तर्गत मानस के तीन अनुवादों का पता चला है।

पहिले अनुवाद के रचयिता श्री वेल्लिरुल्लम् गोपाल कुरूप हैं। इन्होंने स्वयं अपने अनुवाद को प्रकाशित भी कराया था परन्तु सम्प्रति यह अनुपलब्ध है।

दूसरा है श्री वासुदेवन कृत मानस का अनुवाद इसका मात्र बालकांड ही अभी तक एडूकेशन सप्लाइज विभाग पालघाट केरल से सन् १९५६ ई० (सं० २०११) वि० मे प्रकाशित हुआ है।[2]

तीसरे अनुवाद के रचयिता हैं श्री काउगल नील कंठ पिल्लै अवरकल है। इसके प्रकाशक हैं के० जी० परमेश्वरन् पिल्लै, श्री रामविलास प्रेस कोनलम।

उड़िया भाषा

श्री रामकुमार रामायणी (अयोध्या) द्वारा हमे ऐसी सूचना मिली है कि महांत गंगादास (जगन्नाथ पुरी) ने 'मानस' की एक अनुवादात्मक टीका उड़िया भाषा मे लिखी है।

विदेशी भाषाओं मे 'मानस' के अनुवाद

फारसी भाषा

फारसी भाषा में हुए मानस के चार अनुवादों का पता चला है।[3] पहला हस्तलिखित अनुवाद श्री देवीदास कायस्थ का है। इसकी प्राप्ति का स्थान है ब्रिटिश म्युजियम, लंदन। इसका हस्तलेख सन् १८०४ ई० का है।

दूसरा हस्तलिखित अनुवाद श्री मन्नालाल कायस्थ का है। हस्तलेख सन् १८८४ ई० का है। इसकी प्राप्ति का स्थान है—मुंशी शिवनाथ प्रसाद, हनुमान फाटक, वाराणसी।

तीसरा हस्तलिखित अनुवाद श्री रामसरन सिंह का है। हस्तलेख सन् १८८४ ई० का है। इसकी प्राप्ति का स्थान मन्नूलाल पुस्तकालय गया (बिहार) है। यह सन् १९०२ मे कानपुर से प्रकाशित हुआ था।

---

१ रामचरितमानस का काशिराज सस्करण, पृ० ५७६।

२. व्यवस्थापक, नेशनल बुक स्टाल कोट्टयम (केरल) के ३ अगस्त, ६२ की पत्रगत-सूचना के आधार पर।

३ 'मानस' का काशिराज संस्करण, पृ० ५७५।

चौथे अनुवाद के रचयिता हैं श्री हरलाल रमवा। यह सन् १८८५ मे लखनऊ से प्रकाशित हुआ था।

अंग्रेजी भाषा

(१) श्री एफ० एस० ग्राउज की सूचना के अनुसार अंग्रेजी भाषा मे सबसे पहला अनुवाद फोर्ट विलियम कालेज के एक कर्मचारी मुंशी अदालत खाँ के द्वारा लिया गया था। और उन्ही के द्वारा सन् १८७१ मे प्रकाशित कराया गया था।

(२) ग्राउज कृत अनुवाद—यह एफ० एस० ग्राउज द्वारा रचित मानस का गद्यानुवाद है। इसका प्रथम प्रकाशन संवत् १९३३ विक्रमी सन् (१८७६) मे हुआ था। इसका पंचम सस्करण जो हमे सुलभ हुआ, जो यूनियन प्रेस से ई० मे सैम्युअल के द्वारा सवत् १९४८ (सन् १८९१) मे मुद्रित कराया गया है। दो दशको के अन्तर्गत इसके पांच संस्करणो के हो जाने से ही यह प्रमाणित होता है कि 'मानस' का यह अंग्रेजी अनुवाद उन दिनो बडा ही लोकप्रिय हुआ। इसमे पाद टिप्पणियाँ भी प्रचुर मात्रा मे है, जो अनुवाद के मूल्य को बढा देती है। कहीं-कहीं अनुवादक 'मानस' के भावो का यथार्थ अनुवाद नही दे सका है।[१]

(३) हिल्स कृत अनुवाद—श्री डब्ल्यू० .एमलस पी० हिल्स ने 'मानस' का एक अनुवाद रचा था। इसका प्रकाशन आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन से हुआ था।

(४) श्री पॉल थाल्टर कृत मनास का एक हस्तलिखित अनुवाद प्राप्त है। इसका प्राप्ति स्थान—कलेक्शन आव दिफॉरमर प्रूशियन स्टेट अकादमी, ओरियंटल डिपार्टमेन्ट, मारवर्क, जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी के पुस्तकालय मे)।[२]

(५) गीता प्रेस का अनुवाद—गीता प्रेस (गोरखपु) के तत्वाधान मे कल्याण कल्पतरु के सम्पादक श्री चिम्नलाल जी गोस्वामी ने 'मानस' का एक गद्यानुवाद अंग्रेजी भाषा मे प्रस्तुत किया है। इसका प्रकाशन काल संवत् २००६ वि० है। यह अनुवाद अन्य सभी अंग्रेजी अनुवादो से उत्कृष्ट है। इसका कारण यह है कि अन्य सभी अनुवादक अंग्रेज रहे हैं, फलत उन्हें मानस में वर्णित भारतीय संस्कृति एवं काव्य परंपरा का सम्बोध उतना अधिक नही हो सकता जितना एक भारतीय काव्य मर्मज्ञ एवं संस्कृत के अध्येता अनुवादक को। यही कारण है कि जहाँ अन्य अंग्रेज अनुवादको को मानस समझने मे कतिपय स्थलो पर कठिनाइयाँ एवं भ्रान्तियाँ उपस्थित हुई हैं, वही गोस्वामी चिम्मनलाल जी ने बडे सहज एवं सटीक ढंग से 'मानस' के भावो को अंग्रेजी मे अनुदित कर दिया है।

(६) एटकिन्स कृत अनुवाद—पादरी ए० जी० एटकिन्स ने 'मानस' का एक पद्यात्मक अनुवाद किया है जो बडी ही आकर्षक साज-सज्जा के साथ इण्डियन टाइम्स प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

---

१. एफ० एस० का ग्राउज कृत 'मानस' के अनुवाद की भूमिका।

२. 'मानस' काशिराज संस्करण, पृ० ५७५।

रूसी भाषा

सुप्रसिद्ध रूसी साहित्यकार श्री ए० पी० वारान्निकोव ने रूसी भाषा के अन्तर्गत 'मानस' का एक उत्तम कोटि का पद्यात्मक अनुवाद किया है। इस अनुवाद की ए० पी० वारान्निकोव द्वारा लिखित एक विद्वतापूर्ण भूमिका है जिसका हिन्दी अनुवाद डा० श्री केसरीनारायण शुक्ल ने किया है। इस भूमिका से मानस के महत्व, उसके अनोखी काव्य-रचना पद्धति और विदेशियों के लिए मानस के अध्ययन में उठने वाली कठिनाइयों पर विवेचन किया है। यह अनुवाद सन् १९४८ ई० में रूस की 'एकेडेमी आफ साइंस' के द्वारा प्रकाशित किया गया। श्री ए० पी० वारान्निकोव ने इसके पूर्व ही 'मानस' के गद्यानुवाद की रचना संवत् १९९३ वि० कर ली थी।[1]

फ्रेन्च भाषा

इस भाषा के अन्तर्गत हुए 'मानस' के एक अनुवाद की सूचना मिली है। उसके रचयिता हैं चार्लति वाद विले, यूनिवर्सिटी द पेरिस। यह मुद्रित है।[2]

जर्मन भाषा

जर्मन भाषा के अन्तर्गत 'मानस' के दो अनुवाद प्राप्य हैं। ये अनुवाद संग्रह ग्रन्थों के रूप में हैं, उनमें 'मानस' के कुछ स्थलों के अनुवाद हैं। इस प्रकार का पहला अनुवाद सन् १९२५ ई० में बर्लिन से तथा दूसरा अनुवाद १९५४ ई० में वैसले से मुद्रित है।[3]

नेपाली भाषा

श्री कुलचन्द्र गौतम ने मानस का अनुवाद नेपाली भाषा में किया है। इसका प्रकाशन ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी से हुआ है।

सिन्धी भाषा

सिन्ध प्रदेश, जो सम्प्रति पाकिस्तान का एक अंग है, इस प्रान्त की भाषा-सिन्धी अरबी लिपि में भी रामचरितमानस के दो-चार अनुवाद हो चुके हैं। इधर श्री किशोर अजीत जी तुलसीकृत रामचरित मानस का देवनागरी सिन्धी में अनुवाद कर रहे हैं। यह अनुवाद शीघ्र ही छपने वाला है।[4]

---

१. 'कल्याण' भक्ति अंक, वर्ष ३२, संख्या १, पृ० ७०५।
२ 'मानस' का काशिराज संस्करण, पृ० ५७५।
३. वही, पृ० ५७५।
४ धर्मयुग, २७ अक्टूबर, सन् १९६३ ई०, पृ० १६।

उपसंहार

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ काव्य 'रामचरितमानस' विश्व की श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतियों मे गिना जाता है। अर्थगाम्भीर्य की दृष्टि से 'मानस' विश्व के किसी भी ग्रन्थ से यदि श्रेष्ठतर नहीं, तो हीनतर भी नहीं है। 'मानस' का विशाल टीका-साहित्य इस तथ्य का साक्षी है। 'मानस' के टीका-साहित्य से इस रहस्य का पता चलता है कि 'मानस' की अतुल-अर्थ-व्यंजिका कुछ ऐसी भी टीकाएँ हैं, जिनके समतुल्य भारतीय भाषाओं मे ही नहीं, अनेक विदेशी भाषाओं के साहित्य मे भी टीकाएँ मिलनी असंभव हैं। उदाहरणार्थ 'मानस' की एक ही अर्द्धाली पर पौने सत्रह लाख से भी अधिक (१६७५१४६) अर्थों को व्यजित करने वाली 'मानस' की टीका-तुलसीसूक्ति सुधाकर भाष्य-एक ऐसा ही अद्वितीय टीका-ग्रन्थ है।

हमने अपने शोध प्रबन्ध के तीन खण्डो के अन्तर्गत मानस के विशाल एवं विलक्षण टीका-साहित्य के स्वरूप पर विशद रूप से विवेचन प्रस्तुत किया है। शोध-प्रबन्ध के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत संस्कृत के टीका साहित्य पर विचार करते हुए हमने देखा कि संस्कृत ग्रन्थों के मूल्यांकन की एक मात्र प्रणाली व्याख्या पद्धति ही थी। व्याख्या की विविध विधाओं—टीका, भाष्य, वार्त्तिक, वृत्ति, टिप्पणी, कारिकादि के माध्यम से संस्कृत के क्लिष्ट एवं महत्वपूर्ण वाङ्मय को सर्व सुगम बनाया जाता था। संस्कृत की टीका-रचना की उपर्युक्त प्रणालियाँ हिन्दी साहित्य के मध्यकाल (वि० संवत् की १४ वीं से १६ वीं शताब्दी) मे पूर्ण रूप से पुष्पित, पल्लवित अवस्था मे थीं।

व्याख्या की विविध विधाओ के आधार पर संस्कृत ग्रन्थो की टीकाएँ बड़ी तत्परता से लिखी जा रही थी। इसी मध्य युग मे उद्भूत एवं विकसित 'मानस' के टीका-साहित्य पर भी व्याख्या की विभिन्न टीका रचना-विधाओं का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है। 'मानस' की टीकाएँ भी व्याख्या को टीका, भाष्य, टिप्पणी वर्तिकादि शास्त्रीय विधाओं के लक्षणो के अनुरूप लिखी गयी है। इस तथ्य पर हमने इस शोध-प्रबन्ध के प्रथम खण्ड में विस्तृत रूप से विचार किया है। इस दृष्टिकोण से 'मानस' का टीका-साहित्य हिन्दी में अप्रतिद्वंद्व ठहरता है।

शोध-प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत हमने मानस के टीका-साहित्य के इतिहास का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

रामचरितमानस को हिन्दी का प्राचीनतम व्याख्यात काव्य होने का गौरव प्राप्त है। 'मानस' के प्रणयन (संवद् १६३३)[1] के दो दशको के पश्चात् ही 'मानस' की टीका-रचना प्रारम्भ हो गयी थी। रामू द्विवेदी कृत प्रेमरामायण संज्ञक 'मानस' की संस्कृत

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, सं० २००५, पृ० १२८।

टीका विक्रम संवत् १६६२ के पूर्व ही लिखी जा चुकी थी। प्रेम रामायण मानस की प्रथम टीका मानी जाती है। इस प्रकार प्रेम रामायण के रचना काल से लेकर आजतक के साहित्यिक, ऐतिहासिक साढे तीन सौ वर्षों से ऊपर ठहरता है।[१] हिन्दी साहित्य में यह गौरव केवल 'मानस' को ही प्राप्त है। 'मानस' की टीकाओं का यह साहित्य प्रारंभिक काल से लेकर आज तक सतत परिवर्द्धनशील ही रहा है। 'मानस' की तुलना में यदि हम हिन्दी के अन्य ग्रन्थों के टीका साहित्यों के उद्भव एवं विकास काल को देखें तो वे सर्वाविध हीनतर ही दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण के लिए प्राचीनता की दृष्टि से 'मानस' के अतिरिक्त हिन्दी में सर्वाधिक प्राचीन टीका प्रियादास जी द्वारा कवित्त छन्दों में लिखी हुई भक्तमाल की टीका है, जिसका रचनाकाल संवत् १७६६ वि० है।[२] इसके अतिरिक्त कविवर बिहारी के पुत्र कृष्ण कवि ने बिहारी सतसई पर सवैया छन्द के अन्तर्गत एक टीका की रचना की, जिसकी परिणति संवत् १७८५ से १७८० के बीच हुई।[३] सूरति मिश्र कृत बिहारी सतसई की अमरचन्द्रिका टीका का प्रणयन-काल स० १७९४ वि० है और उन्हीं के द्वारा विरचित केशवदास की कविप्रिया एवं रसिक प्रिया की टीकाओं का रचना-काल विक्रम की १८ वीं शताब्दी का अंतिम चरण माना जाता है।[४] इस प्रकार इन समस्त टीकाओं के उद्भव से लगभग सौ-डेढ़ सौ वर्षों पूर्व ही 'मानस' की टीकाओं के लेखन का यह प्रारम्भ हो गया था।

'मानस' का टीका-साहित्य, टीकाओं की महती संख्या और उन टीकाओं के सर्वांगीण समृद्ध स्वरूप की दृष्टि से भी हिन्दी के अन्तर्गत अद्वितीय ठहरता है। टीकाओं की संख्या की दृष्टि से हिन्दी के अन्य प्रमुख ग्रन्थ इसकी तुलना में नहीं आ सकते। केशव की रामचन्द्रिका पर चार-पाँच टीकाएँ ख्यात हैं, जायसी के पद्मावत की प्रसिद्ध टीकाओं की संख्या भी चार तक सीमित है। सूरसागर पर कोई टीका अभी तक स्तरीय नहीं है। बिहारी की सतसई ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिस पर प्रचुर मात्रा में टीकाएँ लिखी गयी हैं। बिहारी सतसई के टीका-साहित्य की बड़ी प्रशंसा सुनने में आती है। स्वयं पं० रामचन्द्र शुक्ल ने बड़े गर्व से इसके विषय में हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत बिहारी सतसई पर विचार करते समय लिखा है—'इसका एक एक दोहा हिन्दी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएँ रची गयी। इन टीकाओं में चार-पाँच टीकाएँ तो बहुत प्रसिद्ध हैं—कृष्ण कवि की टीका जो कवित्तों में है, हरिप्रकाश टीका, लल्लू लाल की लाल चन्द्रिका, सरदार कवि की टीका और सूरति मिश्र की टीका। इन टीकाओं के अतिरिक्त बिहारी के दोहों के भाव पल्लवित करने वाले छप्पर कुंडलिया

---

१. खण्ड २, पृ० १०३।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, द्वादश सं०, पृ० १३५।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, द्वा० सं०, पृ० २५३।
४. 'वही', पृ० २४१।

सवैया आदि कवियो ने रचे।'[1] वे आगे लिखते हैं—पं० परमानन्द ने शृंगार सप्तशती के नाम से दोहो का संस्कृत अनुवाद किया है। यहाँ तक कि उर्दू शेरों मे भी एक अनुवाद थोड़े ही दिन हुए बुंदेलखण्डी मुंशी देवी प्रसाद (प्रीतम) ने लिखा।'[2]

अब यदि उपर्युक्त दृष्टि से 'मानस' की टीकाओं की तुलना बिहारी सतसई से करें तो 'मानस'—टीकाओ की संख्या बिहारी की टीकाओं के दूने से भी अधिक (लगभग सवा सौ) ठहरती है। जहाँ बिहारी सतसई की मात्र पाँच-सात टीकाएँ ही विपुल विश्रुत हैं, वहाँ मानस की पच्चीसों टीकाएँ जनता मे अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी हैं। उनका मनन-मंथन 'मानस'-प्रेमियों मे चलता रहा है। ऐसी टीकाओं में करुणासिन्धु जी कृत आनन्द लहरी, पं० शिवलाल पाठक कृत मानसमयंक, बाबा हरिहर प्रसाद कृत रामायणपरिचर्या परिशिष्ट, प्रकाश बैजनाथ जी कृत 'मानसमयण', बाबा जानकी दास कृत मानसप्रचारिका, शुकदेव लाल कृत मानसहंस, प० ज्वाला प्रसाद एवं रामेश्वर भट्ट कृत मानस की टीकाएँ, बाबू श्यामसुन्दर दास कृत मानस सटीक, श्री विनायक राव की विनायकीटीका, अंजनीनन्दन शरण कृत मानसपीयूष, विजयानन्द त्रिपाठी कृत विजया टीका एवं श्रीकान्त शरण कृत सिद्धान्त भाष्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये टीकाएँ 'मानस' के दार्शनिक, भक्त्यात्मक, काव्यात्मक, राजनीतिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप का दिग्दर्शन कराती हैं। हिन्दीतर १८ देशी-विदेशी भाषाओं मे हुए मानस के अनुवादों की संख्या लगभग पचास है। 'मानस' के भावों की व्यंजक पद्यमयी रचनाओं की संख्या भी प्रचुर मात्रा मे हैं। हमने कुछ ऐसे ग्रंथों का परिचय इस प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में यथास्थान दिया है।

इस सन्दर्भ मे एक विशेष तथ्य यह निवेदित करना है कि महात्मा तुलसीदास के समय से लेकर आज तक मानस के टीकाकारो एवं व्यासो ने 'मानस'—सुधा की दिव्य धारा निरन्तर अविरल रूप से प्रवहमान की। इस पुण्य सलिला ने धर्म प्राण सनातनी जनमानस, साहित्यिक सम्प्रबुद्ध सुधीजनो एवं विश्व के कोने-कोने के मानव मूल्यों के खोजियों प्रेमियों को सदैव, नवलोप परम शान्ति एवं विश्राम की रसधार में स्नान कर धन्य किया है। आज चाहे मानस-व्यास एवं टीकाकार अर्थार्थी रूप मे मानस-अमृत का दान कर रहे हों, परन्तु प्राचीन टीकाकारो एवं व्यासो की प्रवृत्ति तो स्वान्त: सुखाय होते हुए 'सुरसरि सम सब कर हित होई' ही था। इस प्रकार न केवल 'मानस'-प्रेमी जगत ही और न, ही हिन्दी जगत उक्त 'मानस'-व्यासो एवं टीकाकारो का ऋणी है, अपितु सद् एवं विश्वजनीन साहित्य का प्रेमी सारा विश्व चिर ऋणी है।

एक बात और जैसा हमने पूर्वत इस ग्रन्थ के अन्तर्गत संकेत किया है कि टीका-पद्धति एक प्रकार से समीक्षा की विधा है। डॉ० नगेन्द्र भी इसे येनकेन प्रकारेण आलो-

---

१. वही, पृ० २४६।
२. वही, पृ० २४६-४७।

चना की व्यावहारिक (समीक्षा) पद्धति की एक विधा के रूप में मानते है।[1] मानस की टीकाओं में व्यावहारिक समीक्षा का रूप क्रमश निखरता ही गया है। इस दृष्टि से विनायकी टीका, मानसपीयूष, विजया टीका, सिद्धान्त भाष्य, रामायण भाष्य (शिवरत्न शुक्ल कृत) तथा रमाशंकर प्रसाद एडवोकेट कृत सुन्दर प्रकाश विशेष रूप से विवेच्य है। रामायण भाष्य एवं सुन्दर प्रकाश तो टीका की अपेक्षा व्याख्यात्मक समीक्षा ही अधिक प्रतीत होते हैं।

सम्प्रति हिन्दी में आलोचना-साहित्य का प्राधान्य है। परन्तु जहाँ तक 'मानस' महाकाव्य का प्रश्न है, इसका भविष्य उज्ज्वल है। यह निरन्तर वर्द्धमान हो होता जा रहा है। इसकी प्रकृष्ट कोटि की टीकाओं का प्रणयन सम्पन्न हो रहा है। अभी कुछ वर्षों पूर्व श्री श्रीकान्त शरण जी कृत सिद्धान्त भाष्य नामक एक विशाल टीकात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जो 'मानस' के भक्त्यात्मक एवं काव्यात्मक दोनों पक्षों का व्याख्यात्मक विवेचन भली भाँति प्रस्तुत करता है। अन्त में हम एक और तथ्य भी प्रकाशित कर देना चाहते हैं कि हिन्दी के सुधी विद्वान एवं तुलसी साहित्य के परम रसज्ञ मर्मी साहित्यकार मानस की टीकाओं के प्रणयन में यथापेक्षित रुचि नहीं ले रहे हैं। इधर 'मानस' के एक अन्यतम मर्मज्ञ (स्व०) डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने इस दिशा में स्तुत्य कार्य का सूत्रपात किया था। मिश्र जी कृत रामचरितमानस के सुन्दर काड की टीका उनकी मृत्यु (१९७५) के कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुई। यह टीका प्राय हर दृष्टि से श्रेष्ठ प्रामाणिक एवं विशद है।

---

१. द्रष्टव्य भारतीय समीक्षा (सं० डॉ० नगेन्द्र) की भूमिका पृ०, १४

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

अ—आलोच्य (हिन्दी) ग्रन्थ

प्रकाशित ग्रन्थ

	कृति	कृतिकार	संस्करण	प्राप्ति-स्थान
१.	अमृतलहरीटीका	श्री रामेश्वरभट्ट	प्रथमसंस्करण	काशीनागरी प्रचारिणी सभा।
२.	अयोध्याकाड की टीका	लाला भगवानदीन दीन	—	,,
३.	आनन्दलहरी वार्तिक	महंत रामचरणदास जी 'करुणासिन्धु'	संस्करणकाल संवत् १९४१ (सन् १८८४ ई०)	श्रीराम ग्रंथागार, मणिपर्वत, अयोध्या।
४.	तिमिरनाशक-टीका	बच्चूसूर,	सं० २००० वि०	,,
५	तुलसीसूक्त सुधाकर भाष्य	श्री बाबूरामशुक्ल	सं० १९७४ वि०	,,
६.	दीनहितकारणी टीका	संत रामप्रसाद 'दीन'	प्रथम संस्करण	,,
७.	देवदीपिकाटीका	देवनारायण द्विवेदी	अष्टमसंस्करण	,,
८.	पीयूषधाराटीका	श्रीरामेश्वरभट्ट	सप्तमसंस्करण	,,
९.	मानप्रकाश	श्रीसंतसिंहज्ञानी 'पंजाबी जी'	प्रथम संस्करण	श्रीरामस्वरूपदास रामायणी, बड़ी छावनी, अयोध्या।
१०.	मानस अभिप्राय दीपक (चक्षुटीका सहित)	श्री शिवलालजी पाठक	प्रथम संस्करण	डा० गोपीनाथ जी तिवारी, सत्यसदन, विन्ध्यवासिनीनगर, गोरखपुर।
११.	मानसटिप्पणी	बाबा रामबालकदास रामायणी		श्रीरामस्वरूपदास रामायणी, बड़ी छावनी, अयोध्या
१२.	मानसतत्व प्रबोधिनी (सटिप्पण)	श्री चण्डीप्रसाद सिंह	प्रथम संस्करण	श्री श्रीकान्तशरण, सद्गुरुसदन, गोलाघाट, अयोध्या।

१३	मानसतत्वभास्कर	पं० रामकुमार जी रामायणी		श्रीराम ग्रंथागार, मणिपर्वत, अयोध्या।
१४	मानसदीपिका	बाबा रघुनाथदास	,,	,,
१५.	मानसप्रचारिका	बाबाजानकीदास	,,	,,
१६.	मानसपीयूष	श्री अंजनीनंदनशरण	प्रथम तथा तृतीय संस्करण	सम्पादन-विभाग (गीताप्रेस) का पुस्तकालय
१७.	मानसभाव प्रदीप	श्री रामवल्लभ पाण्डेय	प्रथम संस्करण	श्रीरामस्वरूपदास रामायणी, बडी छावनी, अयोध्या।
१८	मानसभाष्य	श्री हनुमानदास वकील	प्रथमसंस्करण	श्रीरामप्रथागार, बडी छावनी, अयोध्या।
१९.	मानसभूषण टीका	बाबा राधेराम महन्त	,,	,,
२०	मानसभूषण टीका	श्री बैजनाथजी	प्रथम संस्करण	श्री श्रीकान्त शरण सद्गुरु सदन, गोलाघाट, अयोध्या।
२१.	मानसमयंक (चन्द्रिका टीका सहित)	श्री शिवलाल जी पाठक	,,	सम्पादन-विभाग, गीताप्रेस, पुस्तकालय
२२.	मानसमार्तण्ड	श्रीजानकीशरण 'स्नेहलता	,,	डा० गोपीनाथ तिवारी, सत्यसदन विन्ध्यवासिनी नगर, गोरखपुर।
२३.	मानसहंस	श्री शुकदेवलाल मैनपुरी	चतुर्थ संस्करण	श्रीरामग्रंथागार, मणिपर्वत, अयोध्या।
२४.	रामचरित मानसटीका	बाबु श्यामसुन्दर दास	संस्करणलाल सं० १९९५ वि०	)
२५.	रामचरित मानसटीका	श्रीमहावीरप्रसाद मालवीय	प्रथम संस्करण	श्री अंजनीनंदन शरण, ऋणमोचनघाट, अयोध्या।
२६.	रामचरितमानस (सुन्दरकांड की टीका)	शिवशंकरलाल श्याम	,,	काशीनागरी प्रचारिणी सभा।

२७.	रामचरितमानस (अयोध्याकांड)	पं० शीतलाप्रसाद तिवारी	प्रथम संस्करण	काशीनागरी प्रचारिणी सभा
२८.	रामचरितमानस सटीक	श्री रणबहादुरसिंह		रामग्रंथागार, मणि पर्वत अयोध्या।
२९.	रामचरितमानस सटीक	पं० रामनरेश त्रिपाठी	संस्करणकाल-सं० २००८ वि०	
३०.	रामचरितमानस सटीक	श्री अवधबिहारी दास परमहंस	प्रथम संस्करण	श्रीकृष्णदास अग्रवाल, कार्यालय अधीक्षक, सामान्य प्रबन्धक, पर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर।
३१.	रामचरितमानस सटीक	श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार	दसवां संस्करण	
३२	रामायणमाष्य	श्री शिवरत्न शुक्ल	प्रथम संस्करण	काशीनागरी प्रचारिणी सभा।
३३	विजयाटीका	श्री विजयानन्द त्रिपाठी	"	" "
३४.	विनायकी टीका	श्री विनायकराव		" "
३५	शीलावृत्ति	बाबाहरिदासजी	द्वितीय संस्करण	श्री रामग्रंथागार मणिपर्वत, अयोध्या।
३६.	संजीवनी टीका	पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र	११वाँ संस्करण	सम्पादन विभाग, गीताप्रेस का पुस्तकालय।
३७	संतउन्मनी टीका	श्री गुरुसहायलाल	प्रथमसंस्करण	श्रीरामग्रंथागार, मणि पर्वत, अयोध्या।
३८.	सिद्धान्तमाष्य	श्री श्रीकान्तशरण	"	
३९.	सुन्दरप्रकाश	श्री रमाशंकरप्रसाद एडवोकेट	"	त्रिभुवननाथ चौबे, द्वारा सम्पादन-विभाग, गीताप्रेस, गीतागार्डेन, गोरखपुर।

पत्रिकाएं

१. मानसपत्रिका	सपादक-टीकाकार-पं० सुधाकर द्विवेदी	काशीनागरी प्रचारिणी सभा।
२. मानसहंस	श्रीनाथमिश्र मानस शास्त्री	रामग्रन्थागार, अयोध्या।

हस्तलिखित ग्रन्थ

१. मानसतत्व प्रबोधिनी	पं० शेपदत्त जी	प्रतिलिपिकाल-सं० १९५३ वि०	त्रिभुवननाथ चौबे, द्वारा सम्पादन विभाग, गीताप्रेस, गीतागार्डेन, गोरखपुर।
२ मानसपरचरजा	श्रीमिथिलाधिप नदिनीशरण दूधाधारीजी	सं० १९३९ वि०	वामनजी का मदिर, अयोध्या।
३ 'मानस' पुलवारी प्रसंग की टीका	श्री कामदअलीजी	सं० १९५३ वि०	त्रिभुवननाथ चौबे, द्वारा सम्पादन विभाग, गीताप्रेस, गोतागार्डेन, गोरखपुर।
४ 'मानस' बालकाड पूर्वार्द्ध की टीका	श्रीमहादेवदत्तजी	"	बाबूरामनाथजी बढ़ैया मुगेर, बिहार।
५ रामचरितमानस सटीक	महाराजगोपाल शरणसिह	सं० १९१५ वि०	रामनगर-राजपुस्तकालय

अन्य भाषाओ के ग्रन्थ

मराठी भाषा

१. मानस अनुवाद	प्रज्ञानानंदजीसरस्वती	प्रथम संस्करण	श्रीकालेराम का मंदिर, अयोध्या

उर्दू भाषा

१. रामयणफरहत	श्रीशंकरदयालफरहत		टाउनहाल सायब्रेरी, गोरखपुर

अँग्रेजी भाषा

१ 'मानस' अनुवाद	एफ० एम० ग्राउज		श्री चिम्नलालगोस्वामी, सम्पादक कल्याण कल्पतरु, गीताप्रेस, गोरखपुर।
२. 'मानस' अनुवाद	ए० जी० एटकिन्स	प्रथमसंस्करण	
३ 'मानस' अनुवाद	चिम्मनलाल गोस्वामी	"	

---

१ इस स्तंभ में दी गयी दोनो पत्रिकायें विशुद्ध रूप से मानस की टीका है। इनमें 'मानस' की व्याख्या ही प्रकाशित होती थी।

ख-सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

१. आचार्यक्षेमेन्द्र	श्रीमनोहरलाल	प्रथमसंस्करण	
२. आर्य संस्कृति के मूलाधार	श्री बलदेव उपाध्याय	प्रथम संस्करण	
३. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास (सन् १९२६-४७)	डा० भोलानाथ तिवारी	"	
४ करुणामणिमाला		"	
५ काव्य प्रभाकर	श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'	संस्करणकाल- सं० १९६६ वि०	सम्पादन-विभाग, गीता प्रेस का पुस्तकालय।
६. खोज विवरणिका (काशीनागरी प्रचारिणी सभा)	सम्पादक-डॉ० हीरालाल, डी० लिट्	सवत् २०१०	
७ दोहावली	तुलसीदास		
८. नाथ सम्प्रदाय	पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी	सं० २००७ वि० (सन् १९५०)	
९ भारतेन्दुकालीन नाटकसाहित्य	डॉ० गोपीनाथ तिवारी	प्रथमसंस्करण	
१०. रसिकप्रकाशभक्तमाल	श्री जीवारामजी	"	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, बेतियाहाता, गोरखपुर।
११. रामचरितमानस राजसंस्करण	सम्पादक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	"	
१२. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह	प्रथम संस्करण	
१३. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना	श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र	"	

१४. रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव	डॉ० बदरीनाथ श्रीवास्तव	प्रथम संस्करण	
१५. विनयपत्रिका	तुलसीदास		
१६ वेदभाष्य पद्धति को दयानंद सरस्वती की देन	(शोध-प्रबन्ध) डॉ० एस० के० गुप्त	प्रथम संस्करण	डॉ० एस० के० गुप्त, रीडर, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
१७ वैदिक साहित्य	श्री राम गोविन्द त्रिवेदी	प्रथम सस्करण	
१८ संस्कृत आलोचना	श्री बलदेव उपाध्याय	प्रथम संस्करण	
१९ सस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (भाग-१)	श्री युधिष्ठिर मीमासक	प्रथम संस्करण	
२० हस्तलिखित पोथियो का विवरण (४ था खण्ड)	म० नलिनविलोचन शर्मा		राष्ट्रभाषा परिषद पटना।
२० हिन्दी वक्रोक्ति जीवित	आचार्य विश्वेश्वर	संस्करणकाल-सं० २०१२ वि०	
२१ हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	सं० २०१५ वि०	
२२ हिन्दीसाहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	परिवर्द्धित संशोधित संस्करण सं० तथा द्वादश सस्करण	
२३ हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	पाँचवा तथा सातवा संस्करण	
२४. हिन्दी साहित्य दर्पण		प्रथम संस्करण	
२५ भारतीय समीक्षा	सं० डा० नगेन्द्र	प्रथम संरण	

कोष

१ बंगला विश्व कोष (हिन्दी अनुवाद) सम्पादक श्रीनगेन्द्र नाथ वसु
२. वृहत् हिन्दी कोश (ज्ञान मंडल प्रकाशन
३. शब्द कल्पद्रुम (चौखम्बा, वाराणसी)
४. हिन्दी साहित्य कोष (ज्ञान मंडल प्रकाशन)

पत्र-पत्रिकाएँ

१ कल्याण
२. तुलसीपत्र सम्पादक– श्री बालक रामविनायक रामग्रन्थागार, मणिपर्वत, अयोध्या।
३ धर्मयुग
४ रामतीर्थ (योगाश्रम पत्रिका, बम्बई)

संस्कृत

१ काव्य प्रकाश आचार्य मम्मट
२ काव्यालंकारसूत्र वामन
३. गीता
४. गीता (रामानुज भाष्य) रामानुजाचार्य
५ गीता (शांकरभाष्य) शंकराचार्य
६ छान्दोग्य उपनिषद्
७. नाट्य शास्त्र भरत
८ पातंजल योग की राजमार्तण्ड वृत्ति भोजराज
९ ब्रह्म सूत्र (शांकरभाष्य) शंकराचार्य
१०. ब्रह्मसूत्र (शांकरभाष्य) ,, संस्करण काल सं० १९७० वि०

११ रत्नप्रभा भामती न्याय निर्णय टीका सहित		
१२ भक्तिरसामृतसिन्धु	रूप गोस्वामी	अच्युत ग्रन्थमाला, काशी।
१३ भागवत (अष्ट टीका सहित)		
१४. माण्डूक्योपनिषद्		
१५. माण्डूक्यकारिका	गौड़पाद	
१६ माण्डूक्योपनिषद् (शाङ्करभाष्य)	शंकराचार्य	
१७ यतीन्द्रमतदीपिका (आनंदाश्रम संस्करण)		
१८. रघुवंश की संजीवनी टीका	मल्लिनाथ	
१९. बृहदारण्यक उपनिषद् (शाङ्करभाष्य)	शंकराचार्य	
२० बृहदारण्यक उपनिषद् (शाङ्करभाष्य का वार्तिक)	सुरेश्वराचार्य	

कोष

१. अभिमानचिन्तामणि	हेमचन्द्र	
२. अमरकोष (टीका सहित)	अमरसिंह	
३ बृहद्वाचस्पत्य अभिधान	तारानाथ तर्कवाचस्पति	सम्पादन-विभाग, गीता प्रेस का पुस्तकालय।

अंग्रेजी

१. इण्डियन ऐंटीक्वेरी, वाल्यूम १२ संवत् १९६९ वि० (सन् १९१२ ई०)

२ हिस्टी आफ धर्मशास्त्र, पाण्डुरंग वामन काणे,

कोष

१. संस्कृत-अंग्रेजी कोष वी० एस० आप्टे

२ संस्कृत-अंग्रेजी कोष मोनियर विलियम्स